विधवा विवाह मीमांसा

निष्पक्ष भाव से लिखा हुआ
एक उपयोगी ग्रन्थ ।

लेखक :—
श्री० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०

प्रकाशक—
"चाँद" कार्य्यालय, इलाहाबाद ।

दीप मालिका, सम्वत् १९८० ।

मूल्य २) दो रूपया ।

प्रकाशक—

'चाँद' कार्य्यालय,
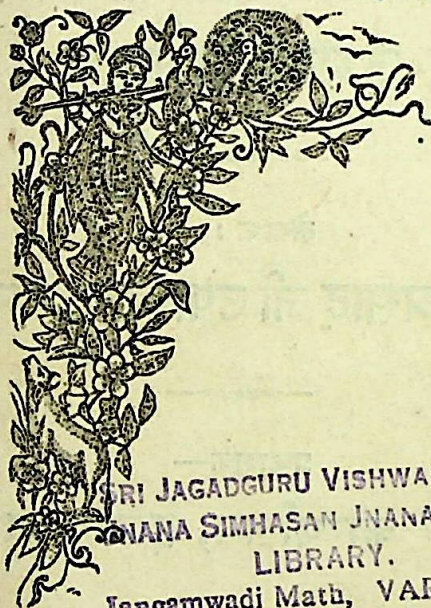
इलाहाबाद।

मुद्रक—

पं० केदारनाथ मिश्र, प्रोप्राइटर,

"मिश्र प्रेस" अहियापुर सत्तीचौरा,

इलाहाबाद।

शुद्धाशुद्ध पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	ध्न्या	ङ्या
४	१०	बारह	तेरह
२५	२४	भति	मति
३२	२२	ब्रह्मचर्य्येण	ब्रह्मचर्य्येण
४०	२४	अनेकान्तकः	अनैकान्तिकःस
६३	१९	भ्याँ	भ्यां
६६	८	मवत्	भवत्
६७	२३	सुमनाः	सुषमा
६८	१	वोर	वीर
९१	१९	इयाद	इयाड्
९६	२६	क्लीवे	क्लीबे
१०२	१३	परै	परे
१०३	१	कोटौ	कोटी
१०९	२	क्लीब	क्लीब
१४४	१३	क्षय	क्षत
१४४	१६	पुनं	पुनः
१९४	२४	हत्या	हत्यां

× × ×

विषयसूची।

विषय — पृष्ठ

× × ×

× × ×

कविताएं:—

❀ ❀ ❀

उपहार

विधवा जीवन।

A. L. J. PRESS

विधवा का हृदय ।

[ले० श्री० "विक्रम" ।]

(१)

बहो न मेरे तन को छू कर, हे सौरभ से भरे समीर ।
हा ! दूषित कर देंगे मुझ को, मधुर मयन के कोमल तीर ॥
भरो न मुझ में हे वसन्त तुम सुन्दरता का मधुर विकास ।
मँडरायेंगे रसिक भ्रमर नाहक मुझ हतभागिनि के पास ॥

(२)

कहाँ भूल कर आये हो तुम मेरे प्यारे मनोविनोद ?
चिर विषाद ने अब तो भर ली आजीवन को मेरी गोद ॥
सखि आशे ! अब इस जीवन में किस को देती हो संतोष ?
भरा हुआ है विपुल निराशा से मेरे मानस का कोष ॥

(३)

है अनन्त मेरे वियोग के अखिल मरुस्थल का विस्तार ।
रच रक्खा है विधि ने मेरे हित असीम दुख का संसार ॥
है अगाध मेरी विपदा का भरा हुआ यह पारावर ।
जिसमें किञ्चित अस्फुट स्मृति का है केवल मुझ को आधार ॥

(४)

अतुल निराशा मेरा धन है, नीरवता मेरा व्यापार ।
विरह-व्यथा निश दिन पोती हूं, चिरचिन्ता मेरा आहार ॥
तन मेरा प्रज्वलित चिता है, मेरा जीवन घोर मसान ।
ज्वालामुखी हृदय है मेरा, मानस मेरा वन सुनसान ॥

(५)

मैं वह जीवन की सरिता हूं सूख गया जिसका सुख-नीर।
मैं वह नीरव व्याकुलता हूं, हुई निराशा में जो धीर॥
मैं वह निर्जल मानस सर हूं जिसमें अब उड़ती है धूल।
मैं वह शुष्क लता हूं वन की जिसमें अब न खिलेंगे फूल॥

(६)

मैं वह करुणा-मय गाथा हूं सुन जिसको पिघले पाषाण।
मैं वह विधि के हाथ सताई जिसका यम के कर कल्याण॥
मैं वह जीवन-धारी शव हूं, जिसका जीना मरण समान।
मैं वह हत्भागिनि विधवा हूं, जिसका यहकरुणामय गान!!

—चांद

❀ ❀ ❀

प्रकाशक के दो शब्द ।
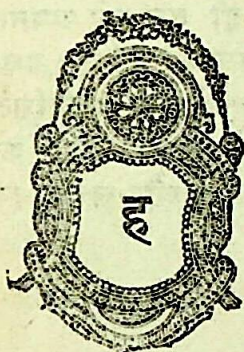
में इस बात का वास्तव में बहुत दुःख है कि इधर बहुत दिनों से हमारे यहां से कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी। कारण था प्रेस का अभाव और समय की कमी। इस पुस्तक के प्रकाशन की सूचना ३ मास पूर्व ही दी जा चुकी थी किन्तु प्रेस वालों की लापरवाही से "चाँद" के पिछड़ जाने के कारण हमें वाध्य होकर कुछ दिनों के लिए इस का प्रकाशन रोक देना पड़ा किन्तु इस बीच में इस पुस्तक की इतनी अधिक मांगें आईं कि वाध्य होकर हमें इसका प्रकाशन दूसरे प्रेस को देना ही पड़ा अस्तु।

यह सच है कि तड़क भड़क की दृष्टि से इस पुस्तक का प्रकाशन अच्छा नहीं हुआ है किन्तु विषय की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए हमें आशा है हमारे सुयोग्य पाठक तथा पाठिकाएं इसे उसी आदर से अपनावेंगी जिस प्रकार उन्होंने हमारी अन्य सेवाएं स्वीकार की हैं।

यथाशक्ति इस पुस्तक के प्रकाशन में हमने इस बात का काफ़ी प्रयत्न किया है कि कोई भद्दी भूलें न रह जाय। इस पुस्तक का पहिला प्रूफ़ लेखक महोदय ने स्वयं बड़ी साव-धानी से पढ़ा है। किन्तु यदि भूलें रहगई हों तो हमें आशा है

पाठकगण हमें उन्हें सूचित करेंगे ताकि अगले संस्करण में, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है, सुधार दी जावें।

यदि इस पुस्तक द्वारा हमारे समाज का कुछ भी भला हो सका अथवा समाज की कुछ भी सहानुभूति हमरी विधवा बहिनों के पक्ष में हो सकी तो निश्चय ही हम इसे अपना, समाज का तथा विधवा बहिनों का सौभाग्य समझेंगी। तथा अन्य सामाजिक और अन्य उपयोगी पुस्तकों को प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगी। हमारी सेवा को सफल करने का भार सर्वथा हमारे देश वासियों की सहयोग और सहानुभूत पर निर्भर है।

चाँद कार्य्यालय,
इलाहाबाद।
१५ अक्तूबर, १९२३

—विद्यावती सहगल।

प्रस्तावना।
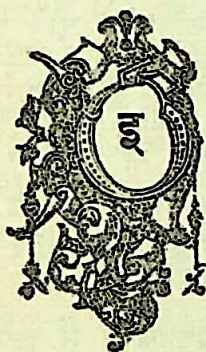
स महत्वपूर्ण पुस्तक की प्रस्तावना लिखना मेरी शक्ति के सर्वथा बाहर की बात है किन्तु किया क्या जावे मजबूरी है। कोई लिखने का साहस नहीं करता। विधवाओं के प्रसंग को आम तौर से लोग छूत की बीमारी समझते हैं। विधवाओं के विषय में बात चीत करने वाले "आर्य्या" समझे जाते हैं। कई पुश्त से ग़ुलामी की कठोर ज़ञ्जीरों से जकड़े रहने के कारण आत्मिक बल का क्रमशः घटते जाना उतना ही स्वाभविक है जितना जीवन के बाद मृत्यु।

साधारण जनता की बात तो दूर रही स्वयं बड़े बड़े नेता· गण इस विषय से उदासीनता प्रकट करते हैं। कई पुश्त से अन्ध परम्परा के चक्कर में पड़े रहने के कारण हमारी आत्मा का इतना अधिक ह्रास हो चुका है और गन्दी सोसाईटियों में पलते रहने के कारण हमें मेंइतनी अधिक मात्रा में दुर्बलताएं समा गई हैं कि आज अधिकांश जनता में, यह जानते हुए भी कि अमुक कार्य्य उचित है, इतना भी नैतिक बल नहीं रह गया है कि वह इस घोर अन्याय का विरोध कर सकें !! वे जानते हैं सामाजिक सङ्गठन का प्रश्न राष्ट्रोन्नति का एक अङ्ग है। वे यह भी जानते हैं कि विधवाओं के सुधार का

प्रश्न सारे राष्ट्र का प्रश्न है, विधवाओं का जीवन पहिले की अपेक्षा आज कहीं कष्टपूर्ण हो रहा है। यह सब बातें आज बहुत लोग समझने लगे हैं। वे विधवा विवाह और ख़ास कर बाल विधवाओं का विवाह तो आवश्यही हो जाने के पक्ष में है किन्तु सवाल यह है कि करे कौन? "Who should bell the Cat?" पुरुषों को समाज का भय, नेताओं को अपने नेतृत्व मारे जाने का भय और स्त्रियों को नाक कट जाने का भय केवल यही तीन बातें ऐसी हैं जिनकेद्वारा समाज सुधार का कोई भी कार्य्य आज सफल नहीं हो रहा है। अतएव सब से पहिले हमें स्थितिपालकता के रोग से मुक्त होना चाहिए। जब तक हममें यह रोग घुसा रहेगा हम देशोन्नति का कोई भी कार्य्य नहीं कर सकते। न सामाजिक और न राजनैतिक।

हिन्दू समाज की स्थितिपालकता के विषय में मैं अपने उन्हीं शब्दों को दोहराना चाहता हूं जो मैं "चाँद" के विधवा अङ्क में सविस्तार रूप से कह चुका हूं।

किसी विचार पर या किसी रस्म पर अंध-विश्वास रखना उसकी असत्यता और दुष्परिणामों से आंखे बन्द कर लेना ही स्थिति पालकता है। स्थिति पालकता हठता का भी द्योतक हो सकता है और बुद्धि और साहस के अभाव का भी। स्थिति पालकता से जीवन भी ज़ाहिर होता है और मृत्यु भी।

अंगरेज़ी क़ौम अन्य यूरोपियन जातियों से अधिक स्थिति-पालक कही जाती है किन्तु इनकी स्थिति-पालकता और भारतवर्ष की स्थितिपालकता में ज़मीन और आसमान का फ़रक़ है। फ्रान्सीसियों ने राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, और समता आदि राजनीतिक आदर्श से प्रेरित हो कर अपने देश की

समस्त राजनीतिक संस्थाओं को उलट पलट दिया। प्राचीन राजनैतिक मर्यादा का सत्यानाश कर दिया, राजा का और राजसत्ता का नामो निशान मिटा दिया, किन्तु अंगरेज़ी क़ौम स्थिति पालक थी उसने इस प्रकार का कोई भी काम नहीं किया। अपनी राजनीतिक संस्थाओं को ज्यों का त्यों क़ायम रक्खा किन्तु स्वतंत्रता, समता आदि सिद्धन्तों से उन्होंने फ़ान्सीसियों से कम फ़ायदा नहीं उठाया। उन का राजा और राज-सत्ता अब भी क़ायम है किन्तु उन्हें हम फ़ान्सीसियों से राजनीतिक दृष्टि से कम उन्नत नहीं कह सकते। प्रजावाद (Democracy) के सिद्धान्त का इंगलैण्ड में फ्रांस से कम पालन नहीं होता। इंगलैण्ड की जनता फ्रांस की जनता से, राजनीतिक दृष्टि से, कम स्वतंत्र नहीं कही जा सकती।

इङ्गलैण्ड में स्थितिपालकता है किन्तु बुद्धि और साहस की कमी नहीं है। जिस विचार की सत्यता या, जिन सिद्धान्तों की सफलता और हितकरता का अङ्गरेज़ों को विश्वास हो जाता है उसके स्वीकार करने के लिये, और जिन विचारों की असत्यता और जिन सिद्धान्तों के दुष्परिणामों का उन्हें ज्ञान हो जाता है उन्हें त्यागने के लिये उनमें काफ़ी साहस पाया जाता है। यह दूसरी बात है कि किसी दुष्परिणाम-प्रथा का वह बाहरी रूप क़ायम रक्खें। किन्तु उस प्रथा के अहित-करता का वे अवश्यमेव नाश कर देंगे। सर्प को चाहे वे न मारें किन्तु उसके दाँत ज़रूर तोड़ देंगे। अङ्गरेज़ों के तमाम कार्यक्षेत्र में आप उनकी इस बुद्ध और साहस युक्त स्थितिपालकता का प्रमाण देख सकते हैं।

भारतवर्ष में जो स्थितिपालकता है वह इससे बिलकुल भिन्न है। दो तीन हज़ार वर्षों से अभाग्यवश हिन्दू जाति में कुछ ऐसी स्थिरता आगई है कि इसने सामाजिक क्षेत्र में,

नैतिक क्षेत्र में, साहित्यक क्षेत्र में, वैज्ञानिक क्षेत्र में—किसी भी क्षेत्र में उन्नति कौन कहे, कान पर जूं तक नहीं रेंगने दिया है। आज से दो हज़ार वर्ष पहले जब कि भारतीय, ब्रह्म और जीव, प्रकृति और पुरुष के अध्यात्म प्रश्नों को हल करने में लगे हुए थे, पश्चिमी देशों के निवासी वृक्षों के कोटरों में रहते थे और चर्म का बदबूदार वस्त्र पहनते थे। आज पश्चिमी देश निवासी वायुयान द्वारा आकाश की सैर करते हैं, वरुण देवता के समान जलमग्न नौकाओं में बैठ कर समुद्र तल पर राज्य करते हैं और हम ज्यों के त्यों बने हैं। अपने इतिहास पर नज़र करते हुए शरम मालूम होती है। जो ज़माना कि औरों की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने का था, हमारे पतन और अन्धकार में प्रवेश करने का रहा है। जिस समय पश्चिमीय देशवासी अपनी बुद्धि, साहस और वीरता के कौशल से अपने समाज की निर्बलताएं दूर करके अपने को दृढ़ बना रहे थे हम बच्चों को गंगा में डाल कर गंगा माई को खुश करते थे और विधवाओं को मृत पति के साथ ज़िन्दा जलाकर विधवा समस्या के हल कर सकने की अपनी अनुपम बुद्धिमत्ता और दयालुता का परिचय देते थे! भारत की स्थिति पालकता और इङ्गलैण्ड और अन्य देशों के स्थिति-पालकता में इसलिये बड़ा अन्तर है। हमारी स्थितिपालकता के जन्मदाता, हमारी साहस शून्यता, व्यक्तिगत स्वार्थ परायणता और बुद्धि हीनता है। हमारी स्थितिपालकता, हमारी निशक्ति और निस्तेज होने का परिणाम है। हमारे समाज में इतनी बुद्धि नहीं कि वह यह समझ सके कि कौन सी बात हमें नुक़सान पहुंचाती है और कौन सी नहीं। अगर किसी अङ्ग ने यह अनुभव भी किया कि अमुक रस्म से समाज को

हानि होती है तो साहस की इतनी कमी है कि वह उसके मिटाने की हिम्मत नहीं करता। हिन्दू समाज के अधिकांश व्यक्ति विधवाओं की यातनापूर्ण स्थिति के समझ सकने के लायक बुद्धि ही नहीं रखते। जिनके बुद्धि है उनके मर्यादित अंध विश्वास ने दयालुता की इतनी कमी पैदा कर दी है कि वह उनकी यातनाओं का अनुभव नहीं करते। जिनमें दया और बुद्धि दोनों हैं, जो समझते हैं कि विधवाओं के कारण समाज कमज़ोर होता जाता है और वर्तमान रस्म व रिवाज उनपर अत्याचार करते हैं, उनमें इतना साहस नहीं कि उसके मिटाने की हिम्मत कर सकें। इसलिये हिन्दू-समाज, सामाजिक मामलों में आज क़रीब क़रीब बिलकुल ही वैसा है जैसा १००—१५० वर्ष पहले था। यह स्थितिपालकता स्थिरता और मुरदा-दिली का चिह्न है। साहस हीनता का द्योतक है। अगर कोई वस्तु विधवाओं की अवस्था सुधारने में विशेष रूप से माग-कंटक होती है तो वह यही है।

स्थितिपालकता विशेष रूप से पूर्वीय देशों में बहुत ज़ोरों से पाई जाती है। क्या टर्की क्या ईरान क्या चीन क्या जापान सभी हिन्दुस्तान के समान स्थितिपालक थे और हैं। यही स्थितिपालकता इनके राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और साहित्यिक पतन का कारण रही है। जापान भी कुछ दिन पहले स्थितिपालकता के नशे में था, किन्तु जब से उसने आंख खोली है स्थितिपालकता को सदा के लिये नमस्कार किया है। उसकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्क़ी हो रही है। टर्की को देखिये किसी ज़माने में यह भी बड़ा स्थितिपालक देश था और यूरोपीय राष्ट्रों से 'Sickman' 'रुग्नपुरुष' की उपाधि हासिल कर चुका था किन्तु आज

उसने आंखे खोली हैं। मुस्तफ़ा कमालपाशा अपनी पत्नी को बेपर्द रखते हैं और एक मुसलमान के लिये अपनी स्त्री को बेपरद रखना साधारण परिमाण की उदारता नहीं है। इतना ही नहीं टर्की ने अपनी पुरानी केचुल बिलकुल उतार दी है और इसलिये आज वह उन्नति कर रहा है। चीन अभी पुरानी पीनक में है। ईरान भी हाफ़िज़ की ग़ज़लों के तरानों से पैदा होने वाले सरूर से नहीं जगा है, हिन्दुस्तान पर भी स्थितिपालकता की केचुल चढ़ी हुई है, जिसके कारण वह बिलकुल मन्द, गति हीन और स्थिर सा हो रहा है। जिस दिन इसने अपनी पुरानी केचुलों को उतार फैंका, सामाजिक प्रश्नों पर उदारता, बुद्धिमत्ता और साहस से विचार करना आरम्भ कर दिया, यह जापान और टर्की के समान उन्नति के रास्ते पर बढ़ता जायगा। और इस की समस्त सामाजिक समस्याएं स्वयं ही हल हो जायेंगी।

अतएव अब हमारे सामने सवाल केवल इतना ही है कि "जो सदा से होता आया है वही होगा" इस भोले विचार को दूर कर के हम उदारता पूर्ण अपने सामाजिक प्रश्नों पर विचार करें, इसी में हमारा कल्याण है, हमारे भावी सन्तान का कल्याण है, हिन्दू समाज का कल्याण है, देश का कल्याण है, राष्ट्र का कल्याण है अथवा यों कहिए कि विश्व का कल्याण है।

संसार के भिन्न भिन्न देशों में विधवाओं की संख्या नीचे दिए गए कोष्टक से प्रकट होगी :—

संसार की १५ वर्ष और १५ वर्ष से अधिक उम्र की स्त्रियाँ ।

नं०	नाम देश	संख्या	फ़ी हज़ार			
१	२	३	४	५	६	७
			अविवाहित	विवाहित	विधवा	तलाक़ दी हुई
१	इङ्गलैण्ड और वल्स	२,१५,१८,८००	३९५	४९७	१०८	...
२	स्काटलैण्ड	१५,५९,२००	४४५	४४३	११२	...
३	आयरलैण्ड	१५,९३,०००	४९७	३७१	१३२	...
४	जर्मनी	१,८८,४५,८००	३५२	५२०	१२५	३
५	आस्ट्रिया	८७,९९,००	३६७	५१०	१२३	...
६	हंगरी	६२,४८,६००	२३३	६२५	१४०	२
७	रूस (१८९७)	३,९०,१५,४००	२२४	६४१	१३४	१
८	फ़िनलैण्ड	९,०५,७००	६८०	५०१	११८	१
९	फ्रांस	१,४५,२८,३००	२८६	५४८	१६६	...
१०	इटली	१,०८,३४,८००	३१८	५४८	१३	...
११	पुर्तगाल	१९,३२,९००	४०६	४६८	१२५	१

नं०	नाम देश	संख्या	अविवाहित	विवाहित	विधवा	तलाक दी हुई
१२	स्वीज़रलैण्ड	११,७४,९००	४१०	४५९	१२३	८
१३	नारवे	७,६७,३००	४१४	४७०	११५	१
१४	स्वीडन	१८,०९,६००	४१२	४६८	११८	२
१५	डेनमार्क	८,४५,०००	३७५	५०३	११९	३
१६	हालैण्ड	१७,०१,३००	३९९	४९४	१०५	२
१७	बेलजियम	२३,११,७००	३९४	४९५	१०९	
१८	सरविया	६,९७,०००	१५१	७२७	११९	३
१९	रोमेनिया	१७,४३,९००	१९४	६५४	१४६	६
२०	बलगेरिया	१०,९१,१००	२०५	६८७	१०५	३
२१	लक्समबर्ग	८०,४००	३८०	४९९	१२०	१
२२	यूनाईटेडस्टेट अमेरीका	२,४२,९२,६००	३१२	५७१	११२	५
२३	जापान (१९०३)	१,५४,११,८००	४६६	५३४	...	...
२४	हिन्दुस्थान	८,९६,७८,१००	४५	६६९	२८६	...

भारतवर्ष में संसार के सब देशों से, सब से अधिक विधवाएं पाई जाती हैं जैसा कि निम्न लिखित अङ्कों से प्रकट होगा ?

देश	विधवाएं	देश	विधवाएं
यूनाईटेड् किंगडम	७ फ़ीसदी	हौलेण्ड	७फ़ीसदी
डेनमार्क	८ "	बेलजियम	८ "
नौरवे	८ "	फ्रांस	१२ "
स्वीडन्	८ "	इटाली	६ "
फिनलैण्ड	८ "	सरविया	७ "
स्वीज़रलैण्ड	८ "	ऑस्टरेलिया	६ "
जरमनी	६ "	न्यूज़ीलैण्ड	५ "
प्रशा	६ "	केप कोलोनी	५ "
वेवेरिया	८ "	हिन्दोस्तान	१८ "
वरटम्वर	८ "		

समस्त भारतवर्ष में १५ और ४० वर्ष के बीच की अवस्था वाली स्त्रियां ११ फ़ी सदी विधवायें हैं। हिन्दुओं में मुसलमानों से अधिक विधवाएं पाई जाती हैं। इस अवस्था की हिन्दुओं में १२ फ़ी सैकड़ा और मुसलमानों में ६ फ़ी सैकड़ा पाई जाती हैं। भारतवर्ष के किसी प्रान्त में विधवाओं की संख्या बहुत अधिक है और किसी में बहुत कम।

उत्तर पश्चिमीय सीमा प्रान्त में ६ फ़ी सदी, काश्मीर में ७, मध्यप्रान्त, बरार और पंजाब में ८, बंबई, मदरास, संयुक्त प्रान्त, अवध, कोचिन और मध्यभारत की देशी रियासतों में ११, मैसूर और आसाम में १३ और बंगाल में १६ फ़ी सैकड़ा विधवाएं पाई जाती हैं।

भिन्न भिन्न देशों में अविवाहित प्रौढ़ स्त्रियों की संख्या इस प्रकार है :—

देश	अविवाहितप्रौढ़	देश	अविवाहित प्रौढ़
यूनाईटेड	फ़ीसदी	हौलेण्ड	६० फ़ीसदी
किंगडम	६० "	बेलजियम	५८ "
डैनमार्क	५८ "	फ्रांस	४७ "
नौरवे	६१ "	इटाली	५५ "
स्वीडन	६० "	सर्बिया	५१ "
फ़िनलैन्ड	५९ "	आस्टेलियन-	
स्वीज़रलैण्ड	५९ "	कामन् वेल्थ	६२ "
जर्मनी	५७ "	यूज़ीलैण्ड	६१ "
परशिया	५७ "	केप कोलोनी	६२ "
बवेरिया	५९ "	भारतवर्ष	३४ "
वरहमवर्ग	५९ "	जापान	६४ "
वैडन्	५९ "		

बंगाल को छोड़ कर और प्रान्तों में ऊंची ज़ातों में, नीची जातों से अधिक विधवायें हैं। विहार और उड़ीसा में ब्राह्मण बाभन, कायस्थ और राजपूतों में २० और ४० वर्ष की अवस्था के दरमियान की स्त्रियों में २० फ़ीसदी विधवायें हैं। चमार चासर, धनुक, धोबी, गोआला, कुम्हार, कोरी, लुहार, मुसैर और तेलियों में केवल १३ फ़ी सदी विधवाएं हैं। बम्बई में ब्राह्मणों में २५ फ़ी सदी, मरहठा २० फ़ीसदी विधवाएं पाई जाती हैं। मध्यप्रान्त, बरार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब और मद्रास की भी यही दशा है। निम्न लिखित अंक भी विधवाओं की दशा पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं:—

फ़ी हज़ार हिन्दू विधवायें।

स्त्रियों की उम्र	१८८१	१८९१	१९०१	१९११
०— ५ वर्ष	३	१	१	१
५—१० ,, ...	...	४	३	५
१०—१५ ,, ...	२१	१६	२१	१७
१५—२० ,, ...	५०	३८	४९	४२
२०—६० ,, ...	१०४	८६	१०१	९०
३०—४० ,, ...	२३९	२१३	२२९	२१४
४०—६० ,, ...	५३१	५३२	५२२	५२३
३० और उसके ऊपर ...	८५५	८६१	८४२	८५०

इन अंकों को देखने से पता चलता है कि समाज सुधारकों के कठिन परिश्रम करते हुए भी हिन्दू समाज ने इस प्रश्न को अर्थात् विधवाओं की संख्या कम करने में, आशाजनक सफलता प्राप्त नहीं की। १८८१ से १९११ तक अर्थात् गत ३० वर्षों में हिन्दू विधवाओं की संख्या ज्यों की त्यों ही रहीं। १९११ में, १९०१ से कम विधवायें पाई जाती थीं किन्तु १८९१ के अंकों से मुक़ाबिला करने पर मालूम होता है कि १९११ में, १८९१ से विधवाओं की संख्या कहीं ज्यादा बढ़ गई थी। १८८१ में हिन्दुओं में १८७ फ़ी हज़ार विधवाएं पाई जाती थीं। १८९१ में १७६, १९०१ में १८० और १९११ में १७३। इस लिए हम यह तो नहीं कह सकते कि विधवाओं की संख्या पहले से बढ़ती जा रही है किन्तु यह ज़रूर कह सकते हैं कि विधवाओं के सम्बन्ध में हिन्दू समाज ने जगत प्रसिद्ध संकीर्णता और स्थितिपालकता का परिचय दिया है।

विधवाओं की इतनी भारी संख्या भारत में देख कर किस भारतीय का दिल न भर जायगा? सवाल उठता है कि विधवाओं का हित कैसे हो सकता है। विधवाओं की यातनाएं कैसे कम की जा सकती हैं। और विधवओं की संख्या कैसे कम की जा सकती है? किन्तु यह एक ऐसा जटिल प्रश्न है जिसका उत्तर एक शब्द अर्थात् 'हां' वा 'नहीं' में नहीं दिया जा सकता। और न एक नियम बना देने से भारतीय समाज का कुछ उपकार ही हो सकता है। यही कारण है कि आज तक अनन्य समाज सुधारकों को, उनके निरन्तर प्रयत्न करने पर भी, सफलता प्राप्त नहीं हुई और तब तक हो भी नहीं सकती जब तक व्यक्तिगत रूप से जनता स्वयं अपना सुधार न करे कारण स्पष्ट ही है:—

भारतवर्ष एक ऐसा विचित्र देश है जहां अनगिनती सम्प्रदाय हैं और उनके अनुयायी अपने उन्हीं सम्प्रदायों को अपनी धरोहर समझ कर विपक्षी सम्प्रदायों की निन्दा और तिरस्कार करने में ही अपना अमूल्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का रहन-सहन, सभ्यता और भेष ही जुदा नहीं है, बल्कि उनकी भाषायें भी अपनी हैं, धर्म्म अपने हैं, आचार विचार अपने हैं, धर्म ग्रन्थ अपने हैं, देवता अपने हैं। कहने का सारांश यह है कि सभी सम्प्रदायों का परमात्मा भी अलग अलग है। याद रहे हम केवल एक धर्म्म अर्थात् हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में ही कह रहे हैं, अन्य धर्मों के बारे में नहीं। भला जिस देश में तीन हज़ार तीन सौ बहत्तर भिन्न भिन्न जाति (Main Castes) के लोग बसते हों और जहां १८०० भिन्न भिन्न भाषायें बोली

आती हों उस देश में एकाएक एक विश्वधर्म्म (Universal Religion) को ठूंसने का प्रयत्न करना कभी भी अच्छा फल नहीं दे सकता, बल्कि उसके द्वारा लाभ तो नहीं पर हानियां अधिक होती हैं। एक सम्प्रदाय वालों से दूसरों का लड़ पड़ना, एक ऐसी बात है जिसे हम राह चलते हुए हर रोज़ महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में, और ऐसे समाज में, जहां इतने मतमतान्तर हों, एक धर्म्म का दाखिल करना असम्भव है। सुप्रसिद्ध विद्वान लाला कन्नोमलजी ने "चाँद" के विधवा अङ्क में ठीक ही कहा है कि हिन्दू समाज के सामने यकायक विधवा-विवाह का पेश करना, हिन्दू समाज में बम फेंक देने के समान है। हम आपके इस विचार से अक्षरशः सहमत हैं।

भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के जन्मदाताओं की हमारी निगाह में उतनी ही इज़्ज़त और श्रद्धा है जितनी मुहम्मद या कृष्ण की, अली या शङ्कर की अथवा राम या रहीम की। हम सभी सम्प्रदायों तथा उनके संचालकों को केवल इस बात का विश्वास दिलाया चाहते हैं कि सामाजिक सुधार सम्बन्धी आन्दोलन की ओर तुरन्त ध्यान देना इस समय प्रत्येक विचारशील स्त्री अथवा पुरुष का पहिला कर्तव्य होना चाहिए। हमारी राय में, यदि इन विचारों को सामने रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने रीति रिवाज़ों में सुधार कर ले तो बात की बात में वास्तविक सुधार हो सकता है। लम्बे चौड़े व्याख्यान किसी ख़ास आन्दोलन को भले ही चलाने में समर्थ हो सकें पर वे किसी धर्म्म को सर्वव्यापी बनाने में कदापि सफल नहीं हो सकते।

बाल-विवाह के दुष्परिणामों को देख कर उन्हें तुरन्त रोकना, विधवाओं से अच्छा व्यवहार करना, बेचारी अबोध बाल-विधवाओं की ओर करुणा दृष्टि करना, वृद्ध विवाह की

प्रथा को समूल नष्ट करना, स्त्रियों में स्त्रीत्व मानना, और उनकी उचित शिक्षा की ओर ध्यान देना अथवा अपनी भावी सन्तान की रक्षा करना—इनमें से कोई बात भी ऐसी नहीं है जो किसी व्यक्ति विशेष के निजी धर्म्म को नष्ट करती हों अथवा उन्हें गुमराह करती हों।

प्रत्येक धर्म्म अथवा रीति रिवाज उसके (उस रिवाज अथवा धर्म्म के जन्मदाता के) अपने निजी सिद्धान्त मात्र होते हैं। मोहम्मद साहब का जो अपना यक़ीन था वही मुसलमानों का ईमान है। महात्मा ईसा के जो कुछ अपने निजी विचार थे वही ईसाइयों का सर्वस्व है। प्रातः स्मरणीय बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती महोदय के जो सिद्धान्त हैं आज प्रत्येक आर्य्यसमाजी भाइयों के लिये वे ही मन्तव्य हैं। जो संसारिक अथवा अध्यात्मिक सिद्धान्त महात्मा बौद्ध के थे वे ही बौद्ध—धर्म्म के सिद्धान्त कहलाते हैं।

यदि प्राचीन, भारतीय ही नहीं, दुनिया के इतिहास पर हम एक बार दृष्टि डालें तो सहज ही पता चलता है कि समय समय पर प्रत्येक देशों में महान पुरुषों का जन्म इस लिए होता रहता है कि वे उस देश की जनता को आने वाली विपत्तियों से सचेत कर दें और उन्हे सच्चा मार्ग बतला कर उचित रास्ते पर चलने की सलाह दें। हम प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं कि भारत में आज कितनी ही महान आत्माएं चलते फिरते पुरुषों के रूप में देश का उपकार कर रहीं हैं। महात्मा गांधी उन पवित्र आत्माओं में से एक हैं जिनकी ओर हमने इशारा किया है। महात्मा जी के अनुयायी असहयोग आन्दोलन का पक्ष समर्थन करते हैं, और माननीय चिन्तामणि महोदय के अनुयायी आज मिनिष्ट्री के उच्च पद पर चढ़ कर ही देश का सुधार करने में भलाई का अनुभव

कर रहे हैं। सम्भव है लक्ष्य दोनों के एक हों, पर मतभेद दोनों दलों में है, और दोनों दलों के अनुयायी भी अपने उस नेता को ही अपना नेता मानते है जिसने उस आन्दोलन (यहां पर 'आन्दोलन' शब्द का अर्थ सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार ही समझ लेने में विशेष सुविधा होगी) का जन्म दिया है।

इन सब बातों से पाठकों को यह समझने में सुविधा हुई होगी कि प्रत्येक धर्म्म एक व्यक्ति विशेष के अपने निजी सिद्धान्त (Self conviction) मात्र होते हैं। आज भी प्रत्येक सम्प्रदायों का लक्ष्य केवल उन सिद्धान्तों का प्रचार करना मात्र है, जिसके वे अनुयायी हैं। अथवा यों कहिए कि वे उस धर्म्म अथवा रीति रिवाज के जन्मदाता के सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं।

संसार में कोई भी ऐसी जाति नहीं है जिसने अपने वीरों को देवताओं के समान न माना हो। यह एक मानी हुई बात है कि प्राणी मात्र अपने से अधिक बढ़कर शक्ति रखने वाले की ओर झुकते हैं और जब कभी वे किसी ऐसे महान पुरुष को देखते हैं जिसमें उनसे बढ़कर पराक्रम और बुद्धि होती है और उनके बुद्धिसत्ता की कल्पना भी उनके विचार में नहीं आती, तो उनका अन्तःकरण उसकी महान-शक्ति की ओर आकर्षित हो जाता है और वे स्वतः उस शक्तिशाली पुरुष को अवतार समझने लगते हैं। बात बहुत ही स्वाभाविक है पर वास्तविक ज्ञान न होने के कारण हम इन सिद्धान्तों की खोज नहीं करते और फलतः अन्ध-परम्परा के विश्वास में पड़ कर आज भी वही बातें करते हैं जो दस हज़ार वर्ष पहिले हमारे पूर्वज करते थे। भारत-वासी वास्तव में कैसे भोले हैं ?

जिस प्रकार संसार की अन्य वस्तुएं परिवर्तनशील हैं ठीक उसी प्रकार धर्म्म ग्रन्थों की रचना भी समय समय पर होती आई है। हमारे कहने का सारांश यह कि कोई भी धर्म्म, अनन्तकाल के लिये पर्याप्त नहीं हो सकता। अतएव सिद्ध यह हुआ कि प्रकृति के नियमों की अपेक्षा विवेक से काम लेने से शाघ्र और सरलता से उन्नति हो सकती है। हमारे सामने इस समय वही समय उपस्थित है कि "दैवेच्छा बलीयसी" के उस महान मन्त्र को, जिसे हम पचासों पीढ़ियों से जपते आये हैं छोड़कर, अपने विवेक से प्रकृति के वर्तमान नियमों को ढूंढ़ निकालें और उन्हें काट छांट कर ऐसा बना लें जो हमारे लिए तथा हमारी भावी सन्तान के लिए पथ-प्रदर्शक हों और जिसके द्वारा भविष्य में हमारा ह्रास न हो।

यह हम पहिले ही कह आए हैं कि भारतवर्ष में, जहां कि इतनी भिन्न भिन्न मुख्य ज़ातें (Main Castes) हैं और जहां हज़ारों भिन्न भिन्न भाषाएं बोली जाती हैं, वहां किसी भी एक धर्म्म का यकायक प्रचार करना, कभी भी संतोष जनक-फल कदापि नहीं दे सकता। यही कारण है कि आज तक कोई भी महान सुधारक, निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी, सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि यदि कुछ लोग समस्त विधवाओं का पुनर्विवाह ही करा देने की कोशिश करें तो उसमें वे आजीवन सफलता प्राप्त नहीं कर सकते और न उन्हीं को सफलता हो सकती है जो विधवा विवाह का आज विरोध कर रहें हैं, बल्कि यह सुधार तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति भारतीय विधवाओं की वास्तविक दशा से भली भाँति परिचित हो और इस विषय के सुधार की आवश्यकता को महसूस करे।

भारतीय विधवाएं जब तक कई कोटि (Sections) में न बांटी जावे-इस प्रश्न का उत्तर सन्तोष जनक हो ही नहीं सकता। अतएव सब से पहिले हम बाल विधवाओं की शोचनीय दशा पर ही विचार करेंगे।

यों तो भारत में आज विधवाओं की संख्या ३॥ करोड़ के भी ऊपर पहुंच चुकी है लेकिन उनमें बाल-विधवाओं की दशा बहुत ही शोचनीय है। लाखों विधवाएं इतनी छोटी हैं जिनके दूध के दांत भी नहीं टूटे हैं, लाखों विधवाएं ५ से १० वर्ष के आयु की हैं और लाखों विधवाएं ऐसी हैं जिनकी आयु १० से १५ वर्ष की है जैसा कि अन्यत्र दिये गये व्योरों से पता चलेगा। १५ से २५ वर्ष की विधवाओं की संख्या भिन्न भिन्न प्रान्तों में इस प्रकार हैः—

पञ्जाब	३२,८७७	यू० पी०	१,९६,९७३
बम्बई	८३,४६६	मद्रास	१,९८,०१४

बङ्गाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, राजपूताना और सी० पी० आदि प्रान्तों में ऐसी विधवाओं की संख्या ५,५७,६०५ है। पर हमें यह देखकर वास्तव में आश्चर्य्य होता है कि विधवाओं की इतनी लम्बी चौड़ी संख्या देखकर भी भारतवासियों के कान पर जूं तक नहीं रेंगती।

बाल-विधवाओं की यह अपार संख्या सामने रखते हुए इस बात की आशा करना कि वे सभी सदाचार पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेंगी, पत्थर से पानी निकालने की आशा के समान मूर्खतापूर्ण है और खास कर ऐसी स्थिति में, जब कि भारतीय पुरुष समाज इतना पतित होता जा रहा है! विधवाओं की शिक्षा का न तो कोई उचित प्रबन्ध ही है और न उनके लिये ऐसी संस्थाएं (Rescue Homes) ही हैं

जहां वे विधवाएं, जो सर्वथा अनाथ हैं, रहकर सदाचार पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें और शिक्षा पा सकें। ज़रा सोचने की बात है कि ऐसी विकट स्थिति में, जब न तो उनके कहीं रहने का प्रबन्ध है, न शिक्षा का और न उदर-पूर्ति ही का कोई साधन है। हमें यह मानना ही पड़ेगा कि ऐसी हालत में, उनका कर्तव्य-भ्रष्ट हो जाना उतना आश्चर्य जनक नहीं है जितना सदाचारी रहना।

पातिव्रत धर्म्म क्या है? जो बहिनें इसका महत्व जानती हैं अथवा जो दाम्पत्तिक प्रेम का भलीभांति अनुभव कर चुकी हैं—जो बहिनें जानती हैं कि भारतीय-विवाह-प्रणाली अन्य योरोपीय देशों के समान काम वासना के तृप्ति का साधन मात्र अथवा "Matrimonial Contract" नहीं है, बल्कि स्त्री और पुरुष की दो भिन्न भिन्न आत्माओं को एक में मिलाकर मोक्ष प्राप्ति का एक अनुष्ठान और गृहस्थि जीवन में रहकर भी निरन्तर तपस्या का एक साधन है—उनके बारे में हमें कुछ नहीं कहना है। वे साक्षात् देवी हैं और हमें उनके पवित्र चरणों में श्रद्धा है ऐसी विधवाओं के पुनर्विवाह की कल्पना करना भी हम अपनी माता का घोर अपमान करना समझते हैं। हम जानते हैं कि पातिव्रत धर्म का पालन करने और पुनर्विवाह के सिद्धान्त में कौड़ी और मोहर का अन्तर है पर आपद-धर्म्म भी कोई चीज़ है। अंग्रेजी में कहावत है "Imergency has no law" हम उस आपद धर्म्म की ओर इशारा कर रहे हैं जिसे स्वयं योगी राज महात्मा श्रीकृष्ण जयद्रथ-वध के समय काम में लाए थे। अर्जुन की प्राण रक्षा के निमित्त उन्होंने माया के बादलों से सूर्य्य को छिपाकर जान बूझकर कौरव दल को धोखा दिया था ताकि वे समझें कि सूर्य्यास्त हो गया और अन्त में हुआ भी ऐसा ही। सूर्य्या-

स्त हुआ समझ कर जैसे ही जयद्रथ चक्र व्यूह के बाहर निकला वैसे ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से, जो कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीवित अग्नि में भस्म होने जा रहा था, बाण चलाने की आज्ञा दी और इस धोखे में जयद्रथ का वध किया गया था। इस बात का साक्षी महाभारत का इतिहास है। साधन कितना ही निन्दनीय क्यों न हो पर उद्देश निसन्देह बहुत उच्च था। श्री कृष्ण समझते थे कि जयद्रथ की अपेक्षा अर्जुन जैसे वीर और पराक्रमी की रक्षा करना ही बुद्धिमत्ता है। ठीक वही समस्या इस समय भारतवासियों के सामने उपस्थित है। मान लीजिए विधवाओं के पुनर्विवाह का कार्य "मुंह काला करना" है पर एक ही बार तो ?

आज हज़ारों स्त्रियां भगाई और बेची जा रही हैं, बढ़ते हुए व्यभिचार की ओर दृष्टि फेरने से रोमाञ्च हो आता है, वेश्याओं की दिनों दिन वृद्धि देखकर शरीर एक बार थर्रा उठता है। दूध पीती बच्चियों का करुणाक्रन्दन सुन कर, जो अपनी माताओं की गोदियों में मुंह डालकर सिसक सिसक कर रो रहीं हैं, भला कौन ऐसा मानव हृदय होगा जो करुणा से परिपूर्ण न हो जावेगा और कौन ऐसा नेत्र होगा जिससे आँसू न निकल पड़ेंगे ?

हमारे सम्मति में नीचे लिखे उपायों को काम में लाने से बहुत कुछ उपकार हो सकता है :—

(१) वे बाल विधवाएं जो अक्षति-योनि की हैं अथवा जो अपने पति के साथ नहीं रही हैं, उनका विवाह तो सब जाति में और हर हालत में अवश्य ही होना चाहिए। भला वे बालिकाएं जो पति के साथ बिलकुल ही नहीं रहीं हैं अथवा जिन्होंने पति का दर्शन भी नहीं किया है—उनके

हृदय में पति का प्रेम हो ही किस प्रकार सकता है? ऐसी कन्याओं के सामने दाम्पत्य-प्रेम का ढकोसला रखना ठीक वैसा ही है जैसे कुमारी कन्या से यह कहना कि "तुम्हारा विवाह हो चुका है और तुम्हें आजीवन अपने पति के चरणों में प्रेम करना चाहिए" जो कन्याएं अपने पति के साथ कुछ दिन रह चुकीं हैं पर अभी जवान हैं—पुनर्विवाह का प्रश्न सर्वथा उनकी इच्छा पर निर्भर होना चाहिए। यह बात असंभव है कि घर के लोग अथवा माता पिता लड़की के व्यवहारों को देखकर यह न समझ लें कि लड़की दूसरा विवाह करना चाहती है कि नहीं? अथवा स्पष्ट शब्दों में यों कहिये कि लड़की को दूसरे पति की आवश्यकता है कि नहीं? यदि वे ऐसा समझते हैं तो समाज के विरोध को पैरों तले कुचलकर उन्हें अवश्य कन्या का किसी योग्य वर से, जो रंडुआ हो, उसका विवाह तुरन्त कर देना चाहिए।

(२) भारत के कई प्रान्तों में कन्याओं की अपेक्षा अविवाहित पुरुष कहीं ज्यादा हैं और लड़कियों की कमी है। उदाहरण के लिए आप पञ्जाब ही को लीजिए वहां ५ वर्ष के आयु के लड़कों से संख्या में २५,१६२ लड़कियां कम हैं और ५ वर्ष से ऊपर और १० वर्ष तक की आयु की लड़कियां इसी अवस्था के लड़कों से ८०,७४० कम हैं और १० से १५ वर्ष तक आयु की लड़कियां इसी उम्र के लड़कों से १,५५,८८८ कम हैं और १५ से ऊपर और २० वर्ष तक अवस्था की लड़कियां इसी अवस्था के लड़कों से १,३१,३८६ कम हैं।

दूसरी ओर यदि ध्यान पूर्वक देखा जावे तो दिल्ली में २६,८३६, मुलतान में ७,७४३, रावलपिण्डी में ६,०५८, अम्बाले में ३,८१० और फ़िरोज़पूर में ६,५१६ स्त्रियां पुरुषों से कम

हैं। सारांश यह कि समस्त पंजाब में कुंआरे हिन्दू पुरुषों की संख्या २४,१३,३६५ है और कुमारी लड़कियों की संख्या १६,२६,८३० है अर्थात् ११,८६,५३५ पुरुषों को बिन व्याहे इसलिए रहना पड़ता है कि उन के लिए लड़कियों की कमी है। रंडुए पुरुषों की संख्या, जिनकी आयु १ वर्ष से ५० वर्ष तक है और जो पुनर्विवाह करना चाहते हैं, २४,२,८२६ है। यदि थोड़ी देर के लिए इनकी संख्या भी कुंआरे पुरुषों में जोड़ दी जावे तो कुल १४,२६,३६४ पुरुष ऐसे हैं जिनके लिए स्त्रियों की कमी है।

कन्याओं के इस अभाव का एक मात्र कारण है हिन्दू समाज में प्रचलित बहु-विवाह की प्रथा जिसे तुरन्त तोड़ना ज़रूरी है। एक पुरुष अपनी काम वासना को तृप्त करने अथवा सन्तानोत्पत्ति की आड़ में एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, चौथी और पांचवी यहां तक कि हमारे जानकारी में ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जिन्होंने १४ से १८ विवाह तक किए हैं। और एक पति के मरने पर १८ विधवा स्त्रियां आज अपने जीवन को कोस रही हैं।*

रंडुए पुरुषों से कुमारी कन्याओं को व्याहे जाने की प्रथा बहुत हद तक इस प्रश्न, अर्थात् लड़कियों के कमी के लिए ज़िम्मेदार है। अतएव इन अङ्कों को सामने रखते हुए प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का यह लक्ष्य होना चाहिए कि वह बहु-विवाह का ज़ोरों से विरोध करे और रंडुए पुरुषों का यदि विवाह हो भी तो विधवा से ही होना चाहिए कुमारी कन्याओं से नहीं। ऐसा करने से न केवल कुमारी कन्याओं का भला होगा, बल्कि पुरुषों की सहानुभूति स्वयं ही विधवाओं के पक्ष

* यह बिहार के एक प्रतिष्ठित ज़िमींदार की सत्य घटना है।

में क्रमशः होने लगेगी और तभी वे विधवाओं के कष्टों का वास्तविक अनुभव भी कर सकेंगे। विधवा विवाह के विरोधी जो वेद शास्त्रों को उलट कर इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्राचीन काल में विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं थी वे क्या यह बात सिद्ध कर सकते हैं कि उस पवित्र युग में आज ही के समान पुरुष अपने स्त्री के मरने पर अनेक विवाह कर लिया करते थे ? यदि यह बात थी तो दाम्पत्य-प्रेम का अर्थ हम विडम्बना मात्र ही करेंगे।

(४) बाल विवाह की कुप्रथा को समूल नष्ट करना चाहिए।

(५) भिन्न भिन्न शहरों में विधवाओं के लिए उच्च कोटि के ऐसे आश्रम होने चाहिए जहां अनाथ विधवाएं सदाचार पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें और उन्हें उच्च कोटि की शिक्षा दी जावे। ऐसी संस्थाओं के कार्यकर्ता ऐसे होने चाहिएं जिनका चरित्र बहुत ही उज्ज्वल हो और जिनपर जनता का विश्वास हो। पुरुषों की अपेक्षा यदि स्वयं स्त्रियाँ ही ऐसे कार्य्यों को अपने हाथ में लेकर चलावें तो अधिक उपकार की संभावना है। इन संस्थाओं का एक ख़ास केन्द्र (Head Office) होना चाहिए जहां से समय समय पर अन्य शाखाओं को परामर्श (Instructions) मिलते रहें और उन्हीं के अनुसार कार्य किए जावें।

❀ ❀ ❀

पुरुष समाज और विधवाएं।

भारतवर्ष में स्त्रियों के उपकार के लिये, विशेष कर विधवाओं की सहायता और उद्धार के लिये जितने काम किये जाते हैं उन सब कामों में अगर कोई चीज़ विशेष रूप से विघ्नकारी और मार्गकंटक हो जाती है तो वह पुरुषों का तर्ज़ अमल है।

महाराष्ट्र या दक्षिण के अन्य प्रान्तों के बारे में हम कुछ नहीं कहना चाहते। उत्तरीय भारत में, विशेष कर संयुक्त प्रान्त में अभाग्य वश बाल्यावस्था से ही बालकों के कुछ ऐसे संस्कार पड़ जाते हैं कि पुरुष होकर वह लोग स्त्रियों की और विशेष कर के विधवाओं की इज़्ज़त करने में ज़रा भी अग्रसर नहीं होते। हम तो यहां तक कहेंगे कि भारतवर्ष में स्त्री-जाति के सम्मान करने की प्रथा और मर्यादा का साधारण जनता में तो अभाव है ही मगर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अगर किसी सड़क से कोई भी महिला निकल जाय या किसी सभा में कोई स्त्री जाकर बैठे तो उस सड़क और उस सभा के शायद ही दो चार भले मानुस ऐसे होंगे जो जो उसी तरफ़ व्यर्थ टकटकी लगाने की गुस्ताख़ी न करें। इन प्रान्तों में पुरुषों को स्त्रियों का सड़क पर चलना, सभा समाजों में भाग लेना आदि काम कुछ ऐसे अनोखे मालूम होते हैं कि टकटकी बंध जाना कुछ स्वाभाविक सा हो गया है। अगर किसी मुहल्ले में, किसी स्थान पर विधवाएं एकत्रित की जांय और आस पास के आदमियों को मालूम हो जाय कि अमुक स्थान पर प्रत्येक दिन स्त्रियां या विधवाएं एकत्रित होंगी तो, खेद के साथ

प्रभाव गृहस्थ संस्था तथा सन्तानोत्पत्ति दोनों के ऊपर पड़ता है। गृहस्थ संस्था के लिये प्रेम की महती आवश्य है। यह प्रेम विना इच्छा के हो ही नहीं सकता। रही सन्ता त्पत्ति। उसके विषय में यह बात है कि जब बच्चा गर्भ में हो है तो उसकी माता के आचार व्यवहार तथा मानसिक भा का बच्चे के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः बच्चे मस्तिष्क माता के मस्तिष्क से ही बनता है। इसी लिये ब्राह्मण में लिखा है:—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदःशतम्॥

अर्थात् माता पिता के अङ्ग अङ्ग से बच्चे का शरीर बन है। अब यदि माता की इच्छा के विरुद्ध सम्बन्ध हुआ है औ यदि माता का मन खिन्न है तो बच्चे का मन भी उसी प्रक का होगा। कई डाक्टरों का कथन है कि यदि माता शोकमय और बच्चे को दूध पिलावे तो बच्चे का स्वास्थ्य बिगड़ जा है। जंगली मनुष्यों की सन्तान के जंगली क्रूर, तथा क्रोधयु होने का एक कारण यह भी है कि जब वह अपनी माता के ग में होते हैं उस समय उनके पिता उनकी माता पर अनेक अ त्याचार करते हैं जिनके कारण गर्भस्थ सन्तान का मस्तिष्क भी तद्वत् हो जाता है। इस लिये सिद्ध है कि स्त्री पुरुष दोनों की प्रसन्नता से विवाह होना चाहिये।

अब हम दूसरे प्रश्न को लेते हैं अर्थात् क्या एक का दूस पर आधिपत्य है ? यदि है तो किसका ? और यदि नहीं है

क्यों ? क्या गृहस्थि में स्त्री और पुरुष का पद समान है ? या असमान ? इस विषय में भिन्न भिन्न जातियों में मत भेद है। असभ्य जातियों में तो स्त्री सदा ही पुरुष की पददलित चेरी समझी जाती है जिसके कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। परन्तु पाश्चात्य जातियों में किसी किसी अंश में इससे विपरीत है। अंग्रेज़ी भाषा में स्त्री को पुरुष का (Better-half) बेटरहाफ़ अर्थात् उत्तमार्द्ध मानते हैं अर्थात् यदि गृहस्थ के दो भाग किये जांय तो स्त्री उत्कृष्टार्द्ध है और निकृष्टार्द्ध (Worse-half)) बचा वह पुरुष है। इस लिये यूरोप वासी स्त्री का अधिक मान करते हैं। परन्तु यूरोप के इस ऊपरी व्यवहार से प्रत्येक अंश में यह नहीं कहा जा सकता कि यूरोप में स्त्री पुरुष से उत्तम ही मानी जाती है। यूरोप के इस व्यवहार का वास्तविक रूप देखने के लिये यूरोप के इतिहास पर दृष्टि डालनी चाहिये। यूरोप में पहिले स्त्रियों का आदर नहीं होता था। बहुत सी जातियां बलात्कार विवाह करती थीं। मध्यकालीन यूरोप के लोग स्त्रियों में जीव नहीं मानते थे। इसके पश्चात् लोग इनको दासी मात्र समझने लगे। अंग्रेज़ी भाषा का लेडी शब्द (Lady) जो आज कल केवल उच्च श्रेणियों की स्त्रियों के लिये ही प्रयुक्त होता है प्रथमतः आटा गूंधने वाली का वाचक था। अर्थात् पुरुष अपनी रोटी बनाने के लिये एक चेरी रख लेता था जिसे लेडी (Lady) कहते थे। और उसका घर पर कुछ अधिकार न था। जब यूरोप में अर्द्ध-सभ्यता का समय आया उस समय भी स्त्रियों की दशा तद्वत् ही रही। पुरुष पढ़ने लगे। परन्तु स्त्री विद्या से वञ्चित ही रहीं। ईसाई धर्म के प्रचार ने भी स्त्री को उच्च अवस्था प्राप्त कराने में कुछ सहायता न की। इसका विशेष कारण यह था कि ईसाई धर्म की आधार शिला ही इस बात पर रक्खी गई है

समाज और विधवा।

हमारे समाज में विधवा एक बेकार सी चीज़ है। अधिकांश लोग तो इसे बेकार ही नहीं, बल्कि निश्चित रूप से समाज के लिये हानिकर समझते हैं और इसीलिये विधवा का जीवन हिन्दू समाज में विशेष रूप से यातनापूर्ण है। यों तो विधवाएं हरएक देश में अभागी समझी जाती हैं किन्तु अन्य देशों में विधवाओं को इतनी अधिक तकलीफ़ें नहीं उठानी पड़तीं, जितनी हिन्दुस्तान में। पति की मृत्यु की और उसके सदा के लिये वियोग की ही असह्य मानसिक पीड़ा तो सब देश की विधवाओं के लिए हैं किन्तु बेकारी, दरिद्रता, असहायता, सम्मानशून्यता इत्यादि कष्ट जिस मात्रा में भारत की विधवाओं को सहने पड़ते हैं शायद ही किसी सभ्य जाति की विधवाओं को सहन करने होते हों।

जो सज्जन विधवा विवाह में विश्वास नहीं करते वह अगर अपने घर को विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने की कोशिश करने लगें तो भी बिधवाओं के जीवन की वर्तमान दुर्दशा बहुत कुछ कम हो सकती है। हमें वास्तव में बहुत ही दुःख होता है जब हम यह देखते हैं कि विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने का तो कोई प्रयत्न नहीं किया जाता किन्तु उनके चरित्र पर कड़ी दृष्टि से समालोचना की जाती है। किसी विधवा को, अगर उसके मां-बाप, देवर, श्वसुर, सास आदि सम्बन्धी लाड़ प्यार से रक्खें, उसकी असहाय अवस्था का स्मरण मात्र भी उसके सामने न आने दें, अपने चरित्र से कुटुम्ब का वायुमण्डल पवित्र रक्खें, तो १०० में ७५ विधवाओं की तकलीफ़ें कम हो जायें और

शायद ही दो चार ऐसी मिलें जो ऐसी अवस्था में सचरित्रता के पथ का उल्लंघन करें।

अगर हिन्दू समाज अपने भाव को जीता जागता कहता है और उसमें दया और उदारता का ज़रा भी अंश है तो उसे विधवा-प्रश्न को उदारता और बुद्धिमत्ता के साथ हल कर डालना चाहिये। अगर किसी प्राणी का कोई अङ्ग व्यथित हो और वह उसे अनुभव न करे या अनुभव करके उसके प्रतिकार का कोई उपाय न करे तो उसका शरीर या तो मुरदा समझ जायगा या मृत्यासन्न। हिन्दूसमाज यदि विधवा की व्यथा का अनुभव नहीं करता या अनुभव करके उसके प्रतिकार का उचित उद्योग नहीं करता तो मुरदा होने या मृत्यासन्न होने का लांछन उस पर उचित ही है। किन्तु हमें हिन्दू समाज की उदारता, दया और विचार शीलता में विश्वास है। हम यह स्पष्ट देख रहे हैं कि हिन्दू-समाज में पुर्नजागृति पैदा हो गई है और मानुषिक कार्य के प्रत्येक क्षत्र-में, राजनीति में, आचार नीति में, साहस में, वीरता में, साहित्य में, विज्ञान में अर्थात् प्रत्येक उच्च और आदरणीय क्षेत्र में, यह समाज उन्नति कर रहा है। इसके दुर्बल और रुग्न शरीर में फिर से जीवन का संचार हो रहा है। चैत, वैशाख के नवपल्लवित वृक्ष के समान यह बहुत ही शीघ्र जीर्ण अवयवों को त्याग कर हंस पड़ने वाला है। जिन जिन व्यथाओं से यह पीड़ित है उन उन व्यथाओं को दूर करने में सपरिश्रम उद्योग कर रहा है। कोई कारण नहीं कि विधवा-प्रश्न का यह सन्तोषजनक उतर न दे सके।

हमें हिन्दू-समाज के प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा है कि यदि उसने आजतक व्यक्तिगत प्रश्नों को छोड़कर सार्वजनिक और सामाजिक प्रश्नों में दिलचस्पी नहीं ली है तो

वह अब समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी अनुभव करेगा और समाज सुधार के, विशेषकर असहाय विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने और उन की दशा सुधारने के पवित्र, शान्तपूर्ण और पुण्यदायक कार्य में श्रद्धा और उत्साह के साथ भाग लेकर अपना जन्म सफल करेगा।

इस पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने उन लोगों की शङ्का का, जो विधवा विवाह का विरोध करते हैं, बहुत ही मार्मिक दलीलों द्वारा समाधान किया है और ऐसे ऐसे धार्मिक और इतिहासिक प्रमाण पेश किए हैं जिनका खण्डन करना उस समय तक असम्भव है, जब तक लोग कोरे 'हठ' की शरण न लें। जो लोग विधवा विवाह के जन्म—सिद्ध विरोधी हैं—मैं तो कहूंगा—उन्हें भी इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को बड़ी सावधानी से आद्योपान्त पढ़ना चाहिए और इसमें दिए गए अकाट्य प्रमाणों को ठण्डे दिल से समझना चाहिये। मेरा तो पूर्ण रूप से विश्वास है कि इस पुस्तक को जनता बहुत ही आदर की दृष्टि से देखेगी और इससे पूर्ण लाभ उठावेगी। यदि मेरी स्मरण शक्ति मुझे धोका नहीं देती तो मैं यह ज़रूर कहूंगा कि विधवाओं की जटिल समस्या पर ऐसी उपयोगी पुस्तक हिन्दी संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। मैं समाज की ओर से लेखक को उन की इस सफलता पर हार्दिक बधाई देता हूं।

चाँद कार्य्यालय,
इलाहाबाद।
१५—१०—२३

—रामरख सिंह सहगल

पुस्तक के लेखक
श्री० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०।

A. L. J. PRESS. ALLAHABAD.

अथ विधवा विवाह मीमांसा।

आरम्भ।

अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।

अथर्ववेद, कांड ३, सूक्त ३०, मं० १।

रम पिता परमात्मा इस वेद मंत्र द्वारा उपदेश करते हैं कि हे संसार के मनुष्यो! तुम को चाहिये कि एक दूसरे के साथ इस प्रकार व्यवहार करो जैसे एक गौ अपने नवजात बछड़े के साथ करती है। गौ का अपने हाल के उत्पन्न हुये बछड़े के साथ कैसा प्रेमयुक्त व्यवहार होता है, इसका और कोई दृष्टान्त ही नहीं मिलता। बछड़ा मल में सना हुआ है परन्तु गौमाता न केवल उसका मल ही दूर करती है किन्तु उसको अपना अमूल्य मधुर दूध पिलाकर शक्ति भी प्रदान करती है। इसी प्रकार ईश्वर की ओर से आज्ञा है कि हम लोग भी एक दूसरे की बुराइयों को हटाने और उनके दुःख दूर करने का यत्न किया करें। परस्पर प्रेम से वर्त्तें और एक दूसरे पर अत्याचार कभी न करें। प्रायः देखा जाता है कि जो

जातियां वेदों के इस उपर्युक्त उपदेश को भुला देती हैं उन में व्यक्तिगत और समाजगत अनेक अत्याचार आ जाते हैं। बलवान निर्बलों को सताने लगते हैं और सभ्यता का नाश हो जाता है। आजकल भारतवर्ष में विधवाओं पर जो अत्याचार हो रहे हैं वह केवल वेदों से विमुख होने ही का फल है। मनुष्य समाज का बलवान अङ्ग अर्थात् पुरुष बलवान होने के कारण, अपने लिये तो अनेक विवाहों का अधिकारी बताता है, परन्तु जब अबलाओं के पुनर्विवाह का प्रश्न उपस्थित किया जाता है तो अनेक आक्षेप किये जाते हैं।

यद्यपि प्राचीन काल में विधवा का पुनःसंस्कार धर्म के अनुकूल समझा जाता था, और आवश्यकता अनुसार उसका प्रचार भी होता था। वर्त्तमान समय में भी अनेक देशों और जातियों में इसका प्रचार है तथापि कुछ काल से आर्य्य जाति के उच्च वर्गों में इसको धर्म-विरुद्ध समझा जाने लगा है। जिसके कारण अनेक प्रकार के दोष हिन्दू समाज में प्रविष्ट होकर उसकी जड़ काटने का काम कर रहे हैं। अतः यहां विधवा विवाह की पूरी मीमांसा की जायगी। विधवा-विवाह धर्मानुकूल है या धर्म विरुद्ध इसका निश्चय करने के लिये निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है? मुख्य-प्रयोजन क्या और गौण-प्रयोजन क्या? आजकल विवाह में किस २ प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है?

(२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान? यदि समानता है तो किन २ बातों में और यदि भेद है तो किन २ बातों में?

(३) पुरुषों का पुनर्विवाह और बहुविवाह धर्मानुकूल हैं ? या धर्म विरुद्ध ? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ?

(४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है। या अनुचित ?

(५) वेदों से विधवा विवाह की सिद्धि।

(६) स्मृतियों की सम्मति।

(७) पुराणों की साक्षी।

(८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा।

(९) अन्य युक्तियां।

(१०) विधवा विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर।

(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा विवाह के विरुद्ध हैं ?
(आ) विधवायें और उनके कर्म्म तथा ईश्वर इच्छा।
(इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं।
(ई) कलियुग और विधवा विवाह।
(उ) कन्यादान विषयक आक्षेप।
(ऊ) गोत्र विषयक प्रश्न।
(ऋ) कन्यात्व नष्ट होने पर विवाह वर्जित है।
(ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिये न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना।

(ऌ) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है।

(ट) क्या हम आर्य्य समाजी हैं जो विधवा-विवाह में योग दें।

(११) विधवा विवाह के न होने से हानियां।

(क) व्यभिचार का आधिक्य।
(ख) वेश्याओं की वृद्धि।
(ग) भ्रूण हत्या तथा बालहत्या।
(घ) अन्य क्रूरतायें।
(ङ) जाति का ह्रास।

(१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में बारह अध्याय होंगे जिन में क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना होगी।

पहिला अध्याय ।

विवाह का प्रयोजन ।
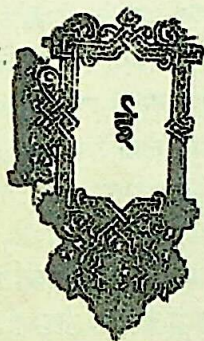
श्वर की सृष्टि में दो प्रकार की शक्तियां पाई जाती हैं। एक पुरुष शक्ति और दूसरी स्त्री शक्ति। इन दोनों के संयोग से ही वंश-वृद्धि होती है। परमात्मा ने इन दोनों शक्तियों में एक प्रकार का ऐसा स्वभाव उत्पन्न किया है कि वह एक दूसरे की ओर स्वयं ही आकर्षित होती हैं। यह नियम न केवल मनुष्य जाति में ही पाया जाता है किन्तु पशु, पक्षी, कीट पतंग सब ही इसका अनुकरण करते हैं। घोड़ा घोड़ी को देखकर हिनहिनाता है। शुकसारिका अपने अपने जोड़ों की ओर स्वयं ही प्रलोभित होते हैं। सांप और सांपिन साथ साथ रहना पसन्द करते हैं। मक्खी और मक्खे में स्वाभाविक प्रेम होता है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री सहवास में ही आनन्दलाभ करते हैं! परन्तु मनुष्य जाति और इतर जातियों की कार्य्य प्रणाली में भेद है। ईश्वर ने मनुष्य को ज्ञान दिया है परन्तु पशु पक्षी को नहीं। परन्तु इस बहुमूल्य वस्तु अर्थात् ज्ञान के उपलक्ष में मनुष्य को कर्म्म करने में स्वतंत्रता दी गई है और पशुपक्षियों को परतन्त्र बनाया गया है। या दार्शनिक परिभाषा में यों कहिये कि मनुष्य कर्म्म योनि और भोग योनि दोनों है और मनुष्य

को छोड़ कर अन्य सब प्राणिवर्ग केवल भोग-योनि हैं। वह जो कुछ करते हैं स्वभाव से प्रेरित होकर करते हैं। प्रयोजन को दृष्टि में रखना और उसकी सिद्धि के विषय में तर्क करना उन की शक्ति के बाहर है। मनुष्य को जहां बुद्धि दी गई है वहां उसके शिर पर उत्तरदातृत्व का भार भी है। वह किसी काम को चाहे करे चाहे न करे और चाहे उलटा करे। जैसा करेगा वैसा फल पावेगा।

ईश्वर ने पशु-पक्षियों की सामाजिक योजना अपने हाथ में रक्खी है। जो नियम उसने इस विषय में बना दिये हैं उनको वह भंग करही नहीं सकते। ऋतुगामी होना उनका स्वभाव है उसके लिये संस्कार विशेष की आवश्यकता नहीं। परन्तु मनुष्य को स्वतंत्र और नियमोलङ्घन करने में समर्थ होने के कारण अपने समाज का संघटन स्वयं ही करना पड़ता है। यदि वह नियमों का पालन करता है तो समाज की उन्नति होती है और यदि पालन नहीं करता तो समाज नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि स्त्री और पुरुष में पारस्परिक आकर्षण शक्ति है और इस आकर्षण को नियमित करने का ही नाम विवाह है। अतः विवाह से दो प्रयोजन हैं। एक सन्तानोत्पत्ति और दूसरा इस स्वाभाविक आकर्षण को नियम में रखना। समस्त प्राणियों को भूख लगती है जब वह किसी खाद्य पदार्थ को देखते हैं तो उसको खाने की इच्छा करते हैं। अब यदि प्रश्न किया जाय कि भोजन करने का क्या प्रयोजन है? तो इसके दो ही उत्तर हैं। एक तो यह कि यदि भोजन न किया जाय तो शरीर नित्य प्रति दुबला होता जायगा। और थोड़े ही काल में जीवन की समाप्ति हो जायगी। दूसरा यह कि प्राणियों में खाने की जो स्वाभाविक इच्छा है उसको

नियम में रखना। भोजन करने का मुख्य प्रयोजन शरीर का स्वास्थ्य ठीक रखना ही है। परन्तु यदि भूख न लगा करती तो खाने के लिये कष्ट उठानेवाले थोड़े ही होते। इसीलिये ईश्वर ने भूख को उत्पन्न किया है, जिससे बिना सोच विचार के मनुष्य को भोजन की इच्छा हो ही जाती है। बच्चा उत्पन्न होते ही भोजन मांगने के लिये रोने लगता है तो वह यह नहीं समझता कि मैं शरीर रक्षा के लिये दूध मांग रहा हूं। उस बिचारे को यह पता भी नहीं कि दूध किसे कहते हैं, शरीर क्या वस्तु है और दूध का शरीर के स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध है। उस समय वह स्वभावतः ही भूख से पीड़ित होकर चिल्लाता और दूध मिलते ही सन्तुष्ट हो जाता है। इसलिये एक अवस्था में गौण प्रयोजन अर्थात् भूख की निवृत्ति भी मुख्य ही हो जाती है। प्रायः ऐसा होता है कि जो खाना आरम्भ में भूख की निवृत्ति के लिये खाया जाता है और जिसका मुख्य प्रयोजन शरीर का स्वास्थ्य है उसको लोग स्वास्थ्य के बिगाड़ने के लिये भी खाते हैं। हम प्रायः बहुत सी वस्तुयें ऐसी खाते हैं जैसे शराब वग़ैरः जिससे, यद्यपि हमको स्वाद मिलता है, तथापि उससे शरीर को हानि पहुंचती है। इसलिये वैद्यों ने भोजन के नियम बनाये हैं जिनसे दोनों कार्य्य सिद्ध हो सकें, अर्थात्:—

(१) मुख्य प्रयोजन—शरीर रक्षा।

(२) गौण प्रयोजन—स्वाद की संतुष्टि।

वैद्यक शास्त्र के देखने से विदित होता है कि यह दोनों प्रयोजन ही दृष्टि में रक्खे जाते हैं और कटु कषाय वस्तुयें भोजन से निकाल दी जाती हैं। कई वस्तुयें भोजन में केवल

इसलिये रक्खी जाती हैं कि उनके द्वारा भोजन भली प्रकार खाया जा सके।

इसी प्रकार विवाह के भी दो प्रयोजन हैं। पहिला अर्थात् मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। परन्तु यदि सन्तानोत्पत्ति ही स्त्री पुरुष के संयोग का कारण होता और स्वभावतः उनमें आकर्षण न होता तो प्रति शतक एक भी सन्तानोत्पत्ति के झगड़ों में न पड़ता इसीलिये परमात्मा ने परस्पर संयोग का स्वभाव उत्पन्न कर दिया है। अतः इस संयोग को नियम में रखना भी विवाह का एक प्रयोजन है यद्यपि गौण है। जिस प्रकार बिना नियम के भोजन करने वाले इसके मुख्य प्रयोजन अर्थात् शरीर रक्षा को भूल जाते हैं। इसी प्रकार यदि स्त्री पुरुषों के सहवास का नियम न हो तो शारीरिक तथा सामाजिक भयङ्कर परिणाम निकलने लगते हैं। अतः विवाह के नियम बनाते समय दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है अर्थात् (१) स्त्री पुरुष के परस्पर संयोग की स्वाभाविक इच्छा भी पूर्ण हो जाय (२) और उससे मुख्य प्रयोजन अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की भी सिद्धि हो सके।

स्त्री पुरुषों में परस्पर संयोग की इच्छा सन्तान की इच्छा से कई गुनी बलवान है। पशु-पक्षी तो संयोग यह सोच कर कभी नहीं करते कि उनके सन्तान होगी। वह तो स्वयं एक प्रकार की अनिर्वचनीय शक्ति से आकर्षित हो जाते हैं। परन्तु मनुष्य में भी सन्तानोत्पत्ति की इच्छा संयोग की इच्छा की अपेक्षा बहुत कम होती है, और जो स्त्री पुरुष केवल सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही संयोग करते हैं वे केवल वही होते हैं जिनको इन्द्रिय-दमन की पूर्ण शिक्षा मिली है और जिन्होंने कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर भली भांति विचार किया है। साधारणतया

तं उनके मिलने का कारण केवल एक प्रकार की अकथनीय स्वाभाविक इच्छा ही होती है। इसलिये जहां विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति रक्खा गया है वहां उस गौण-प्रयोजन पर भी पूरा ध्यान दिया गया है कि स्वाभाविक संयोग करने की इच्छा की नियमपूर्वक पूर्त्ति हो जाय। इसीलिये शास्त्रों में यत्र तत्र आदेश मिलता है कि यदि पुरुष ब्रह्मचारी और स्त्री ब्रह्मचारिणी न रह सके अर्थात् वह इस स्वाभाविक इच्छा का दमन न कर सकें तो विवाह कर लें अर्थात् उन नियमों को दृष्टि में रखते हुये संयोग करें जिनसे वह इच्छा उचित सीमा से बाहर न जा सके। इन नियमों के अनुकूल संयोग करने की नाम ही **विवाह** है और गृहस्थाश्रम का मूलाधार विवाह के ही नियम हैं।

यदि हम संसार की वर्त्तमान स्थिति पर विचार करें तो वहां भी हमको यही नियम कार्य्य करता हुआ दिखाई पड़ता है। जब किसी पुरुष की लड़की १३ या १४ वर्ष की होती है तो वह कहता है कि अब यह लड़की विवाह के योग्य हो गई, इसका विवाह कर देना चाहिये। यदि उस लड़की की आयु १६ या १७ वर्ष की हो जाती है और विवाह करने में कुछ विघ्न उपस्थित होते हैं तो वह बड़ा चिन्तित होता है। क्योंकि वह जानता है कि पुरुष से मिलने की स्वाभाविक इच्छा से प्रेरित होकर जिसको **कामचेष्टा** के नाम से पुकारते हैं कहीं वह नियम भङ्ग न कर बैठे। वहां पिता को यह पूछने की आवश्यकता नहीं कि लड़की सन्तानोत्पत्ति की इच्छा रखती है या नहीं। सम्भव है कि लड़की को स्वप्न में भी सन्तान की चाह न हो। परन्तु उसके पिता को भली भांति मालुम है कि यदि

लड़की का विवाह न किया गया तो काम-चेष्टा के वशीभूत होकर वह नियमों का उल्लङ्घन कर लेगी। इसी प्रकार माता पिता अपने पुत्र का भी विवाह करते हैं। उनको भय होता है कि यदि अमुक समय तक विवाह न किया गया तो लड़का नियम विरुद्ध रीतियों से स्त्री-प्रसङ्ग की सामग्री इकट्ठी कर लेगा।

बहुत से लोग कहेंगे कि धर्म तो यही बताता है कि केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये ही विवाह किया जाय। और बिना सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के विवाह करना पाप है। परन्तु ऐसा कहने वालों ने धर्म के केवल एक अङ्ग पर विचार किया है सब अङ्गों पर नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि विवाह का मुख्य उद्देश सन्तानोत्पत्ति ही है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। परन्तु केवल इस मुख्य उद्देश को ही दृष्टि में रख कर समस्त मनुष्य कार्य्य नहीं कर सकते। उनकी स्वाभाविक शक्ति को देखना और उसके अनुकूल उनके कर्त्तव्य का निश्चय करना भी तो धर्म के अन्तर्गत ही है। धर्मशास्त्रों के संस्थापक इस बात पर बड़ा ध्यान रखते हैं कि जिस धर्म का प्रतिपादन किया जा रहा है उस पर चलने की मनुष्यों में शक्ति भी है या नहीं। उदाहरण के लिये हम मनुजी का प्रमाण देते हैं। मानव-धर्म-शास्त्र की आज्ञा है कि हिंसा करना सब से अधिक पाप है। मनुष्य का धर्म है कि चींटी क्या इससे भी छोटे जन्तुओं को पीड़ा न दे। परन्तु मनु जी ने इस बात पर भी विचार किया होगा कि मनुष्य को खाना पकाने, झाड़ू देने, चलने फिरने, आदि में अपनी इच्छा के विरुद्ध भी कुछ न कुछ हत्या करनी ही पड़ती है चाहे अनजाने ही क्यों न हो। इनसे सर्वथा बचा रहना

उसकी शक्ति से बाहर है। इसीलिये उन्होंने इसके प्रायश्चित्त के लिये पञ्चयज्ञ महाविधि का विधान किया है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अपनी आय का सम्पूर्ण भाग दान दे या अधिकांश दान दे दिया करे तो अच्छा ही है। बहुत से पुरुष हैं जो अपनी आय का बहुत कुछ भाग दरिद्रों और पीड़ितों की सहायता में दे देते हैं तथापि सर्वसाधारण के लिये यह नियम रख देना उनकी शक्ति से बाहर हो जाता। अतः शास्त्र ने आज्ञा दी है कि अपनी आय का दशांश दान कर दिया करो। कहने का तात्पर्य्य यह है कि धर्म अर्थात् कर्त्तव्य के निश्चय करते समय कर्त्ता की शक्ति पर पूर्ण विचार आवश्यक है।

धर्म के मुख्यतः दो अङ्ग हैं। एक तो उद्देश और दूसरा उस उद्देश की पूर्त्ति का साधन। इन साधनों के दो भाग हैं प्रथम तो:—

(१) उस उद्देश तक पहुंचने के लिये किस मार्ग पर चलना चाहिये।

(२) उस मार्ग से भटक न जायं इस बात के लिये क्या क्या कार्य्य करना चाहिये ?

इस प्रकार जो कार्य्य मनुष्य को अधर्म से बचाते हैं वह भी धर्म में ही गिने जाते हैं। इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है। सभी जानते हैं कि युद्ध कोई अच्छी वस्तु नहीं है, क्योंकि इससे मनुष्य जाति को अनेक प्रकार के भयङ्कर कष्ट उठाने पड़ते हैं। परन्तु राजा के लिये विशेष अवस्थाओं में युद्ध करना इसलिये धर्म माना गया है, कि युद्ध बहुत से अधर्म और अन्यायों को रोकता है किसी २ अवस्था में तो राजा के

लिये युद्ध न करना पाप बताया गया है क्योंकि युद्ध के न होने से अत्याचार अपनी सीमा से बढ़ जाते हैं और अन्यथा उनका सुधार हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार यद्यपि समस्त आयु पर्य्यन्त ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय रहना धर्म है परन्तु ऐसा करना सर्वसाधारण की शक्ति के बाहर है। एक करोड़ मनुष्यों में एक भी मुश्किल से मिलेगा जो आयु पर्य्यन्त ब्रह्मचारी रह सके। विवाह करने से अनियमित काम चेष्टा की रोक होती है इसलिये यह भी धर्म्म में ही सम्मिलित है। जिस प्रकार यह सिद्ध है कि राजा को युद्ध उसी समय करना चाहिये जब अन्याय रोकने के लिये उसकी आवश्यकता हो और मनुष्य की प्रकृति इस प्रकार की है कि राजा को युद्ध करने के लिये मजबूर होना ही पड़ता है इसी प्रकार नियम विरुद्ध काम-चेष्टा तथा पाशविक व्यवहार को रोकने के लिये विवाह की आवश्यकता पड़ती है। यह विवाह उस समय तक न्यायसङ्गत है जब तक उससे दो कार्य्य सिद्ध हो सकें :—

(१) सन्तानोत्पत्ति।

(२) अनियमित काम-चेष्टा या व्यभिचार का रोकना।

मनुष्य की प्रवृत्ति बताती है कि यदि विवाह प्रणाली न हो तो व्यभिचार बहुत बढ़ जाय। और इसके साथ यह बात भी इतिहास तथा मनुष्य जाति की गति पर दृष्टि डालने से स्पष्टतया विदित हो जाती है कि यदि विवाह के इतने कड़े नियम बनाये जायं जिनके भीतर रहना सर्वसाधारण की शक्ति के बाहर हो तब भी व्यभिचार बढ़ता है। यह दो प्रकार से होता है :—

(१) गुप्त रीति से व्यभिचार करना। और

(२) नियमों को जान बूझ कर तोड़ना।

सब जानते हैं कि चोरी करना पाप और महापाप है परन्तु जब सामाजिक नियम इतने कड़े हो जाते हैं कि लोगों को खाने को नहीं मिलता तो वह गुप्त या प्रकट रीति से चोरी करने लग पड़ते हैं और भयङ्कर से भयङ्कर दण्ड तथा जेलख़ाने भी इनको रोक नहीं सकते।

किसी मनुष्य को नियम में रखने के लिये दो बातों की आवश्यकता है:—

(१) नियम इतने सरल भी न हों कि उनको नियम न कहा जा सके

(२) इतने कड़े भी नहीं, जिन पर चलना अधिकांश जन-संख्या की शक्ति के नितान्त बाहर हो।

यदि नियम केवल नाम मात्र ही हों अर्थात् यदि विवाह का ऐसा नियम बना दिया जाय कि कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ जब चाहे और जहां चाहे विना किसी विशेष सीमा के सम्भोग कर सके तो यद्यपि यह भी एक प्रकार का नियम है तथापि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो यह नियम केवल कथनमात्र ही है जिसका होना न होना बराबर है। अर्थात् यदि ऐसा नियम न होता तो भी वही परिणाम निकलता जो इस नियम के होने से निकलता है।

परन्तु उसके साथ ही यदि केवल यह नियम बना दिया जाय कि जब तक सन्तान की इच्छा और आवश्यकता सिद्ध न हो उस समय तक स्त्री वा पुरुष को परस्पर सम्बन्ध करने की आज्ञा ही न दी जाय तो यह नियम सर्वसाधारण की शक्ति से बाहर है और हज़ार में एक मनुष्य का भी इस पर चलना सम्भव नहीं। अतः इस कड़े नियम से भी वही परिणाम निकलेगा जो उसके न होने से निकलता। अर्थात् या तो लोग गुप्त रीति से इस नियम का उल्लङ्घन करेंगे या इस नियम

से तंग आकर खुल्लम खुल्ला इसका सामना करेंगे और अपने सुभीते के लिये अन्य नियम बना लेंगे। इसलिये इन दोनों के मध्यवर्ती एक ऐसा नियम बना दिया गया है कि यदि स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य्य के पालन में असमर्थ हों तो वह विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करलें अर्थात् अपनी कामचेष्टा को इतना सन्तुष्ट करलें जिससे मुख्य उद्देश अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की पूर्त्ति हो जाय। और लोक में भी यही देखने में आता है। स्त्री और पुरुषों के विवाह इसी उद्देश को ध्यान में रखकर किये जाते हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि विवाह का एक मात्र उद्देश स्त्री पुरुष के प्रेम की वृद्धि है। परन्तु यह केवल वाग्जाल है। जब हम कहते हैं कि गृहस्थ प्रेम का आधिक्य ही विवाह का प्रयोजन है तो हम केवल शब्दों की रोचकता पर ही मुग्ध होकर कहते हैं उनके अर्थों पर गम्भीर दृष्टि नहीं डालते। वस्तुतः प्रेम वृद्धि से भी वही तात्पर्य्य है जो ऊपर कहा गया है अर्थात् स्त्री और पुरुष में परस्पर संयोग की जो स्वाभाविक इच्छा है इसको नियम के अनुकूल रखना। सम्भव है कि कोई ऐसा आक्षेप करने लगे कि तुमने प्रेम जैसे उच्चभाव को कामचेष्टा जैसे निकृष्ट भाव का समानार्थक समझ लिया। परन्तु यह बात नहीं है। दाम्पत्य प्रेम का वही अर्थ नहीं होता जो बहिन भाई के प्रेम, पिता पुत्र के प्रेम, माता और पुत्री के प्रेम का होता है। वस्तुतः प्रेम शब्द पर पूर्ण विचार करने से ही पता चलता है कि जब हम यह कहते हैं कि अमुक स्त्री अमुक पुरुष से प्रेम करती है या अमुक पुरुष अमुक स्त्री से प्रेम करता है तो उसका वही तात्पर्य्य नहीं होता जो उस समय होता है जब हम यह कहते हैं कि अमुक पुरुष अपने पुत्र से प्रेम करता है। यहाँ उच्चभाव या नीच भाव की बात,

उसके विषय में केवल इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि परमात्मा ने मनुष्य को जो जो भाव दिये हैं वह सभी उच्च और पवित्र हैं। केवल उनका सीमा से बढ़ जाना या दुष्ट प्रयोग करना ही नीचता है। जिस प्रकार स्त्री और पुरुष के प्रेम को सीमा से बढ़ जाने या दुरुपयोग की दशा में काम चेष्टा के दुष्ट नाम से सम्बोधित करते हैं उसी प्रकार पिता और पुत्र के प्रेम को सीमा से बढ़ जाने या दुरुपयोग करने की दशा में मोह जैसे दूषित नाम से पुकारते हैं। बात वही है उसमें कुछ भेद नहीं पड़ता।
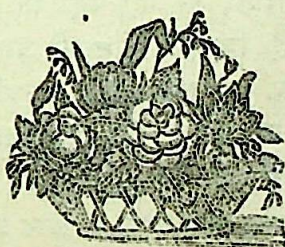
दूसरा अध्याय ।

स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य ।

ब प्रश्न यह है कि विवाह के उपर्यु
प्रयोजनों को लक्ष में रखते हुये
और पुरुष के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों
कितना साधर्म्य वा वैधर्म्य है ? इस
सन्देह नहीं कि स्त्री और पुरुष की शारी
रिक आकृत तथा आन्तरिक स्वभाव
अनेकों समानतायें और अनेकों भेद हैं
परन्तु यदि विचार किया जाय तो समानतायें अधिक औ
भेद कम हैं। भेदों का होना तो स्वाभाविक है क्यों
यदि भेद न होता तो स्त्री पुरुष नाम ही अलग अलग
होते। पदार्थ की भिन्नता से ही पदों की भिन्नता है। पर
प्रायः देखा जाता है कि इस भेद को जहां तक कि इस
सम्बन्ध कर्त्तव्य और अधिकार से है अत्युक्ति के साथ कथ
किया गया है। नीम और आम के वृक्ष यद्यपि भिन्न
होते हैं तथापि इस भेद के कारण उन के पालन पोष
की आवश्यकता में भेद नहीं होता। जिस प्रकार नीम को ज
वायु तथा प्रकाश की आवश्यकता है उसी प्रकार आम
परन्तु स्त्री और पुरुष में तो इतना भी भेद नहीं जित
नीम और आम के वृक्षों में है। स्त्री और पुरुष
शरीर की आवश्यकतायें एक सी हैं। भोजन छादन दो
के समान हैं या कम से कम एक से होने चाहियें

प्रायः भारतवर्ष तथा दो एक अन्य देशों में स्त्रियों के लिये शुद्ध वायु तथा प्रकाश की इतनी आवश्यकता नहीं समझी जाती जितनी पुरुषों के लिये। सभी पुरुष जानते हैं कि सूर्य्य के प्रकाश के विना हमारा जीवन ही दुःसाध्य हो जाता है। न केवल नेत्रों के लिये ही सूर्य्य देव की सहायता की आवश्यकता है किन्तु शरीर के समस्त अवयवों की वृद्धि के लिये सूर्य्य के प्रकाश की ज़रूरत है। परन्तु कुछ महानुभावों ने स्त्रियों के लिये इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी और उनका नाम "असूर्य्यंपश्या" रख दिया। यदि केवल नाम का ही प्रश्न होता तो कुछ हानि नहीं थी। वस्तुतः यदि देखा जाय तो अधिकांश में स्त्रियां ईश्वर के इस अमूल्य दान से वञ्चित रक्खी जाती हैं। और उन की पंचज्ञानेन्द्रियों के गोलकों को घूंघट से छिपा कर उनकी इन्द्रियों को कलुषित अथवा कुंठित कर दिया जाता है। इस से उनके शरीर को कितनी हानि होती है इस का परिमाण उस मृत्यु संख्या से जाना जा सकता है जो दिन प्रति दिन स्त्री जाति में होती है *। गत युद्ध-ज्वर के अवसर पर देखा गया था कि स्त्रियां पुरुषों से कई गुनी अधिक मरीं। यह क्यों? केवल इसलिये कि उनके शरीर पुष्कल प्रकाश और पुष्कल वायु के न प्राप्त होने के कारण बड़े दुर्बल होगये हैं और वह भयङ्कर

*सन् १९११ ई० के अखिल भारतीय मनुष्य गणना विवरण (Census of India, 1911, vol. I pt. 1) के पृष्ठ १६६ के चित्र से विदित होता है कि युवती स्त्रियां युवा पुरुषों की अपेक्षा अधिक मरती हैं। बङ्गाल प्रान्त में ११ वर्ष से लेकर १३ वर्ष की आयु तक, बम्बई में १८ और ३५ वर्ष के बीच में, ब्रह्मा में २४ और ४४ वर्ष के बीच में, मद्रास में ७ और ३० वर्ष आयु के बीच में, संयुक्तप्रान्त में ९ और १७ वर्ष के बीच में स्त्रियों की मृत्यु अधिक है।

रोगों का सामना नहीं कर सकते । भारतवर्ष की उ जातियों में इन अत्याचारों की मात्रा अधिक पाई जा है । और जो स्त्री सबसे कम वायु तथा प्रक का सेवन करे उसे सबसे उच्च समझा जाता है । मु केवल अपने घर का अनुभव है । मेरी पूज्य मा जी बताती हैं कि उन की सास के समय में बहुयें सूर्य्य उ से पूर्व ही कोठे के भीतर चली जाती थीं और ब किवाड़ों के भीतर अपना कार्य्य करती रहती थीं । के सूर्य्यास्त के पश्चात् ही उनको बाहर अर्थात् तंग आंगन आने की आज्ञा होती थी । वह वास्तव में असूर्य्यपश्या और इस नियम का अपवाद केवल उनके पिता के घर ही सकता था । मेरी एक दादी के लिये प्रसिद्ध है कि थोड़े सुसराल के कड़े नियमों का पालन करने के पश्चात् उन शरीर इतना पल गया था कि चुटकी से उनका चमड़ा लिया जा सकता था । इस पर उनके पिता की ओर से आन्दोलन हुआ और उसका केवल इतना परिणाम नि कि मेरे प्रपितामह सायंकाल के समय आकर यह आज्ञा जाया करते थे कि बहुओं को रात्रि के समय कोठे की पर भ्रमण करने के लिये भेज दिया जाया करे । यद्यपि आ कल ऐसे कड़े नियम भारतवर्ष में देखने में नहीं आते तथा यहां के उच्चवर्गों में आजकल भी इस से कुछ ही कम अत चार स्त्रियों पर किया जाता होगा । और जिस प्रकार अंधेरे नित्य प्रति रहने वाले नेत्रोंको प्रकाश से चकाचौंध मालूम हो है इसी प्रकार स्त्रियों को परम्परा से घर के भीतर रहते र ऐसा स्वभाव होगया है कि प्रकाश से भली प्रकार लाभ उठ उनके लिये दुर्लभ है । परन्तु यह बड़ी भारी भूल है क्यों स्त्रियों के शरीर भी वायु और प्रकाश में उसी प्रकार वृद्धि

प्राप्त होते हैं जैसे पुरुषों के। और कोई ऐसा कारण नहीं है कि स्त्रियों के शरीरों की वृद्धि की आवश्यकता न हो।

जिस प्रकार स्त्रियों तथा पुरुषों को शारीरिक आवश्यकतायें समान हैं उसी प्रकार उन की मनोवृद्धि तथा आत्मिकोन्नति में दो बातें सम्मिलित हैं। प्रथम मस्तिष्क विकाश, द्वितीय हृदय विकाश। मस्तिष्क विकाश का साधन विद्या है और हृदय विकाश का साधन आचार की शुद्धता। विना विद्या के मस्तिष्क का विकाश हो ही नहीं सकता और यदि मस्तिष्क बिकसित न हो तो स्त्रियां पशुवत रह जाती हैं। ज्ञान के अभाव से हृदय का विकाश भी उन्नत नहीं हो सकता। हृदय का विकाश सदाचार की शुद्धता से ही होता है और उसका तथा विद्योपार्जन का घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये। सदाचार व्यावहारिक है और विद्या काल्पनिक। व्यावहारिक तथा काल्पनिक उन्नति समकालीन होती है। अतः जो लोग स्त्रियों के लिये आचार की आवश्यकता समझते परन्तु उनको विद्या से वंचित रखना चाहते हैं वह संगमरमर के महल को रेत की नींव पर बनाना चाहते हैं। जिस प्रकार यदि शरीर में एक हाथ बलिष्ठ हो जाय और शेष अवयव दुर्बल रह जायं तो ऐसे शरीर को रोगग्रसित समझा जाता है, उसी प्रकार शरीर, मस्तिष्क तथा हृदय में से किसी एक या दो का अत्यन्त बढ़जाना और शेष का बलहीन रह जाना मनुष्य की रुग्ण-अवस्था का सूचक है। तमाशा यह है कि स्त्रियों के यह तीनों अङ्ग ही अपूर्ण हैं। शरीर तो निर्बल हैं ही। मस्तिष्क विद्याऽभाव के कारण वृद्धि पाने से रुक गये। शरीर और मस्तिष्क के न रहते हुये सदाचार की उन्नति की आशा व्यर्थ तथा असम्भव है।

बहुधा लोगों का कथन है कि विद्या न पढ़ने से सदाचार

सुरक्षित रहता है। परन्तु यह लोग सदाचार का वास्तवि
अर्थ नहीं जानते। यदि सदाचार इसी वस्तु का नाम है
पत्थर तथा लकड़ी सब से अधिक सदाचारी ठहरते हैं
कि यह झूठ नहीं बोलते और न चोरी करते हैं।

सदाचार का मूलाधार ईश्वर पूजा है जिससे स्त्रियों
सर्वथा वञ्चित रक्खा गया है और इस प्रकार के कपोल कल्पि
सिद्धान्त गढ़ लिये हैं कि स्त्री को पति-भक्ति के सिवाय
कुछ कर्तव्य ही नहीं है *। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्री के लि
पति-भक्ति एक आवश्यक वस्तु है जैसा कि कहा है;

साभार्य्या या गृहे दत्ता, सा भार्य्या या पतिव्रता।
साभार्य्या या पतिप्राण, सा भार्य्या या प्रजावती॥

परन्तु पति-भक्ति पर इतना बल देना कि अन्य स
कर्त्तव्य छूट जायं बड़ी भूल है। पति-भक्ति एक साम
जिक आवश्यक व्यवहार है। जिस प्रकार पत्नी-भ
पुरुष के लिये एक सामाजिक कर्त्तव्य है। परन्तु
पुरुष का सम्बन्ध इस संसार में केवल स्त्री से ही है
स्त्री का केवल पति से ही। क्या स्त्री के आत्मा का परमात्
से कुछ भी सम्बन्ध नहीं जैसा कि पुरुष के आत्मा का है
वास्तव में बात यह है कि पुरुषों ने स्त्रियों पर अत्याच
करने के निमित्त इस प्रकार के सिद्धान्त चला दिये हैं
वह अपने पति की ही सेवा सुश्रूषा में लगी रहें और ईश्वरो
पासना पर ध्यान न दें जब कि पति लोगों के लिये स्त्री-
की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।

अब प्रश्न यह है कि यदि इन सब बातों में स्त्री पु
समान ही हैं तो क्या इन अधिकारों और कर्त्तव्यों

---

* न व्रतै र्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च। नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नो
पति पूजनात्॥

कुछ भेद भी है? हां है अवश्य परन्तु इसके कारण उन के (स्त्रियों के) अधिकार बढ़ ही जाते हैं कुछ कम नहीं होते। प्रथम तो स्वभावतः स्त्रियां शारीरिक बल में कुछ न्यून होती हैं जिसके कारण यह आवश्यक है कि समाज की ओर से उन की रक्षा के लिये ऐसे नियम बनाये जायं जिन से समाज का अधिक बलवान भाग अर्थात् पुरुष इन अबलाओं पर अत्याचार न कर सके। दूसरे यह कि उन का हृदय अधिक कोमल और प्रेमयुक्त होता है। अतः बच्चों के पालन-पोषण का अधिक भार माता पर है न कि पिता पर। परन्तु इस से स्त्रियों के अधिकार बढ़ ही जाते हैं कम नहीं होते।

प्रायः देखा गया है कि असभ्य और सभ्य जातियों में यही भेद है कि असभ्य जातियों में शारीरिक बल ही अधिकार होता है। वहां जिसकी लाठी उसी की भैंस होती है। कोई मनुष्य किसी वस्तु पर अधिकार प्राप्त करने के लिये इस से अधिक कारण नहीं बता सकता कि वह बलवान है और उसे ले सकता है। किसी अमुक कार्य्य के औचित्य और अनौचित्य के लिये भी इस से अधिक कारण नहीं कि वह शारीरिक बल रखता है और इस लिये उस के सन्मुख किसी की शक्ति नहीं कि उसके अनुचित कार्य्य को धर्म विरुद्ध कहने का साहस कर सके। प्राचीन यूरोप की असभ्य जातियों में यह प्रथा प्रचलित थी कि यदि कोई पुरुष किसी दूसरे को अत्याचारी, झूठा या बेईमान सिद्ध करना चाहता था तो उस से कुश्ती लड़ता था। जो हार जाता उसी का पक्ष गिर जाता था। समस्त स्मृति और धर्म-शास्त्र की एक मात्र नींव शारीरिक शक्ति पर थी। परन्तु सब जानते हैं कि ऐसी प्रथा असभ्यता की जड़ है और इसमें समस्त प्रकार की उन्नतियां रुक कर मनुष्यों के व्यक्ति गत और सामाजिक अधि-

कार सुरक्षित न रहने से कर्त्तव्यता में भी बाधा पड़ती है। इस प्रथा के समय में कोई पुरुष अपने माल को अपना नहीं पुकार सकता क्योंकि सम्भव है कि उस से बलवान पुरुष आकर माल छीन ले और उसे अपना कहने लगे। इस प्रकार जो बलवान पुरुष होता है वह मन माना कार्य्य करता है और उस से कम बलवान पुरुषों को आक्षेप करने का अधिकार ही नहीं।

सभ्य जातियों की गति इस से भिन्न है। वह ऐसे नियम बनाती हैं जिनको पालन करता हुआ कमज़ोर से कमज़ोर मनुष्य भी अपने माल को सुरक्षित रख सकता और अपने नियमानुकूल कर्म्म के धर्म और अपने से बलवान के नियम विरुद्ध कार्य्य को अधर्म कह सकता और उस को नीचा दिखा सकता है।

असभ्य जातियों में कमज़ोर मनुष्यों को बलवान लोग गुलाम बनाते और उनसे मन माना काम लेते हैं। सभ्य जातियों में किसी का किसी पर उसकी इच्छा के बिना अधिकार नहीं है। सभ्य जातियों में एक छोटा सा बच्चा पैसे हाथ में लिये चला जाता है और यदि कोई उस के पैसे छीने तो दण्डनीय होता है। परन्तु असभ्य जातियों में कुछ ठीक नहीं जो छीन सके वही उसका अधिपति।

हम ऊपर कह चुके हैं कि स्त्रियों में शारीरिक बल पुरुषों की अपेक्षा कम होता है। इसलिये असभ्य जातियों में उपर्युक्त नियम के अनुसार उनको नीच समझा जाता और अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। बहुत सी जातियों में स्त्रियों को बलात्कार पकड़ कर ब्याह लेने की प्रणाली है। आस्ट्रेलिया निवासी यदि किसी अन्य जाति की स्त्री को बलात्कार लेना चाहते हैं तो वह उसके डेरे के चारों ओर घूमते हैं। अगर वह

पाते हैं कि वह स्त्री बिना किसी रक्षक के बैठी है तो उस पर कूद पड़ते, भाले से उसे कष्ट देते, बाल पकड़ कर घसीटते और जंगल में ले जाते हैं। जब वह होश में आती है तो कहते हैं कि तू हमारे लोगों में चल। और वहां उन सब की उपस्थिति में सम्भोग करते हैं क्योंकि उन के लिये स्त्री भेड़ बकरी के समान है। कभी कभी दो पुरुष मिलकर यह काम करते हैं कि किसी अन्य जाति की स्त्री की छाती पर एक बर्छी का सिरा निकट ले जाता है और दूसरा बालों पर भाले का सिरा लगाता है। जब लड़की जागती है तो डरती कांपती हुई चीख़ तक नहीं मार सकती। और वह उसको पकड़ कर ले जाते हैं किसी वृक्ष से बांध कर लटका देते हैं और कष्ट देने के पश्चात् एक उसको अपनी स्त्री बना लेता है। न्यू गिनी टापू के पापन लोग जब किसी लड़की को अकेले में पाते हैं तो उस के साथ सहवास करके उसे अपनी स्त्री बना लेते हैं, फ़ीजी के टापू में भी यही प्रथा है। कभी कभी आस्ट्रेलिया वाले तबादले की शादियां करते हैं अर्थात् अपनी बहिन या किसी सम्बन्धी स्त्री को देकर उसके बदले में दूसरी स्त्री को विवाह के लिये ले लेते हैं मानो वह कोई निर्जीव वस्तु है। हाटनटाट लोग यह समझते हैं कि स्त्रियां सम्पत्ति हैं। इस लिये वह चुराकर उन से विवाह कर लेते हैं। फ़िजी वाले अपनी माताओं को निर्जीव के समान समझ कर उनको मारते थे। और अपनी स्त्रियों को वृक्षों से बांधकर कोड़े लगाते थे कि उन का तमाशा देखें। आस्ट्रेलिया में स्त्रियां मारी और घायल की जाती थीं और जो पति चाहते थे* वह अपनी स्त्रियों को मार कर खा लेते थे। फिज़ी का एक

* Evolution of Marriage. pp. 90, 93, 016.

मनुष्य जिसका नाम लूटी था अपनी स्त्री को पका कर गया।

विवाह के लिये स्त्रियों की इच्छा को जानने की आवश्यकता तो भारतवर्ष में भी नहीं समझी जाती। पुरुष को स्त्री पर समस्त अधिकार है। वह मार पीट सकता है, छोड़ सकता है। एक स्त्री के होते हुये अन्यों से सम्बन्ध जोड़ सकता है, स्त्री को मन माने काम करने से वाधित कर सकता है। उसके सम्बन्धियों को तिरस्कृत कर सकता है। परन्तु स्त्री का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने पति और उसके सम्बन्धियों के अयोग्य और अधर्मी होते हुये भी सेवा सुश्रूषा किया करे।

वैदिक सभ्यता के समय में प्राचीन भारत का यह नियम नहीं था। उस समय वह स्त्रियों को अधिक मान और आदर की दृष्टि से देखता था! मनुस्मृति में लिखा है :—

यत्रैनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

मनु० अ० ३ श्लो० ५६

अर्थात् जहां स्त्रियों का आदर होता है वह देवस्थान और जहां स्त्रियों का अनादर होता है वहां सब काम निष्फल हो जाते हैं।

स्त्रियों के आदर का विशेष नियम इस लिये रक्खा गया कि स्त्रियां स्वभावतः निर्बल होने के कारण वह स्वयं अपना आदर करा नहीं सकतीं अतः समाज के नियम की आवश्यकता पड़ती है जिससे यदि कोई पुरुष उनका आदर न करे तो समाज द्वारा दण्डनीय हो। इसलिये विवाह सम्बन्ध में जो अधिकार स्त्रियों को दिये गये हैं वही पुरुषों को भी। अर्थात् जिस प्रकार विवाह में पुरुष की प्रसन्नता

आवश्यकता है उसी प्रकार स्त्री की इच्छा की भी। जिस प्रकार स्त्री का कर्त्तव्य है कि अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी से संयोग न करे उसी प्रकार पुरुष का भी यही कर्त्तव्य है कि अपनी स्त्री को छोड़ कर अन्य किसी से प्रसङ्ग न करे। "मातृवत् परदारेषु" अर्थात् "पराई स्त्री को माता के समान समझना चाहिये" यह सुनहरा नियम सभ्य समाज का है और उस पर चलना अत्यावश्यक समझा जाता है जिस प्रकार पर पुरुष गमन से स्त्री कलुषित, व्यभिचारिणी तथा दण्डनीया समझी जाती है * उसी प्रकार पर स्त्री-गमन से पुरुष भी कलुषित, व्यभिचारी तथा दण्डनीय माना जाता है। जिस प्रकार स्त्रियों के लिये सदाचारिणी होना आवश्यक है उसी प्रकार पुरुषों के लिये भी सदाचार की ज़रूरत है।

आज कल जब हम हिन्दू-समाज की व्यावहारिक दशा पर दृष्टि डालते हैं तो बड़ा भारी भेद पाते हैं। यद्यपि शास्त्रों में जहां कहीं धर्म के लक्षणों का विधान है वहां स्त्री पुरुष दोनों के लिये है। उदाहरण के लिये मनु जी के कहे हुये दश लक्षण (मनु० अध्याय ६ श्लोक ९२) अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध पुरुषों के लिये उसी प्रकार पालनीय हैं जैसे स्त्री के लिये। महात्मा पतञ्जलि ने योगदर्शन में यम, नियम, आसन,

---

* व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगाल योनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥

मनु० अ० ५, श्लो० १६४।

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्त्तारमतिवर्त्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पति लोकाच्चहीयते॥

मनु० अ० ५, श्लो० १६१।

प्राणायाम के उपदेश करते हुये लिङ्ग भेद नहीं किया। सत्य यदि स्त्री के लिये कर्त्तव्य है तो पुरुष के लिये भी। यदि क्रोध पुरुष के लिये हानिकारक है तो स्त्री के लिये भी। यही इन्द्रियनिग्रह आदि की दशा है। इससे प्रकट होता है कि शास्त्र की दृष्टि में स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य भिन्न नहीं हैं।

यहां एक बात और भी विशेषतः विचारणीय है अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों की आत्मा तो निराकार और लिङ्ग रहित ही है। लिङ्ग भेद केवल शरीर की अपेक्षा से है और इन सब का उद्देश एक ही है अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति। शास्त्र यही कहता है और इसी के साधनों का प्रतिपादन करता है। अब यदि वास्तविक रीति से विचार किया जाय तो मोक्ष के साधन एक ही हैं। और यह भी नियम नहीं है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा या स्त्री पुरुष की अपेक्षा मोक्ष पद से अधिक निकट है मोक्ष पद दोनों से बराबर ही की दूरी पर है। महाकवि भवभूति का कथन है कि—

गुणाः पूज्यस्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः॥

(उत्तर रामचरित अङ्क ४)

गुणियों के गुण पूज्य होते हैं उनका लिङ्ग या आयु नहीं। कोई शास्त्र या युक्ति यह नहीं बताती कि स्त्री को मोक्ष पाने के लिए पहले मनुष्य की योनि में जाना पड़ता है तत्पश्चात् मोक्ष होती है। अब मोक्ष प्राप्ति के साधन अर्थात् यम नियम से लेकर समाधि तक कोई भी ऐसा नहीं है जो पुरुष के लिये विधि और स्त्री के लिये निषेध समझा जा सके।

अब देखना चाहिये कि जब अन्य लौकिक तथा पारलौकिक अधिकार और कर्त्तव्य स्त्रियों और पुरुषों के एक से हैं। तो

विवाह के सम्बन्ध में क्यों भेद होगा। कुछ लोग कहेंगे कि विवाह में स्त्री और पुरुष दोनों का संयोग होता है और दो भिन्न २ लिङ्गों के व्यक्ति एक विशेष कार्य्य के अर्थ नियोजित होते हैं। दो भिन्न प्रकार के व्यक्तियों का मिलना ही बताता है कि अधिकार और कर्त्तव्य उन के भिन्न २ होंगे। परन्तु यह बात नहीं है। हम को नीचे लिखे अधिकारों पर विचार करना है :—

(१) विवाह के लिये दोनों की इच्छा की आवश्यकता है अथवा एक की ?

(२) क्या एक का दूसरे पर आधिपत्य है ? यदि है तो किस का ? यदि नहीं है तो क्यों ?

(३) क्या एक स्त्री एक समय में कई पुरुषों से विवाह कर सकती है ?

(४) क्या एक पुरुष एक समय में कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है ?

(५) क्या एक पुरुष मृत स्त्री के पीछे अन्यों से विवाह कर सकता है ?

(६) क्या एक स्त्री मृत पति के पीछे अन्यों से विवाह कर सकती है ?

सब से पहिले हम इच्छा के विषय में मीमांसा करते हैं। सब पर विदित है कि विवाह एक प्रकार का विशेष सम्बन्ध है जो स्त्री और पुरुष के बीच में होता है। यह न केवल शारीरिक सम्बन्ध ही है किन्तु मानसिक और आत्मिक भी। परन्तु कोई मानसिक सम्बन्ध पूर्ण नहीं हो सकता जब तक उसका आधार इच्छा पर नहीं। सम्बन्ध बलात्कार भी हो सकता है जैसा बहुधा जंगली जातियों अथवा कामी पुरुषों में हुआ करता है परन्तु इसको विवाह नहीं कह सकते और उसका

प्रभाव गृहस्थ संस्था तथा सन्तानोत्पत्ति दोनों के ऊपर पु
पड़ता है। गृहस्थ संस्था के लिये प्रेम की महती आवश्यक
है। यह प्रेम विना इच्छा के हो ही नहीं सकता। रही सन्तानो
त्पत्ति। उसके विषय में यह बात है कि जब बच्चा गर्भ में हो
है तो उसकी माता के आचार व्यवहार तथा मानसिक भा
का बच्चे के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः बच्चे
मस्तिष्क माता के मस्तिष्क से ही बनता है। इसी लिये
ब्राह्मण में लिखा है:—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदःशतम्॥

अर्थात् माता पिता के अङ्ग अङ्ग से बच्चे का शरीर बन
है। अब यदि माता की इच्छा के विरुद्ध सम्बन्ध हुआ है औ
यदि माता का मन खिन्न है तो बच्चे का मन भी उसी प्रक
का होगा। कई डाक्टरों का कथन है कि यदि माता शोकमय
और बच्चे को दूध पिलावे तो बच्चे का स्वास्थ्य बिगड़ जा
है। जंगली मनुष्यों की सन्तान के जंगली क्रूर, तथा क्रोधयु
होने का एक कारण यह भी है कि जब वह अपनी माता के ग
में होते हैं उस समय उनके पिता उनकी माता पर अनेक अ
त्याचार करते हैं जिनके कारण गर्भस्थ सन्तान का मस्तिष्क
तद्वत् हो जाता है। इस लिये सिद्ध है कि स्त्री पुरुष दोनों
की प्रसन्नता से विवाह होना चाहिये।

अब हम दूसरे प्रश्न को लेते हैं अर्थात् क्या एक का दूसरे
पर आधिपत्य है? यदि है तो किसका? और यदि नहीं है

क्यों ? क्या गृहस्थि में स्त्री और पुरुष का पद समान है ? या असमान ? इस विषय में भिन्न भिन्न जातियों में मत भेद है। असभ्य जातियों में तो स्त्री सदा ही पुरुष की पददलित चेरी समझी जाती है जिसके कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। परन्तु पाश्चात्य जातियों में किसी किसी अंश में इससे विपरीत है। अंग्रेज़ी भाषा में स्त्री को पुरुष का (Better-half) वेटरहाफ़ अर्थात् उत्तमार्द्ध मानते हैं अर्थात् यदि गृहस्थ के दो भाग किये जांय तो स्त्री उत्कृष्टार्द्ध है और निकृष्टार्द्ध (Worse-half)) बचा वह पुरुष है। इस लिये यूरोप वासी स्त्री का अधिक मान करते हैं। परन्तु यूरोप के इस ऊपरी व्यवहार से प्रत्येक अंश में यह नहीं कहा जा सकता कि यूरोप में स्त्री पुरुष से उत्तम ही मानी जाती है। यूरोप के इस व्यवहार का वास्तविक रूप देखने के लिये यूरोप के इतिहास पर दृष्टि डालनी चाहिये। यूरोप में पहिले स्त्रियों का आदर नहीं होता था। बहुत सी जातियां बलात्कार विवाह करती थीं। मध्यकालीन यूरोप के लोग स्त्रियों में जीव नहीं मानते थे। इसके पश्चात् लोग इनको दासी मात्र समझने लगे। अंग्रेज़ी भाषा का लेडी शब्द (Lady) जो आज कल केवल उच्च श्रेणियों की स्त्रियों के लिये ही प्रयुक्त होता है प्रथमतः आटा गूंधने वाली का वाचक था। अर्थात् पुरुष अपनी रोटी बनाने के लिये एक चेरी रख लेता था जिसे लेडी (Lady) कहते थे। और उसका घर पर कुछ अधिकार न था। जब यूरोप में अर्द्ध-सभ्यता का समय आया उस समय भी स्त्रियों की दशा तद्वत् ही रही। पुरुष पढ़ने लगे। परन्तु स्त्री विद्या से वञ्चित ही रहीं। ईसाई धर्म के प्रचार ने भी स्त्री को उच्च अवस्था प्राप्त कराने में कुछ सहायता न की। इसका विशेष कारण यह था कि ईसाई धर्म की आधार शिला ही इस बात पर रक्खी गई है

कि हव्वा (पहली स्त्री) के बहक जाने के कारण आदम (प
पुरुष) का अधःपतन हुआ।* यदि हव्वा सत्य से
डिगती तो आदम सदा स्वर्ग में रहते और उनको सन्
को दुःख न भोगना पड़ता। इस सिद्धान्त का प्रभाव
समस्त यूरोप पर बहुत पाते हैं। न केवल स्त्रियां ही तिरस्
समझी जाती थीं, किन्तु उनके सम्बन्धी भी। मध्य यूरोप
एक सैलिक नियम (Law Selique) था कि कोई पु
अपनी माता के सम्बन्धियों की सम्पत्ति का उत्तराधिका
नहीं हो सकता। अर्थात् पुरुष को अपने पिता के द्वारा तो आ
मिल सकता था परन्तु अपनी माता के द्वारा नहीं। स्त्री
केवल स्वयं ही निरादर को प्राप्त थी परन्तु उसकी सन्त
भी तिरस्कृत कोटि में गिनी जाती थी। हम इङ्गलैण्ड में स
हवीं शताब्दी के अन्त तक इस तिरस्कार की दुर्गंध पाते है
उस देश के महाकवि मिल्टन (Milton) का दस्तूर था
उसने अपनी लड़कियों को लैटिन पढ़ना इस लिए सिखा
था कि वह लैटिन पुस्तकें उसे सुना सके क्योंकि वह अ
था। परन्तु उसने लैटिन भाषा का अर्थ उन को न सिखा
था। उसका कथन था कि स्त्रियां लैटिन जैसी पवित्र भा
के सीखने की अधिकारिणी नहीं हैं।

आजकल जो स्थान स्त्री जाति को यूरोप में मिल रहा

*"Let the woman learn in silence with all subjectio
But I suffer not a woman to teach, nor to usurp th
authority over the man, but to be in silence. F
Adam was first formed, then Eve. And Adam wa
not deceived, but the women being deceived was i
the transgression," *The Holy Bible. I. Timoth
Chapter 2. Verses 11—14.*

उसका अधिकांश में कारण काम चेष्टा है न कि धार्मिक सिद्धान्त। इसका पता भी मध्य कालीन यूरोप के इतिहास से ही भली प्रकार मिलता है। उस समय पुरुषों ने स्त्रियों को अपने मनोविनोद का खिलौना बना लिया। उनको खेलों और कुश्ती आदि का सभापति नियत किया जाने लगा और विजयी पुरुष को अधिकार होता था कि वह अपने प्रेम अथवा श्रद्धा के पात्र स्त्री को सभापति चुने। इसको किन आव ब्यूटी (Queen of Beauty) अर्थात् सौन्दर्य्य की महाराणी कहते थे। स्त्रियां अपने रूप और लावण्य द्वारा पुरुषों को लड़ने के लिये उत्साहित करती थीं। और अपने ऊपर मोहित पुरुषों को दुःस्साध्य कार्य्य करने के लिये प्रेरित किया करती थीं। इस प्रकार होते होते वह बेटर-हाफ़ अर्थात् उत्तमार्द्ध तक बन गईं और उनके पति निकृष्टार्द्ध रह गये। परन्तु अब भी नैतिक अधिकारों के विषय में पुरुषों ने स्त्रियों को अपने से उच्च नहीं माना, नित्य प्रति ऐसे झगड़े हुआ करते हैं जिन से प्रतीत होता है कि यूरोप के लोग स्त्रियों को राजकाज का अधिकारी नहीं समझते।

यह तो रही यूरोप की अवस्था। अब भारत वर्ष की ओर दृष्टि डालिये। मध्यकालीन भारतवर्ष का इतिहास भी यूरोप के असभ्य काल के इतिहास से अच्छा नहीं है। यहां भी लड़कियों को पराये घर का कूड़ा और स्त्रियों को पैर की जूती समझा जाने लगा। और जो अत्याचार कहीं देखने में नहीं आते वह भारतवर्ष में होने लगे। पर्दे का रिवाज हो गया और पुत्रियों को उत्पन्न होते ही मारने लगे यद्यपि प्राचीन भारत की यह दशा न थी।

मध्यकालीन अत्याचारों में भी एक भेद है और यदि

गम्भीर दृष्टि से देखा जाय तो पता चलता है कि जिन भावों से प्रेरित हो कर भारतवासियों ने परदा और कन्याओं के मार डालने की प्रथा चलाई उस में दो भाव उपस्थित थे। प्रथम स्त्री जाति के प्रति प्राचीन कालिक आदर। द्वितीय वर्त्तमान कालिक अपना दौर्बल्य। प्राचीन काल से लोग स्त्रियों का आदर करने के प्रेमी थे परन्तु अब इतना बल नहीं रहा था कि विदेशियों के अत्याचारों से इन की रक्षा कर सकते। अतः उनका धर्म बचाने के लिये उन्होंने यही उचित समझा कि अपने बाहु बल के अभाव में स्त्रियों को मृत्यु देव की ही शरण में रख दें। यह भाव मूल में स्त्रियों के आदर और रक्षा के लिये थे वह कुछ दिनों के पीछे अविद्या अन्धपरम्परा तथा अत्याचारों में परिणित हो गये। परन्तु इस में किञ्चित् भी संदेह नहीं, कि भारतवर्ष में पूर्वकाल में स्त्रियों के अधिकारों में किंचित् भी कमी न थी। पुत्रियों को लोग पुत्रों की भांति पालते, पढ़ाते तथा अन्यान्य अधिकार देते थे। उनके जन्मते समय आनन्द मनाया जाता था उनके संस्कार भी उसी प्रकार किये जाते थे, जब वह विद्योपार्जन के योग्य होतीं थीं तो नियमानुकूल उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता था और ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन की उनके लिये भी उसी प्रकार शिक्षा थी जैसी पुत्रों के लिये थी। अथर्ववेद में लिखा है :—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या ३ युवानं विन्दते पतिम्।

अथर्ववेद का० ११, सू० ५, मं० १८

अर्थात् ब्रह्मचर्य्य व्रत पूर्ण करने उपरान्त कन्या युवा पति को प्राप्त हो। यहां "ब्रह्मचर्य्य" शब्द केवल पुरुष प्रसङ्ग के अभाव का ही नाम नहीं है किन्तु ब्रह्मचर्य्य व्रत में इन्द्रिय निग्रह, वेदाध्ययन तथा ब्रह्म प्राप्ति का प्रयत्न, सभी बातें सम्मिलित

हैं। इन्द्रिय निग्रह ब्रह्मचर्य्य का केवल एक अङ्ग है। सर्वस्व नहीं। यदि ऐसा हो तो केवल जितेन्द्रिय को ही ब्रह्मचारी कहने लगें॥

ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् विवाह के समय भी स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी। स्वयम्वर की प्राचीन कालिक प्रथा इस बात का एक बड़ा प्रमाण है। इसके अतिरिक्त विवाह की पद्धतियां जो इस समय भी विवाह संस्कार के समय हिन्दू जाति में व्यवहार में आती हैं उस समय के भावों को भली प्रकार प्रकट करती हैं। उस समय विवाह लज्जा का स्थल न था क्योंकि उसका उद्देश मानव जाति की वृद्धि मात्र था। जिस कार्य्य का ऐसा उच्च उद्देश हो, जिसके अन्तर्गत समस्त अन्य उद्देश आ जाते हैं तो वह लज्जा का स्थान कैसे हो सकता है? इसी कारण से विवाह एक पवित्र संस्कार गिना जाता था और स्त्री निर्भय होकर उन मंत्रों का पाठ समस्त सभा के सन्मुख करती थी जिनमें सन्तानोत्पत्ति तथा गृहस्थाश्रम के अन्यान्य कार्य्यों का विधान है॥

प्राचीन भारत में एक विचित्र बात यह थी कि स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते थे। अर्थात् गृहस्थाश्रम रूपी रथ के दो बराबर पहियों का नाम स्त्री तथा पुरुष था जिनमें से कोई पहिया छोटा या बड़ा नहीं। यहां न तो स्त्री को बैटरहाफ़ कहकर पुरुष से बड़ा बताया जाता था और न उसको पैर की जूती समझकर अनादर किया जाता था। किन्तु उसे तुल्य पद, तुल्य अधिकार और तुल्य सन्मान प्राप्त था। जिसमें दासत्व की गन्धमात्र भी न थी। स्त्री का नाम पत्नी था अर्थात् वह यज्ञ में अपने पति के साथ सन्मान के साथ बैठती थीं। और बिना उसके सम्मेलन के कोई यज्ञ पूर्ण नहीं समझा जाता था। अथर्व वेद में लिखा है:—

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्निर्वहन्तेह युक्ताः ।

अथर्व वेद का० ५, सूक्त २६, मन्त्र ५।

प्राचीन भारतवासी लोग यह भी नहीं मानते थे कि स्त्री का जन्म पुरुष के आश्रित है और हव्वा आदम की पसली से उत्पन्न हुई थी*। किन्तु उनका विश्वास था कि मनुष्य और स्त्री की स्थिति एक सी है। दोनों स्वतंत्रतः उत्पन्न हुये हैं और भविष्य में उत्पन्न होने वाली सन्तान के लिये भी उन दोनों की एक ही प्रकार से आवश्यकता है॥

---

*"आदम की पसली से हव्वा का उत्पन्न होना" यह ईसाइयों का विश्वास वेद मंत्रों के किसी उलटे अर्थ का द्योतक है। "Introduction to the science of Religion" के ४६ वें पृष्ठ पर प्रोफेसर मैक्समूलर (Professor Maxmuller) लिखते हैं "'Bone' seemed a telling expression for what we should call the inner most essence ....In the ancient hymns of the Veda, too, the poet asks, 'Who has seen the first born, when he who had no *bones*, i.e. no form, bore him that has *bones*, i.e. when that which was formless assumed form, or, it may be, when that which had no essence, received an essence." अर्थात "हड्डी या पसली से तात्पर्य्य यहां आन्तरिक सत्ता से है। .... वेद के प्राचीन सूक्तों में भी ऋषि कहता है'प्रथम पैदा हुये को किसने देखा जब उसने जिसके हड्डी अर्थात आकार न था उसको पैदा किया जिसके हड्डी थी जब उसने जो आकार रहित था साकार धारण किया या उसने जिसमें सत्ता न थी सत्ता पाई।' यहां मैक्समूलर ने वेद मन्त्र का प्रमाण नहीं दिया प्रतीत होता है कि 'अस्थि' शब्द जिसका अर्थ स्थिति या सत्ता होता है बिगड़ कर बाइबिल में हड्डी या पसली हो गया। यदि यह अर्थ ठीक है तो इसका तात्पर्य्य यह है कि पुरुष और स्त्री की सत्ता समान है या एक है स्त्री पुरुष की ही सत्ता से बनी है न कि उसकी पसली से॥

मध्य कालीन भारत में स्त्रियों की गणना भोग्य पदार्थों में होने लगी और पुरुष समझने लगे कि हम उनके भोक्ता हैं। आर्य्य भाषा के कवीन्द्र गोस्वामी तुलसी दास जी रामायण में लिखते हैं :—

स्रक् चन्दन बनितादिक भोगा।

अर्थात् जहां फल फूल माला चन्दन आदि भोग्य पदार्थ हैं वहां स्त्री भी इसी प्रकार का एक पदार्थ है। परन्तु यह अवस्था समाज की असभ्यता की सूचक है और अनेक अंशों में उन घटनाओं के समान है जो जङ्गली जातियों में पाई जाती हैं और जिनका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। यह अवस्था प्राचीनकाल में न थी। स्त्री को पुरुष की उसी प्रकार आवश्यकता है जिस प्रकार पुरुष को स्त्री की। यदि भोग हैं तो दोनों। यदि भोक्ता हैं तो दोनों। कोई कारण नहीं कि पुरुष तो भोक्ता है और स्त्री उसका भोग॥

अब सिद्ध हो गया कि स्त्री और पुरुष में दोनों एक दूसरे के समान हैं। कोइ किसी को आधिपत्य में नहीं और दोनों समाज के नियमों के आधिपत्य में हैं।

रहे विवाह सम्बन्धी शेष चार प्रश्न। उनकी मीमांसा अगले अध्याय में की जायगी।

तीसरा अध्याय।

पुरुषों का बहुविवाह तथा पुनर्विवाह।
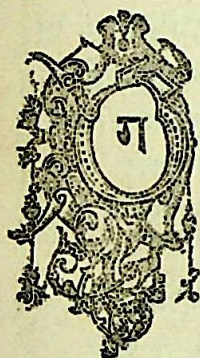
त अध्याय में हम ने दो प्रश्नों अर्थात् (१) वि
वाहके लिये स्त्री और पुरुष दोनों की
देखने की आवश्यकता है अथवा एक
और (२) स्त्री और पुरुष दोनों समान हैं
एक दूसरेका दास अथवा दासी? के
दिये हैं। इस अध्याय में तीसरे और
प्रश्नों पर विचार होगा अर्थात् एक
जीवित हुये क्या पुरुष को अनेक वि
करने का अधिकार है या नहीं। या दूसरे शब्दों में-
एक पुरुष एक ही समय में कई स्त्रियों से सम्बन्ध कर स
है और क्या एक स्त्री के मरने पर वह पुनर्विवाह
सकता है।

यह बात दो प्रकार से सिद्ध हो सकती है। एक
द्वारा, दूसरे शास्त्र द्वारा। देखा जाता है कि भिन्न
जातियों में इस विषय में भिन्न भिन्न नियम हैं। यू
की ईसाई जातियों में पुरुष को एक समय एक ही
से विवाह करने का अधिकार है। परन्तु मुसलमान
उस मत के अनुसार उच्च से उच्च पुरुष को चार तक वि

करने की आज्ञा है। इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से विना विवाह के सम्बंध करना भी पाप नहीं समझा जाता। ब्रह्मा के देश में भी प्रायः एक पुरुष कई स्त्रियों का पति होता है। पहाड़ों में तो एक पुरुष के लिये कई स्त्रियां करना अत्यावश्यक समझा जाता है। क्योंकि पुरुष प्रायः स्त्रियों ही की कमाई खाते हैं। भारतवर्ष में हिन्दू समाज में यद्यपि बहुविवाह की प्रथा नहीं है तथापि यदि कोई पुरुष एक स्त्री के होते हुये अन्य विवाह कर लेता है तो इस बात को न तो कोई अधर्म ही समझते हैं और न ऐसे पुरुष का तिरस्कार ही करते हैं। प्रायः राजों महाराजों में तो अनेक विवाह करना "समरथ को नहीं दोष गुसाईं" की लोकोक्ति के अनुसार एक साधारण सी बात है। बङ्गाल देश के कुलीन ब्राह्मणों में कई विवाह करना एक अभिमान की बात समझी जाती है। उनमें एक पुरुष अपने जीवन में कई विवाह करता है और उसकी स्त्रियाँ प्रायः अपने पिता के ही घर रहती हैं। बहुत सी स्त्रियां अपने पति का, विवाह के पश्चात्, मुख तक नहीं देखतीं क्योंकि वह पति अन्यों से विवाह करके रुपया प्राप्त करता फिरता है।

बहुत से लोगों का विचार है कि एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है। क्योंकि ऐसा करने में कोई शारीरिक बाधा नहीं है। वह प्रतिदिन कई स्त्रियों को गर्भवती बना सकता है परन्तु एक स्त्री एक बार गर्भिणी हो कर फिर अन्य पुरुषों से वीर्य लाभ नहीं कर सकती। परन्तु इस प्रकार तर्क करनेवाले पुरुषों ने स्त्री पुरुष को केवल गर्भधारण करने की मशीन समझा हुआ है। वह गृहस्थ के उपयुक्त व्यवहार की कुछ भी परवाह नहीं करते। यदि ऐसा हो तो पशु समाज और मनुष्य समाज में भेद ही क्या रहे। पशु

सन्तानोत्पत्ति की ही मशीन होते हैं उनमें परस्पर गृह
सम्बन्ध नहीं होता। एक नर का अपनी सजातीय मा
केवल प्रसङ्ग मात्र का ही सम्बंध रहता है। मादा ग
होकर गर्भ धारण करने की अवस्था तक किसी न
सम्बंध नहीं रखती परन्तु नर अन्य मादाओं के साथ
शक्ति तथा यथा अवसर संयोग किया करता है। यदि
चरितार्थ करना है तो एक पुरुष के ३६० तक स्त्रियां
चाहिये जिनको वह प्रति दिन वीर्यदान देता रहे। व
मनुष्य इस लिये नहीं बनाया गया कि नित्य वीर्यदा
किया करे। और न वह ऐसा कर ही सकता है।

वीर्य्य के दो उपयोग हैं एक तो सन्तानोत्पत्ति
दूसरा मस्तिष्क वृद्धि। जिस समय वीर्य्य सन्तानो
में व्यय होता है उस समय उतना ही भाग मस्तिष्
क्षीण हो जाता है। अतः ऋषि मुनियों ने सीमा बांध
कि इस से अधिक पुरुष को स्त्री प्रसङ्ग तथा सन्तानो
नहीं करनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि नियत
उल्लंघन करने वाले पुरुष मस्तिष्क क्षीण होने और बुद्धि
होने के अतिरिक्त सन्तानोत्पत्ति भी नहीं कर सकते। स
नोत्पत्ति तथा स्त्री प्रसङ्ग के लिये भी इन्द्रिय-निग्रह की
वश्यकता है। जो पुरुष नितान्त विषयी हैं वह विषय
में भी असमर्थ होते हैं क्योंकि विषय भोग के लिये भी
रीरिक बल की आवश्यकता है।

प्रथम अध्याय में विवाह के प्रयोजन की मीमांसा
हुये बताया भी जा चुका है कि काम चेष्टा की सीमा
श्चित करना विवाह के मुख्य उद्देशों में से है अर्थात् म
को मछलियों की तरह लाखों और सहस्रों सन्तानें उ
नहीं करनी हैं और न सृष्टि क्रम ही उसे ऐसा करने की

देता है। जिन देशों में एक पुरुष कई कई विवाह करते हैं उन देशों की जन संख्या इसी हिसाब से बढ़ नहीं जाती। इसके अतिरिक्त पुरुषों और स्त्रियों की किसी देश अथवा किसी जाति की संख्या के देखने से पता चलता है कि स्त्रियां इतनी अधिक नहीं होतीं कि एक मनुष्य कई स्त्रियां रख सके॥

हम ऊपर कह चुके हैं कि गृहस्थाश्रम का आधार प्रेम है। जिस प्रकार कागज़ के सफ़ों को जोड़ने के लिये लेई या गोंद सदृश स्निग्ध पदार्थ की आवश्यकता होती है उसी प्रकार बिना परस्पर स्नेह के स्त्री पुरुष में संयोग भी नहीं हो सकता। यह दाम्पत्य प्रेम केवल एक पुरुष और एक स्त्री में ही हो सकता है। यदि एक पुरुष के कई स्त्रियां होती हैं तो वह सब से तुल्य प्रेम नहीं कर सकता। अवश्य पक्षपात होगा और पक्षपात से अन्याय, अन्याय से कलह, कलह से गृहनाश यह साधारण दर्जे हैं। न केवल पति के लिये ही असम्भव है कि वह अपनी अनेक स्त्रियों से समान प्रेम करे और न एक पति की कई स्त्रियों के लिये ही सम्भव है कि वह अपने पति से एक सा प्रेम कर सकें। जिस समय स्त्री को पता लग जाता है कि उस का पति अनन्यप्रेमी नहीं है उसी समय उसके हृदय में एक प्रकार की घृणा तथा क्रोध उत्पन्न होने लगता है। इसी लिये धर्म्म शास्त्रों की आज्ञा है कि एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करे। अथर्व वेद में कहा है :—

अभित्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन॥

अथर्व वेद—का० ७, सूक्त ३७, मन्त्र १।

बहुत से लोगों की यह कल्पना है कि हिन्दू (आर्य्य)

धार्मिक ग्रन्थों में पुरुषों के लिये बहुत से विवाहों की
है। और प्राचीनकाल में एक पुरुष की कई स्त्रियां होतीं
परन्तु वेद भगवान इस बात का सर्वथा निषेध क
जैसा कि हम ने ऊपर के मन्त्र से दर्शाया है। इस मन्
स्त्री अपने पति से विवाह के समय कहती है कि मैं तुम
वस्त्र द्वारा (गंठ बन्धन करके) धारण करती हूं कि
केवल मेरा ही पति हो अन्य किसी का नहीं। इससे
तया सिद्ध है कि जो पुरुष प्राचीन, मध्य अथवा वर्त्त
काल में एक से अधिक स्त्रियां रखते हैं। वे इस अंश में
मार्ग के अनुगामी नहीं हैं। प्राचीनकाल के बहुविवा
जितने दृष्टान्त मिलते हैं उन में से कोई भी कलह, स
डाह तथा बुरे परिणामों से बचा हुआ नहीं है। व
श्रीराम चन्द्र जी की जो विशेष प्रशंसा की जाती है
अन्य कई कारणोंमें से एक कारण यह भी है कि उन्होंने
महारानी को छोड़कर अन्य किसी से अपना प्रेम नहीं जो
जिन देश या जातियों में बहुविवाह की प्रथा है उन के
न्तरिक जीवन पर दृष्टि डालने से बोध होता है कि वह
दुःख और अशान्ति से अपना समय व्यतीत कर रहे हैं
उन की स्त्रियों में लेशमात्र भी शान्ति नहीं है। वस्
शान्ति और बहुविवाह में परस्पर विरोध है। शान्ति
हो नहीं सकती जहां सौतेला डाह मौजूद है। बहुवि
ब्रह्मचर्य्य का भी नाशक है। गौतम जी महाराज ने
न्याय दर्शन में बताया है कि

अनेकान्तकः व्यभिचारः।

न्याय दर्शन अ० १ आ० २ सूत्र ५।

अर्थात् अनेक स्थान में गमन करने का नाम ही व्यभिचार है।

जिस पुरुष के एक से अधिक स्त्रियां होती हैं उसकी सन्तान भी प्रायः धार्मिक सुशील और परस्पर प्रेम रखने वाली नहीं होती। उस की भिन्न भिन्न विमाताओं में लड़ाई झगड़े नित्य प्रति ही हुआ करते हैं और उसका प्रभाव सन्तान पर न केवल गर्भावस्था में ही पड़ता है किन्तु बाल्यावस्था में भी कुत्सित गुण, दुष्ट कर्म और घृणित स्वभाव सन्तान में घर करने लगते हैं। जिन बच्चों ने लड़ाई झगड़ों को अपनी घुट्टी के साथ में पिया है, जिन बालकों को सौतेला वैमनस्य अपनी माताओं द्वारा सम्पत्ति और दाय भाग में मिला है उन से यह आशा रखना कि वह युवावस्था को प्राप्त होकर जगत का सुधार या देश का उपकार करेंगे, नीम के वृक्ष से आम की आशा रखने के तुल्य है।

अब रहा पुरुषों का पुनर्विवाह। वर्त्तमानकाल की समस्त जातियां यही मानती हैं कि यदि एक पुरुष की पहली स्त्री मर जाय तो उसका दूसरा विवाह हो जाना चाहिये। यदि दूसरी मरे तो तीसरी, तीसरी मरे तो चौथी इत्यादि। यह बात केवल सिद्धान्त रूप में ही नहीं मानी जाती किन्तु व्यवहार भी इसी का है। पुरुषों का पुनर्विवाह होना न केवल आपद्धर्म ही माना जाता है परन्तु यह एक साधारण सी बात हो गई है जिसका अपवाद विरले ही करते हैं। हिन्दू जाति में हम बहुधा देखते हैं कि एक स्त्री का प्राणान्त हो रहा है और पति के पास दूसरी लड़की से विवाह पक्का करने के लिये प्रेरणा हो रही है। पहली स्त्री की चिता भी ठण्डी नहीं होने पाती और दूसरे विवाह की तैयारियां होने लगती हैं। वर्षी से पहले दूसरी वधू का आ जाना तो एक साधारण नियम है।

पुनर्विवाह का प्रत्येक दशा में हितकर होना तो हम प्रतीत नहीं होता और विशेष कर उस समय जब पहली से सन्तान भी हो, क्योंकि प्रायः देखा गया है कि वि के आते ही तो पिता भी विपिता हो जाता है और पहली स्त्री से उत्पन्न हुये बच्चों का यथोचित प नहीं कर सकता। वस्तुतः देखा जाय तो पुत्रों के होते पितृऋण से उऋण होने के लिये पुनर्विवाह की आवश्य ही नहीं रहती। परन्तु यदि सन्तान न हो और आयु युवा हो तो आज कल की अवस्था को दृष्टि में रखते हुये स्त्री के मर जाने पर दूसरी से विवाह करने में दोष नहीं।

यहां एक प्रश्न मीमांसनीय है वह यह कि रंडुओं विवाह किस प्रकार की स्त्री से किया जाय! शास्त्रों डाक्टरों दोनों ने विवाह के लिये स्त्री पुरुषों की अवस्था स्थित कर दी है। यदि इस अवस्था का उल्लंघन होता किसी न किसी प्रकार व्यभिचार की वृद्धि और सदाचा क्षति होती है। व्यभिचार खुल्लमखुल्ला न हुआ तो गुप्त से हुआ। एक रूप में हुआ अथवा अनेक रूपों में, पुरु ओर से हुआ या स्त्री की ओर से, होगा अवश्य, रुक सकता। कल्पना कीजिये कि एक पुरुष ३५ वर्ष का है उसकी २५ वर्ष की स्त्री का देहान्त हो गया। उसने १ १६ वर्ष की नवयस्का से विवाह किया (इससे अ अर्थात् २५ या २६ वर्ष की कुमारियां मिलना तो अस ही है)। तो इससे पहली हानि तो यह होगी कि स्त्री पुरुष दोनों की शारीरिक दशा स्वस्थ न रहेगा और अ प्रकार के रोग हो जाने की भी सम्भावना है। दूसरे भी बुरी बात यह होगी कि वह पुरुष अपनी युवती स्त्री कभी सन्तुष्ट न कर सकेगा। यदि कहा जाय कि उसे

या २७ वर्ष की कुमारिका भी मिल सकती हैं जिनके साथ इसको विवाह कर लेना चाहिये। तो भी ठीक नहीं क्योंकि २६ या २७ वर्ष की बाल ब्रह्मचारिणी युवती पूर्ण कला-सम्पन्न पूर्ण वयस्का स्त्री का क्षत-वीर्य्य, क्षत-पराक्रम तथा क्षत-आयु पुरुष से क्या सम्बन्ध। जो बुड्ढे पुरुष आज कल भारतवर्ष में आठ आठ दश दश वर्ष की कन्या से विवाह कर लेते हैं और दादियां पोतियों के साथ आकर खेलती हैं। उसमें कन्याओं की इच्छा की परवाह नहीं की जाती किन्तु इसका अधिकतर कारण माता पिता की मूर्खता और लोभ ही होता है। वही पुरुष अपनी लड़की का विवाह वृद्धपुरुष से करने के लिये तत्पर होते हैं जिनको अपने दामाद से पुष्कल धन मिलने की आशा होती है। प्रायः देखा गया है कि कन्या यदि १५ या १६ वर्ष की समझदार होती है तो वह लज्जा को छोड़कर मा बाप का प्रतिरोध करने तक को तैयार हो जाती है क्योंकि वह जानती है कि उसका और बुड्ढे का बिल्ली ऊंट का सा सम्बन्ध है और उसे समस्त आयु भर कष्ट भोगना पड़ेगा॥

यूरोप में प्रायः युवती कन्यायें स्वयं ही बुड्ढ़ों से विवाह करने के लिये राजी हो जाती हैं परन्तु इसका मूलाधार भी दुष्टभाव ही होते हैं। वह केवल बुड्ढे के धन पर मोहित हो जाती हैं न कि स्वयं उस पर। वे पहिले से समझ लेती हैं कि पति के मरने पर वह समस्त धनकी स्वामिनी हो जांयगी और अन्य पुरुष से पुनर्विवाह कर सकेंगी।

भारतवर्ष में पुरुष साठ साठ वर्ष की आयु तक विवाह करते जाते हैं और उनको यदि बहुत बड़ी कन्या मिली तो २० वर्ष की। २० वर्ष तक भी किसी कन्या का हमारे देश में कुमारी रहना दुस्तर ही है। क्योंकि यहां लड़की के पांच

या छः वर्ष पूरा करने पर ही मा बाप को उसके पीले करने की चिन्ता हो जाती है और १२ या १३ वर्ष में ता लड़की का विवाह हो जाता है। ऐसी अवस्था में वृद्ध पति सृष्टिक्रमानुसार दो चार वर्ष में ही स्वर्गारोहण में तत्पर जाते हैं और स्त्री बिचारी ठीक तरुणावस्था के वैधव्य अपार दुःखसागर में डूबती रहती है। उस समय उस अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है। धर्म अधर्म, उचित चित सब बातों को भूल जाती है और केवल यही रहती है कि किस प्रकार शरीर और जीव को बिना मानित हुये संयुक्त रक्खा जाय। यह भी प्रत्येक संभव नहीं होता क्योंकि विधवा का सम्मानित रहना परस्पर विरुद्ध है। विधवा होना ही अपमान है फिर दुःख तो अलग ही रहे। बहुधा ऐसा होता है कि स्त्रियां अपने वृद्ध पति के देहान्त होते ही निर्लज्ज अपने माता पिता तथा पति के कुल को दूषित कर देती किसी किसी अंश में जब कि पति अति वृद्धावस्था में वाह करता है वह अपनी युवती पत्नी को अपने में ही सदाचार की सीमा उल्लंघन करने का साहस देता है। इस प्रकार के विवाह जाति के लिये एक कलंक टीका हैं और आवश्यकता है कि जाति की ओर से नियम बनाये जांय जिन से वृद्धावस्था में विवाह करने तथा वह लोग जो अपनी पुत्रियों को वृद्धों से विवाह दें दण्डनीय हुआ करें।

अब यदि यह बात सिद्ध हो गई कि रंडुओं का वि अवस्थाओं में पुनर्विवाह तो हितकर है परन्तु कुमारिका के साथ विवाह करना उचित नहीं। तो फिर यह प्रश्न भावतः ही उत्पन्न हो जाता है कि क्या इनका विवाह वि

वाओं के साथ होना चाहिये। यदि यह ठीक है तो क्या स्त्रियों का पुनर्विवाह धर्मयुक्त है। इस की मीमांसा अगले अध्याय में की जायगी।
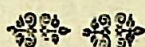
चौथा अध्याय।

स्त्रियों का बहुविवाह तथा पुनर्विवाह।
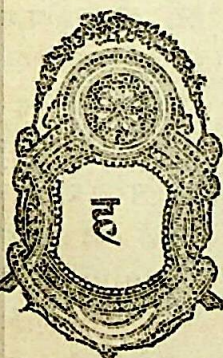
हम तीसरे अध्याय में लिख चुके हैं कि पुरुषों के बहुविवाह और पुनर्विवाह दोनों ही होते हैं। उन में कुछ तो उचित हैं कुछ अनुचित परन्तु समाज की ओर से उनके अनुचित कार्य्य पर भी शंका, आक्षेप तथा प्रतिरोध का प्रकाश नहीं होता। अब प्रश्न यह है कि स्त्रियों के लिये इस विषय में क्या नियम होना चाहिये॥

यद्यपि सभ्य देशों में एक स्त्री एक ही समय में कई पुरुषों की पत्नी नहीं हो सकती परन्तु ऐसी जातियों तथा देशों का नितान्त अभाव नहीं है जहां स्त्रियों के बहुविवाह की प्रथा है। यह दो प्रकार से होता है। कहीं कहीं तो स्त्री अपनी

माता के ही घर रहती है और उसके पति उसी के
आया जाया करते हैं। ऐसी दशा में यह भी आवश्यक
कि सन्तान पति की हो। किन्तु उसी स्त्री की सन्तान
जाती है। दूसरा प्रकार यह है कि स्त्री मोल ली हु
पकड़ी हुई आती है और कई पतियों के घर रहती है।
पति या तो भाई भाई होते हैं या निकटस्थ सम्बन्धी।

दोनों प्रकार के बहुविवाह में विचारी स्त्री पर बड़ा
चार होता है। विक्रय की दशा में तो माता पिता
पुत्री की कमाई खाते हैं और उस पर बड़ा अ
होता है। दूसरी दशा में एक स्त्री कई पतियों
में रहती है। जो अपनी बारी से विचारी स्त्री को बड़ा
देते हैं और उसको यह भी अधिकार नहीं होता कि
छोड़ दे।

बङ्गाल में कई जातियां हैं जिनमें एक स्त्री के कई
होते हैं। नीलगिरि के टोडा लोगों का नियम है कि ज
विवाही जाती है तो पति के सब भाइयों की स्त्री होत
लङ्का में भी यही रिवाज था और अभी तक बिलकु
नहीं हुआ। तिब्बत देश में भी एक स्त्री अपने पति के
भाइयों की स्त्री होकर रहती है। मालाबार देश की
जाति में भी यही प्रथा प्रचलित है। (Evolutio
Marriage pp. 77—80).

हम तीसरे अध्याय में पुरुषों के बहुविवाह के विरु
युक्तियां तथा प्रमाण दे चुके हैं और वह सब कारण
बहुविवाह से भी उतनी ही प्रबलता के साथ सम्बन्ध
हैं। स्त्रियों का बहुविवाह उन सब हेतुओं से अनुपयुक्त
धर्मयुक्त तथा सामाजिक उन्नति के लिये हानिप्रद है।
स्त्रियों की शारीरिक निर्बलता इस हानि को और भी

बना देती है। अतः हम स्त्रियों के बहुविवाह को यहीं छोड़ते हैं।

परन्तु जिस प्रकार पुरुषों का पुनर्विवाह अर्थात् एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी से विवाह करना अनेक दशाओं में अति आवश्यक है। इसी प्रकार स्त्रियों का पुनर्विवाह अर्थात् एक पति के मर जाने पर दूसरे पति से विवाह करना उन्हीं हेतुओं से कई दशाओं में न्याययुक्त, शास्त्रानुसार तथा आवश्यक ठहरता है।

हम ने दूसरे अध्याय में यह सिद्ध करने का यत्न किया था कि सामाजिक संस्था में पुरुष और स्त्री के कर्त्तव्य और अधिकार समान हैं। जब इनके अधिकार तुल्य हैं तो जो अधिकार पुरुष को दिये गये हैं उनसे स्त्री को वञ्चित रखना सर्वथा अन्याय है। स्त्रियों के पुनर्विवाह के विषय में छः मत हैं :—

(१) यदि किसी कन्या की मंगनी किसी वर के साथ हो चुकी तो चाहे संस्कार न भी हुआ हो तो भी वह उस पति की स्त्री हो चुकी। यदि पति मर जाय तो स्त्री को स्मृतिरूपी मूर्त्ति की सेवा करने में तत्पर रहना चाहिये और दूसरे पति का नाम तक न लेना चाहिये। मनुष्य की बात एक होती है जो वचन दे दिया उससे हटना कैसा?

(२) यदि संस्कार होने से पूर्व ही पति मर जाय तो लड़की को दूसरा विवाह कर लेना चाहिये। वस्तुतः यह दूसरा विवाह नहीं किन्तु पहला ही विवाह है क्योंकि जब तक फेरे नहीं फिरे, अग्नि को साक्षी नहीं दी, उस समय तक केवल कथनमात्र से विवाह पूरा नहीं कहा जा सकता। परन्तु यदि विवाह संस्कार होकर पति मरता है तो स्त्री

चाहे अक्षत योनि ही क्यों न हो उस का विवाह कदापि नहीं करना चाहिये।

यह मत हमारे अधिकांश हिन्दू भाइयों का है जो अपने आप को सनातनधर्मी कहकर पुकारते हैं॥

(३) जब तक स्त्री अक्षतयोनि रहे चाहे उसकी मंगनी हो गई हो अथवा विवाह संस्कार भी, उस समय उसका पुनर्विवाह कर देना चाहिये। यह विचार आज कल आर्य्य समाजस्थों का है अथवा थोड़े से उन लोगों का जो अन्य विषयों में तो आर्य्य समाज के सिद्धान्तों से सहानुभूति नहीं रखते किन्तु बालविधवों के दुःख से अवश्य पीड़ित होते हैं।

(४) शूद्रों में तो क्षतयोनि विधवाओं का भी विवाह होना चाहिये जैसा कि आज कल भी हिन्दू समाज में प्रचलित है। परन्तु द्विजों में केवल अक्षत-योनि विधवा का पुनर्विवाह होना उचित है। यदि क्षत-योनि विधवा हो और उसे सन्तान की आवश्यकता तथा अन्य आपत्तियां हों तो वह आपद्धर्म के लिये नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कर सकती है।

यह मत स्वामी दयानन्द जी (आर्य्यसमाज के संस्थापक) का है। इसे सिद्धान्त रूप में तो सभी आर्य्य समाजिक मानते हैं परन्तु वह वर्त्तमान काल की मर्य्यादा से प्रतिकूल होने के कारण इसको व्यवहार रूप में परिणत करने के लिये उपस्थित नहीं हैं॥

स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त में पहले तीन सिद्धान्तों से एक बात विलक्षण है अर्थात् वह जो अधिकार स्त्री को देते हैं वही पुरुष को। उनके मत में केवल अक्षत वीर्य्य पुरुष ही मृतभार्य्य होने की अवस्था में पुनर्विवाह कर सकता है।

क्षतयोन्यां पुत्र सन्तानादि के लिये केवल आपद्धर्म के रूप में नियोग ही कर सकता है।

(५) विधवा चाहे क्षतयोनि हो अथवा अक्षत योनि। यदि उसे इच्छा हो तो उसका पुनर्विवाह अवश्य कर देना चाहिये जिस प्रकार पुरुषों का हो जाया करता है।

यह मत उस उदार दल का है जो भारतवर्ष के सामाजिक सुधार को बड़े वेग से करना चाहते हैं।

(६) छठे मत के लोगों का मूल सिद्धान्त तो वही है जो स्वामी दयानन्द का है अर्थात् चौथा। परन्तु यह देखकर कि वर्त्तमान सामाजिक अवस्था पर विचार करने से नियोग की प्रथा इस समय प्रचलित करना असम्भव मालूम होता है, उन क्षत-योनि कन्याओं का भी विवाह कर दिया जाय जो अभी नववयस्का हो हैं और जिनके कोई सन्तान नहीं हुई।

यह मत इस पुस्तक के लेखक का भी है। इसमें सन्देह नहीं कि क्षत-योनि विधवाओं का पुनर्विवाह करना शास्त्रोक्त सीमा से किञ्चित् बाहर जाना है परन्तु जब समाज पुरुषों के बहुविवाह, स्त्रियों के बाल विवाह, तथा उनके इच्छा के प्रतिकूल विवाहों को सहन करता है और उनका प्रतिरोध नहीं करता तो उसे अपने इन अत्याचारों के प्रायश्चित्त के रूप में बाल्यावस्था की क्षत-योनि विधवाओं का पुनर्विवाह भी सहन करना चाहिये। जो पुरुष कुपथ्य को प्रिय समझता है उसे औषध भी प्रिय समझनी ही पड़ेगी चाहे वह उसको कितना ही अप्रिय, अनावश्यक और कड़वी क्यों न समझता हो।

यदि हम साधारण विधवाओं का प्रश्न छोड़ दें और केवल अक्षत योनि विधवाओं के ही विषय में विचार करें तो बलपूर्वक कहा जा सकता है कि शास्त्र तथा युक्ति किसी

पाँचवाँ अध्याय ।

वेदों
से
विधवा विवाह की सिद्धि ।

मनुस्मृति में धर्म्म का लक्षण बतलाते हुये मनुजी महाराज कहते हैं :—

वेदः स्मृतिःसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

मनु० अ० २ श्लोक १२ ।

अर्थात् धर्म का लक्षण जानने के लिये सब से पूर्ण वेद को देखना चाहिये । वेदों की महिमा संसार में सब से ऊपर है। स्मृति, शास्त्र आदि केवल इसी लिये माननीय हैं कि इनका आश्रय वेद पर है। जो बात वेद विरुद्ध है वह कदापि माननीय नहीं । अतः विधवा विषय में भी हम सब से पूर्व वेदों के ही प्रमाण देते हैं :—

कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना
कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं
मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ४०, मंत्र

मन्त्रार्थ :—(कुहस्विद) कहां (दोषा) रात्रि में, कहां (वस्तोः) दिन में (अश्विना अश्विनौ) हे स्त्री पुरुषो, कहां (अभि पित्वं) जीविका को (करतः) करते हो। कहां (उषतुः) रहते हो (को) कौन (वां) तुम दोनों (शयुत्रा) सोने की सामग्री से युक्त करता है, (विधवा) विधवा स्त्री (देवरं) दूसरे पति को और (योषा) स्त्री (मर्यं) को (इव) जैसे ।

इस मंत्र में स्पष्ट दिया हुआ है कि विधवा का दूसरा होना चाहिये अर्थात विधवा के लिये अन्य पति की विधि यह अर्थ केवल हमारा किया ही नहीं है श्री० सायण भी इस से भिन्न अर्थ नहीं करते । देखो :—

सायण भाष्य—"हे (अश्विना) अश्विनौ । (कुहस्वित्) क्वस्वित् (दोषा) रात्रौ भवथः इति शेषः (कुहः) वस्तोः दिवा भवथः (कुह) क वा (अभिपित्वं) अभिप्राप्तिं कुरुथः (कुह) क वा उषतु ऊषथुः वसथः किं च युवाम् (क) यजमानः (सधस्थे) सहस्थाने वेद्याख्ये कृणुते) आकुरुते परिचरणार्थं आत्मानमभि मुखी तत्र दृष्टान्तौ दर्शयति शयुत्राशयने (विधवेव) यथा का नारी (देवरं) भर्तृभ्रातरं अभिमुखी करोति (

यथा च सर्वं मनुष्यं (योषा) सर्वा नारी सम्भोग काले अभिमुखी करोति तद्वदित्यर्थः ॥

भावार्थ—हे अश्विनौ। तुम दोनों रात्रि में कहां होते हो ? और दिन में कहां होते हो ? और कहां प्राप्ति करते हो। तुम दोनों को कौन यजमान वेदी में सेवा करने के लिये सम्मुख होता है ? यहां दो दृष्टान्त दिखाता है। जैसे सोने के स्थान में विधवा स्त्री पति के भाई को अभिमुख करती है और जैसे सब मनुष्यों को सब स्त्रियां सम्मुख करती हैं। उसी प्रकार से इत्यादि।

(प्रश्न) देखो सायण तो देवर का अर्थ 'पति के भाई' करता है और तुम इसका अर्थ दूसरा पति बताते हो। फिर सायणाचार्य के अर्थों से विधवा विवाह की सिद्धि नहीं होती।

(उत्तर) यदि देवर का अर्थ यहां 'पति का भाई' भी किया जाय तो भी मानना पड़ेगा कि विधवा का पति के भाई से विवाह सायणाचार्य्य जी मानते हैं। विधवा अपने पति के भाई को सोने के स्थान में बुलाती है जैसे साधारण स्त्रियां सम्भोग के लिये अपने पति को बुलाती हैं। सायणाचार्य्य के इस अर्थ से इतनी बातें तो स्पष्ट ही हैं कि :—

(१) विधवा का देवर को बुलाना।

(२) सोने के स्थान में बुलाना।

(३) इस प्रकार से बुलाना जैसे सम्भोग के लिये स्त्रियां पति को बुलाती हैं।

यह सब उसी समय हो सकता है जब विधवा का पुनर्विवाह हो। अब केवल देवर' शब्द विवादास्पद है। इस का निश्चय श्रीयास्काचार्य्य जी के लिखे हुये निरुक्त के

इसी मंत्र के अर्थ से हो सकता है। श्री सायणाचार्य ने निरुक्त का यह प्रमाण अपने भाष्य में उद्धृत किया देखो सायणभाष्य :—

तथा च यास्कः, कस्विद्दाषौ भवथः कदिवा कामि कुरुथः क वसथः। कोवा शयने विधवेव देवरम्।

देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते।

विधवा विधातृका भवति। विधवनाद्वा, विधावनाद्वे चर्म शिरा अपि वा धव इति मनुष्यस्तद्वियोगाद्वि देवरो दीव्यति कर्म्मा। मर्य्यो मनुष्यो मरण धर्मा। यौतेरा कुरुते सहस्थाने इति निरुक्तः।

सायणाचार्य्य ने निरुक्त का जो भाग उद्धृत कि वह उसी प्रकार है जैसा मूल निरुक्त में दिया हुआ है। लिये हम ने अलग नहीं दिया। इसमें जो वाक्य हम ने अक्षर में लिखा है अर्थात् "देवरः कस्माद द्वितीयो व च्यते" इससे स्पष्ट है कि न केवल निरुक्ताचार्य्य श्री मुनि ही 'देवर' का अर्थ द्वितीय वर का लेते थे किन्तु णाचार्य्य ने भी उनके कथन को उद्धृत करके उनके सहमत होना प्रकाशित किया है।

इस पर पं०राजाराम की टिप्पणी भी विचारणीय " जैसे विधवा देवर को और जैसे स्त्री पति को अलग उपमाओं से विधवा का देवर से सम्बन्ध स्प और वही वात 'देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते' से की है। किन्तु विधवा का ब्रह्मचर्य्य से रहना अधिक धर्म है। देवर वा दूसरे वर से सम्बन्ध भी शास्त्रविहि है। दुर्गाचार्य्य के अर्थ से भी यही वात सिद्ध है। मह पाध्याय पं० शिवदत्त शर्म्मा ने इस पर अपनी सम्म

टिप्पणी देकर चार पक्ष दिखलाये हैं, विधवा का ब्रह्मचर्य्य में रहना उत्तम है, सती हो जाना मध्यम है, और फिर विवाह कर लेना अधम है। इन तीनों पक्षों को वेद संमत कहकर चौथे पक्ष अर्थात् विना विवाह व्यभिचार को वेद विरुद्ध और गर्भ हत्यादि पातकों का मूल ठहराया है।" *

इतने महानुभावों की सम्मति होते हुये भी यह कैसे कहा जा सकता है कि इस मंत्र से विधवा को द्वितीय पति से विवाह करने की आज्ञा नहीं है।

(प्रश्न) "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" यह वाक्य यास्काचार्य्य का नहीं किन्तु किसी विधवा विवाह के पक्षपाती ने मिला दिया है। देखो दुर्गाचार्य्य ने समस्त निरुक्त पर भाष्य किया है परन्तु इस वाक्य पर भाष्य ही नहीं किया। इसके अतिरिक्त यह प्राचीन तीन पुस्तकों में नहीं है इसी लिये निरुक्त के छापनेवालों ने इसे कोष्ठ में रख दिया है।

[उत्तर] शाबाश! मानते हैं! खूब कहा!! अब तक तो स्वामी दयानन्द के मनु आदि में प्रक्षिप्त बतलाने से आकाश पाताल एक किया जाता था और आक्षेप करते थे कि यह आर्य्य सामाजिक लोग अपने अनुकूल प्रमाणों को तो मूल मानते हैं और जब कोई प्रमाण इनके मत के विरुद्ध ठहरता है तो उसे झट क्षेपक कह कर टाल देते हैं आज आप स्वयं इसको क्षेपक मानने लगे। यद्यपि स्वामी जी क्षेपक मानने के लिये युक्तियां रखते हैं परन्तु तुम तो विना युक्ति के ही क्षेपक मानने लगे। भला निरुक्त के उपर्युक्त वचन को क्षेपक मानने से कैसे बच सकोगे। यदि एक पग चले हो तो दो और भी सही। यह क्यों नहीं कह देते कि ऋग्वेद का 'विधवेव

*पण्डित राजाराम कृत निरुक्त प० १७१।

देवरं' वाक्य ही क्षेपक है। या यह समस्त मंत्र क्षेपक नीचे लिखी युक्तियों से यह वाक्य क्षेपक नहीं हो सक

(१) बाबा सायण ने इस को क्षेपक नहीं माना। कहना तो तुम टाल ही नहीं सकते। देखो ऋग्वेद का भाष्य जिस में निरुक्त के इस वाक्य को ज्यों का त्यों धृत किया है।

(२) दुर्गाचार्य्य ने भी इसको क्षेपक नहीं बताया केवल तुम्हारी ही मन गढ़न्त है। यदि दुर्गाचार्य्य ने पर भाष्य नहीं किया तो इसका कारण वाक्य की स है न कि कोई और बात।

(३) जिन प्राचीन तीन पुस्तकों में तुम इसको नहीं बताते उनके सायण से भी प्राचीन होने का तु पास क्या प्रमाण है? सम्भव है कि किसी किसी पुस्तक विधवा विवाह के किसी विरोधी ने इसे निकाल कर पक्षपात का परिचय दिया हो। जैसा आजकल कुछ स यों का हाल है।

(४) यास्काचार्य्य ने यहां दो शब्दों अर्थात् 'वि और 'देवर' की निरुक्ति की है यदि तुम इस वाक्य को मानोगे तो 'देवर' की निरुक्ति किस प्रकार करोगे? ' या 'द्वितीय वर' से तो 'देवर' बन सकता है परन्तु नुज,' 'वरबन्धु' या 'वरभ्राता' से देवर किसी प्रकार नहीं हो सकता।

(५) इस वाक्य को कोष्ठ में किसी तुम सरीखे ने ही दिया होगा, न तो सायणाचार्य्य ने ही इसे कोष्ठ रक्खा है और न पक्षपात रहित छापे वाले आज कल करते हैं। देखो 'निर्णय सागर' प्रेस बम्बई की छपी

शाके १८३७ सन् १८६५ की निरुक्त में इस वाक्य को कोष्ठ में बन्द नहीं किया गया।

(६) महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शर्म्मा भी ऐसा नहीं मानते।

(७) इस वाक्य के मिलाने का विधवा विवाह प्रचारकों को कारण भी क्या था? क्योंकि विना इसे मिलाये भी 'विधवेव देवरं' वेद वाक्य से इतना तो सिद्ध ही है कि विधवा अपने देवर के साथ शयन कर सकती है।

(प्रश्न) संसार जानता है कि 'देवर' पति के छोटे भाई को कहते हैं। द्वितीय वर की तो तुम्हारी ही कल्पना है।

(उत्तर) नहीं। देखो 'देवर' नाम तो दूसरे ही वर का है। चाहे वह पति का छोटा भाई हो, या वड़ा भाई वा कोई अन्य। परन्तु चूंकि प्रायः पति के छोटे भाई के साथ ही अधिकांश में नियोग होता था क्योंकि वही निकटतम है इस लिये पति के छोटे भाई को ही 'देवर' कहने लगे। 'यौगिक' से 'योगरूढ़ि' हो गया। देखो सत्यवती अपनी पुत्रवधू से कहती है :—

कौसल्ये देवरस्तेऽस्तिसोऽद्यत्वाऽनुप्रवेक्ष्यति।
अप्रमत्ता प्रतीक्ष्यैनं निशीथे ह्यागमिष्यति॥

महाभारत आदि पर्व अ० १०६ श्लोक २।

"कौसल्ये! तेरा दूसरा वर है सो आज तेरे पास आयेगा तू अप्रमत्त हो कर उसकी प्रतीक्षा (इतंज़ार) करना वह आधी रात को तेरे पास आयेगा"। यहां देवर से तात्पर्य्य व्यास ऋषि से है जो कौसल्या के पति के वड़े भाई थे न कि छोटे और जिन्हों ने सत्यवती से प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं

कौसल्या से नियोग द्वारा सन्तानोत्पन्न करूंगा। यहां
शब्द का इसी लिये प्रयोग हुआ है कि वह दूसरे वर
ज्येष्ठ शब्द का प्रयोग होना चाहिये था।

(प्रश्न) इस मंत्र में तुम ने 'अश्विना' या 'अश्विनौ'
अर्थ 'स्त्री पुरुष' किया है। यह ठीक नहीं। स्वामी दयान
यह नवीन कल्पना है जिसका वेद में एक भी प्रमाण नहीं।
सायणाचार्य्य भी ऐसा नहीं मानते। 'अश्विनौ' का
यहां अश्विनी कुमार देवतों से है।

(उत्तर) तुम्हारे देववाद की बलिहारी है। यदि
को अदृष्ट देव ही मान लोगे तो भौतिक पदार्थ कहां
और इनका क्या नाम धरोगे? देखो स्त्री पुरुष भी तो
गुणों के कारण देवते ही हुये। स्त्री को 'देवी' और पु
'देव' कहने की तो आज कल भी प्रथा है।

'अश्विनौ' का अर्थ 'स्त्री पुरुष' करना स्वामी द
की निज कल्पना नहीं किन्तु वेद स्वयं 'अश्विनौ' का
'स्त्रीपुरुष' करता है। स्वतः प्रमाण वेद के होते हुये
उधर भटकना भूल है। देखो :—

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताद

ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ८५ मंत्र ९।

सायणाचार्य्य इसका भाष्य इस प्रकार करते हैं :—

"सोमो वधूयुर्वधूकामो वरोऽभवत्। तस्मिन्समयेऽ
वुभौ वरावरावास्तां। अभूतां। यद्यदा सूर्यां पत्ये शं
पति कामयमानां। पर्याप्तयौवनामित्यर्थः। सूर्यां

हिनाय सोमाय वराय सविता तत्पिता ददात्। प्रादात् त्सां चकार"।

भावार्थः—सोम वधू की कामना करनेवाला अर्थात् वर था। उस समय 'अश्विनौ' इन दोनों वधू तथा वर की संज्ञा ई जब पुत्री पति की प्रशंसा करनेवाली, पति को चाहनेवाली र्थात् पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हुई। सविता अर्थात् पिता ने से मन से सोम अर्थात् वर को दिया।

यहां इतनी बातें स्मरणीय हैं :—

(१) 'अश्विना' वेद मंत्र में 'वरा' के लिये आया है जो अश्विनौ' और 'वरौ' का आर्ष प्रयोग है। 'वरौ' यहां द्वन्द्वैक-व समास है जैसे 'माता च पिता च पितरौ' या 'भ्राता च ना च भ्रातरौ' 'हंसी च हंसश्च हंसौ' इसी प्रकार 'वधू वरश्च वरौ'। सायणाचार्य्य भी इसका अर्थ "अश्विनावु-भौ वरावरावास्तां" अर्थात् 'वरावरौ' करते हैं। 'वरावरौ' का अर्थ है "वरा च वरश्च वरावरौ"। 'वरा' नाम* है वधू का। जैसे 'कृष्ण' से स्त्रीलिङ्ग 'कृष्णा' और 'शिव' से 'शिवा' बनता है। इसी प्रकार 'वर' से स्त्रीलिङ्ग 'वरा' बनता है। यहां वेद और सायण दोनों के अनुसार 'अश्विनौ' का अर्थ स्त्री पुरुष ही है और स्वामी दयानन्द का अर्थ ठीक है।

(२) 'सोम' यहां 'वर' का पर्य्याय है। सायण ने भी सोम का अर्थ वर ही किया है। देखो 'सोमाय वराय'। वेद में 'सोम' के लिये वधूयुः शब्द आया है जिसका अर्थ सायण ने "वधू कामः" या वधू को इच्छा करनेवाला किया है।

(३) यहां 'सविता' का अर्थ "पिता" है जो सायण के भी अनुकूल है। 'सविता' और "प्रसविता' समानार्थक हैं।

---

*खरु : पतिं वरा कन्या (सिद्धान्ते भट्टोजिदीक्षितः)

(४) इस लिये 'सूर्य्या' का अर्थ पुत्री हुआ। इस
धान ऋग्वेद के १०वें मण्डल के समस्त ८५वें
देखने से पाया जाता है।

(५) इस मंत्र में यह भी बताया है कि स्त्री पुरुष
वस्था में ही विवाह होना चाहिये । जब पुरुष 'वधूयुः'
स्त्री 'पत्ये शंसन्ती' हो जाय। दूसरा प्रमाण :—

सोमः प्रथमो विविदे
गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्
तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५, मंत्र ४०।

सायण भाष्य :—जातां कन्यां सोमः प्रथम भा
विविदे। लब्धवान्। गन्धर्व उत्तरः सन् विविदे लब्ध
अग्निस्तृतीयः पतिस्ते तव। पश्चात् मनुष्यजाः पति
श्चतुर्थः ॥

हमारा अर्थ :—(सोमः) सोम (प्रथमः) पहले (वि
प्राप्त करता है (उत्तरः) फिर (गन्धर्वः) गन्धर्व (वि
प्राप्त करता है। (तृतीयः) तीसरा (पति) पति (ते)
(अग्निः) अग्नि है (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा (मनुष्य
मनुष्यज है।

इस मन्त्र में पतियों के चार नाम बताये हैं। पहले
को 'सोम', दूसरे को 'गन्धर्व', तीसरे को (अग्निः) और
को 'मनुष्यज' कहते हैं। इससे सिद्ध है कि स्त्री के आ
कनानुसार एक से अधिक पति हो सकते हैं। सायण
भी इसका विरोध नहीं करता।

यही मंत्र कुछ परिवर्त्तित रूप में अथर्व वेद में भी आया जिससे यही बात और भी स्पष्ट होजाती है :—

सोमस्य जाया प्रथमं गंधर्वस्ते परः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस् तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

अथर्व वेद काण्ड १४, सूक्त २, मन्त्र ३।

अर्थात् पहले तू सोम की पत्नी है। दूसरा पति तेरा गन्धर्व है तीसरा पति अग्नि है और चौथा मनुष्यज।

इसी के आगे एक और मंत्र है जो इस मंत्र के अर्थ पर भली भांति प्रकाश डालता है :—

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५ मंत्र ४१, अथर्व वेद कांड १४, सूक्त २, मन्त्र ४।

सायण भाष्य :—सोमो गन्धर्वाय प्रथमं ददत्। प्रादात्। गन्धर्वोऽग्नये प्रादात्। अथो अपि चाग्निरिमां कन्यां रयिं धनं पुत्रांश्च मह्यमदात्। (सायण कृत ऋग्वेद भाष्य)।

भावार्थ :—सोम ने पहले गन्धर्व के लिये दिया। गन्धर्व ने अग्नि के लिये, और अग्नि ने भी इस कन्या को, धन को, पुत्रों को, मुझे दिया।

इन दोनों मंत्रों के एक साथ पढ़ने से (और यह दोनों वेदों में पास ही दिये हुये हैं तथा एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं) यही विदित होता है कि स्त्री के लिये भी विशेष अवस्था में एक से अधिक पति करने की आज्ञा है।

(प्रश्न) यह तो तुम्हारा महा अन्धेर है कि सोम, गन्धर्व और अग्नि जो देवताओं के नाम हैं उन को साधारण मनुष्य

बना दिया। वस्तुतः बात यह है कि कन्या को सब से सोम देवता भोग लेता है। उसके पश्चात् गन्धर्व, देवता के पश्चात् अग्नि का नम्बर आता है। अग्नि के चुकने के पश्चात् स्त्री पुरुष के भोगने के योग्य होती है। अत्रि स्मृति में भी लिखा है :—

पूर्वंस्त्रियः सुरैर्भुक्ताः
सोम गन्धर्व वह्निभिः।
भुञ्जते मानवाः पश्चान्
न वा दुष्यन्ति कर्हिचित्॥*

अर्थात् स्त्रियां पहले सोम गन्धर्व वह्नि (अग्नि) देवताओं द्वारा भोग ली जाती हैं। इसके पश्चात् मनुष्य भोगते हैं और उनको कुछ भी दोष नहीं लगता।

(उत्तर) क्या यह तुम्हारा अन्धेर नहीं है कि तथा बिचारी छोटी छोटी कन्याओं को देवताओं के सगम करने का दोष लगाते हो। और जिन सोम, और अग्नि को तुम पवित्र पूजनीय और उपास्य देव हो और उन पर कन्याओं के साथ व्यभिचार का दो हो। मैं पूछता हूं कि क्या इन देवताओं के देवजाति स्त्रियां (देवियां) नहीं हैं जो वह इनको छोड़कर विच नुष्यों की लड़कियों का धर्म भ्रष्ट करते फिरते हैं। देवमाला में तो पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग सभी प्रकार से दे देवियां हैं। देखो इन्द्र के लिये इन्द्राणी, शिव के लिये विष्णु के लिये लक्ष्मी, अग्नि के लिये आग्नेयी उप

* "श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस" मुद्रित अत्रि स्मृति श्लोक १९१।

फेर क्या सोम और गन्धर्व पत्नी रहित और विन व्याहे ही हैं। अथवा उनकी स्त्रियों का शरीरान्त हो गया है? फिर यह भी तो बताओ कि गन्धर्व कौन सा देवता विशेष है उस का निवास कहाँ रहता है। साधारण देवमाला पर विश्वास करने वाले लोग तो गन्धर्व किन्नर आदि योनि विशेष मानते हैं। यदि यह योनियां हैं तो इनकी स्त्रियां भी अवश्य होंगी फेर मनुष्य की बालिकाओं और गन्धर्वों की दैवी स्त्रियों में खूब सौतिया डाह रहता होगा। तीसरी बात यह भी तो बतानी चाहिये कि देवते क्वारी कन्याओं को ही क्यों भोगते हैं और किस अवस्था तक की कन्या को भोगते हैं? क्या यदि कोई स्त्री आयु पर्य्यन्त बालब्रह्मचारिणी रहना चाहे तो भी उसे भोग लेंगे? यदि ऐसा है तो स्त्रियों के लिये बड़ी आपत्ति होगी।

रहा अत्रि स्मृति का प्रमाण। यह तो ऐसी गल्प है कि शायद तुम भी इसे मानने के लिये तैयार न होगे क्योंकि इस स्मृति के इस श्लोक के संख्या १९० में लिखा है:—

न स्त्री दुष्यति जारेण
ब्राह्मणो वेद कर्म्मणा।
नापो मूत्र पुरीषाभ्यां
नाग्निर्दहति कर्म्मणा॥

अत्रि स्मृति श्लोक १९०।

अर्थ—स्त्री को व्यभिचार का दोष नहीं लगता, न ब्राह्मण को वेद कर्म से, न जल को मल और मूत्र से दोष लगता है और न अग्नि कर्म द्वारा जलती है।

इसी श्लोक के आगे 'पूर्वं स्त्रिय इति' तुम्हारा श्लोक

दिया हुआ है इस से समस्त झगड़ा विवाह और पुन[illegible] का मिट जाता है। तुम्हारे अत्रि मुनि ने तो स्त्रियों के [illegible] चार को ब्राह्मणों के किये हुए वेदविहित कर्म्मों से [illegible] दे दी और उनको व्यभिचार के दोष से सदा के लिये [illegible] कर दिया। इस सिद्धान्त से तो वेश्यायें भी कुलीन [illegible] रिणी स्त्रियों के समान हो गईं! छी! छी! छी! अब [illegible] लिये नीचे लिखे दो ही मार्ग हैं एक को त्यागो और दू[illegible] ग्रहण करो :—

(१) अत्रि मुनि के दोनों श्लोकों को प्रमाण मानो [illegible] केवल पुनर्विवाहित विधवाओं को ही किन्तु वेश्याओं [illegible] दोष रहित कहो। यदि ऐसा कहोगे तो विधवा विवा[illegible] प्रचारकों को किस मुख से बुरा कहने का साहस [illegible] सकोगे?

(२) इन दोनों प्रमाणों को त्याज्य मान कर सोम, आदि साधारण पतियों के नाम समझो और इस [illegible] विशेष दशाओं में विधवाओं को अन्य पति करने का [illegible] कार दो।

(प्रश्न) नहीं! नहीं! देवताओं के भोग से यह [illegible] नहीं जैसा तुम लेते हो। "गर्भोत्पत्ति के समय से ही [illegible] देवता के प्रधान आदि कारण होने से सोमदेव कुमारी को पहले प्राप्त होता है अर्थात् सब अङ्गों में विशेष [illegible] प्रविष्ट होता है"। जब अवयवों के विकास से कन्या में [illegible] का संचार हुआ तो गन्धर्व पति हुआ क्योंकि गन्ध[illegible] यौवन की रक्षा करनेवाला माना गया है। फिर विवा[illegible] होमाग्नि के पास लाई गई तो वही पति कहलाया।

(उत्तर) धन्य हो। प्रथम तो देवताओं का कन्या[illegible] भोग करना स्पष्ट लिखा है जैसा हम अत्रि स्मृति से [illegible]

हैं और जो एक असम्भव बात है। दूसरे यदि कहो कि देवते भोगते नहीं किन्तु रक्षा करते हैं और बाल्यावस्था से तरुणाई तक भिन्न भिन्न देवों का आधिपत्य रहता है तो क्या कारण है कि पुरुषों की बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक यही देव अपना आधिपत्य नहीं रखते। जिन विद्वानों ने मनुष्य शरीर की घटनाओं पर पूरा विचार किया है वह भली प्रकार जानते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों के शरीरों की कई अवस्थायें होती हैं और जिस प्रकार पुरुषों का शरीर वृद्धि, स्थिति तथा क्षय को प्राप्त होता है। उसी प्रकार स्त्री का भी। यदि कन्याओं की गर्भोत्पत्ति के समय से ही सोम देवता प्रधान होता है तो लड़कों की गर्भोत्पत्ति से ही सोम देवता लड़कों का भी पति क्यों नहीं होता ? जिस प्रकार अवयवों का विकास स्त्रियों के शरीर में होता है उसी प्रकार पुरुषों में भी। फिर गंधर्व दोनों का पति क्यों नहीं ? विवाह से पूर्व केवल कन्या ही तो होमाग्नि के पास नहीं लाई जाती। वर भी उसी प्रकार यज्ञ में सम्मिलित होता है और अग्नि कुण्ड की प्रदक्षिणा करता है फिर क्या अग्नि, वर और बधू दोनों का ही पति है अथवा केवल एक का। यदि केवल कन्या का, तो वर का भी क्यों नहीं ? यदि तुम्हारी युक्ति ठीक है तो स्त्री पुरुष दोनों पर समानतया घटती है और यदि वर के पक्ष में तुम इस को न्याय संगत नहीं कहते तो कन्या के पक्ष में भी ऐसा ही कहने के लिये बाधित होना पड़ेगा। क्या सोम, गन्धर्व और अग्नि आदि देवों के समान कन्याओं के भोगने के समान सौम्या, गन्धर्व्वी, आग्नेयी आदि देवियां भी तो कुमार बालकों को नहीं भोग जातीं ? यदि ऐसा है तो ब्रह्मचर्य्य का उपदेश ही सर्वथा मिथ्या और व्यर्थ हो जाता है क्योंकि स्त्री पुरुष ब्रह्मचारी तब रहें जब देवी देवते रहने

हैं। क्या अद्भुत सिद्धान्त है जिसको सुन कर ही
आती है।

देखो यहां सोम, गन्धर्व आदि पतियों की ही सं
गई है। इस का प्रमाण ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ८५ के
मन्त्र से भी मिलता है जिसे हम ने 'अश्विनौ' शब्द का
दिखलाने के लिये ऊपर उद्धृत किया है। उस में
दिया है कि

"सोमो बधूयुरभवत्"

अर्थात् 'सोम' वधू की कामना करनेवाला हुआ।
यहां 'सोम' का अर्थ अपना अधिष्ठातृ 'सोम देव' करो
उसको 'वधू' की इच्छा करने वाला भी मानना पड़ेगा।
किस मुख से कह सकोगे कि गर्भोत्पत्ति के समय से
सोम को अधिकार होता है। क्या नवजाता कन्या को
वधू कह सकोगे? फिर इस मंत्र में यह भी है :—

"सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवि
ददात्"

अर्थात् "पतिं कामयमानां पर्य्याप्तयौवनामित्
(इति सायणः) युवती और पति की कामना करने
कन्या को सविता ने सोम के लिये दिया। पर्य्याप्तयौवन
तो तुम्हारे मत के अनुसार गन्धर्व का आधिपत्य हो
और इस मन्त्र में सोम को इसका पति कहा जाता है।
सायणाचार्य्य ने 'सोम' का अर्थ स्पष्टतया 'वर' कि
(देखो "सोमाय वराय" इति सायणः)। इस से भी
ही मत की पुष्टि होती है अर्थात् 'सोम' स्त्री के पहले
को कहते हैं। यदि सोम स्त्री का पहला पति हुआ तो

न्धर्व और अग्नि के द्वितीय और तृतीय पति होने में संन्देह ही क्या ?

तीसरा प्रमाण।

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि
शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शंनो
भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५, मंत्र ४४ ।

(अघोरचक्षुः) अच्छी चक्षु वाली (अपतिघ्नी) पति का विरोध न करनेवाली, (शिवा) मंगल कारिणी (पशुभ्यः) य पशुओं के लिये (सुमनाः) प्रसन्न चित्त, (सुवर्चाः) शुभगुणयुक्त (वीरसूः) वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली (देवृकामा) दूसरे पति को चाहनेवाली (स्योना) सुख युक्त (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिये (शं) कल्याण कारिणी और (चतुष्पदे) गाय भैंस आदि के लिये (शं) कल्याण करने वाली (भव) हो ।

यहां 'देवृकामा' शब्द इस बात का सूचक है कि स्त्रियों को आवश्यकता पड़ने पर पुनर्विवाह का अधिकार है ।

यही वेद मंत्र कुछ रूपान्तर के साथ अथर्व वेद में भी आया है । देखो :—

अदेवृघ्न्यपतिघ्नी हैधि,
शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।

प्रजावती वीरसूर्देवृकामा
स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥

अथर्व वेद का० १४, सूक्त २, मन्त्र १८।

अर्थ—हे (अदेवृघ्न्यपतिघ्नी) देवर और पति को न देने वाली स्त्री ! तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) के लिये (शिवा) कल्याण करनेवाली (सुयमा) अच्छे नियम में चलने वाली (सुवर्चा) शुभ गुण युक्त (प्रजा उत्तम सन्तान वाली (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को उत्पन्न वाली (देवृकामा) देवर की कामना करने वाली (स्योना वाली (एधि) प्राप्त हो। (इमम्) इस (गार्हपत्यं) गृह अर्थात् गृहस्थाश्रम सम्बन्धी (अग्निं) अग्नि अर्थात् करने के योग्य अग्नि को (सपर्य) सेवन किया कर।

इस मंत्र में ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र से बहुत कम परन्तु 'देवृकामा' शब्द दोनों में पड़ा हुआ है। हम अध्याय में वेद का जो पहला प्रमाण दिया है उससे चुका है कि 'देवर' शब्द का अर्थ प्राचीन भाष्य प्रणे अनुसार 'दूसरा वर' है। अतः इन दोनों मन्त्रों से ता है कि स्त्री को दूसरे पति की विशेष अवस्था आज्ञा है।

(प्रश्न) यह मंत्र विवाह सम्बन्धी है और इस लिये पुनर्विवाह का वर्णन अशुभ है। इस मंत्र का अर्थ है के भाइयों को चाहने वाली अर्थात् उन से प्रेम वाली'!

(उत्तर) यहां दो शब्द हैं 'देवृ' और 'कामा' मिलकर 'देवृकामा' समास बना। 'कामा' शब्द ही

है कि 'देवर के साथ संगमन की इच्छा' अभीष्ट है। इसके अर्थ यह हो सकते हैं:—

(१) पति के जीवन में उसके भाइयों से संगमन की इच्छा करने वाली।

(२) पति की मृत्यु पर उसके भाई के साथ सहवास की इच्छा करने वाली।

(३) अन्य पति की इच्छा करने वाली।

पहला अर्थ तो हम तुम दोनों को ही त्याज्य है क्योंकि अन्य वेद मंत्रों के विरुद्ध और इस लिये अधर्म है। दूसरे और तीसरे अर्थों से विधवा विवाह या नियोग के सिवाय अन्य बात सिद्ध ही नहीं होती।

(प्रश्न) 'देवृकामा' से 'देवर के साथ सहवास करने की इच्छा करने वाली' कैसे अर्थ हुआ? क्या 'पुत्र कामा' से भी 'पुत्र के साथ सहवास करने वाली' अर्थ होता है?

(उत्तर) नहीं नहीं। 'पतिकामा' या 'देवृकामा' में 'कामा' शब्द इसी अर्थ का वाचक है। यह तो प्रत्येक प्रकरणवित् पुरुष मान लेगा। सायण ने भी 'पतिं कामयमाना' का अर्थ 'प्राप्तयौवना' किया है। यदि कहें कि 'अमुक स्त्री अमुक पुरुष की कामना करती है' तो क्या इसका वही अर्थ होगा जो 'पुत्रकामा' का होता है? भला बताओ तो सही कि 'देवर की कामना' का और अर्थ ही क्या हो सकता है। 'पुत्रकामा' उस स्त्री को कहेंगे जिसे यह इच्छा हो कि मेरे पुत्र उत्पन्न हो। इसी प्रकार 'देवृकामा' का क्या यह अर्थ करोगे कि 'वह स्त्री जिसकी इच्छा हो कि मेरी सास के पुत्र उत्पन्न हो'? क्या खूब?

(प्रश्न) क्या विवाह के समय आगे के लिये पति का

मरण और दूसरे पति की इच्छा का प्रकाश अशुभ नहीं

(उत्तर) शुभाशुभ का विचार धर्माधर्म के अन्तर्गत जो धर्म है वही शुभ है जो अधर्म है वही अशुभ। जिस पति विवाह के समय इस मंत्र को पढ़ता है उस समय केवल स्त्री के अधिकार का वर्णन करता है अर्थात् यदि मृत्यु हो जाय तो तुझे अधिकार होगा कि पुनर्विवाह सकती है। इससे यह तात्पर्य्य कदापि नहीं कि पति मरण चाहता है यदि कोई पुरुष विवाह के समय या पहले कहता है कि मैंने अपने जीवन का बीमा कर दिया कोई इस को अशुभ नहीं कहता। यद्यपि तात्पर्य्य यही है कि यदि मैं अकस्मात् मर जाऊं तो मैं ने ऐसा प्रबन्ध दिया है कि मेरी स्त्री के भोजन छादन में विघ्न न पड़े सभी जानते हैं कि मरना जीना स्वाभाविक है और घटनायें हुआ ही करती हैं। जब इङ्गलैण्ड की पार्लि एक सम्राट् के जीवन में ही यह पास करती है कि राजा का उत्तराधिकारी अमुक पुरुष होगा तो इस तात्पर्य्य यह नहीं है कि पार्लीमेण्ट सम्राट को मारना हती है या उसके साथ भक्ति नहीं करती। सम्भव पार्लीमेण्ट यही चाहती हो कि यही सम्राट् सर्वदा किया करे। परन्तु उसके चाहने मात्र से तो काम नहीं ता। मृत्यु देव तो अपना कर राजा और रंक सभी से इस लिये प्रबन्धार्थ ऐसा करना ही पड़ता है कि जीवन में ही अवश्यम्भावी मृत्यु के लिये यथोचित् अथवा कतानुसार प्रबन्ध कर दिया जाय। यह मंत्र इस बात भी सूचक है कि पति को स्त्री के स्वाभाविक अधिकार का अधिकार नहीं। उस ने भरी सभा में प्रतिज्ञा की कि यदि स्त्री को धर्म की मर्य्यादा के भीतर नियोग की

आवश्यकता तथा इच्छा हुई तो उस का पति उसका प्रति-रोध नहीं करने का। किन्तु प्रसन्नता से आज्ञा दे देगा।

इस मंत्र में स्त्री के अधिकार और कर्त्तव्य दोनों का वर्णन है जिनका विवाह के समय पढ़ा जाना किसी प्रकार भी अशुभ नहीं ठहरता। विवाह केवल उत्सव ही नहीं है किन्तु इसके साथ ही एक क़ानूनी मामला भी है। क़ानून में शुभ और अशुभ का विचार नहीं हुआ करता।

चौथा प्रमाण।

इयं नारी पति लोकं वृणाना
निपद्यत उपत्वा मर्त्यं प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती
तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥

अथर्व वेद काण्ड १८, सूक्त ३ मंत्र १।

यह मन्त्र कुछ रूपान्तर के साथ तैत्तिरीय आरण्यक में भी आया है। पहले हम इसका अपना अर्थ देते हैं :—

(इयं) यह (नारी) स्त्री (पतिलोकं) पति के लोक को (वृणाना) चाहती हुई (प्रेतम्) मरे हुये पति के (अनु) पीछे (मर्त्य) हे मनुष्य (उपत्व) तेरे पास (निपद्यत) आती है (पुराणं) पुराने या सनातन (धर्मं) धर्म को (पा-लयन्ती) पालती हुई। (तस्यै) उसके लिये (इह) इस लोक या स्थान में (प्रजां) सन्तान को (द्रविणं च) और धन को (धेहि) धारण करा।

भावार्थ—यहां मर्त्य अर्थात् मनुष्य सम्बोधन में है। शब्द 'इह' यहां भी पड़ा हुआ है। इससे इतनी बातें हो जाती हैं :—

(१) वेद आज्ञा देता है कि पति के मरने के पश्चात् (प्रेतं अनु) स्त्री दूसरे पति के पास जावे जो उसे (प्रजां द्रविणां च) सन्तान और धन अर्थात् भोजन छादन देनेवाला।

(२) ऐसा करना सनातन धर्म है कोई नया धर्म नहीं। न केवल प्राचीन काल में ही किन्तु प्राचीन काल में भी ऐसा हुआ करता था।

तैत्तिरीय आरण्यक में पाठान्तर इस प्रकार है :—

इयं नारी पति लोकं वृणाना
निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
विश्वं पुराणमनुपालयन्ती
तस्यै प्रजां द्रविणां चेह धेहि॥

तैत्तिरीय अ० ६, १, १३।

सायण भाष्य—हे (मर्त्य) मनुष्य! या (नारी) मृत तव भार्य्या, सा (पतिलोकम्), (वृणाना) कामायमाना (प्रेत, मृतं, त्वां, उपनिपद्यते) समीपे नितरां प्राप्नोति कीदृशी (पुराणं, विश्वम्) अनादि काल प्रवृत्तं कृत्स्नं धर्मं, (अनुपालयन्ती) अनुक्रमेण पालयन्ती (तस्यै) पत्न्यै त्वं इह लोके निवासार्थं अनुज्ञां दत्त्वा (प्रजां) (पुत्रादिकं) (द्रविणम्) धनञ्च (धेहि) सम्पादय।

भाषार्थ :—हे मनुष्य यह जो मरे पति की स्त्री

ार्य्या है वह पतिलोक या पतिगृह की कामना करती हुई
रे पति के उपरान्त तुझ को प्राप्त होती है। कैसी है वह ?
नादिकाल से पूरे स्त्री धर्म को क्रम से पालती हुई। उस
र्मपत्नी के लिये तू इस लोक में निवास की आज्ञा देकर
आदि सन्तान और धन की प्राप्ति करा।

यहां सायण का ऐसी स्त्री के लिये धर्मपत्नी, शब्द प्रयुक्त
रना, जिसने अपने पहले पति के मरने पर दूसरा विवाह
किया है उनके विधवा विवाह के पक्ष को सिद्ध करता है।

(प्रश्न) पतिलोक से यहां इस लोक का नहीं किन्तु मृत्यु
पश्चात् दूसरे लोक का तात्पर्य्य है ?

(उत्तर) नहीं नहीं। 'इह' शब्द पर भी तो ध्यान दो जिस
ा अर्थ 'इस लोक' के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।
सी का अर्थ सायणजी 'इह लोक' करते हैं।

पांचवां प्रमाण।

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं
गतासुमेतमुपशेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं
पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ ॥

अथर्व वेद—का० १८, सूक्त ३, मन्त्र २।
ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १८, मंत्र ८।

सायणभाष्य—हे (नारि) मृतस्य पत्नी (जीवलोकं)
जीवानां पुत्रपौत्राणां स्थानं लोकं गृहमभिलक्ष्य (उदीर्ष्व)

अस्मात् स्थानात् उत्तिष्ठ (गतासुम्) अपक्रान्त प्राणं
पतिं (उपशेषे) तस्य समीपे स्वपिषि तस्मात् त्वं
आगच्छ। यस्मात् त्वं (हस्तग्राभस्य) पाणिग्राहं
(दधिषोः) गर्भस्य निधातुः (तव) अस्य (पत्युः) स
दागतं (इदं) (जनित्वम्) जायात्वं अभिलक्ष्ये
सम्भूतासि अनुसरणं निश्चयं अकार्षीः तस्मादागच्छ।

भावार्थ—हे मरे हुये पति की पत्नी, जीवित
पोतों का लोक अर्थात् जो गृह है उस को विचार कर
जगह से उठ। प्राणान्त हुये पति के समीप तू सोती
से आ। जिससे तू पाणिग्रहण करनेवाला गर्भ के
कराने वाला इस पति के सम्बन्ध से आया हुआ
इसको स्त्री होने के विचार से निश्चय करके तू अ
कर। इस लिये आ।

यही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक में भी आया है
भाष्य सायणाचार्य्य इस प्रकार करते हैं :—

हे (नारि) त्वं (इतासुम्) गत प्राणं (एतम्)
(उपशेषे) उपेत्य शयनं करोषि (उदीर्ष्व) अस्
समीपादुत्तिष्ठ, (जीवलोकमभि) जीवन्तं प्राणसमू
लक्ष्य, (एहि) आगच्छ। (त्वम्), (हस्तग्राभस्य)
ग्राहवतः (दधिषोः) **पुनर्विवाहेच्छोः**, (पत्युः)
(जानित्वम्) **जायात्वं** (अभिसम्बभूव) आभि
सम्यक् प्राप्नुहि।*

भावार्थ :—हे नारी तू इस मृत पति के पास
इस पति के समीप से उठ। जीवित पुरुषों को विचा

* तैत्तिरीय अ० ६, १, १४।

ता और तू हाथ पकड़ने वाले पुनर्विवाह की इच्छा करनेवाले इस पति को जाया भाव (स्त्रीभाव) को अच्छी तरह प्राप्त हो।

यहां हम ने सायणाचार्य्य का अर्थ इस लिये दिया है कि कट्टर से कट्टर विधवा विवाह के विरोधी भी सायण से विमुख नहीं हो सकते। सायण ने इस मंत्र के अर्थ में पुनर्विवाहेच्छु शब्द का प्रयोग करके समस्त झगड़े को दूर कर दिया। परन्तु हम यहां इटावा निवासी पं० भीमसेनजी शर्म्मा का अर्थ भी उद्धृत किये देते हैं जिससे इसकी और अधिक सम्पुष्टि हो सके।

"उदीर्ष्व नार्यभि०" अत्र पत्यन्तर विधायके मंत्रेऽर्थस्यापि विवादो नास्ति। हे नारि! त्वं गतासुं मृतमेतं पतिमुपशेषे तस्य समीपे शोकेन पतितासि तं विहायाभिजीवलोकं जीवन्तं प्राणिसमूहमभिमुखीकृत्योदीर्ष्वोत्तिष्ठ। उत्थाय च तव हस्तग्राभस्य पाणिग्रहणकर्त्तुर्दिधिषोर्द्वितीयस्य पत्युरिदं जनित्वं जायत्वं स्त्री भावमभिसंबभूथ।

अस्य मंत्रस्यायमेवार्थः [२]सायणादिवेद भाष्यकारैरप्यभ्युपागतः। तथा [३]मेधा तिथिना भाष्यकारेणापि लिखितम्—

(को वा सुपुत्रो विधवेव देवरमित्यादि) एवं प्रकारका मन्त्रा [१]नियोगविधायका वेदेष्वपि दृश्यन्त इति मेधातिथेस्तात्पर्यम्। वेदेषु यदा नियोगस्य कर्त्तव्यत्वमुः पुनस

"तस्य निन्दका वेदविरोधिन इति सिद्धम्" *।

इन सब का भावार्थ देना व्यर्थ होगा। यहां पं० भीम जी इतनी बातें कहते हैं :-

(१) यह नियोग विधायक मंत्र है।

(२) सायणादि भाष्यकार भी इस का ऐसा ही करते हैं।

(३) मनुस्मृति के मेधातिथि भाष्यकार ने भी तात्पर्य लिया है।

(४) नियोग के विरोधी वेद के निन्दक हैं।

यह इतने प्रबल वाक्य हैं कि इनका खण्डन पं० भीम जी की इसके पश्चात् लिखी हुई किसी पुस्तक से नहीं सकता क्योंकि इनमें न केवल उन्हों ने अपनी निज सम्मति दी है किन्तु सायण और मेधातिथि को भी सम्मिलित है जिन के वचनों को अब कौन बदल सकता है।

(प्रश्न) इस से तो बड़ी निर्दयता और असभ्यता है। एक ओर विचारा पति मरा हुआ पड़ा है और स्त्री उस के पास पड़ी रो रही है। दूसरी ओर लोग हैं कि हे स्त्री तू इस मरे हुये पति के पास क्यों पड़ी चल उठ और दूसरा विवाह कर। क्या इसी का पात्यव्रत धर्म है जिसके लिये प्राचीन भारत इतना मान करता था?

(उत्तर) 'सोना' और 'लेटना' किसी ने अपनी ओर से तो मिला नहीं दिया। 'उपशेषे' शब्द स्वयं वेद मंत्र में हुआ है जिस का अर्थ सायणाचार्य्य भी यही करते

*पण्डितभीमसेन कृत "मानव धर्मशास्त्रोपोद्घात" पृ० ३०।

यदि तुम वेद को नहीं मानते तो न मानो। यदि वेद को मानोगे, तो वही अर्थ करना पड़ेगा। रही असभ्यता की बात, यह केवल समझ का फेर है। वेद में बहुत से शब्द सांकेतिक अर्थ में आते हैं और लोक में भी यही बात है। जैसे स्त्री का पति के साथ "सहवास" सम्भोग के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कोई कहे कि 'सहवास' का अर्थ केवल साथ रहना है तो यह उस का प्रकरणानुकूल अर्थ न होगा। यदि माता अपने पुत्र को लिये कहीं सो रही है तो उस को कदापि न कहेंगे कि वह अपने पुत्र के साथ सहवास कर रही है। इसी प्रकार यहां यह तात्पर्य्य नहीं है कि चिता में अग्नि प्रवेश करने से पूर्व ही दूसरे पति से विवाह या नियोग कर लिया जावे किन्तु आशय यह है कि यदि विधवा दुःखित है या सन्तानोत्पत्ति चाहती है तो लोग इस मन्त्र को पढ़ सकते हैं।

छठा प्रमाण।

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दते परम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः॥

अथर्व वेद काण्ड ९, अनुवाक ३ सूक्त ५, मन्त्र २७।

अर्थ (या) जो स्त्री (पूर्वं) पहले (पतिं) पति को (वित्त्वा) पाकर (अथ) उसके पीछे (अन्यम्) अन्य (अपरम्) दूसरे को (विन्दते) प्राप्त होती है। (तौ) वे दोनों (पञ्चौदनं) पाँच भूतों को सींचने वाले (अजं) ईश्वर को (ददातः) अर्पण होते हुये (न) न (वियोषतः) अलग हों।

इस मंत्र में स्पष्टतया बताया गया है कि यदि ए
के उपरान्त दूसरा पति ग्रहण किया जाय तो वह ए
से अलग न हों किन्तु ईश्वर का नाम लेते हुए प्रेम से
करें ।

सातवां प्रमाण ।

समानलोको भवति पुनर्भुवा परः प
योऽजं पंचौदनं दक्षिणा ज्योतिषं दद

अथर्व वेद कांड ६, सूक्त ५, मन्त्र २८।

अर्थ :— (समान लोकः) बराबर स्थान या प
(भवति) होता है (पुनर्भुवा) पुनर्भू अर्थात् उस
साथ जिसका पुनर्विवाह हुआ है (अपरः) दूसरा
पति जो (पञ्चौदनं अजं) पांच भूतों के सींचने वाले प
को (पञ्चौदनं ज्योतिषम्) दान किया है ज्योति
ऐसे को (ददाति) अर्पण करता है ।

यहां बतलाया है कि जो पुरुष विधवा से पु
करता है उसका पद किसी प्रकार अन्य पुरुषों से क
समझा जाता क्योंकि पुनर्विवाह कोई घृणित कार्य्य न

छठवाँ अध्याय ।

स्मृतियों की सम्मति ।
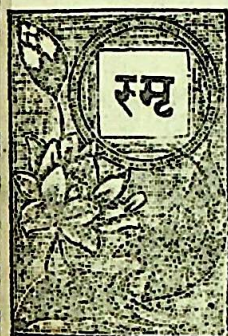
तियां तो ऐसे प्रमाणों से भरी पड़ी हैं जिन में अक्षत योनि विधवाओं के पुनर्विवाह का विधान है । अधिकन्तु कोई कोई स्मृति क्षत योनि विधवाओं के विवाह में भी कोई सामाजिक अथवा धार्मिक क्षति नहीं देखती । इन में सब से प्राचीन और प्रामाणिक मनुस्मृति है क्योंकि कहा है कि :—

यद्वै किंचनमनुरवदत्तद्भेषजं भेषजातायाः ।

अर्थात् जो कुछ मनु जी ने कहा है वह औषधियों की औषधि है ।

इस विषय में निम्न लिखित प्रश्न मीमांसनीय हैं :—

(१) क्या मनुजी विधवा विवाह की आज्ञा देते हैं ?

(२) क्या मनुस्मृति में कुछ श्लोक विधवा विवाह विधायक और कुछ उसके निषेध में भी हैं ?

(३) क्या मनुस्मृति में उन विधवाओं को जो पु
कर लेती हैं नीच समझा गया है ?

(४) क्या मनुस्मृति उन पुरुषों को नीच समझतं
किसी विधवा से विवाह कर लेते हैं ?

(५) क्या मनुस्मृति के अनुसार पुनर्विवाहित वि
की सन्तान पैतृक संपत्ति की अधिकारी होती है ?

सब से पहले हम वेद को लेते हैं। मनु जी महार
श्लोकों में बताते हैं कि किसी बात के लिये वेद से
अन्य कोई प्रमाण नहीं। समस्त स्मृतियां वेद का
सरण करती हैं महा कवि कालिदास ने भी कहा है:-

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।

जिसका आशय यही है कि स्मृति का कर्त्तव्य है
अर्थात् वेद का अनुसरण करे। मनु जी भी इसी
अनुयायी हैं। वह लिखते हैं कि

धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रु

अर्थात् धर्म के जिज्ञासुओं के लिये परम प्रमाण श्र
यही नहीं मनु के अनुसार तो

नास्तिको वेद निन्दकः।

वेद का निन्दक या न माननेवाला नास्तिक
शूद्रवत् वहिष्कार्य शूद्र के समान बाहर नि
योग्य है। मनुस्मृति में कोई श्लोक ऐसा नहीं जिस
होता हो कि कलियुग या किसी अन्य युग में वेद को
नहीं मानना चाहिये। इन श्लोकों से सिद्ध होता है
मनुस्मृति में विधवा विवाह के सम्बन्ध में अन्य कोई
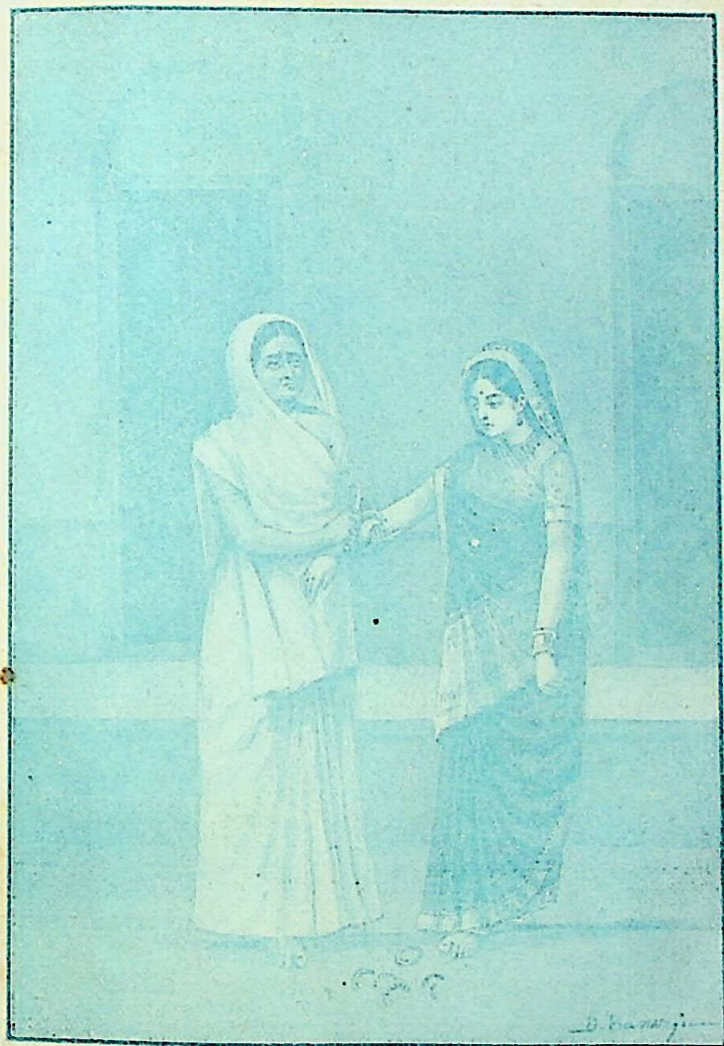
विधवा बालिका की माता चूड़ियां तोड़ रही है।

L. J. PRESS, ALLAHABAD.

न होते तो हम मनु जी को विधवा विवाह का पक्षपाती ही समझते क्योंकि वेद में 'अन्यपति' 'देवर' आदि स्पष्ट शब्द पड़े हुये हैं जिनका दूसरा अर्थ होही नहीं सकता। परन्तु इतनी ही बात नहीं है अधिकन्तु मनुस्मृति स्पष्ट शब्दों में विधवा विवाह का उल्लेख कर रही है :—

या पत्या वा परित्यक्ता
विधवा वा स्वेच्छया।
उत्पादयेत पुनर्भू त्वा
स पौनर्भव उच्यते॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्
गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा
पुनः संस्कारमर्हति॥

मनु० अ० ६, श्लोक १७५, १७६।

हम प्रथम कुल्लूकभट्ट कृत मन्वर्थमुक्तावली से अर्थ लिखते हैं :-

या भर्त्रा परित्यक्ता मृतभर्तृका वा स्वेच्छयान्यस्य पुनर्भार्या भूत्वा यमुत्पादयेत्स उत्पादकस्य पौनर्भवः पुत्र उच्यते॥१७६॥

सा स्त्री यद्यक्षतयोनिः सत्यन्यमाश्रयेत्तदा तेन पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति। यद्वा कौमारं पतिमुत्सृज्यान्यमाश्रित्य पुनस्तमेव प्रत्यागता भवति तदा तेन कौमारेण

भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कार महेति ॥ १७

कुल्लूक भट्ट कृत अर्थ :— जो स्त्री भर्त्ता से त्यागी या जिस का पति मर गया हो वह अपनी इच्छा से फिर भार्य्या बन कर (अर्थात् फिर विवाह करके) जिसको उत्पन्न करे वह उत्पन्न करने वाले पुरुष का पौनर्भव पुत्र कहलाता है। १७५।

इस श्लोक से विदित होता है कि स्त्री विधवा होने पर या पति से त्यागी जाने की दशा में फिर भार्य्या बन सकती है अर्थात् पुनर्विवाह कर सकती है। और उसकी सन्तान दूसरे पति का पौनर्भव पुत्र कहलायेगी।

१७६ वें श्लोक का अर्थ यह है :—

वह स्त्री अगर अक्षत योनि होकर दूसरे का आश्रय ले पौनर्भव पति के साथ पुनर्विवाह नामक संस्कार की अधिकारिणी होती है।

यहां कुल्लूक भट्ट स्पष्टतया मानते हैं कि न केवल का ही पुनर्विवाह हो सकता है किन्तु उस स्त्री का कुमार पति को छोड़कर दूसरे के पास रहे और फिर पति के पास आ जाय। यहां कुल्लूक भट्ट की 'कुमार' की कल्पना मनुस्मृति के मूल श्लोक के अनुकूल नहीं होता है कि कुल्लूक भट्ट जी अपने रिवाज के झगड़े गये। क्योंकि यह कहना कि यदि स्त्री अपने पति जाय, मनुस्मृति के सिद्धान्त से असंगत है। क्योंकि अनुकूल बालकों का विवाह ही नहीं हो सकता बालक पति को कैसे छोड़ सकती है? इसी प्रकार भी मनुस्मृति के आधुनिक टीकाकार पक्षपात

मन माने शब्द मिला देते हैं। जैसे ऋषि कुमार पण्डित राम स्वरूप जी मुरादाबादी इस श्लोक का अर्थ करते हुए कोष्ठ में लिखते हैं :—(यह विवाह द्विजातियों के लिये निन्दित है)। यह सर्वथा अनधिकार चेष्टा है क्योंकि मूल श्लोकों में वा इसके पूर्वस्थ श्लोकों में कोई ऐसा शब्द नहीं जिस से शूद्रत्व की दुर्गन्ध आसके।

अब प्रश्न यह है कि क्या मनुस्मृति में कोई श्लोक ऐसा नहीं है जिससे विधवा विवाह वा नियोग का निषेध होता हो।

इस सम्बन्ध में दो बातें विचारणीय हैं :—

(१) प्रथम तो जो मनुस्मृति आज कल मिलती है उस में समय पाकर लोगों ने मनमानी बातें मिला दी हैं। जिन के लिये एक नहीं किन्तु अनेक प्रमाण हैं। यह सिद्धान्त सभी विद्वानों का है और प्राचीन प्रतियों को यदि मिलाया जाय तो भेद भी पाया जाता है। और यही कारण है कि मनुस्मृति में कहीं कहीं परस्पर विरोध भी पाया जाता है।

(२) दूसरी बात यह है कि जो श्लोक विधवा विवाह तथा नियोग के विरोध में उद्धृत किये जाते हैं वह वस्तुतः विरुद्ध नहीं किन्तु उन का अर्थ ही अन्य है। यदि आप विरोध सूचक अर्थ करने का ही हठ करें और हमारे अर्थों को स्वीकार न करें अर्थात् यदि आप इस सिद्धान्त को मानें कि कहीं विधि और कहीं निषेध है तो परस्पर विरोध होने से मनुस्मृति प्रामाणिक भी नहीं ठहरती। एक पुरुष विधि सूचक श्लोक पढ़ कर कहता है कि पुनर्विवाह धर्मानुकूल है। दूसरा निषेधात्मक श्लोक पढ़कर उसका विरोध करता है। कोई बुद्धिमान मनुष्य अपनी पुस्तक में दो परस्पर सिद्धान्त नहीं लिख सकता, फिर मनु की क्या कथा।

पहले हम नियोग सम्बन्धी वह श्लोक देते हैं जिन्हें विरुद्ध समझा जाता है परन्तु वास्तव में अनुकूल ही हैं।

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा
वर्त्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां
स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥

मनु० अ० ९ श्लोक ६३।

अर्थ :—नियोग द्वारा सम्बद्ध हुये जो स्त्री पुरुष विधि को छोड़ कर काम चेष्टा से वर्त्तते हैं वह दोनों पतित हो जाते हैं, जैसे पुत्र वधू या गुरू की स्त्री के साथ संगमन करने वाले।

यहां स्पष्टतया दिखाया गया है कि नियोग "विधि अनुकूल" करें। बिना विधि के सम्बन्ध करना महापाप है यह बात विवाह में भी है अर्थात् यदि एक कुंआरा पुरुष कुंआरी कन्या से विवाह की विधि छोड़ कर अन्यथा संगमन करता है तो वह पतित हो जाता है। उसे चाहिये कि पहले विवाह करे, तत्पश्चात् संगमन। यह श्लोक वस्तुतः विधि के अभाव का विरोधी है न कि नियोग का।

नान्यस्मिन् विधवा नारी
नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना,

धर्मं हन्युः सनातनम् ॥

मनु० अ० ६, श्लोक ६४।

अर्थ –द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को चाहिये कि अन्य जाति वाले के साथ विधवा स्त्री का नियोग न करें। अन्य जाति वाले के साथ नियोग करने वाले सनातन धर्म का हनन करते हैं।

इस श्लोक में बताया है कि नियोग सवर्ण में ही होना योग्य है विरुद्ध वर्ण में नहीं, जिस से वर्णसंकरता न हो। इसमें नियोग का विरोध नहीं। यदि कोई कहे कि ब्राह्मण को अपनी कन्या इतर जातियों में नहीं विवाहनी चाहिये तो क्या इसका तात्पर्य्य यह होगा कि ब्राह्मण को अपनी कन्या ही नहीं विवाहनी चाहिये ?

नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु
नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाह विधावुक्तं
विधवा वेदनं पुनः ॥

मनु० अ० ६, श्लोक ६५।

अर्थः—विवाह के मंत्रों में नियोग नहीं किया जाता और न विवाह की विधि में 'पुनः विधवा वेदन' अर्थात् नियोग को कहा गया है। यह श्लोक नियोग का विरोधी नहीं। यहां केवल यह दिखाया गया है कि विवाह की विधि अलग और नियोग की अलग है। विवाह की विधि में नियोग नहीं किन्तु नियोग की विधि में नियोग है "विधवा वेदनं पुनः" का अर्थ नियोग है अर्थात् विधवा का सन्तानोत्पत्ति के लिये वेदन अर्थात् ग्रहण करना।

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः,
पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो,
वेने राज्यं प्रशासति ॥
स महीमखिलां भुञ्जन्
राजर्षिप्रवरः पुरा ।
वर्णानां संकरं चक्रे,
कामोपहत चेतनः ॥
ततः प्रभृति यो मोहात्,
प्रमीतपतिकां स्त्रियम्
नियोजयत्यपत्यार्थं,
तं विगर्हन्ति साधवः ॥

मनु० अ० ६ श्लोक ६६, ६७, ६८।

अर्थ—यह (नियोग) वेन राजा के राज में विद्वान द्वि द्वारा निन्दित किया गया और मनुष्यों के लिये ऐसा ही क गया। ६६।

वह प्रवर राज-ऋषि पहले समस्त पृथ्वी को भोगता हु काम चेष्टा से प्रेरित होकर वर्णसंकरता पैदा किया कर था। ६७।

उस समय से जो मोह से विधवा स्त्री के साथ सन्त

उत्पन्न करने के लिये नियोग करता है, उसे भले लोग निन्दित समझते हैं। ६८।

इन तीनों श्लोकों में केवल इतना दिखाया गया है कि वेन के राज में नियोग को पशु धर्म समझा जाने लगा क्योंकि वेन काम वश वर्णसंकरता उत्पन्न करता था। इस लिये वेन के पश्चात् नियोग की निन्दा होने लगी।

इन श्लोकों से यह सिद्ध होता है कि :—

(१) वेन से पूर्व नियोग पशुधर्म नहीं समझा जाता था।

(२) वेन ने नियोग का दुरुपयोग किया।

(३) उस समय से लोग इसे अधर्म समझने लगे।

इन्हीं श्लोकों पर ऋषि कुमार पं० रामस्वरूप जी ने एक टिप्पणी भी दी है :—

"कलि से अन्य युग में नियोग विहित है। कलियुग में निषिद्ध है अथवा नियोग से अनियोग पक्ष श्रेष्ठ है।" इनका भी यही अभिप्राय है कि नियोग पहले धर्म समझा जाता था। दुरुपयोग तो प्रत्येक वस्तु का बुरा है। सोना मनुष्य को लाभदायक है परन्तु जो दिन भर सोता रहे तो हानि होगी। अब यदि कोई पुरुष दिन भर सोने वाले को देखकर 'सोने' का सर्वथा निषेध करे तो अनर्थ होगा इसी प्रकार वेन की करतूतों को देख कर विद्वानों को केवल इस दुरुपयोग का निषेध करना चाहिये था न कि उचित और विधियुक्त नियोग का भी। अब एक और श्लोक है :—

न दत्त्वा कस्य चित्कन्यां
पुनर्दद्याद्विचक्षणः।
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि

प्राप्नोति पुरुषान्तरम् ॥

मनु० अ० ९, श्लोक ७१।

इसका सीधा अर्थ यह हुआ "किसी को कन्या देकर फि बुद्धिमान दूसरे को नहीं देवे। देकर फिर देने से मनुष्य भ्र हो जाता है।" इसका यह तात्पर्य नहीं कि विधवा का पुनर्वि वाह न करे। यहां केवल इतना है कि यदि किसी ने अप कन्या, एक पुरुष को विवाह दी तो यह नहीं हो सकता। उससे लेकर फिर दूसरे को विवाह दे। नहीं तो मनुष्य का भागी होगा। इसमें विधवा का वर्णन नहीं। यदि ऐ होता तो इसी अध्याय के ७६ वें श्लोक में ऐसा न कहते।

प्रोषितो धर्म कार्य्यार्थं

प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।

विद्यार्थं षट् यशोर्थं वा

कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥

मनु० अ० ९ श्लोक ७६।

धर्म कार्य्य से परदेश गये हुये पति की आठ वर्ष र देखे, विद्या या यश के लिये गये हुये की ६ वर्ष और कामा गये हुये के लिये ३ वर्ष। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि इसके पश्चात् वह अन्य पति का आश्रय ले। जो लोग कहते हैं कि ऐसी अवस्था में वह अपने पति के पास च जाय वह अपनी गढ़न्त लिखते हैं क्योंकि श्लोक में ऐ नहीं है और न प्रकरण ही इसका है। यह अर्थ नारद स्मृ अध्याय १२ से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है :—

अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत
ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम्।
अप्रसूता तु चत्वारि
परतोऽन्यं समाश्रयेत्॥

नारद० अ० १२ श्लोक ६८।

अर्थः—ब्राह्मणी परदेश गये हुये पति की आठ वर्ष प्रतीक्षा करे। और यदि सन्तान रहित हो तो चार वर्ष। इसके पश्चात् दूसरे पति का आश्रय ले। इससे पता चलता है कि नारद स्मृति के लेखक के हृदय में मनु का यही श्लोक होगा क्योंकि नारद स्मृति का अधिकांश में आधार मनु-स्मृति पर ही है और इसके ८५६ श्लोकों में से ३७ श्लोक तो तद्वत् मनुस्मृति के ही हैं❀।

अब हम तीसरे और चौथे प्रश्न को लेते हैं। मनु जी ने किसी श्लोक में पुनर्विवाहित विधवा स्त्री अथवा उस पुरुष को जो ऐसी स्त्री से विवाह करे जाति-च्युत या पदच्युत करने का उल्लेख नहीं किया और कर भी कैसे सकते थे जब उन्होंने अन्य श्लोकों में पुनर्विवाह अथवा नियोग की आज्ञा दे दी हो। ११ वें अध्याय में उन्होंने प्रत्येक पाप का प्राय-श्चित दिया है जिस में छोटे बड़े सभी प्रकार के पापों का वर्णन है परन्तु उसमें विधवा-पुनर्विवाह का, स्त्री या पुरुष किसी की ओर से प्रायश्चित नहीं लिखा इससे भी प्रकट होता है कि मनु जी ऐसा करना पाप नहीं समझते थे।

अब पाँचवाँ प्रश्न रह गया अर्थात् क्या पुनर्विवाहित

❀ The ordinances of Manu by A. C. Burnell, Introduction page—31.)

विधवा की सन्तान अपने पति का दाय भाग प्राप्त सकती है। इस विषय में पूर्ण विचार आगे दिये जायेंगे।

अब हम याज्ञवल्क्य स्मृति को लेते हैं। इसके आ अध्याय के ६७ वें श्लोक में लिखा है :—

अक्षता च क्षता चैव
पुनर्भूः संस्कृता पुनः ।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा
सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥

इस श्लोक पर मिताक्षरा टीका इस प्रकार है :-

"अन्य पूर्वा द्विविधा पुनर्भूः स्वैरिणी चेति । पुनर्भूः द्विविधा क्षता चाक्षता च। तत्रक्षता संस्कारात्प्रागेव पु सम्बन्ध दूषिता। या पुनः कौमारे पतिं त्यक्त्वा कामतः स माश्रयति सा स्वैरिणीति" ॥ ६७ ॥

यहां दो प्रकार की स्त्रियां बताई गई हैं एक अनन्य और दूसरी अन्यपूर्वा अनन्यपूर्वा वह है जिसका वि संस्कार से पहले किसी अन्य के साथ विवाह या संगम हुआ (अनन्य पूर्विकां दानेनोपभोगेन वा पुरुषान्तरा गृहीतामिति मित्राक्षरा) हो। दूसरी अन्यपूर्वा अ जिनका विवाह से पूर्व अन्य पुरुष से सम्बन्ध होगया है अन्य पूर्वा के दो भेद कहे एक स्वैरिणी और दूसरी पुनर्भू अर्थात् जिसका पुनर्विवाह हो जाता है। पुनर्भू के फिर भेद किये अर्थात् एक क्षता जिसका पूर्व पति से संयोग चुका हो और दूसरी अक्षता अर्थात् जिसका संस्कार हुआ हो परन्तु पति के साथ संयोग न हुआ हो। इन दो

प्रकार की स्त्रियों को याज्ञवल्क्य स्मृति कार "पुनः संस्कृता" या "पुनर्भूः" बताते हैं। अर्थात् वह पुनर्विवाह की अधिकारिणी हैं।

यही नहीं किन्तु यह स्मृति नियोग की भी पक्षपातिनी है :—

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो
देवरः पुत्र कामयया।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा
घृताभ्यक्त ऋतावियात्॥
आगर्भ सम्भवाद्गच्छेत्
पतितस्त्वन्यथा भवेत्।
अनेन विधिना जातः
क्षेत्रजोऽस्य भवेत्सुतः॥

याज्ञवल्क्य स्मृति आचाराध्याय विवाह प्रकरण श्लोक ६८, ६९।

इस पर मिताक्षरा टिप्पणी है :—

अपुत्रामलब्धपुत्रां पित्रादिभिः पुत्रार्थमनुज्ञातो देवरो भर्त्तुः कनीयान्भ्राता सपिण्डो वा उक्तलक्षणः सगोत्रो वा। एतेषां पूर्वस्य पूर्वस्याभावे परः परः घृताभ्यक्तसर्वाङ्गः ऋतावेव वक्ष्यमाण लक्षणे इयाद गच्छेत् आगर्भोत्पत्तेः। ऊर्ध्वं पुनर्गच्छन् अन्येन वा प्रकारेण तदा पतितो भवति। अनेन विधिनोत्पन्नः पूर्व परिणेतुः क्षेत्रजः पुत्रो भवेत्।

अर्थात् सन्तान रहित स्त्री के साथ बड़ों की आज्ञा से,

पुत्र की कामना से पति का छोटा भाई सपिण्ड या स
घी पोत कर, ऋतु काल में समागम करे जब तक
रह जाय। यदि इससे अन्यथा काम करे तो पतित हो
इस प्रकार से उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्रज कहलाता है।

यहां मिताक्षरा एक विशेषण देती है :—

"एतच्च वाग्दत्ताविषयमित्याचार्य्याः।
'यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये
पतिः। तामनेन विधानेन निजो वि
देवरः'। इति (९।६९) मनुस्मरणात्" ॥६८

अर्थात् मनुस्मृति के ९ वें अध्याय ६९वें श्लोक के
सार यहां वाग्दत्ता के विषय में कहा गया है। यह मित
की खींचा तानी है क्योंकि मूल श्लोक में न तो मनु की
संकेत है और न वाग्दत्ता की ओर। वाग्दत्ता कन्या के वि
का प्रकरण भी मनुस्मृति के ६८वें श्लोक के पीछे है
वेन राजा के समय का वृत्तान्त दिया हुआ है। अर्था
राजा के समय में नियोग को गर्हित समझ कर भी वा
कन्या के साथ नियोग निषिद्ध नहीं किया। परन्तु
पूर्व ९वें अध्याय के ५९वें श्लोक में मनुस्मृति में।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा
स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया

अर्थात् वाग्दत्ता से इतर स्त्रियों के भी नियोग का वि
है और प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य भी ऐसा ही मानते

याज्ञवल्क्य स्मृति के पश्चात् हम पाराशर स्मृति
प्रमाण देते हैं। जो पौराणिक मतानुसार कलियुग की
विशेष स्मृति समझी जाती है। क्योंकि लिखा है कि :—

कृते तु मानवा धर्मा-
स्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥
द्वापरे शंख लिखिताः
कलौ पाराशराः स्मृताः ॥

पाराशर स्मृति अ० १ श्लोक २४, २५।

अर्थात् सत्ययुग में मनुस्मृति, त्रेता में गौतम स्मृति, द्वापर में शङ्ख और लिखित स्मृति और कलियुग में पाराशर स्मृति प्रमाण है।

हमारा यह निजमत नहीं कि भिन्न भिन्न युगों की भिन्न भिन्न स्मृतियां हैं या होनी चाहियें क्योंकि सांख्य दर्शन में कपिल मुनि ने स्पष्ट लिखा है कि

न कालयोग तो व्यापिनो
नित्यस्य सर्व सम्बन्धात्।

सांख्य० अ० १ सूत्र १२।

काल से मनुष्य के धर्म अर्थात् कर्त्तव्याकर्त्तव्य में भेद नहीं आता। और मनुस्मृति का जो यह श्लोक है कि

अन्ये कृत युगे धर्म्मा
स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां
युगह्रासानुरूपतः ॥

मनु० अ० १ श्लोक ८५।

अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के धर्म अलग अलग हैं। इस को यदि ठीक भी माना जाय तो मनुस्मृति में यह नहीं लिखा गया कि मनुस्मृति केवल सत्युग के लिये है। वेदों के लिये भी कहीं उल्लेख नहीं है अर्थात् कलियुग होने से उन की प्रामाण्यता में कुछ बाधा नहीं पड़ती। फिर ने यह कहीं नहीं बताया कि सत्ययुग के कौन से धर्म कलि में मानने नहीं चाहियें। हमारे इस नि के होते हुये भी जो लोग भिन्न भिन्न युगों में भिन्न स्मृतियां मानते हैं उनको पाराशर स्मृति पर भली प्र ध्यान देना योग्य है :—*

नष्टे मृते प्रब्रजिते
क्लीबे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां
पतिरन्यो विधीयते॥

अर्थात् पति के खोने, मरने, सन्यासी, नपुंसक पतित होने आदि पांच आपत्तियों में स्त्रियों को दूसरा करने की विधि है।

यह श्लोक इतना स्पष्ट है और पौराणिक लोगों पाराशर स्मृति का इतना मान्य है कि विधवा पुनर्वि के विरोधी बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं। उन्हें न तो पा शर स्मृति को छोड़ते ही बनता है और न विधवा

*"श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस" सं० १९६४ की मुद्रित पाराशर स्मृति अ० ४ श्लोक

संस्कार को मानते ही। मैं समझता हूं कि पण्डित मण्डली ने इस श्लोक के अर्थों को पलटने में जितना चोटी से एड़ी तक पसीना बहाया है और व्याकरण साहित्य आदि की बाल की खाल निकालने में जितना प्रयत्न किया है उतना शायद ही किसी अन्य विषय में किया गया हो। श्री भर्तृहरि जी ठीक कहते है कि :—

पुरा विद्वत्तासीदुपशमविशां क्लेश हतये।
गता कालेनासौ विषय सुख सिद्धिं विषयिणाम् ॥

अर्थात् पहले विद्या (विधवा जैसी) दुखियों के दुःख दूर करने में लगाई जाती थी परन्तु अब काल की गति से यह विषयी लोगों की विषय पूर्त्ति के काम में आती है। अर्थात् आज कल पण्डित मण्डली स्वयं तो बहुत से विवाह रूप विषय सुख को सिद्ध करती है, एक कुलीन पण्डित कई कई विवाह करने और दहेज़ लेने में संकोच नहीं करता। परन्तु दुखी विधवाओं के घावों पर नमक छिड़कने के लिये समस्त पाण्डित्य को व्यय कर दिया जाता है। इधर तो एक, दो, तीन, चार, आठ, दश वर्ष की अवस्था की विधवाओं की चीख़ पुकार जिनसे पृथ्वी फटती और आकाश थरथराता है।

अपि ग्रावा रोदित्यपदलति वज्रस्य हृदयम् ॥

इधर भ्रूण हत्या से पापों की वृद्धि हो रही है उधर पण्डित जी व्याकरण हाथ में लिये सूत्रों को तोड़ मरोड़ कर

इस प्रयत्न में लगे हुये हैं कि विधवायें बढ़ कर इनका प्र
माद और भी अधिक हो जाय। यदि कोई पण्डित भू
भूखा होकर भोजन मांगे और आप भोजन के स्थान में उ
भोजन शब्द व्याकरणरीत्या सिद्ध करने को कहें। या
के शब्दों में साहित्य सम्बन्धी दोष दिखावें तो उसे कि
क्रोध होगा। यदि किसी का घर जलता हो और आ
सहायता मांगी जाय। और आप सहाय न करके व्या
के सूत्रों की मरमार करने लगें तो क्या परिणाम हो
इसी प्रकार इधर तो विधवाओं के दुःख से भारत पीड़ि
रहा है उधर व्यवहार—अपण्डितों को शब्दों की सिद्धि
पड़ी हुई है। हा! कैसा दुर्भाग्य का समय है कि
को छोड़ कर लोग केवल शब्दों के जाल में फंस गये।
चांवल छोड़ कर भूसी खाने लगे!!

हां, हम अब ऊपर दिये हुये श्लोक की भी मीमांसा
हैं। इस में बड़े झमेले का शब्द 'पतौ' है जो 'पति' श
म्यन्त पद (अधिकरण कारक) है। साधारणतया 'पति'
सप्तम्यन्त 'पत्यौ' बनता है और इस श्लोक में 'पतौ'
प्रयोग हुआ है। इसी पर आकाश पाताल एक किया
रहा है विधवा विवाह के विरोधियों के इस विषय में
मत हैं और उन सब का उद्देश एक है अर्थात् येन
प्रकारेण विधवा विवाह का निषेध किया जाय।

(प्रश्न) चूंकि 'पति' शब्द का सप्तम्यन्त पद 'प
बनता है और यहां 'पतौ' है अतः यह शब्द 'पतौ'
किन्तु 'अपतौ' है अर्थात् 'पतिते' के पश्चात् अकार का
हो गया है वस्तुतः उसको यों पढ़ना चाहिये।

नष्टे मृते परिव्रजते क्लीवे च पतितेऽपतौ

(उत्तर) यह प्रश्न तो जड़ दिया परन्तु क्या यह भी सोचा है कि 'अपति' शब्द का क्या अर्थ है। और यहां उसकी क्या संगति है। पाठकगण! क्या आप को किसी कोष में 'अपति' शब्द मिला?

(प्रश्न) 'अपति उस पति को कहते हैं जिसका विवाह नहीं हुआ किन्तु मगंनी हुई है। देखो 'अपति' शब्द का कोष में यह अर्थ दिया हुआ है। वह जिसका पति न हो। या वह जो पति न हो।

(उत्तर) तुम्हारे कोष के बताये हुये दोनों अर्थ इस श्लोक में नहीं लग सकते। यदि 'अपति' का अर्थ करें वह व्यक्ति जिसका 'पति' नहीं है तो श्लोक का अर्थ ही गड़बड़ हो जायगा। और यदि 'अपति' का अर्थ वह पुरुष जो पति नहीं है तो इसका अर्थ होगा 'अविवाहित'। फिर किसी दशा में तुम इससे मंगनी हुये का अर्थ न ले सकोगे। क्या 'अब्राह्मण' का अर्थ यह है कि जो ब्राह्मण न हो किन्तु होने वाला हो। क्या इसी प्रकार 'अदीन' 'अनाथ' आदि शब्दों में 'अ' का यही अर्थ है? यहां 'अपतौ' नहीं किन्तु 'पतौ' ही है और इसका अर्थ 'पत्यौ' ही है। इसके लिये जैन मत की पुस्तकें देखो जिनमें यही श्लोक रूपान्तर के साथ लिखा हुआ है :—

पत्यौ प्रव्रजिते क्लीबे
प्रनष्टे पतिते मृते।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां
पतिरन्यो विधीयते॥

(प्रश्न) हम जैनियों के ग्रन्थों को स्वीकार नहीं क
वह तो नास्तिक हैं। यहां 'अपतौ' ही है।

(उत्तर) अच्छा जाने दो। पाराशर माधवी तो जै
की पुस्तक नहीं। उसमें ४६१ पृष्ठ पर लिखा है:—

नष्टे मृते प्रव्रजते
क्लीबे च पतिते तथा।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां
पतिरन्यो विधीयते॥

यहां तुम 'अपति' किसी प्रकार नहीं जोड़ सकते।

(प्रश्न) यदि हम तुम्हारी बात मान भी लें तो भी
प्रश्न शेष रह जाता है कि स्मृतिकार ने ऐसी भूल क्यों
क्या उनको यह भी नहीं मालूम था कि 'पति' के रूप स
विभक्ति में किस प्रकार होते हैं?

(उत्तर) यह बात नहीं। छंद में कवि लोग व्या
के नियमों का उल्लंघन भी कर जाते हैं। क
कालिदास के काव्यों में भी यह निरंकुशता पाई जात
आर्ष प्रयोग तो अनेक अंशों में व्याकरण से भिन्न भी
है। जब तुम पाराशर स्मृति को आर्ष ग्रन्थ मानते हो
इस प्रकार के आक्षेप उचित नहीं हैं। देखो पाराशर
में 'पति' का सप्तम्यन्त पद 'पत्यौ' और 'पतौ' दोनों
तरह आया है।

'पत्यौ' का उदाहरण :—

तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ

द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डस्तु
मृते भर्त्तरि गोलकः॥

पाराशर स्मृति अ० ४ श्लोक २३।

'पतौ' का दूसरा उदाहरण :—

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ।

पाराशर० अ० १० श्लोक ३१।

यहां 'अपतौ हो ही नहीं सकता।

(प्रश्न) अजी हम वैयाकरण हैं। जब तक किसी व्याकरण का उदाहरण न मिले, तुम जैसे असंस्कृतज्ञों की बात नहीं मान सकते!

(उत्तर) अच्छा वैयाकरण की साक्षी ही देते हैं। परन्तु अब कभी विधवा विवाह का विरोध मत करना। क्योंकि पक्षपाती संस्कृतज्ञ भी अविद्वानों के समान हैं। सिद्धान्त कौमुदी में दिये हुये अष्टाध्यायी के "पतिः समास एव" ।१।४।८ इस सूत्र पर तत्वबोधिनी टीका इस प्रकार है :—

"पतिः समास एव॥ एवकार इष्टतोऽवधारणार्थः। अन्यथा हि 'समासे पतिरेव' इति नियमः संभाव्यते। ततश्च महाकविनेत्यादि प्रयोगो न सिध्येत्। "अनङ्विधौ" 'धात्वादेः' इत्यादि ज्ञापकानुसरणे तु प्रतिपत्ति गौरवं स्यादिति भावः॥ पत्येत्यादि। नन्वेवं 'शेषोऽघय सखि पती' इत्येवोच्यताम्। किमनेन 'पतिः समास एव' इति सूत्रेणेति चेन्न। लघुन्यायस्य

पतिरूपत्वाभावेन बहुव्रपूर्वकपतिशब्दस्यापि घि सं
स्यात्'। ततश्च सुसखिनेत्यादि वद बहु पतिनेत्यादि
ज्येत। इष्यते तु बहुपत्येत्यादि। नापि 'सखिपती सः
एव' इत्येव सूत्र्यतामिति शङ्क्यम्। बहु पत्येत्यादिवद्बहु
त्याद्यापत्तेः, इष्यते तु बहु सखिनेत्यादि। अथ क

"सीतायाः पतये नमः" इति "नष्टे मृते प्र
जिते क्लीबे च पतिते पतौ। पंचस्वापत्सु न
रीणां पतिरन्यो विधीयते" इति पराशर

अत्राहुः॥ पतिरित्याख्यातः पतिः—'तत्करोति तदा
इति णिचि टिलोपे 'अच इः' इत्यौणादिक प्रत्यये 'णेरनि
इति णिलोपे च, निष्पन्नोऽयं पतिशब्दः 'पतिः समास
इत्यत्र न गृह्यते। लाक्षणिकत्वादिति"॥

यहां हमने सूत्र के ऊपर समस्त टिप्पणी उद्धृत क
है। इसका भाषार्थ देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि
स्वयं वैयाकरण हैं, व्याकरण का ही विषय है। आप स
ही लेंगे। देखो यहां न केवल 'पति' का सप्तम्यान्त 'पतौ'
सिद्ध किया है किन्तु चतुर्थ्यान्त 'पतये' भी सिद्ध करा
है और दृष्टान्त भी दैवयोग से वही दिया है जिस पर
सन्देह करते हैं। अब तो न कहोगे?

(प्रश्न) देखो सनातन धर्म महामण्डल के अपूर्व
और संचालक श्रीस्वामी दयानन्द जी अपने रचे हुये सत्
विवेक में इस श्लोक पर यह सम्मति प्रकट करते हैं
पांच आपत्तियों में स्त्रियां किसी के घर बैठ जायं
विवाह न करें क्योंकि पुनर्विवाह करना दोष है। ऐसी
को जाति से च्युत भी कर देना चाहिये। हमको पुनर्वि

की अपेक्षा यह बात अच्छी मालूम होती है। पराशर भी यही कहते हैं कि अन्य पति करले। विवाह की आज्ञा तो वह भी नहीं देते।

(उत्तर) वाह जी वाह! कैसी विचित्र घटना है? यही क्यों न कह दो कि चाहे वेद कुछ कहे और स्मृति में कुछ भी लिखा हो हम वही करेंगे जो हमारे मन में आवेगा। यदि स्वामी जी तनिक 'विधीयते' शब्द पर दृष्टि डालते तो कदापि ऐसा न लिखते। क्योंकि जाति और धर्म के प्रतिकूल किसी के घर बैठ जाना 'विधि' नहीं और न उसके लिये 'विधीयते' शब्द का प्रयोग हो सकता है। यदि अन्य पति की "विधि" है तो उसमें दोष नहीं और यदि दोष नहीं तो जाति से च्युत करना कैसा? क्या कोई कह सकता है कि 'चोरी करना तुम्हारे लिये 'विधि' तो है परन्तु यदि चोरी करोगे तो दण्डनीय होगे? यदि विधि है तो दण्ड कैसा और यदि दण्ड है तो विधि कैसी? यदि जाति से वहिष्कृत ही होना है तो इस श्लोक की आवश्यकता क्या? सहस्रों स्त्री पुरुष प्रति दिन नियमोल्लंघन करते हैं। बहुत सी स्त्रियां दूसरों के घर में बैठ जाया करती हैं। क्या वह किसी से यह पूछती फिरती हैं कि पाराशर स्मृति में हमारे अन्य के घर बैठने की विधि दी है या नहीं?

दूसरी बात यह है कि 'पतिरन्यो' अर्थात् "दूसरा पतिः" शब्द पड़ा हुआ है। 'पति' विना विधियुक्त संस्कार के नहीं हो सकता 'पति और पत्नी' भाव उसी समय होता है जब विधि के अनुकूल संस्कार किया जाय। अतः यहां 'पति' और 'विधीयते' दो शब्द यही प्रकाशित करते हैं कि पाराशर स्मृति पुनर्विवाह के पक्ष में है और स्वामी दयानन्द की सत्यार्थ विवेक वाली कल्पना असंगत है।

तीसरी बात यह है कि पांच आपत्तियों में से एक आपत्ति 'पतिते पतौ' अर्थात् "पति का पतित" होना है। इससे भी प्रकट होता है कि यदि किसी स्त्री को पतित पति से घृणा होगी तो वह कदापि किसी के घर न बैठेगी। पतित काम से दूसरा पतित काम करके घृणा प्रकट नहीं की जा सकती। इससे भी हमारा ही मत सिद्ध है न कि सत्यार्थ विवेक का।

विना संस्कार के काम-चेष्टा मात्र से किसी को घर बिठाने वाले को 'पति' नहीं किन्तु 'जार' कहते हैं। जैसे कि इसी स्मृति के १०वें अध्याय के ३१वें श्लोक में आया है :-

जारेणजनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ।
तां त्यजेदपरेराष्ट्रे पतितां पापकारिणीं॥

इसी लिये ऐसी स्त्री को 'पतिता' और 'पापकारिणी' लिखा है।

(प्रश्न) पाराशर स्मृति के इस श्लोक में तो भले पुनर्विवाह संस्कार की विधि है परन्तु इस के आगे निषेधवाचक श्लोक भी तो हैं। इस से मालूम होता है कि पराशर जी वस्तुतः विधवा पुनः संस्कार के विरुद्ध हैं:-

मृते भर्त्तरि या नारी
ब्रह्मचर्य्य व्रते स्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं
यथा ते ब्रह्मचारिणः॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च
यानि लोमानि मानवे ॥
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे
भर्त्तारं याऽनुगच्छति ॥

पारा० अ० ४ श्लोक ३१, ३२।

अर्थ—पति के मरने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करती हैं वह मरनेपर ब्रह्मचारियों के समान स्वर्ग को प्राप्त करती हैं।३१।

और जो पति के साथ जाती हैं (अर्थात् सती हो जाती है वह साढ़े तीन करोड़ जो मनुष्य के शरीर में बाल हैं उतने वर्ष पर्य्यन्त स्वर्ग में निवास करती है। ३२।

(उत्तर) इससे विधवा विवाह का निषेध कैसे हुआ? यहां उन स्त्रियों का तारतम्य दिखलाया है जो पुनर्विवाह करतीं या ब्रह्मचारिणी रहती हैं। जो पुरुष आजन्म ब्रह्मचारी रह कर सन्यासी हो जाता है वह उस पुरुष की अपेक्षा उत्तम है जो विवाह करके "यौवने विषयैषिणाम्" अर्थात् गृहस्थियों की कोटि में सम्मिलित होता है परन्तु इस का यह तात्पर्य्य कदापि नहीं कि विवाह करना निषिद्ध है। इसी प्रकार विधवा विवाह के पक्षपाती यह नहीं कहते कि विधवाओं को ज़बरदस्ती पकड़ पकड़ कर विवाह कर दो। यदि वह ब्रह्मचारिणी रह सकती हैं तो इससे उत्तम क्या बात है। हम तो कहते हैं कि यदि कुमारियां भी इन्द्रिय-निग्रह कर सकें और आजन्म ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन कर सकें तो अत्युत्तम बात हो। परन्तु जिनके बुरे कर्म करने और गर्भपात कराने की सम्भावना है और जिनमें इन्द्रियों के वश में करने की अपूर्व शक्ति नहीं उन को ताले में बन्द

करके रोकना और बलात्कार पुनर्विवाह से वञ्चित करना सर्वथा अन्याय है। यों तो विधि में भी तारतम्य होता है परन्तु विधि का अर्थ यह है कि अमुक सीमा तक करने में मनुष्य जाति से बहिष्कृत या दण्डनीय नहीं समझा जाता। कल्पना कीजिये कि दान देना है। एक वह है जो सर्वस्व दूसरों के लिये दान कर देता है। और दूसरा वह है जो अपनी आय का एक छोटा सा भाग दान करता है। तीसरा कुछ भी दान नहीं देता। इन तीनों में कोई भी जाति—बहिष्कृत या दण्डनीय नहीं ठहराया जा सकता यद्यपि तीसरे की अपेक्षा दूसरा और दूसरे की अपेक्षा पहला अत्युत्तम है। इसी प्रकार वह स्त्रियां धन्य जो ब्रह्मचारिणी रहती हैं परन्तु व्यभिचारिणी और ... से तो वह स्त्रियां भी श्रेष्ठ हैं जो विधि के अनुसार विषय भोगती हैं इससे अधिक नहीं।

(प्रश्न) पाराशर स्मृति में विधवा विवाह विधायक श्लोक किसी विधवा विवाह प्रचारक ने मिला दिया मूल स्मृति में ऐसा न था और कई स्मृतियों में भी नहीं मिलता।

(उत्तर) देखो हम ने यह श्लोक उस पुस्तक से उद्धृत किया है जो वेङ्कटेश्वर जैसे कट्टर प्रेस में छपी हुई है जहां नये विचारों का स्पर्श तक नहीं हो सकता और जितनी पाराशर स्मृतियां जहां कहीं मिलती हैं उन सब में यह श्लोक इसी प्रकार मिलता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान काल में सब से पहले विधवा विवाह का प्रश्न बङ्गाल के प्रसिद्ध विद्वान् और सुधारक श्री पं० ईश्वरचन्द्र जी विद्या- सागर ने उठाया था। उस समय समस्त पण्डित मण्डल ने इस का विरोध किया था तब से लेकर आज

विधवा विवाह के विरोधियों का ही आधिक्य है और उन्हीं के हाथ में प्रायः संस्कृत के प्रसिद्ध छापेखाने और संस्कृत के पुस्तकों के मुद्रण और संस्करण रहे हैं । विधवा विवाह के पक्षपाती तो अपने विपक्षियों की छपाई हुई पुस्तकों का ही आश्रय लेते रहे हैं । आज कल अवश्य देखा जाता है कि जो श्लोक विधवा विवाह के अनुकूल पूर्व कालिक ग्रन्थों में पाये जाते थे वह आज कल की छपी हुई कतिपय प्रतियों में नहीं मिलते । इससे सम्भव जान पड़ता है कि यथा अवसर विधवा विवाह के विरोधी अपना हस्ताक्षेप करते रहते हैं । और 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' की लोकोक्ति चरितार्थ होती है । हमको ज्ञात हुआ है कि कुछ प्रेसों का विचार है कि पुराणों से वह श्लोक उड़ा दिये जांय जिन पर आर्य्य समाज के ग्रंथों में आक्षेप किया गया है । इस प्रकार आर्य्य सामाजिकों को झूठा सिद्ध करने का अच्छा अवसर हाथ लग जायगा । सम्भव है कि किसी भद्र पुरुष ने इस विचार को कार्य्यरूप में भी परिणित कर लिया हो । जो आक्षेप विधवा विवाह के पक्षपातियों पर किया जाता है वह इसके विरोधियों पर भी लग सकता है । अर्थात् सम्भव है कि उन्हों ने ही किसी समय पर और विशेष कर उस समय में जब कि विधवा विवाह की प्रथा सर्वथा उठ गई और एक द्विज भी इसके पक्ष में न रहा, वीच बीच में ऐसे श्लोक मिला दिये जिनसे नियोग और विधवा पुनः संस्कार का निषेध पाया जाय । यही कारण है कि जहां किसी ग्रन्थ में दो श्लोक विधि के मिलते हैं वहां उन्हीं के बीच में एक श्लोक निषेध का पड़ा हुआ है ।

नारद स्मृति भी विधवा पुनः संस्कार की आज्ञा देती वहां भी आठ प्रकार के विवाह गिनाते हुए पुनर्भू स्त्रि तीन भेद किये हैं :—

(१) कन्यैवाक्षतयोनिर्वा
पाणिग्रहण दूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता
पुनः संस्कारमर्हति ॥

नारद० अ० १२ श्लोक ४६।

अर्थ :—कन्या हो या अक्षतयोनि बाल विधवा हो जि केवल पाणिग्रहण ही हुआ हो उसको पहिली पुनर्भू हैं और वह फिर संस्कार कराने (अर्थात् पुनर्विवाह) अधिकारिणी है।

(२) कौमारं पतिमुत्सृज्य
यात्वन्यं पुरुषं श्रिता।
पुनः पत्युर्गृहमियात्
सा द्वितीया प्रकीर्त्तिता ॥

नारद० अ० १२, श्लोक ४७।

अर्थ :— बालक पति को छोड़कर जो अन्य का आ ले और फिर पति के घर आ जाय उसे दूसरी पु कहते हैं।

(३) असत्सु देवरेषु स्त्री

बान्धवैर्या प्रदीयते ।
सवर्णाय सपिण्डाय
सा तृतीया प्रकीर्त्तिता ॥

नारद० अ० १२, श्लोक ४८।

जिसके पति के छोटे भाई न हों और जो सम्बन्धियों द्वारा सवर्ण या सपिण्ड पुरुष को दे दी जावे वह तीसरी पुनर्भू कहलाती है।

इनमें पहिला श्लोक विधवा पुनर्विवाह के और तीसरा नियोग के पक्ष में है।

नियोग के पक्ष में अन्य श्लोक भी हैं जैसे :—

अनुत्पन्न प्रजायास्तु
पतिः प्रेयाद्यदि स्त्रियाः ।
नियुक्ता गुरुभिर्गच्छेद्
देवरं पुत्र काम्यया ॥

नारद० अ० १२, श्लोक ८१ *

अर्थ—यदि किसी ऐसी स्त्री का पति मर जाय जिसके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई तो बड़ों की आज्ञानुसार वह पुत्र की कामना से देवर के साथ नियोग करले।

'नष्टे मृत' इति श्लोक पाराशर स्मृति का नारद स्मृति में भी ज्यों का त्यों आया है (अ० १२, श्लो० ६७)

---

* नारदस्मृति Published by Asiatic Society Bengal New Series No. 542. 1885 (भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग).

वशिष्ठ स्मृति के कुछ प्रमाण आगे दिये जाते हैं :-

या च क्लीब पतितमुन्मत्तं वा भर्ता मुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते, मृते वा पुनर्भूर्भवति ।

वशिष्ठ० अ० १

अर्थः—जो स्त्री नपुंसक, पतित, पागल या मरे पति छोड़ कर अन्य पति से विवाह करती है वह पुनर्भू कहलाती है ।

नोट—याद रखना चाहिये कि स्वैरिणी या व्यभिचारिणी स्त्री को पुनर्भू नहीं कहते ।

आगे इसी स्मृति के इसी अध्याय में और स्पष्ट है।

पाणिग्रहे मृते बाला
केवलं मंत्र संस्कृता ।
सा चेदक्षत योनिः स्यात्
पुनः संस्कारमर्हति ॥

अर्थः—पाणिग्रहण होते ही पति के मरने पर यदि (बाल स्त्री) का केवल मंत्रों से संस्कार मात्र हुआ हो और वह अक्षत योनि अर्थात् पति के साथ सम्भोग की न हुई हो तो उसका फिर विवाह होना योग्य है ।

इसी श्लोक के ऊपर दो और श्लोक हैं। जो कि विधवा विवाह विधायक पुस्तकों में इस प्रकार दिये हुये हैं :—

अद्भिर्वाचा च दत्तानां
म्रियेताथो वरो यदि ।
कृतमंत्रोपनीतापि (१)
कुमारी पितुरेवसा ॥
यावच्चेदाहृता कन्या
मंत्रैरपि सुसंस्कृता । (२)
अन्यस्मै विधिवद्देया,
यथा कन्या तथैव सा ॥

परन्तु आज कल की छपी हुई स्मृतियों में इस प्रकार पाठ भेद है :—

न च मंत्रोपनीता स्यात् (१)
और
मंत्रैर्यदि न संस्कृता । (२)

परन्तु "पाणिग्रहे मृते वाला" इस श्लोक में कोई भी पाठ भेद नहीं है। इसमें आजकल की स्मृतियों में भी "मंत्रसंस्कृता' और "साचेदक्षतयोनिः" ही है। स्मृति के अनुसार "मंत्र संस्कृता अक्षत योनि" कन्या का विवाह विधियुक्त है। ऊपर जो "न च मंत्रोपनीता" और "मंत्रैर्यदि न संस्कृता" लिखा है यदि इसी प्रकार शुद्ध माना जाय तो परस्पर विरोध होगा अर्थात् कहीं मंत्र संस्कृता को पुनर्विवाह की विधि और कहीं निषेध। इससे सिद्ध होता है कि किसी समय

विधवा·विवाह के विरोधियो ने दो श्लोकों में भेद कर
और तीसरे में या तो भूल गये या किसी अन्य कारण
कर सके। चूंकि यह श्लोक पास पास ही हैं अतः प
अविरोध करने के लिये केवल इसी बात की सम्भावना
है। अन्यथा इसका कुछ निश्चित अर्थ ही न होगा।
यह भी कहा जा सकता है कि विधवा विवाह प्रचार
अपनी पुस्तकों में अशुद्ध उद्धृत कर दिया। परन्तु यदि
मानें तो मूल स्मृति में परस्पर विरोध पड़ेगा। और वि
विवाह के प्रचारकों के पास जब वशिष्ठ स्मृति का शु
श्लोक था तो उसी अर्थ का दूसरा गढ़ने की आवश्यक
क्या थी ?

इसके अतिरिक्त " वशिष्ठ धर्मशास्त्रम् " के पृष्ठ
लिखा है* :—

"प्रेतपत्नी षण्मासान् व्रतचारिण्यक्ष
लवणं भुञ्जानाधः शयीत ॥ ५५ ॥

ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्यः स्नात्वा
च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्म गुरुयोनि स
न्धान् संनिपात्यपिता भ्राता वा निय
कारयेत्" ॥ ५६ ॥ (अध्याय १७)

---

* जिसको Rev. Alois Auton Fahrer P.hd. Profe
Sanskrit St. Xavier's College Bombay ने Edit
और जो Government Central Book Depot Bom
१८८३ में छपा है।

अर्थ :—मरे हुये पुरुष की स्त्री ६ महीने व्रत रक्खे और नमक रहित वस्तुओं को खाकर नीचे सोवे। ५५।

और छः मास नहा कर और पति के लिये श्राद्ध देकर विद्या कर्म गुरु गोत्र आदि सम्बन्ध को विचार के पिता या भाई इसका नियोग करदे। ५६।

बौधायन धर्मशास्त्र के पृष्ठ १०१, चतुर्थ प्रश्न, प्रथम अध्याय में इस प्रकार लिखा है* :—

बलाच्चेत् प्रहृता कन्या
मंत्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद्देया,
यथा कन्या तथैव सा ॥ १५ ॥
निसृष्टायां हुते वापि
यस्यै भर्त्ता म्रियेत सः।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्
गतप्रत्यागता सती।
पौनर्भवेन विधिना
पुनः संस्कारमर्हति ॥ १६ ॥

अर्थ :—यदि किसी कन्या को ज़बरदस्ती ले जाया गया हो और यदि मंत्रों से उसका संस्कार न हुआ हो तो विधि

*Edited by E. Huultzsch P. hd. Vienna, printed at Leipzig 1884.

के अनुसार उसका दूसरे के साथ विवाह करदे। औ
जैसी कन्या वैसी वह। १५।

और जिसका विवाह संस्कार होगया हो और प[ति]
जावे और वह अक्षत योनि हो चाहे आई गई भी हो
पुनर्विवाह की विधि से उसका संस्कार होना चाहिये।

यहां दो प्रकार की कन्याओं के विषय में पुनर्विवाह
आज्ञा है :—

(१) वह कन्या जिसको कोई छीन ले गया हो
बिना विवाह के ही उसका धर्म भ्रष्ट कर दिया हो।

(२) वह कन्या जो अक्षत योनि तो है परन्तु विवा[ह]
होगया है और पति के घर में आई गई भी है।

अब हम लघुशातातप स्मृति को लेते हैं जो "आनन्द
प्रेस" की १९०५ ई० की छपी हुई है। (पृ० १२९)

उद्वाहिता च या कन्या
न संप्राप्ता च मैथुनम्।
भर्त्तारं पुनरभ्येति
यथा कन्या तथैव सा॥

समुद्धृत्य तु तां कन्यां
साचेदक्षतयोनिका।
कुल शीलवते दद्या-
दिति शातातपोऽब्रवीत्।

अर्थ :—जिस कन्या का विवाह होगया हो परन्तु जो मैथुन को प्राप्त न हुई हो उस का दूसरा पति हो सकता है क्योंकि जैसी कन्या वैसी वह।

उस कन्या को लेकर यदि वह अक्षत योनि हो, कुल और शील वाले पुरुष को देवे। ऐसा शातातप का कथन है।
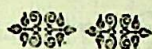
सातवाँ अध्याय।
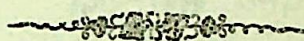
पुराणों का साक्षी।

स विधवा विवाह का विरोध करने वालों में अधिक संख्या उन लोगों की है जो पुराणों पर अपना विश्वास रखते हैं। उनका कहना है कि यद्यपि वेद में विधवा विवाह की आज्ञा हो तथापि पुराणों से विरुद्ध होने के कारण ऐसा करना ठीक नहीं क्योंकि इस काल में पुराणों का ही प्रचार होना चाहिये।

ऐसे पुरुषों से हमारी विनय है कि पुराण भी सर्वथा विधवा विवाह का खण्डन नहीं करते।

हम यहां पद्मपुराण भूमि खण्ड अध्याय ८५ से श्लोक उद्धृत करते हैं।

उज्ज्वल उवाच।

प्लक्षद्वीपे महाराज
आसीत्पुण्यमतिः सदा।
दिवोदासेति विख्यातः
सत्य-धर्म-परायणः ॥ ५० ॥
तस्यापत्यं समुत्पन्नं
नारीणामुत्तमं तदा।
गुणरूपसमायुक्ता
सुशीला चारु-मङ्गला ॥
दिव्या देवीति विख्याता
रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ५१ ॥
पित्रा विलोकिता सा तु
रूपलावण्यसंयुता।
प्रथमे वयसि दिव्या
वर्त्तते चारुमङ्गला ॥ ५२ ॥

स तां दृष्ट्वा दिवादासो
दिव्यादेवीं सुतां तदा ।
कस्मै प्रदीयते कन्या
सुवराय महात्मने ॥ ५३ ॥
इति चिन्तापरो भूत्वा
समालोच्य नृपोत्तमः ।
रूप देशस्य राजानं
समालोक्य महीपतिः ॥ ५४ ॥
चित्रसेनं महात्मानं
समाहूय नरोत्तमः ।
कन्यां ददौ महात्माऽसौ
चित्रसेनाय धीमते ॥ ५५ ॥
तस्या विवाहयज्ञस्य
संप्राप्ते समये नृप ।
मृतोऽसौ चित्रसेनस्तु
कालधर्मेण वै किल ॥ ५६ ॥
दिवोदासस्तु धर्मात्मा

चिन्तयामास भूपतिः।
ब्राह्मणान्स समाहूय
पप्रच्छ नृपनन्दनः ॥ ५७ ॥
अस्या विवाह-काले तु
चित्रसेनो दिवंगतः।
अस्यास्तु कीदृशं कर्म
भविष्यं तद्ब्रुवन्तु मे ॥
ब्राह्मणा ऊचुः— विवाहो जायते राजन्
कन्यायास्तु विधानतः।
पतिर्मृत्युं प्रयात्यस्या
नोचेत्सगं करोति च ॥ ५
महा-व्याध्यभिभूतश्च
त्यागं कृत्वा प्रयाति वा।
प्रव्राजितो भवेद्राजन्
धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥ ६०
उद्वाहितायां कन्याया-
मुद्वाहः क्रियते बुधैः।

न स्याद्रजस्वला याव-
दन्येष्वपि विधीयते ॥
विवाहं तु विधानेन
पिता कुर्य्यान्न संशयः ॥ ६१ ॥
एवं राजा समादिष्टो
धर्मशास्त्रार्थकोविदैः ।
विवाहार्थं समायात
इन्द्रप्रस्थं द्विजोत्तमैः ॥६२॥
दिवोदासः सुधर्मात्मा
द्विजानां च निदेशतः ।
विवाहार्थं महाराज
उद्यमं कृतवांस्तदा ॥ ६३ ॥
पुनर्दत्ता तदा तेन
दिव्या देवी द्विजोत्तमाः ।
रूपसेनाय पुण्याय
तस्मै राज्ञे महात्मने ॥
मृत्युधर्मं गतो राजा

विवाहस्य समीपतः ॥ ६१

यदा यदा महाभागो
दिव्या देव्याश्च भूमिपः।
चक्रे विवाहं तद्भर्त्ता
म्रियते लग्नकालतः ॥ ६२

एक विंशति भर्त्तारः
काले काले मृतास्तदा।
ततो राजा महादुःखी
संजातः ख्यातविक्रमः ॥ ६

समालोच्य समाहूय
मंत्रिभिः सह निश्चितः।
स्वयंवरे तदा बुद्धिं
चकार पृथिवीपतिः ॥

प्लक्षद्वीपस्य राजानः
समाहूता महात्मना।
स्वयंवरार्थमाहूता-
स्तथा ते धर्मतत्पराः ॥

तस्यास्तु रूपं संश्रुत्य
राजानो मृत्युनोद्दिताः।
संग्रामं चक्रिरे मूढा-
स्ते मृताः समराङ्गणे॥
एवं तात क्षयो जातः
क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥६६॥
दिव्यादेवी सुदुःखार्त्ता
गता सा ऽचल कन्दरम्।
रुरोद करुणं बाला
दिव्यादेवी मनस्विनी ॥७०॥

अर्थ :—उज्ज्वल ने कहा :—

"प्लक्ष द्वीप में सदा पुण्यमतिः सच्चे धर्म में परायण प्रसिद्ध महाराज दिवोदासे रहता था। उसके उस समय स्त्रियों में उत्तम, गुण और रूप युक्त, सुशील चारु मङ्गल, संसार में विख्यात रूप वाली 'दिव्यादेवी' नामक कन्या हुई। पिता ने जब देखा कि यह पूर्ण युवती रूप और लावण्य से युक्त और सुन्दर होगई तब वह यह सोच कर कि यह कन्या किससे विवाही जाय, चिन्ता करने लगा और रूप देश के राजा चित्रसेन को देख कर उसी बुद्धिमान के साथ दिव्यादेवी का विवाह कर दिया। उसके विवाहयज्ञ के प्राप्त होने के समय काल धर्म से प्रेरित होकर चित्रसेन मर गया।

तब धर्मात्मा दिवोदास ने ब्राह्मणों को बुला कर उनसे कि "इसके विवाह के समय चित्रसेन मर गया अब बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिये।"

ब्राह्मणों ने उत्तर दिया:—"हे राजन्! कन्या का वि तो विधि के अनुकूल हो सकता है यदि उसका पति जाय और पति के साथ उसका सङ्ग न हुआ हो, या को महा रोग लग गया हो, या पति उसे छोड़ कर जाय, या सन्यासी हो जाय। ऐसा धर्म शास्त्र में लिखा है। विवाहिता कन्या का बुद्धिमान लोग फिर दूसरों के विवाह कर देते हैं जब तक वह रजस्वला नहीं हुई अनुकूल पिता उसका विवाह कर दे। इसमें कोई नहीं।"

जब धर्मशास्त्र के जानने वाले पण्डितों ने राजा को उपदेश किया तो धर्मात्मा दिवोदास ने उसके विवाह फिर उद्यम किया और राजा रूपसेन के साथ उसका कर दिया। परन्तु विवाह के समीप ही वह राजा (रूप भी मर गया। जब जब राजा दिव्यादेवी का विवाह तब तब समय पर ही पति मर जाता। इस प्रकार जब मर गये तो राजा बहुत दुःखी हुआ। और मंत्रियों को कर फिर स्वयंवर की तैयारियां करने लगा और सब राजाओं को निमंत्रण दिया। और जब धर्मात्मा स्वयंवर के लिये बुलाये गये, उस लड़की के सौन्दर्य सुनकर मृत्यु से प्रेरित हुये राजा लोग आपस में ल और रण क्षेत्र में ही मर गये। इस प्रकार हे तात! क्षत्रियों का सर्व नाश हो गया। और दुखिया दि 'अचल कन्दरा' को चली गई। और वहां रोने लगी।"

हमने यहां पद्मपुराण से दिव्यादेवी का पूरा वृत्तान्त उद्धृत कर दिया है जिससे हमारे पाठक गण समस्त घटना पर पूर्णतया विचार कर सकें और किसी को यह कहने का साहस न हो कि हमने प्रकरण पर ध्यान नहीं दिया। यहां इतनी बातों पर ध्यान देना चाहिये :—

(१) दिवोदास ने दिव्यादेवी का २१ बार 'विवाह चक्र' विवाह किया।

(२) और उसके २१ पति मर गये।

(३) दिवोदास ने जब ब्राह्मणों से पहले विवाह के पश्चात् सम्मति मांगी तो उन्होंने निम्न बातें कहीं :—

(अ) यदि कन्या का पति मर जाय और उसका सह-वास न हुआ हो।

(आ) यदि पति महारोगी हो।

(इ) यदि पति उसे छोड़ कर चला जाय।

(ई) यदि सन्यासी हो जाय तो इन चारों दशाओं में "उद्वाहितायां कन्यायां" विवाहित कन्या का विवाह हो सकता है। यहां चारों दशायें वही हैं जो पाराशर स्मृति में दी हुई हैं अर्थात् नष्टे, मृते, प्रव्रजते, क्लीबे, पांचवीं दशा अर्थात् 'पतिते' का इसमें उल्लेख नहीं है। क्लीवत्व और महारोग समान हैं।

(४) दिवोदास शूद्र नहीं किन्तु महात्मा और गुणवान् क्षत्रिय था। इससे पद्मपुराण के अनुसार विधवा विवाह निषिद्ध नहीं है।

महाभारत में तो विधवा विवाह तथा नियोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। भीष्म पर्व के अध्याय ९१ में धनुर्धर अर्जुन के पुनर्विवाह का वर्णन है :-

अर्जुनस्यात्मजः श्रीमा-
निरावान्नाम वीर्य्यवान्।
सुतायां नागराजस्य
जातः पार्थेन धीमता॥
ऐरावतेन सा दत्ता
ह्यनपत्या महात्मना।
पत्यौ हते सुपर्णेन
कृपणा दीनचेतना॥

अर्थ :- नागराज की कन्या से अर्जुन का एक बड़ा लड़का उत्पन्न हुआ जिसका नाम इरावान् था।

जब सुपर्ण ऐरावत् ने उस (नागराज की कन्या) पति को मार डाला तो उस बुद्धिमान राजा (नागराज) अपनी दुःखिया कन्या का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया।
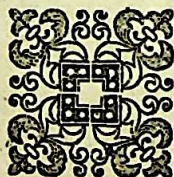
आठवाँ अध्याय ।

अङ्गरेज़ी क़ानून की आज्ञा ।

बहुत से विधवा विवाह के विरोधी लोगों को यह कह कर बहका देते हैं कि यदि तुम विधवा का विवाह करोगे तो तुमको सज़ा हो जायगी और विधवा की सन्तान भी हरामी या नाजायज़ कहलायेगी । हमने स्वयं देखा है कि जब एक ग्राम के भद्र पुरुष एक विधवा विवाह में सम्मिलित हुये तो उनको यह कह कर डराया गया कि तुमको क़ानून के अनुसार छः छः महीने की सज़ा होगी। उस समय उन अनभिज्ञ मनुष्यों को बड़ी घबराहट हुई ।

इस लिये हम यहां सरकारी क़ानून को भी उद्धृत किये देते हैं जिससे सर्व साधारण को इस विषय में अपने अधिकार और कर्त्तव्य ज्ञात हो जायं ।

जिस समय श्रीयुत पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बङ्गाल प्रान्त में विधवा पुनर्विवाह का प्रश्न उठाया उस समय यद्यपि विधवा-विवाह को अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई तथापि सब से बड़ा काम जो उक्त पण्डित जी ने किया और जिसके लिये हम सबको उनका कृतज्ञ होना चाहिये, यह था कि बृटिश गवर्मेण्ट में आन्दोलन करके हिन्दू ला (Hindu law)

में इस प्रकार का परिवर्त्तन करा दिया कि विधवा वि- जायज़ और नियमानुकूल निश्चित् होगया।

यह क़ानून २५ जूलाई १८५६ ई० को पास हुआ था इसका नाम "The Hindu Widows' Remarri- Act. 1856." अर्थात् "हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह निश्चय १८५६ है। इसकी मूल भाषा यह है :—

AN ACT TO REMOVE ALL LEGAL OBSTACLES TO MARRIAGE OF HINDU WIDOWS.

Preamble.

Where as it is known that by the law administered in the Civil Courts est- lished in the territories in the pos- sion and under the Government of the East In- Company, Hindu Widows with certain excepti- are held to be, by reason of their having b- once married, incapable of contracting a sec- valid marriage and the offspring of such wid- by any second marriage are held to be illeg- mate & incapable of inheritng property, a- where as many Hindus believe that this imp- legal incapacity, although it is in accorda- with established custom, is not in accorda- with a true interpretation of the precepts of th- religion, and desire that the civil law adminis- ed by the courts of Justice shall no longer p- vent those Hindus who may be so minded, fr- adopting a different custom, in accordance w- the dictates of their own conscience.

and where as it is just to relieve all such Hindus from this legal incapacity of which they complain, and the removal of all legal obstacles, to the marriage of Hindu widows will tend to the promotion of good morals, and to the public welfare. It is enacted as follows :–

Marriage of Hindu widows leg:lized.

1. No marriage contracted between Hindus (a) shall be invalid, and the issue(b) of no such marriage shall be illegitimate, by reason of the woman having been previously married or betrothed to another person who was dead at the time of such marriage, any custom and any interpretation of Hindu law to the contrary not withstanding.

2. (c)All rights and interests which any

Case law—

(a) Act applies only to Hindu widows' remarriage as such, 19c. 289 ; enables widows, unable to remarry previously, to remarry, 11A, 330 ; and does not apply to cases in which remarriage is allowed by custom of caste, 11 B. 119 ;

(b) Of a marriage under the Act can inherit, 4 P.R. 1905 ; 61P.R. 1905 ;

(c) S. 2 divests her of the right only if she marries after succeding to the estate. 26 B.388=4Bom. L.R. 73 ; 29 B. 91. (F.B =6 Bomb. L. R. 779 ; transfer by a Hindu—for legal necessity before her remarriage is valid, 8 C. L. J. 542 ;

widow (*a*) may have in her deceased husba[nd's] property by wa[y of] maintenance, or inheritance to [her] husband or to his lineal successors. or by vir[tue] of any will or testamentary disposition confer[ring] upon her, without express permission to rema[rry,] only a limited interest in such property, with[out] power of aienating the same, shall upon her [re]marriage cease and determine as if she has t[hen] died; and the next heirs of her deceased husb[and] or other persons entitled to the property on [her] death, shall thereupon succeed to the same.

Rights of widow in deceased husband's property to cease on her remarriage.

3. On the remarriage of a Hindu widow, [if] neither the widow [nor] any other person [has] been expressly con[sti]tuted by the will or testamentary disposition [of] the deceased husband the guardian of his chil[dren,] the father or paternal grandfather or the mot[her]

Guardianship of children of deceased husband on the remarriage of his widow.

(*a*) Section applies only to widows who could [not] have remarried prior to the Act, 11 A. 930; a-[widow of] caste in which remarriage is allowed, e. g., the Ku[rmi] can remain in possession of her husband's estate, till [her] death, 20A. 476; see also 29 A. 122; she does not [lose] her right to maintenance against her husband's est[ate], 31 A. 161; she forfeits estate inherited, 22 c. 589: f[rom] her son, 22 B. 321 (F. B.).

or paternal grand mother of, of the deceased husband, may petition the highest Court having original jurisdiction in civil cases in the place where the deceased husband was domiciled at the time of his death for the appointment of some proper person to be guardian of the said children, and thereupon it shall be lawful for the said Court if it shall think fit, to appoint such guardian, who when appointed shall be entitled to have the care & custody of the said children, or of any of them during their minority, in the place of their mother, and in making such appointment the Court shall be guided, so for as may be by the laws and rules in force touching the guardianship of children(*a*) who have neither father nor mother.

Provided that when the said children have not property of their own sufficient for their support and proper education whilst minors, no such appointment shall be made otherwise than with the consent of the mother (*b*) unless the proposed guardian shall have given security for the support and proper education of the children whilst minors.

4. Nothing in this Act contained shall be construed to render any widow who, at the time

---

Case law —(a) Meaning of—,4A 195; (b) who has no right to give her son in adoption, 24 B 89 ;

of the death of any person leaving any prop[erty]

Nothing in this Act to render any childless widow capable of inheriting.

is a childless wi[dow] ... capable of inheri[ting] the whole or any share of such property, if b[efore] the passing of this Act, she would have been capable of inheriting the same by reason of being a childless widow.

5. Except as in the three preceding sec[tions]

Saving of rights of widow marrying except as provided in Sections 2 and 4.

is provided, a wi[dow] shall not, by reason [of] her remarriage forfe[it] any property or any [right] to which she would otherwise be entitled, [and] every widow who has remarried shall hav[e the] same rights of inheritance as she would have [had] had such marriage been her first marriage.

6. Whatever words spoken, ceremonies [per]formed or engagem[ents] made on the marri[age of] a Hindu female wh[o has]

Ceremonies constituting valid marriage to have same effect on widows' marriage.

not been previously married, are sufficie[nt to] constitute a valid marriage, shall have the s[ame] effect if spoken, performed or made on the m[arriage]

(a) remarriage does not prevent such a widow fr[om in]heriting her son's property, 2 B.L.R. A. C. 189—1[...] R. 82; a remarried Marwar—cannot claim her [...] husband's property, 1 M. 226; right to give in [adop]tion is not a right reserved under the Section, 24 [...] Contra; 33 B. 107—11 Bom. L. R. 1134.

age of a Hindu widow, and no marriage shall be declared invalid on the ground that such words, ceremonies or engagements are inapplicable to the case of a widow.

Consent to remarriage of minor widows.

7. If the widow remarrying is a minor whose marriage has not been consummated, she shall not remarry without the consent of her father, or if she has no father, of her paternal grandfather, or if she has no such grand father, of her mother, or failing also brothers, of her next male relative.

Punishment for abetting marriage made contrary to this Section.

8. All persons knowingly abetting a marriage made contrary to the provisions of this section shall be liable to imprisionment for any term not exceeding one year or to fine or to both.

Effect of such marriage proviso.

And all marriages made contrary to the provisions of this section may be declared void by a Court of law: provided that, in any question regarding the validity of a marriage made contrary to the provisions of this section, such consent is ss aforesaid shall be presumed (a)until the contrary is proved and that no such marriage shall be declared void after it has been consummated.

Case law. (a) Section 8A, 143.

Consent to re-marriage of major widow.

In the case of a widow who is of full age whose marriage has been con-summated, her own consent shall he sufficient consent to constitute her remarriage lawful and valid.

हिन्दू विधवा पुनर्विवाह एक्ट १८५६।

कानून जिससे यह तात्पर्य्य है कि हिन्दू विध
विवाह करने में किसी प्रकार कानूनी रोक नहीं।

भूमिका

चूंकि यह बात मालूम है कि जो देश ईस्ट इण्डिया क
के स्वत्व और शासन में हैं उन देशों की दी
अदालतों के कानून के अनुसार थोड़ी सी हि
स्त्रियों को छोड़ कर शेष हिन्दू विधवायें एक बार विवा
जाने के कारण जायज़ तौर पर दूसरा विवाह नहीं कर
तीं और जो सन्तान उन विधवाओं के दूसरे विवाह से
हो वह अनुचित है और सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी

और चूंकि बहुत से हिन्दुओं का विश्वास है कि
कानून के अनुसार अनुचित ठहराना, यद्यपि रिवाज के
कूल है परन्तु उनके धर्मशास्त्र के वास्तविक अर्थों के अ
नहीं है और वह लोग यह बात चाहते हैं कि यदि भवि
कोई भी हिन्दू लोग जारी करना दूसरी रिवाज का
रिवाज के विरुद्ध, अपने आत्मा से स्वीकार करें तो उस
करने में कोई रुकावट दीवानी के कानून द्वारा न हो

और चूंकि यही न्याय है कि उन लोगों को इस
कानून से नाजायज़ ठहराने की रोक से छुड़ाया जाय कि

उनको शिकायत है। और हिन्दू विधवाओं के विवाह के विषय में सब क़ानूनी रुकावटों के उठा देने से सदाचार बढ़ैगा और शान्ति फैलेगी।

अतः यह आज्ञा होती है कि :—

(१) हिन्दुओं का कोई विवाह नाजायज़ न होगा और इसे प्रकार के किसी विवाह की सन्तान नाजायज़ न होगी केवल इस लिये कि स्त्री का पहले विवाह हो चुका या मंगनी हो चुकी। ऐसे पुरुष के साथ में जिसकी इस दूसरे विवाह के पहले मृत्यु हो गई। चाहे इस बात के विरुद्ध कोई रिवाज या शास्त्र की व्यवस्था हो।

(२) सब अधिकार जो किसी विधवा को अपने मृत पति की जायदाद में, गुज़ारे के लिये, या पति की उत्तराधिकारिणी होने के कारण, या पति के वंश में क़ानूनी उत्तराधिकारी होने के कारण मिलते हों, या उसको किसी वसीयतनामे के अनुसार, जिसमें स्पष्ट आज्ञा पुनर्विवाह की न हो, कोई जायदाद मिले जिसको पृथक करने का उसको अधिकार न हो, तो विधवा के दूसरे विवाह के समय वह सब जायदाद और अधिकार उसी प्रकार बन्द हो जायंगे और जाते रहेंगे कि जैसे वह विधवा मर गई होती और उस विधवा के मृत पति के निकटस्थ उत्तराधिकारी या वह लोग जो उस विधवा के मरने पर जायदाद के उत्तराधिकारी होते उस जायदाद को लेंगे।

(३) यदि हिन्दू विधवा के विवाह के समय उसके मृत पति ने अपने वसीयतनामें के अनुसार स्पष्टतया अपनी विधवा को या किसी अन्य पुरुष को अपनी सन्तान का वली नियत न किया हो मृत पति का पिता, या पिता का पिता, या माता या पिता की माता, या मृतपति के किसी सम्बन्धी पुरुष को इस बात का अधिकार होगा कि वह उसके स्थान पर

जहां मरने के समय वह मृतपति रहता था सब से [illegible]
अदालत में जिसको दीवानी के असली मुकद्दमे सुनने [illegible]
अधिकार है, यह अर्ज़ी दे कि उचित पुरुष उस सन्तान [illegible]
वली नियत किया जाय और उस अर्ज़ी पर यदि अदा[illegible]
उचित समझे तो वली नियत करदे और जब वली नियत [illegible]
तो उस वली को अधिकार होगा कि समस्त सन्तान या [illegible]
से थोड़े बच्चों का पालन पोषण और रक्षण उनकी कम अ[illegible]
होने तक उनकी माता के बजाय रक्खे। और जब अदा[illegible]
ऐसा वली नियत करे तो उसे जहां तक सम्भव हो सके [illegible]
सब कानूनों की पैरवी करनी पड़ेगी जो उन बच्चों के [illegible]
नियत करने के सम्बन्ध में हो जिनके माता पिता नहीं हैं।

परन्तु शर्त यह है कि यदि इन उपर्युक्त बच्चों के [illegible]
अपनी काफ़ी जायदाद न हो जिससे उनका छोटी अव[illegible]
पालन और शिक्षा हो सके तो माता की इच्छा के विना [illegible]
वली नियत न किया जायगा, सिवाय उस दशा के, जब [illegible]
यह ज़मानत करदे कि छोटी अवस्था में मैं इन बच्चों के पा[illegible]
पोषण और शिक्षा का भार अपने सिर लूंगा।

(४) इस क़ानून की किसी इबारत से यह बात न [illegible]
झी जायगी कि कोई विधवा जो किसी जायदाद वाले [illegible]
के मरने के समय सन्तान रहित है यदि इस क़ानून के [illegible]
होने से पूर्व सन्तान रहित होने के कारण जायदाद पाने [illegible]
अधिकारिणी नहीं थी तो वह अब उस सब जायदाद [illegible]
उसके किसी भाग के पाने की अधिकारिणी होगी।

(५) सिवाय उन शर्तों के, जिनका वर्णन इससे [illegible]
की तीनों धाराओं में हो चुका है, कोई विधवा पुनर्विवाह [illegible]
लेने के कारण किसी सम्पति या दायभाग से, जिसके [illegible]
की वह और प्रकार से अधिकारिणी है, अलग नहीं होगी।

प्रत्येक विधवा का जिसने पुनर्विवाह किया है उसी प्रकार का स्वत्व सम्पत्ति पर रहेगा मानो यह विवाह उसका पहला ही विवाह था।

(६) जिस हिन्दू स्त्री का पहले विवाह न हुआ हो उसके विवाह के समय में जिन शब्दों के बोलने या जिन रस्मों के करने या जिन प्रतिज्ञाओं के करने से वह विवाह विधि अनुकूल होता है, हिन्दू विधवा विवाह के समय उन्हीं शब्दों के बोलने, उन्हीं रस्मों या प्रतिज्ञाओं के करने से उसका पुनर्विवाह विधि अनुकूल ठहरता है। और कोई विवाह इस कारण से नाजायज़ न ठहराया जायगा कि ऐसे शब्द, या रस्में या प्रतिज्ञायें विधवा के विषय से सम्बद्ध नहीं हैं।

(७) यदि कोई विधवा पुनर्विवाह करना चाहे और वह नाबालिग़ हो और उसका पहिले पति से संयोग न हुआ हो तो अपने पिता, या जो पिता न हो तो पिता के पिता और जो पिता का पिता न हो तो अपनी माता और जो यह सब न हों तो अपने बड़े भाई और यदि भाई भी न होवें तो अपने दूसरे निकटस्थ सम्बन्धी की इच्छा के बिना वह विधवा पुनर्विवाह न करेगी।

(८) और जो लोग जान बूझ कर किसी ऐसे विवाह में सहायता दें जो इस धारा की शर्तों के विरुद्ध है तो वह सब लोग अधिक से अधिक एक वर्ष तक क़ैद या जुर्माना या दोनों के दण्डनीय होंगे।

और जो विवाह इस एक्ट की शर्तों के विरुद्ध किये जायें उनको नाजायज़ ठहराने का अदालत को अधिकार होगा।

पर शर्त यह है कि जो कोई झगड़ा इस प्रकार का पड़े कि विवाह इस कारण नाजायज़ है कि इस एक्ट की शर्तों के विरुद्ध किया गया है तो जब तक रज़ामन्दी सिद्ध न हो

उस समय तक रज़ामन्दी का देना स्वीकार कर लि
जायगा। और यदि उन स्त्री पुरुषों का संयोग होगया है
कोई विवाह नाजायज़ न ठहराया जायगा।

यदि विधवा बालि . है या उसका अपने पूर्व पति से सं
हो चुका है तो स्त्री की ही रज़ामन्दी उसके पुनर्विवाह
करने में क़ानून और रस्म के अनुसार जायज़ ठहराने
पर्याप्त होगी।

इस एक्ट से इतनी बातें प्रकाशित होती हैं:—

(१) प्रत्येक हिन्दू विधवा का पुनर्विवाह जायज़ है
अक्षत योनि, चाहे क्षतयोनि, चाहे सन्तान वाली या स
रहित।

(२) यदि अक्षत योनि और नाबालिग़ हो तो पुनर्वि
केवल पिता, पितामह, माता बड़े भाई, या इनके अभा
किसी निकटस्थ पुरुष की रज़ामन्दी से ही हो सकेगा।

(३) और यदि क्षत योनि या बालिग़ हो तो केवल
की रज़ामन्दी पर्य्याप्त है।

(४) जो सम्पत्ति विधवा को अपने पूर्व पति की
गुज़ारे के तौर पर मिलती है वह पुनर्विवाह के प
उससे छिन जाती है।

(५) परन्तु जो सम्पत्ति उसकी अन्यथा होती है
छिन नहीं सकती।

(६) विधवा की पुनर्विवाहित पति से जो सन्तान
है वह जायज़ सन्तान अपने पिता की होती है और उ
सम्पत्ति की भी उत्तराधिकारिणी होती है।

इस लिये विधवा विवाह करने वालों को किसी प्रकार
भी क़ानूनी भय नहीं है।

नवाँ अध्याय

विधवा विवाह विषयक अन्य युक्तियां।

हम गत अध्यायों में बता चुके हैं कि स्त्रियों का पुनर्विवाह निम्नलिखित युक्तियों से सिद्ध है :—

(१) स्त्री और पुरुषों का मनुष्य समाज में तुल्य पद, तुल्य अधिकार और तुल्य कर्त्तव्य है। जब पुरुष पुनर्विवाह कर सकते हैं तो स्त्रियों को भी अवश्य इसकी आज्ञा होनी चाहिये।

(२) वेद, स्मृति पुराण तथा इतिहास के प्रमाणों से विदित होता है कि प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियों को नियोग अथवा पुनर्विवाह की आज्ञा थी।

परन्तु इनके अतिरिक्त और बहुत सी युक्तियाँ दी जा सकती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि विना विधवा विवाह की आज्ञा दिये देश का कल्याण नहीं।

सब से पहले विधवाओं को सदाचारिणी रखने का एक मात्र साधन यही है। आजकल जिन स्त्रियों के पति बाल्यावस्था में ही मर गये हैं उनकी ऐसी दुर्दशा हो रही है कि लेखनी लिखते हुए थर्राती है।

और न केवल विधवायें, किन्तु पुरुषों के आचार पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। बहुत से पुरुष इन्हीं विधवाओं को

घर में डाल लेते हैं जिनको 'सुरैत' कहते हैं। इससे न
नाजायज़ और हरामी सन्तान का ही देश में आधिक्य
रहा है किन्तु लोग जातियों से वहिष्कृत हो रहे हैं और
प्रकार जाति के पुरुषों की संख्या दिन प्रति दिन न्यून
जा रही है।

हम यहां आर्य्य गज़ट लाहोर के २७ पौष सम्वत्
विक्रमी के पर्चे से उद्धृत करते हैं जिसमें पंजाब में
विवाह न होने से जो हानियां हो रही हैं उनको
प्रकार दिखलाया गया है :—

हिन्दू विधवाओं का क्या बनेगा?

मैं प्रथम लिख चुका हूं कि हिन्दू विधवाओं का
नाश कुल हिन्दू स्त्रियों के लिये एक भारी आपत्ति है
स्त्रियों की आपत्ति पुरुषों के सत्यानाश की अग्रगन्ता है
जाति में स्त्री जाति के साथ उत्पत्ति के दिन से ही जो
हार किया जाता है वह मैं थोड़ा सा दिखलाना चाहता हूं

परमात्मा की कुदरत के हिसाब में कोई भूल नहीं
इस कारण लड़के और लड़कियों की उत्पत्ति संख्या
लगभग बराबर होती है। परन्तु माता पिता की ओर
जो व्यवहार लड़कियों से किया जाता है वह लड़कियों
अनुकूल नहीं है। इसका प्रभाव यह है कि सृष्टि-नियम
अनुसार जितने लड़के और लड़कियों को छोटी अवस्था
मरना चाहिये लड़कियों की मृत्यु इससे कहीं अधिक
है। १९११ ई० की मनुष्य गणना इस प्रकार से है कि
में एक साल तक आयु के एक सौ हिन्दू लड़के होते
९६.६ लड़कियां हैं और पांच वर्ष तक की आयु के
लड़कों के मुकाबिले में ९.२७ लड़कियां हैं और इससे

वर्ष की आयु की लड़कियां इस आयु के एक सौ लड़कों में केवल ७२.३ रहजाती हैं।

दूसरा हिसाव इस प्रकार है कि एक से पांच वर्ष तक की आयु की लड़कियां इस आयु के लड़कों से संख्या में २५,१६२ कम हैं और पांच वर्ष से ऊपर दशवर्ष तक की आयु की लड़कियां इसी अवस्था के लड़कों से ८०,७४० कम हैं और दस से १५ वर्ष तक आयु की लड़कियां इसी अवस्था के लड़कों से १,५५,८८८ कम हैं और १५ से ऊपर बीस वर्ष तक अवस्था की लड़कियां इसी अवस्था के लड़कों से १,३१,३८६ कम हैं। मानों लड़कियों से जिस प्रकार का व्यवहार हिन्दु जाति ने उचित माना है इस का परिणाम यह है कि वीस वर्ष की आयु होने तक स्वभावतः जितने लड़के और लड़कियां मरती हैं लड़कियों की मृत्यु-संख्या इससे ३,९३,२०६ अधिक है। तो क्या यह वात समझ में आनी मुश्किल है कि इतनी अधिक संख्या लड़कियों की छोटी अवस्था में मरने का कारण पुरुषों का स्त्री जाति से व्यवहार है और यह जितना शोक प्रद है उसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

सहस्रों विचारी पालन पोषण की असावधानी और रोग में वेपरवाही का शिकार हो जाती हैं। सहस्रों वाल्यावस्था में विवाही जाकर प्रसव काल में मरजाती हैं। सहस्रों बूढ़े पतियों से व्याही जाती हैं और छोटी अवस्था में विधवा होकर और भूख से सताई जाकर मरती हैं; या कहीं को निकल जाती हैं। सारांश यह कि इस बात के सत्य होने में कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू जाति में पुरुषों का व्यवहार ही इस प्रकार का है जिसको स्त्रियों की सर्व-तन्त्र-हत्या कही जाय तो अत्युक्ति न होगी।

इस सर्वतंत्र हत्या का दूसरा पक्ष इस प्रकार भी दृष्टि

गोचर होता है कि दिल्ली नगर में २९,८३६, लाहौर में २६... अमृतसर में १५,७७१, मुल्तान में ७,७४३, रावलपिण्डी ९,०५८ अम्बाले में ९,४८३, जालन्धर में ५,१००, स्यालकोट ३,८१२, और फीरोज पुर में ६,४१६ स्त्रियां पुरुषों से कम। इस प्रकार से पंजाब के इन बड़े नगरों में जहां कुल म... संख्या हिन्दू पुरुषों की २,५४,२९० हैं इनमें से १,१६,२८३ पु... के भाग में स्त्रियां नहीं अर्थात् इन का विवाह न हुआ है न होगा। क्योंकि स्त्रियों की संख्या बहुत कम है।

तीसरा पक्ष आप देखना चाहें वह इस प्रकार है कि स... पंजाब में कुंआरे हिन्दू पुरुषों की संख्या २४,१३,३६५ ... कुमारी लड़कियों की संख्या १२,२६,८३० है जिस से सिद्ध कि ११,८६,५३५ पुरुषों का विवाह नहीं हो सकता। इ... अतिरिक्त ऐसे रंडुए पुरुष जिनकी आयु एक वर्ष से ... ५० वर्ष तक है और वह भी विवाह के उम्मेदवार हैं सं... २,४२,८२९ हैं। यह भी कुंआरे पुरुषों में सम्मिलित किये ... तो १४,२९,३६४ पुरुष ऐसे हैं जिनके लिये स्त्रियां उपस्थित ... हैं। जो एक स्त्री के मरने पर दूसरा उसके मरने पर तीसरा विवाह करते हैं और कई ऐसे हैं जो लड़के न होने के ... एक स्त्री के होते हुये दूसरी स्त्री से विवाह करते हैं। कुंआरी स्त्रियों में प्रति शतक न्यून से न्यून पांच यह अवस्था... जायंगे। जो ४,६३,४१ होती हैं। इन को भी सम्मिलित ... विवाह के योग्य पुरुषों से विवाह के योग्य स्त्रियों की सं... १४,९५,७०५ या १५ लाख से लगभग कम हैं।

और चौथे पक्ष पर दृष्टि डालने से यह संख्या १६ ... के लगभग मालूम होती है। अब पाठकगण विचार करें यह १५ या १६ लाख मनुष्य सन्तान वृद्धि की अपेक्षा से ... में गिने जायंगे? इन में से किसी एक का भी स्थानापन्न

इस के पूर्वजों के वंश को जारी रखने का साधन, इस के अन्तिम श्वास लेने के समय उपस्थित न होगा जिसके शोक और निराशा में यह लोग अपनी आयु के दिन शोक, चिन्ता क्रोध, पाप और दुराचार में व्यतीत कर रहे हैं और जिस दुःख और कष्ट से यह अपना अन्तिम श्वास छोड़ेंगे क्या इस का कुछ प्रभाव शेष लोगों और कुल जाति पर पड़ रहा है या नहीं। जिनकी आंखें हैं वह देखें! और जिनके कान हैं वह सुनें कि यह केवल इन्हीं लोगों की बरबादी नहीं किन्तु जो लोग संसार के विषयों में आसक्त हैं, धन धान्य तथा बाल बच्चों के सुख में आनन्द लूट रहे हैं उनके और उनकी सन्तान के लिये भी यही भाग्य बनाया जा रहा है। और इन का भी एक दिन यही अन्त होगा। यह १६ लाख पुरुष जिनके हिस्से की स्त्रियों को पुरुषों के अनुचित व्यवहार ने मार डाला और, सात लाख विधवायें जिसमें से ९६ तो ऐसी हैं जिनकी अवस्था ५ वर्ष के भीतर है और १,५२७ जिनकी आयु ५ वर्ष से ऊपर १० वर्ष तक है और ४,२८८ वह जिनकी अवस्था १० वर्ष से ऊपर और १५ वर्ष तक है और ११,८४४ वह जिनकी आयु १५ वर्ष से ऊपर २० वर्ष तक है और २४,३३५ की अवस्था २५ वर्ष तक है और जिनकी दुर्दशा उनको दृष्टिगोचर हो सकती है जो देखना चाहते हैं। क्या जिन्दा लाशें नहीं? जो कि रात दिन चिन्ता की चिता में जल रही हैं और कितने इन के सम्बन्धी हैं जो इन्हीं के कारण से दुःखों की पीड़ा से सूख कर कांटा हो रहे हैं। इन २३ लाख के साथ अधिक नहीं तो २३ लाख केप्रेम का सम्बन्ध अवश्य है। इस हिसाब से पंजाब ही के भीतर हिन्दू जाति के ४६ लाख स्त्री पुरुष आजकल उपस्थित हैं जो दिन रात जल रहे हैं जिन को जीवन का कुछ स्वाद नहीं और मृत्यु को बुलाते हैं और आती नहीं। अन्त में

एक दिन आयेगी अवश्य और हिन्दू जाति के ८७,७३,६२१ में से ४६ लाख को दुःखों से छुड़ायेगी। फिर क्या होगा। का स्थान लेने वाले और बहुत से लोग हो जावेंगे। यह कौन होंगे?

वह जो अपनी जाति के दुःखित भाई बहिनों की पर्वा नहीं करते और अपने मद में मस्त हैं। अब पाठकगण हिसाब लगा कर देख लें कि शेष बचे हुए ४१ लाख अवस्था में लाकर नाश के समुद्र में डुबोने के लिये कितने का समय आवश्यक है। समय है कि जो लोग विषयासक्ति मग्न हैं असावधानी की नींद से जागें अपने दुःखिया भाइयों के लिये नहीं तो कम से कम अपने ही नाश को रोकने का यत्न करें। हे जगत जननी तू दया कर, अपने वधान और मदमस्त बच्चों को प्रेम की लोरी दे। जिससे ईर्षा, द्वेष, आलस्य प्रमाद को छोड़कर परोपकार में लगें।

कौन ऐसा कठोर हृदय होगा जो इस अपील पर न हो और फिर भी पूछे कि विधवा विवाह क्यों उचित है? पाठक गण आपने बाल विधवा विवाह का प्रचार न कि एक भयानक प्रश्न है कि हिन्दू विधवाओं की क्या दशा है जिन महाशय का लेख हमने उद्धृत किया है उन्हीं के से एक और भयानक सूचना मिली है जिसके कारण जाति के सत्यानाश में कोई सन्देह ही नहीं रहता। पता लगाया है कि सैकड़ों इस प्रकार के दलाल हैं जो प्रान्त से हज़ारों विधवाओं को बहका कर पंजाब में और उनको बेच देते हैं। मानों गुलामी की प्रथा भी हमारे जिक बिगाड़ के कारण अभी तक गई नहीं। बहुत से पुरुष हैं जो यही व्यापार करते हैं और अपनी ही लोहू से अपनी प्यास बुझाते हैं। इन दलालों की भाषा

पत्र व्यवहार गुप्त होता है। उक्त महाशय ने पहली भादों सं० १९७४ को दो तीन पत्र आर्य्य गजट में इन दलालों के छपवाये थे इनसे पता लगता है कि इन का साधारणतया पकड़ना भी मुश्किल है। हम यहां कुछ नमूना देते हैं :—

पहला पत्र :—श्रीगणेशाय नमः। आपका ख़त आया था सो बहुत कोशिश की थी कि तुमको इसका जवाब दूं। लेकिन पता न मालूम होने के कारण मैं नहीं भेज सका। परन्तु ईश्वर की कृपा से अब पता मालूम होगया है तो अब पत्र भेजता हूं। गेहूं १३ सेर फ़ी रुपया, चना १६ सेर फ़ी रुपया, अरहर २० सेर फ़ी रुपया तीन चीजें तैयार हैं अगर आपको आना हो तो १३ मई १९१७ ई० तक ज़रूर आइये वरना मैं यहां से चला आऊंगा"

दूसरा पत्र :—"बाबू.............. साहेब! अर्सा हुआ कुछ हाल मालूम नहीं हुआ' यहां का हाल यह है कि हमने माल तैय्यार किया है आपको २३ तारीख़ बरोज सोमवार तार दिया है कि माल तैय्यार है जल्द आओ। मगर आज आठ रोज हुये कुछ हाल मालूम नहीं हुआ कि आप को तार मिला है या नहीं। अगर आप देर में आवेंगे तो नुक़सान है। सौदागर माल वाला जल्दी करता है। जो हाल हो उससे बहुत जल्द इत्तला दो। वैसा इन्तज़ाम किया जाय। माल उमदा है और काम जल्दी का है अगर जल्दी ख़रीद फ़रोख़्त माल की न होगी तो वापिस हो जाने का ख़ौफ़ है। अगर आपका आना किसी वजह से न हो सके तो जल्द इत्तला दीजिये। माल वाले को जवाब दिया जाय कि वह अपने मकान वापिस जावे या अपना दूसरी जगह वास्ते फ़रोख़्त के इन्तज़ाम करे। क्योंकि ख़र्च फ़िज़ूल हो रहा है और आप की उम्मेद पर रुके हुये हैं। और आपके कहने के माफ़िक़ माल

ख़रीद कर लिया है वरना कोई जरुरत नहीं थी। मगर जो बात होवे उससे साफ़ साफ़ इत्तला दीजिये ... अज़हद परेशान है और हर रोज इन्तज़ारी करते ... आंख बैठ जाती है। इस क़द्र देर होने की क्या व... अगर तशरीफ़ लाने में देरी हो तो फ़ौरन इत्तला दो। ... वाले को जवाब देवें। रोज़ाना ख़र्च हो रहा है। ... है और ज्यादा क्या लिखूं।"

तीसरा पत्रः—"बाबू..................आज हमने ... वापिस कर दिया। आपके आने में देरी पाई गई। ... माल वाला सौदागर बहुत जल्दी करता था। इस व... वापिस कर दिया गया। आपके न आने की वजह से ... बहुत नुक़सान बरदाश्त करना पड़ा। बराहे नवाजिश ... न किया कीजिये। इसमें क्या फ़ायदा? आपका काम ... होने वाला है दस पांच रोज़ की देरी है। अगर ईश्... चाहा तो दस पांच रोज में आपका काम उमदा होगा। ... आना फ़ौरन जिस वक्त आपको ख़त मिले। फौरन आइ... देर न कीजियेगा। दिलोजान से कोशिश कर रहे हैं ... है कि आपका काम बहुत जल्दी और उमदा होगा।"

पाठक गण जिस जाति को आप बहुत उच्च सम... उसी में देखो किस प्रकार सैकड़ों दलाल विधवाओं ... काने और उनको बेचने का उद्योग किया करते हैं। ... विधवा विवाह प्रचलित हो जाय तो इस भीषण ... बहुत कुछ कमी हो सकती है। हज़ारों विधवायें तो ऐसे ... के हाथ पड़ जाती हैं जिनके स्वभाव, आर्थिक दशा ... जाति पांति से वह सर्वथा अनभिज्ञ हैं और उनके ... भी नहीं चाहतीं। एक बार उनके हाथ बिक जाने के ... जो उनके लिए आपत्तियों का ... है वह बड़ा ...

नक और हानिप्रद है। इन विचारियों पर बड़े बड़े अत्याचार होते हैं और जो कष्ट उनको डमरारा या अन्य टापुओं में कुली की भांति भरती होने में होता है उससे यहां किसी प्रकार भी कम नहीं होता। क्या विधवा विवाह के विषय में यह प्रबल युक्ति नहीं है?
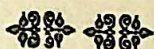
दसवाँ अध्याय।

विधवा विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर।

(१) क्या स्वामी दयानन्द विधवा विवाह के विरुद्ध हैं?

धिकतर आर्य्यसमाज के सभासदों को विधवा पुनर्विवाह के प्रचार में संलग्न देख कर इसके विरोधी यह आक्षेप किया करते हैं कि आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ-प्रकाश में विधवा विवाह के अनेक दोष दिखाये हैं फिर न जानें क्यों आर्य्यसमाज के लोग विधवा विवाह का ढंढोरा पीटा करते हैं?

इस का उत्तर यह है कि लोगों ने

महर्षि दयानन्द के लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ा नहीं। पढ़ते तो ऐसा कदापि न कहते। इस के अतिरिक्त एक बात है। इस आक्षेप करने वालों को स्वामी दयानन्द उनके लेखों से कोई सहानुभूति नहीं हैं किन्तु केवल दर्शन ही मुख्य प्रयोजन हैं यही कारण है कि वास्तविक को छोड़ कर व्यर्थ आक्षेप उठाते हैं। हम श्री स्वामी जी लेख सत्यार्थ प्रकाश से उद्धृत करते हैं वह यह है:—

(प्रश्न) स्त्री और पुरुष के बहुत विवाह होने योग्य हैं नहीं ?

(उत्तर) युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।

(प्रश्न) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहिये

(उत्तर) हां जैसेः—

सा चेदक्षययोनिः स्याद्
गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा
पुनः संस्कार मर्हति॥

मनु० अ० ९, १७६

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य्य पुरुष हो उनका, अन्य स्त्री वा पुरुष हो उनका, अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि
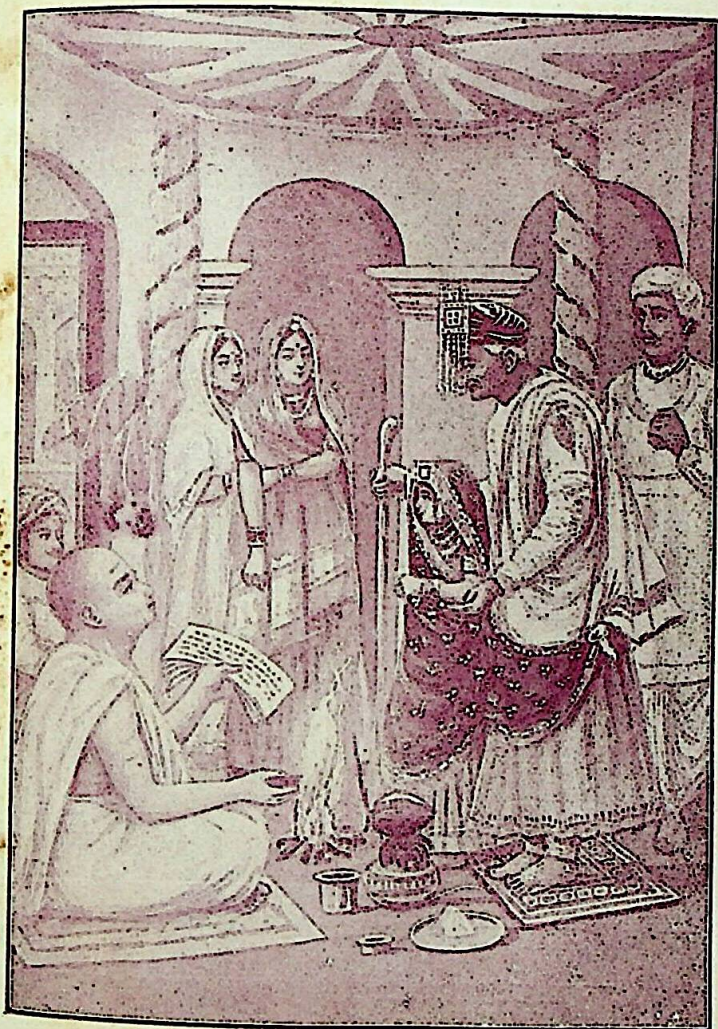
बूढ़े दादा अपनी पोती के आयु की कन्या से विवाह कर रहे हैं।

क्षत वीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।" (सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास)

इस से स्पष्ट विदित होता है कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अक्षत-योनि-विधवा-विवाह को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी के लिये मानते हैं परन्तु क्षतयोनि विधवा का विवाह केवल शूद्रों के लिये ही। जो लोग स्वामी दयानन्द के इस वाक्य में से एक टुकड़ा लेकर शेष को छोड़ देते हैं वह अनर्थ के भागी हैं। जो आर्य्य सामाजिक पुरुष अक्षत योनि बाल विधवाओं के पुनर्विवाह का प्रचार, उद्योग तथा उल्लेख करते हैं वह श्री स्वामी जी के अभिप्रायों के प्रतिकूल नहीं जाते। इस के अतिरिक्त विधवा विवाह के विरोधी श्रीस्वामी जी के उपदेशों को उद्धृत करते हुये एक बात और भूल जाते हैं। हमने जो लेख इन का ऊपर उद्धृत किया है उसके ठीक आगे स्वामी जी ने एक प्रश्न किया है:—

(प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है?

इस के उत्तर में चार दोष दिखाये हैं। परन्तु यह सब क्षत योनि विधवा विवाह और बहु विवाह के सम्बन्ध में द्विजों के विषय में हैं। अक्षत योनि के विषय में नहीं। अक्षत योनि के विषय में तो उनकी सम्मति स्पष्ट है जो ऊपर दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त द्विजातियों में उन्होंने क्षतयोनि विधवा विवाह के स्थान में **नियोग की विधि** लिखी है। वह लिखते हैं :—

"जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य्य में स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव नहीं होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये अपने स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य्य न रख सकें तो

नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें"

(सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास)

यहां उन्हों ने तीन कोटियां, क्षतयोनि विधवाओं तथा क्षतवीर्य्य पुरुषों की कर दी हैं जिनकी स्त्रियां मर गई हैं:

(१) वह जो ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी रह सकें और जिन को सन्तान की भी इच्छा नहीं। ऐसों को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं

(२) वह जो ब्रह्मचर्य्य पालन तो कर सकते हैं परन्तु की परम्परा के लिये सन्तान की इच्छा रखते हैं, ऐसों को गोद रखने की आज्ञा दी।

(३) जो ब्रह्मचर्य्य भी पालन नहीं कर सकते उन नियोग की आज्ञा दी।

इस लिये स्वामी दयानन्द के बताये हुये पुनर्विवाह चार दोषों पर ज़ोर देने का उन लोगों को अधि नहीं है जो—

(१) पुरुषों के लिये पुनर्विवाह मानते हैं और स्त्रि लिये नहीं। क्योंकि स्वामी जी स्त्री और पुरुष दोनों को वि के विषय में समान ही अधिकार देते हैं।

(२) जो पुरुष नियोग को नहीं मानते अथवा उस प्रचार दूषित समझते हैं।

(३) जो "अष्ट वर्षा भवेद्गौरी" के फेर में पड़े हुये विवाह की प्रथा को उत्साहित करते हैं।

हमारे विचार में स्वामी जी का बताया हुआ नियोग नुसखा सर्वत्र सर्वकाल और सब दशाओं के लिये क्षत और क्षतवीर्य्य के पुनर्विवाह से अधिक उपयोगी है।

संशय नहीं। परन्तु यदि लोग नियोग जैसी पवित्र प्रथा के प्रचार का साहस न रक्खें उस समय तक उस से कम लाभदायक पुनर्विवाह के नुसखे में भी लाभ ही लाभ है कुछ हानि नहीं। यदि हम यह मानें कि नियोग के लिये बहुत समय लगेगा और मानव जाति इस समय इसके लिये तैय्यार नहीं है तो उस समय तक विधवा विवाह ही जारी कर देना चाहिये। यदि रोग बढ़ रहा हो और सर्वोत्तम औषधि मिलने की सम्भावना न हो तो उससे कम उत्कृष्ट औषधि का ही प्रयोग करना चाहिए। सर्वोत्तम औषधि के अभाव में उससे कम उपयोगी औषध का त्याग कर देना और रोगी को मरजाने देना मूर्खों का ही काम है।

(२) विधवायें और उनके कर्म तथा ईश्वर इच्छा।

दूसरा आक्षेप यह है कि विधवा विवाह करना ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध कार्य्य करना है। यदि स्त्री के कर्म्म में वैधव्य न होता तो वह विधवा क्यों होती? और कर्म की गति को कौन मिटा सकता है?

(उत्तर) यह ठीक है कि उसके कर्मानुसार ही उसे वैधव्य प्राप्त हुआ है। परन्तु इस का यह तात्पर्य्य तो नहीं कि भविष्य में कार्य्य ही किये न जायँ। या जो विपत्ति आपड़ी है उसका प्रतीकार ही किया न जाय। यदि कोई पुरुष मार्ग में गिरपड़े और आप उससे कहें कि तू अपने कर्म्मानुसार गिरा है, यदि तेरे कर्म्म में गिरना न होता तो तू कदापि न गिरता, अब तुझे उठना नहीं चाहिये, नहीं तो ईश्वर की आज्ञा का विरोध होगा। तो आप स्वयं जानते हैं कि कितना अनर्थ होगा?

क्या गिरे हुए को उठने की कोशिश न करना चाहिये ? इस प्रकार यदि किसी का मकान गिर पड़े तो क्या उसको फिर बनाना ईश्वर आज्ञा और कर्म्म सिद्धान्त का विरोध करना है ? कौन नहीं जानता कि मनुष्य पर अनेक प्रकार की विपत्तियां उस के कर्म्मानुसार आती रहती हैं उन का प्रतीकार करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है ।

फिर सन्तान रहित स्त्री के लिये गोद रखना तो तुम्हारे मत में भी श्रेय है । यह क्यों ? क्या इसमें ईश्वर की आज्ञा का विरोध नहीं ? वहां भी यही युक्ति क्यों नहीं देते ? अमुक पुरुष अपने कर्म्मानुसार सन्तान रहित है । यदि उसके कर्म्म अच्छे होते तो ईश्वर अवश्य सन्तान देता । तुम गोद रख कर सन्तान वाले बनोगे तो ईश्वर की आज्ञा भंग होगी ।

इसके अतिरिक्त तुम्हारी यही युक्ति पुरुषों के पुनर्विवाह में कहां जाती है ? सहस्रों निस्सन्तान मनुष्य पुनर्विवाह करते हैं और उनके सन्तान होती है । क्यों नहीं तुम उनसे कहते कि तुम्हारी स्त्री तुम्हारे कर्मों के कारण मर गई अब फिर दूसरा विवाह करना ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध बात होगी । क्या तमाशा है कि जो युक्तियाँ विधवा विवाह के विरुद्ध दी जाती हैं वह रंडुओं के विवाह के सम्बन्ध में बिल्कुल भुला दी जाती हैं ! हा अन्याय ! हा क्रूरता !!

(३) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं ।

तीसरा आक्षेप यह है कि तुम जो रँडुओं के पुनर्विवाह का दृष्टान्त देकर विधवा विवाह प्रचलित करना चाहते

यह ठीक नहीं । हम मानते हैं कि रँडुओं का विवाह भी वर्जनीय है यदि एक मनुष्य चोरी करने लगे तो क्या दूसरे को भी चोरी करनी चाहिये । यदि तुम रँडुओं का विवाह बुरा समझते हो तो उसका खण्डन करो । इसके स्थान में विधवा विवाह का मण्डन क्यों करते हो ? जो रोग अभी केवल मनुष्यों में है उसका स्त्रियों में भी क्यों प्रवेश करना चाहते हो ? यदि मानव जाति का एक भाग ही इन व्यसनों से बचा रहे तो अच्छा ही है ।

(उत्तर) तुम्हारा यह चोरी का दृष्टान्त ठीक नहीं । विधवा विवाह शास्त्रोक्त है । चोरी के समान निषिद्ध नहीं । इसके प्रमाण हम पूर्व ही दे चुके हैं । यहां प्रश्न अधिकारों का है । यदि पुरुषों को पुनर्विवाह करने का अधिकार है तो न्याय संगत यही है कि स्त्रियो को भी वही अधिकार दिया जाय । याद रखना चाहिये कि स्त्रियों के विवाह सम्बन्धी नियमों में पुरुष सम्मिलित हैं और पुरुषों के विवाह में स्त्रियां । यह तो है ही नहीं कि पुरुष बिना स्त्रियों के विवाह कर सकें और स्त्रियां बिना पुरुषों के । जब पुरुष पुनर्विवाह करते हैं तो उसका प्रभाव स्वभावतः स्त्रियों पर भी पड़ता है । स्त्रियाँ उससे बच नहीं सकतीं । इस लिये पुरुष केवल यह कह कर छूट नहीं सकते कि यह हमारी निर्बलता है हमको क्षमा करो और तुम सबल रहो । यदि पुरुष स्वीकार करते हैं कि पुनर्विवाह करना उनकी निर्बलता है तो मैं पूछता हूं कि उनको दूसरों की निर्बलता पर आक्षेप करने का अधिकार ही क्या है ? जो अपनी आँख का शहतीर नहीं देखता उसको दूसरों की आंख का तिनका देख कर हंसना कितना अनुचित और गर्हित कार्य्य है ? फिर यह कि जो निर्बलता पुरुषों में है वही स्वाभाविक निर्बलता स्त्रियों में भी है । इसमें उनका

कुछ दोष नहीं और इस लिये उनको इस की उत्तर... ठहराना अन्याय है। स्त्रियों की बहुत सी निर्बलतायें पुरुषों के कारण हैं वह नीचे गिरते हुये उनको भी गिराते हैं। तुलसीदास जी ने ठीक कहा है कि

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।

वस्तुतः बात यह है कि जब तक पुरुष इन्द्रियदमन करना नहीं सीखते उस समय तक स्त्रियों से यह आशा करनी असम्भव है।

(४) कलियुग और विधवा विवाह।

चौथा आक्षेप :—हम मानते हैं कि पहले विधवा विवाह और नियोग दोनों ही धर्मानुकूल समझे जाते थे परन्तु सत्य युग, त्रेता और द्वापर के धर्म को कलियुग में वर्तना असम्भव है। विधवा विवाह को कलियुग में वर्जित कर दिया गया है। देखो प्रमाण :—

ऊढाया पुनरुद्वाहं
ज्येष्ठांशं गोवधं तथा।
कलौ पंच न कुर्वीत
भ्रातृजाया कमण्डलुम् ॥

—आदि पुराण।

आदि पुराण में लिखा है कि विवाहिता का पुनर्विवाह और ज्येष्ठांश, गो-वध, भौजाई से सन्तानोत्पत्ति और कमण्डलु यह पांच बातें कलियुग में वर्जित हैं।

(उत्तर) जो लोग यह मानते हैं कि विधवा विवाह और नियोग पहले धर्मानुकूल माने जाते थे और कलि में वर्जित हैं उनको कम से कम वेद के उन मंत्रों के अर्थ बदलने की कोशिश न करनी चाहिये जिनमें विधवा विवाह का विधान हैं। एक तरफ़ विधवा विवाह सम्बन्धी वेद तथा स्मृति के प्रमाणों का अर्थ बदलना और दूसरी ओर यह मानना कि यह प्रथा केवल कलियुग में वर्जित है, परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध है और प्रकट करती है कि लोगों को सत्य से काम नहीं, किसी न किसी प्रकार विधवा विवाह का खण्डन करने से तात्पर्य्य है।

प्रथम तो जितने वेंद शास्त्र सम्बन्धी विषय हैं वह सब युगों के लिये हैं जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। परन्तु यह भी मान लिया जाय कि भिन्न धर्म हैं। तो यह ठीक नहीं कि कलियुग में विधवा विवाह नहीं होना चाहिये। जो प्रमाण तुमने ऊपर दिया वह तो बड़ा ही विलक्षण है। प्रथम तो इसमें लिखा है कि कलि में गोवध वर्जित है। इससे मालूम होता है कि किसी समय गोवध धर्म भी था। परन्तु यह बात नहीं है। वेद और वेदानुकूल शास्त्रों में गाय तो गाय बकरी तक की हिंसा भी धर्म विरुद्ध लिखी है। देखो जिस मनुस्मृति को तुम सतयुग के लिये बताते हो उसमें हिंसा को बुरा बताया है। अध्याय ५ के ५१ वें श्लोक को देखो :—

अनुमन्ता विशसिता
निहन्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च

खादकश्चेति घातकाः॥

अर्थात् अनुमति देने वाला, खण्ड खण्ड करने वाला, मारने वाला, मोल लेने और बेचने वाला, पकाने वाला, ले जाने वाला और खाने वाला यह सब घातक अर्थात् हत्यारे कहलाते हैं। जब मनु जी ही हिंसा के इतने विरोधी हैं तो वेद जैसी पवित्र पुस्तक में गोबध जैसी अधर्मयुक्त बात की किस प्रकार विधि हो सकती है। जो प्रमाण ऊपर दिया गया है वह सर्वथा प्रमाद और भूल से युक्त है। जिन मुसलमानों को तुम गोबध के लिये इतना बुरा कहते हैं उसी कार्य्य को सतयुग में धर्म विहित कहना कैसी भूल है! यदि मुसलमान या ईसाई तुमसे कहने लगें कि भाई तुम हमारे गोबध को क्यों बुरा कहते हो हम तो सतयुगी पुरुष हैं वही करते हैं जो तुम्हारे पूर्वज सतयुग में किया करते थे। क्या तुम को लज्जित न होना पड़ेगा? फिर ऐसे प्रमाण मानने से क्या लाभ?

दूसरी बात जो तुम्हारे प्रमाण में लिखी है वह यह है कि कलियुग में सन्यास वर्जित है। कहिये साहिब क्या कलियुग में केवल तीन ही आश्रम हैं और क्या जो लोग आज कल सन्यासी हो रहे हैं वह सब धर्म विरुद्ध कार्य्य कर रहे हैं! क्या स्वामी शंकराचार्य्य आदि सन्यासी जो सब कलियुग में हुये हैं अधर्म्मी थे या इन को तुम्हारा प्रमाण ज्ञात न था। या तुमने इसे स्वयं गढ़ लिया है। इनमें से एक बात तो तुम को अवश्य माननी पड़ेगी।

तीसरे जो पाराशर स्मृति का प्रमाण हमने दिया है (नष्टे मृत इत्यादि) वह कलियुग के ही लिये है। पाराशर स्मृति के आरम्भ को देखोः—

अथातो हिमशैलाग्रे
देवदारु वनालये।
व्यासमेकाग्रमासीन
मपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥
मानुषाणां हितं धर्म्मं
वर्त्तमाने कलौ युगे।
शौचाचारं यथावच्च
वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु
सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः।
प्रत्युवाच महा तेजाः
श्रुतिस्मृति विशारदः ॥ ३ ॥
न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः
कथं धर्मं वदाम्यहम्।
अस्मत्पितैव प्रष्टव्य
इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥ ४ ॥
तस्मिन्नृषिसभामध्ये

शक्तिपुत्रं पराशरम् ।
सुखासीनं महातेजा
मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८॥
कृतांजलिपुटो भूत्वा
व्यासस्तु ऋषिभिः सह ।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च
स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९॥
कृते तु मानवा धर्मा-
स्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः।
द्वापरे शङ्खलिखिताः
कलौ पाराशराः स्मृताः ॥

अर्थ :—हिमालय की चोटी पर देवदारु के वन में एक में बैठे हुये व्यास से पहले समय में ऋषियों ने पूछा ।१।

हे सत्यवती के पुत्र (व्यास) आप मनुष्यों के हित के वर्त्तमान कलियुग में जो धर्म और आचार है उस कहिये ॥ २ ॥

इस ऋषियों के वाक्य को सुनकर महातेज श्रुति स्मृति के पण्डित और शिष्यों सहित अग्नि तथा सूर्य उपासना में लगे हुये (व्यास) ने उत्तर दिया ॥ ३ ॥

मैं तो सत्व तत्त्वों को जानता नहीं । धर्म कैसे कहूं ।

व्यास ने यह कहा कि हमारे पिता से पूछना चाहिये ॥ ४ ॥

ऋषियों की उस सभा के बीच में मुनियों के मुख्य समूह से घिरे हुये सुख से बैठे हुये शक्ति के पुत्र पराशर जी की महातेजस्वी ॥ ८ ॥

व्यास ने ऋषियों के साथ हाथ जोड़ कर प्रदक्षिणा, अभिवादन तथा स्तु तियों द्वारा पूजा की ॥ ६ ॥

सतयुग में मानव धर्म्म शास्त्र, त्रेता में गौतम स्मृति ॥२४॥ द्वापर में शंख और लिखित स्मृतियाँ और कलयुग में पाराशर स्मृति (माननीय) है ॥२५॥

पाराशर स्मृति के इन वाक्यों से सिद्ध होता है:— कि

(१) व्यास और पराशर कलियुग में हुये क्योंकि कलियुग के लिये वर्त्तमान शब्द प्रयुक्त हुआ है (वर्त्तमाने कलौयुगे)

(२) व्यास ने कलियुग का धर्म बतलाने में अक्षमता प्रकट की।

(३) इसलिये वे सब ऋषि पराशर के पास गये।

(४) कलियुग के लिये पाराशर स्मृति है।

अब यदि तुम आदि पुराण को व्यासकृत कहो और पाराशर स्मृति को पाराशरकृत। तो दोनो के परस्पर विरुद्ध होते हुये किस को मानोगे। तुम्हारे कथनानुसार:—

(१) व्यास जी आदि पुराण में कहते हैं कि विधवा विवाह कलियुग में वर्जित है।

व्यास जी के पिता पाराशर जी पाराशर स्मृति में कहते हैं कि स्त्री पांच आपत्तियों में पुनर्विवाह कर सकती है जिन में एक आपत्ति विधवा होना है।

अब (१) या तो तुम (आदि पुराण और प
दोनों को अप्रमाणित कहो।

(२) या एक को प्रमाणित और दूसरी
ऐसा कहना सर्वथा मनमाना युक्ति रहित
कल्पित होगा।

(३) या दोनों को सत्य मानो। ऐसी अवस्था
बात से पिता की बात अधिक माननीय है। यह
जा सकता कि पुत्र से पिता मूर्ख था क्यों कि
कहते हैं कि मैं सब बातों को नहीं जानता। मैं
जी से पूछना चाहिये।

महाभारत के प्रमाणों से विदित होता है कि
विधवा विवाह न केवल धर्मानुकूल ही समझा
द्विजों में इसका प्रचार भी था।

अर्जुनस्यात्मजः श्रीमा-
निरावान्नामवीर्य्यवान्
सुतायां नागराजस्य
जातः पार्थेन धीमता
ऐरावतेन सा दत्ता
ह्यनपत्या महात्मना
पत्यौ हते सुपर्णेन
कृपणा दीन चेतना।

महाभारत भीष्मपर्व अ०

अर्थः— नागराज की कन्या से अर्जुन का एक बलवान लड़का उत्पन्न हुआ जिसका नाम इरावान् था।

जब सुपर्ण ऐरावत् ने उस (नागराज की कन्या) के पति को मार डाला तो उस बुद्धिमान राजा (नागराज) ने अपनी दुःखिया कन्या का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया।

(प्रश्न) भला अर्जुन के विवाह से कलियुग में विधवा विवाह होना किस प्रकार सिद्ध होता है?

(उत्तर) क्योंकि अर्जुन कलियुग में ही तो हुये हैं। देखो कल्हण की बनाई हुई राजतरङ्गिणी, प्रथम तरङ्गः—

शतेषु षट्सु सार्द्धेषु
त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणा
मभवन् कुरुपाण्डवाः॥

अर्थात् कलियुग के आरम्भ होने के ६५३ वर्ष पश्चात् कौरव और पाण्डव लोग हुये।

अब तो मानना पड़ेगा कि कलियुग में भी विधवा विवाह हुये। और द्विजों में हुये न कि शूद्रों में क्योंकि अर्जुन क्षत्रिय थे। और उनकी सन्तान उचित सन्तान (जायज़) मानी गई क्योंकि इरावान् को कोई हरामी बेटा नहीं बता सकता!

---

(५) कन्यादान विषयक आक्षेप।

पांचवां आक्षेपः—प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि जब पिता एक बार अपनी कन्या का दान कर चुका तो दी हुई वस्तु

पर फिर उसका अधिकार नहीं रहता फिर वह उसी हुई कन्या का कन्यादान कैसे कर सकता है। विधवा वि के विरोधियों के विचार से यह एक ऐसा आक्षेप है जिस कोई उत्तर देही नहीं सकता परन्तु यह उनकी सर्वथा भूल है।

जो पुरुष यह मानते हैं कि सत्युग त्रेता आदि में वि विवाह धर्मोक्त था अब निन्दनीय है उनको तो यह आ उठाना भी नहीं चाहिये। क्योंकि उनके लिये तो केवल इ ही उत्तर पर्य्याप्त है कि जिस प्रकार सत्युग आदि में विधवा के पिता अपनी विधवा कन्याओं के विवाह किया करते उसी प्रकार अब भी करेंगे। या जिस प्रकार नागराज अपनी कन्या का पुनर्विवाह अर्जुन के साथ किया होगा प्रकार अब भी होना चाहिये। परन्तु इस के अतिरिक्त मुख्य बातें हैं जिनकी मीमांसा आवश्यक है।

हम स्त्री-अधिकार विषयक अध्याय में भली प्रकार दि चुके हैं कि स्त्री पुरुष के अधिकार समान हैं। स्त्री भेड़ ब की भांति पति या पिता की जायदाद या सम्पत्ति नहीं वह स्वयं एक स्वतंत्र व्यक्ति है। प्रायः हम देखते हैं कि किसी मनुष्य के पास भेड़ बकरी, भूमि, स्वर्ण आदि सम्प हो तो वह उसेः—

(१) अपने प्रयोग में ला सकता है।

(२) दूसरों को बेच सकता है।

(३) दान दे सकता है।

(४) यह मोल या दान लेने वाला पुरुष स्वयं अपने उप में ला सकता है या दूसरों को मोल या दा सकता है।

(५) अथवा वह अपने अन्य इष्ट मित्रों सहित सदैव समयान्तर में उसे भोग सकता है।

(६) प्रत्येक पुरुष जो ऐसी सम्पति का स्वामी है अपनी इच्छानुसार जिस पुरुष को चाहे उसे दे सकता है किसी विशेष पुरुष, समय, या देश की क़ैद नहीं है।

अब देखना चाहिये कि स्त्रियां उपर्युक्त अंशों में पिता या पति की सम्पति हैं या नहीं। प्रथम पहली दशा को लीजिये। प्रत्येक स्वामी अपनी वस्तु को अपने प्रयोग में लासकता है। क्या इस अर्थ में कन्या पिता की सम्पत्ति है और उस पर उसका स्वत्व है? क्या कोई पिता अपनी कन्या को भोग सकता है? यह एक ऐसी बात है जिसके लिये प्रमाण देना व्यर्थ है। सभी जानते हैं कि असभ्य जातियों में भी इस से घोर अपराध या अधर्म दूसरा नहीं। इस से स्पष्ट विदित है कि कन्या अपनी पिता की सम्पत्ति नहीं है और न उस पर उसका स्वत्व है।

अब दूसरी बात अर्थात् क्या पिता अपनी पुत्री को बेच सकता है? यद्यपि किसी किसी जाति में पुत्रियां बेच दी जाती हैं और भारतवर्ष में भी कहीं कहां रिवाज है। परन्तु यह एक महा अधम प्रथा है जिस को करते हुये पिता भी लज्जित हुआ करते हैं। कन्याओं का बेचना बड़ा असभ्य समझा जाता है।

फिर क्या पिता उसे दान करसकता है? इस बात का हम सब से पीछे निराकरण करेंगे।

चौथी बात अर्थात् साधारण सम्पत्ति के लिये नियम है कि यदि देवदत्त यज्ञदत्त से कोई वस्तु मोल या दान ले तो उसका पूरा अधिकार है कि या तो वह स्वयं उसे भोगे या दूसरे को दान या विक्रय कर दे। परन्तु विधवा विवाह के महाशत्रु भी यह स्वीकार करने के लिये तैय्यार नहीं हैं कि

यदि देवदत्त को यज्ञदत्त अपनी कन्यादान दे तो वह [illegible] किसी अन्य व्यक्ति को बेच या दान दे सकता है।

इसी प्रकार पाँचवीं बात रही। जैसे यदि मैं कोई मक[illegible] मोल या दान में लूँ तो मुझे पूर्ण अधिकार है कि मैं [illegible] उसमें रहूँ या अन्य इष्ट मित्रों सहित उसको उपयोग [illegible] लाऊं। इसी प्रकार भूमि, फल, अन्न, घृत आदि का हाल [illegible] परन्तु जो पुरुष किसी कन्या को उसके पिता से दान [illegible] है उसे यह अधिकार नहीं है कि वह अपने इष्ट मित्रों सहि[illegible] उसका भोग कर सके।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार स्वामी को अपनी सम्[illegible] को किसी पुरुष को किसी स्थान या काल में बेचने या [illegible] देने का अधिकार है उसी प्रकार पिता कन्या को चाहे कि[illegible] पुरुष को नहीं दे सकता। उसके लिये विशेष नियम है अ[illegible] ब्राह्मण अपनी कन्या को केवल ब्राह्मण को ही विवाह सक[illegible] है। क्षत्रिय, क्षत्रिय या ब्राह्मण को। वैश्य, वैश्य, क्षत्रिय [illegible] ब्राह्मण को, और शूद्र सबको। और अधिकतर तो नियम [illegible] है कि अपनी ही जाति या वर्ण में कन्या दी जाती है [illegible] वर्णों में नहीं।

इसके अतिरिक्त किसी सम्पत्ति के बेचने या दान [illegible] का अधिकार केवल उसके स्वामी को ही होता है अन्य [illegible] नहीं। परन्तु कन्या को देने का अधिकार अन्य को भी [illegible] जैसे लिखा है :—

पिता दद्यात् स्वयं कन्यां
भ्राता वानुमतः पितुः।
मातामहो मातुलश्च

सकुल्यो बान्धवास्तथा ॥
मातात्वभावे सर्वेषां
प्रकृत्यौ यदि वर्त्तते ।
तस्यामप्रकृतिस्थायां
कन्यां दद्युः सजातयः ॥

नारद वचन।

अर्थात् कन्या को पिता या तो स्वयं देवे, या पिता की आज्ञा से भाई या नाना या मामा या कुल के बान्धव। यदि यह कोई न हो और माता जीती हो तो माता और यदि माता भी न हो तो जाति वाले देवें।

इन सब बातों से स्पष्टतया सिद्ध होता है कि कन्या अन्य वस्तुओं के समान सम्पत्ति नहीं है और उसको उसी अर्थ में दान देने का अधिकार किसी को नहीं है।

परन्तु अब प्रश्न यह होता है कि हम संसार में 'कन्यादान' 'कन्यादान' सुनते आते हैं। क्या यह सब झूठ है? विवाह पद्धतियों में जो कन्यादान की विधि दी गई है वह असत्य कैसे हो सकती है? क्या पिता को कन्यादान नहीं करना चाहिये? हमारे यहां तो कन्यादान का इतना पुण्य माना गया है कि जिस पुरुष के कन्या नहीं होती वह दूसरे की कन्या का कन्यादान कर देते हैं।

परन्तु बात यह है कि यहाँ 'दान' का अर्थ ही दूसरा है। 'दान' संस्कृत के 'दा' धातु से निकला है जिसका अर्थ 'देना' मात्र है। यहां 'ख़ैरात' से तात्पर्य्य नहीं। 'दा' और

'दान' का यह सामान्य अर्थ हमको कई शब्दों में मिलता है जैसे जहां यह लिखा है कि पति स्त्री को वीर्य्यदान करे वहां 'दान' का अर्थ 'ख़ैरात' नहीं है। किन्तु सामान्य अर्थ 'देना' है। 'दान' शब्द भाषा में कुछ विचित्र सा मालूम पड़ता है परन्तु संस्कृत में यह सामान्य अर्थ का सूचक है। इसी प्रकार 'दद्यात्' 'दद्युः' इत्यादि शब्दों में ख़ैरात का कुछ भी भाव नहीं है। विवाह संस्कार वस्तुतः पाणि ग्रहण संस्कार है जिसमें स्त्री पुरुष एक दूसरे का हाथ पकड़ते हैं परन्तु उसमें यह तात्पर्य्य नहीं कि पुरुष स्त्री को ख़ैरात में लेता है या उसका उस पर उसी प्रकार स्वत्व हो जाता है जैसे गाय, बैल या बकरी पर। पति न उसको बेच सकता है न और किसी को दे सकता है किन्तु गृहस्थाश्रम का धर्म पालने के लिये स्त्री की अनुमति लेना भी उसका कर्त्तव्य है। विवाह में कन्यादान केवल सामान्य अर्थ में आया है अर्थात् जब कन्या अपने पति को वर लेती है अर्थात् स्वीकार कर लेती है तो पिता कहता है कि अब तक इसके पालन पोषण का भार मेरे ऊपर था अब मैं इसको तुम्हें देता हूं तुम इसका पालन पोषण करना इत्यादि। कन्यादान के इस सामान्य अर्थ को विशेष अर्थ में उस समय ले लिया गया जब भारत वर्ष अपनी प्राचीन सभ्यता से गिर गया और स्त्रियां भोग या सम्पत्ति में गिनी जाने लगीं। उसी समय लोग उनको बेचने तथा मोल लेने लगे और इन पर अत्याचार भी होने लगा। भारतवर्ष के कई धनी पुरुष जिनमें बुद्धि की मात्रा केवल नाम मात्र है कन्यादान के अतिरिक्त स्त्रीदान भी करते हैं। यह इस प्रकार होता है कि पहले तो स्त्री को वस्त्र आभूषण आदि से सुसज्जित करके पुरोहित को दान कर देते हैं फिर पुरोहित वस्त्र आभूषण आदि तो ले लेता है

और उस स्त्री को उसके पूर्व पति के हाथ बेच देता है। इस प्रकार की प्रथायें अर्द्धसभ्यता के चिन्ह हैं और स्त्री जाति के लिये बड़ी अपमान सूचक हैं।

यदि कन्यादान का अर्थ ख़ैरात होता तो समस्त संसार की कन्यायें केवल ब्राह्मणों को ही दान दी जाया करतीं और ब्राह्मणों से इतर जातियों के पुरुष कुंआरे ही रह जाते क्योंकि सिवाय ब्राह्मणों के और किसी को दान लेने को अधिकार नहीं है। जहां मन्वादि स्मृतियों में चारों वर्णों के कर्त्तव्य दिखाये हैं वहां ब्राह्मणों को छोड़ कर और किसी वर्ण को दान लेने की विधि ही नहीं दी है। परन्तु हम देखते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी कन्यादान लेते हैं। इससे सिद्ध है कि 'कन्यादान' वाक्य में 'दान' शब्द केवल इसके सामान्य अर्थ 'देने' में आया है।

जब यह सिद्ध होगया कि कन्यादान का अर्थ कन्या का ख़ैरात में देना नहीं है तो यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता कि विधवा कन्या के पुनर्दान करने का पिता को अधिकार नहीं है। देखो हमने ऊपर जो प्रमाण नागराज की कन्या और अर्जुन के साथ पुनर्विवाह होने का दिया है उसमें शब्द 'दत्ता' प्रयुक्त हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि पूर्व काल में भी क्षत्रिय राजे अपने दामाद की मृत्यु पर अपनी विधवा लड़की का पुनः दान किसी अन्य पुरुष के साथ कर दिया करते थे।
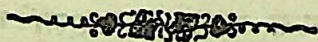
(६) गोत्र विषयक प्रश्न।

कन्यादान के विषय में एक प्रश्न शेष रह जाता है अर्थात्

कन्यादान करते समय पुनर्विवाह में पिता किस गोत्र का उच्चारण करे क्योंकि विवाह पद्धति में लिखा है :—

ओं अमुकगोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीमलंकृतां कन्यां प्रति गृह्णातु भवान्।

अर्थात् अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई अमुक नाम वाली इस अलंकृत कन्या को आप ग्रहण करें। यहां स्पष्ट है कि विवाह होने से किसी कन्या का "वह गोत्र जिसमें वह उत्पन्न हुई है" बदल नहीं सकता। यहां शब्द 'अमुक गोत्राम्' नहीं है किन्तु 'अमुक गोत्रोत्पन्नाम्' है। वृहद्वशिष्टसंहिता के चतुर्थ अध्याय में इसी विषय का निम्न श्लोक है :—

अमुष्य पौत्रीममुष्य
पुत्रीममुष्यगोत्रजाम्।
इमां कन्यां वरायास्मै
वयं तद्वृणी महे॥

अर्थात् अमुक पुरुष की पौत्री, अमुक की पुत्री, अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई को इस वर के लिये हम देते हैं।

यहां भी 'अमुक गोत्रजाम्' 'अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई' शब्द है। जिस गोत्र में एक स्त्री उत्पन्न हुई है उसी गोत्र में उत्पन्न हुई वह समस्त आयु भर कहलायेगी। कोई यह नहीं कह सकता कि "वह पति के गोत्र में उत्पन्न हुई है"। "जन्म गोत्र" केवल अगले जन्म में बदल सकता है। इसी जन्म में नहीं।

यदि विचार किया जाय तो पता चलता है कि विवाह के समय गोत्र का उल्लेख केवल इस लिये किया है कि विवाह पिता के गोत्र और माता के छः पीढ़ियों में वर्जित है। अर्थात् जिस गोत्र में कन्या उत्पन्न हुई है उसी गोत्र में उत्पन्न हुये पुरुष से जो उसकी माता के गोत्र की छः पीढ़ियों में हो, विवाह नहीं हो सकता। डाक्टरी से भी यह बात सिद्ध है कि उसी कुल में विवाह करने वाले स्त्री पुरुषों की सन्तान रोगी होती हैं। इस बात का पता भारतवर्ष में बहुत कम लगता है क्योंकि यहां कुल में विवाह करने की प्रथा है ही नहीं। परन्तु इस का अधिक अनुभव यूरोप में होता है जहां विशेष कर चचेरे भाई बहिन में विवाह होने की प्रथा है। इस दोष की ओर पाश्चात्य डाक्टरों का भी ध्यान आकर्षित हुआ है। डाक्टर बीमिस साहेब (Dr. Bemiss) का कथन हैः—

३४ विवाह ख़ून के रिश्तेदारों में हुये सात तो बांझ रहीं और २७ के घर सन्तान हुई। २७ विवाहों से उत्पन्न हुये बच्चों की संख्या १९१ थी। १९१ बच्चों में से ५७ तो बचपन के समय में ही मर गये और इन में से २४ की मृत्यु के कारण निम्न लिखित थे। शेष के रोगों का पता नहीं।

क्षयी रोग से	१५	
मिरगी से	८	= २४
सरसाम से	१	

शेष संख्या में केवल ४६ स्वस्थ थे, ३२ दुर्बल पाये गये, ९ के स्वास्थ्य का पता नहीं और ४७ इस प्रकार रोगी थे :—

दमे से	१६	
मिरगी से	४	
उन्माद से	२	
गूंगे	२	
अर्द्ध उन्मत्त	४	४७
अन्धे	२	
लुंजे	२	
कोढ़ी	५	
कमदृष्टि वाले	६	
अति दुर्बल	१	

(देखो आत्माराम कृत विवाह आदर्श पृष्ठ ११८।)

इन्हीं महाशय ने अन्यथा भी अन्वेषण किया है। इसके अतिरिक्त अन्य महानुभाव भी इसी परिणाम पर पहुंचे हैं इस से ज्ञात होता है कि हमारे ऋषि मुनियों ने जो यह नियम बनाया था कि स्त्री उसी कुल या माता की छः पीढ़ियों की न हो वह सर्वथा धर्म तथा विज्ञान के अनुकूल था। और इसी लिये उन्होंने विवाह संस्कार में गोत्र का नाम लेने की प्रथा डाली थी। जिससे बात स्पष्ट हो जाय।

जहां प्रसिद्ध ऋषियों के नाम पर गोत्रों की गणना की है वहां लिखा है:—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजो
गोतमः अत्रिर्वशिष्ठः।
काश्यपइत्येते सप्तर्षयः सप्तर्षीणामग-
स्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्याचक्षते।

पराशर भाष्य उधृत बौधायन वचन।

अथवा

जमदग्निर्भरद्वाजो
विश्वामित्रोत्रिगोतमाः।
वशिष्ठकाश्यपागस्त्या
मुनयो गोत्रकारिणः।
एतेषां यान्यपत्यानि
तानि गोत्राणि मन्यते॥

(पराशर भाष्य उद्वाहतंत्रोद्धृत स्मृति)

यहाँ स्पष्ट बताया है कि जिन ऋषियों के अपत्य अर्थात् सन्तान हैं उसी का नाम गोत्र है।

बहुत से लोगों का कथन है कि स्त्री विवाह के पश्चात् पति के गोत्र में हो जाती है। परन्तु यह उन की भूल है। वह गोत्र का अर्थ 'गृह' लेते हैं। यदि गोत्र का अर्थ 'गृह' लिया जाय तो ठीक है कि विवाह के पश्चात् स्त्री पति के घर की हो जाती है। परन्तु यदि गोत्र का अर्थ वह लिया जाय जो ऊपर के श्लोकों में दिया हुआ है अर्थात् किसकी सन्तान है या किस कुल में उत्पन्न हुई है तो स्त्री का गोत्र विवाह के पश्चात् की तो बात दूर रही, मरते समय तक नहीं बदल सकता। क्या किसी स्त्री के पिता, पितामह, प्रपितामह उसके विवाह के कारण बदल सकते हैं? अतः यह शङ्का करना कि पुनर्विवाह के समय कौनसा गोत्र बोला जाय व्यर्थ और असंगत है क्योंकि उस समय भी पहिले विवाह की भांति पिता का ही गोत्र उच्चरित होगा।

यहां एक और युक्ति देते हैं। हम ऊपर बतला चुके हैं कि विवाह के लिये यह नियम है कि माता के गोत्र की छः पीढ़ियां और पिता का गोत्र सर्वथा वर्जित है। अब यदि स्त्री के विवाह के उपरान्त गोत्र बदल गया होता और अपने पति का ही गोत्र हो जाता तो माता के गोत्र की छः पीढ़ी बचने का नियम व्यर्थ था क्योंकि उसका वही गोत्र होता जो पिता अर्थात् माता के पति का। उससे भी स्पष्ट है कि विवाह के पश्चात् स्त्री का गोत्र बदला नहीं।

जो लोग मृतक श्राद्ध को मानते हैं उन को श्राद्ध तर्पण आदि करने में गोत्र का उच्चारण करना होता है। परन्तु उन्होंने भी यह नियम कर दिया है :—

संस्कृतायान्तु भार्य्यायां
सपिण्डीकरणान्तिकम्।
पैतृकं भजते गोत्र-
मूर्ध्वन्तु पतिपैतृकम्॥

(उद्वाह तन्त्र)

अर्थात् विवाहिता स्त्री का सपिण्डी कर्म होने तक पिता का ही गोत्र रहता है। तत्पश्चात् पति का गोत्र हो जाता है। यहां वंश अर्थात् गोत्र से तात्पर्य्य नहीं है किन्तु प्रश्न यह है कि मृत स्त्री का पिण्डदान आदि कौन करे और इस कार्य्य के लियें वह किस गोत्र में गिनी जाय। यहां यह नियम कर दिया कि पति के गोत्र में गिनी जाय अर्थात् उन लोगों का जो पति के गोत्र में हैं कर्त्तव्य होगा कि वह श्राद्ध तर्पण आदि करें। जो लोग मृतक श्राद्ध के उद्देश और विवाह के उद्देश में भे

कर सकते हैं वह भली प्रकार जानते हैं कि गोत्र शब्द विवाह में उसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता जिसमें श्राद्ध में। कल्पना कीजिये कि किसी स्त्री के पालन पोषण आदि का प्रश्न उठा कि किस गोत्र अर्थात् कुल के लोगों का कर्तव्य है कि उसे खाना दें, तो यह स्पष्टतया सिद्ध है कि पिता के कुल वालों पर उसका कोई अधिकार नहीं। पति के कुल वाले अर्थात् पति के भाई बन्धु ही उस को गुज़ारा देंगे अर्थात् वह पति के कुल में ही गिनी जायगी। परन्तु यह पूछा जाय कि यह स्त्री कौन 'गोत्रोत्पन्न' है अर्थात् उसका पिता कौन है तो कौन मूर्ख होगा जो यह उत्तर दे कि वह अपने पति के गोत्र में उत्पन्न हुई है।

इसी प्रकार :—

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी
विवाहात् सप्तमे पदे।
पति गोत्रेण कर्त्तव्या
तस्याः पिण्डोदकक्रिया ॥

(उद्वाह तंत्रोद्धृत हारीत वचन)

पाणिग्रहणिका मंत्राः
पितृगोत्रापहारकाः।
भर्तुर्गोत्रेण नारीणां
देयं पिण्डोदकं ततः ॥

(उद्वाह तंत्रोद्धृत बृहस्पति वचन)

इन श्लोकों का अर्थ यह है कि विवाह के उपरान्त स्त्री

अपने पिता के गोत्र से गिर जाती है इस लिये उसकी पिण्डोदक क्रिया (अर्थात् पिण्ड = भोजन, उदक—पानी) खाना पीना पति के गोत्र वालों को ही करना चाहिये। यहां केवल इतना ही कथन है कि जब स्त्री विवाहिता हो गई तो पति के घर में आगई इस लिये उसी घर के लोगों को पालन पोषण करना चाहिये। उसका कोई अधिकार नहीं कि पिता के घर वालों से खाना पीना मांगे।

(७) कन्यात्व नष्ट होने पर विवाह वर्जित है।

विधवा विवाह के विरुद्ध एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि लड़की की उसी समय तक कन्या संज्ञा रहती है जब तक उसका विवाह नहीं होता। जब एक बार विवाह हो गया तो फिर उस को कन्या नहीं कह सकते। और विवाह चूंकि केवल कन्या का ही हो सकता है अतः पुनर्विवाह का निषेध सिद्ध है। यह युक्ति इस प्रकार दी जाती है :—

(१) विवाह संस्कार केवल कन्या का हो सकता है।

(२) विधवा की कन्या संज्ञा नहीं।

(३) अतः विधवा का विवाह संस्कार निषिद्ध है।

यहां इतने प्रश्न विचारणीय हैं :—

(१) 'कन्या' शब्द का क्या अर्थ है ?

(२) क्या 'कन्या' शब्द किसी अन्य अर्थ में भी कभी प्रयुक्त होता है ?

(३) क्या 'विवाह संस्कार' विषयक स्थलों पर 'कन्या' शब्द इसी योग रूढ़ी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अथवा साधारणतया ?

(४) क्या विवाह संस्कार के सम्बन्ध में 'कन्या' से इतर अन्य शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं ?

(५) विवाह संस्कार के उद्देश का आधार केवल 'शब्द' पर कैसे हो सकता है ?

हम पहले 'कन्या' शब्द के अर्थ पर विचार करते हैं। यह शब्द वस्तुतः भिन्न २ स्थलों पर भिन्न २ अर्थों में आया है।

प्रथम उस लड़की को 'कन्या' कहते हैं जिस का न विवाह हुआ हो न वह क्षतयोनि हो।

दूसरे उस लड़की को भी 'कन्या' कहते हैं जिस का विवाह न हुआ हो परन्तु बिना विवाह के ही पुरुष के साथ सङ्गम हो गया हो। इस विशेष अर्थ में 'कन्या' शब्द का प्रयोग पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी के।

कन्यायाः कनीन च ४। १। ११६।

सूत्र में किया है। इस पर काशिका में लिखा है :—

असंस्कृतविवाहकर्मिकैव कन्या कन्यात्वेन गृह्यते। तेन ततः प्राक्परोपभुक्तापि तत्वन्न जहाति नापि विप्रतिषिद्धतेति।

अर्थात् जिसका विवाह संस्कार नहीं हुआ उसको कन्या कहते हैं और उससे पहले पर पुरुष से भोगी जाकर भी वह अपने कन्यात्व को नहीं छोड़ती और न इस में विप्रतिषेध है।

महा भाष्यकार पतंजलि मुनि ने भी इस सूत्र पर प्रश्न उठाया है :—

इदं विप्रतिषिद्धम् । कोविप्रतिषेधः
ऽपत्यमिति वर्त्तते । यदि च कन्या ना
त्यम् । अथापत्यं न कन्या । कन्या च
पत्यं चेति विप्रतिषिद्धम् । नैतद्विप्रति
द्धम् । कथम् । कन्या शब्दोऽयं पुंसाभि
सम्बन्धपूर्वके संप्रयोगे निवर्त्तते । या चेदा
प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह संप्रयो
गच्छति तस्यां कन्या शब्दो वर्त्तत ए
कन्यायाः कन्योक्तायाः कन्याभिमता
सुदर्शनायाः यदपत्यं स कानीन इति
अ० ४ । पा० १ । आ० ४ ।

इसी पर भाष्य प्रदीप में कैय्यट लिखते हैं :—

शास्त्रोक्तो विवाहोऽभिसम्बन्धस्तत्
र्वके पुरुषसंयोगे कन्या शब्दो निवर्त्त
या तु शास्त्रोक्तेन विवाहसंस्कारेण वि
पुरुषं युनक्ति सा कन्यात्वं न जहाति ।

इन सब का तातपर्य्य यह है कि शास्त्रोक्त विवा
पुरुष संग होने पर कन्यात्व छूटता है और विना विवा

पुरुष संग से कन्यात्व नहीं छूटता। इन से तीन बातें स्पष्ट हैं :—

(१) जो लड़की विवाहित है परन्तु क्षतयोनि नहीं। वह 'कन्या' है क्योंकि पतंजलि मुनि कहते हैं कि "कन्या शब्दो ऽयं पुंसाभिसम्बन्धपूर्वके संप्रयोगे निवर्त्तते" अर्थात् पुरुष का संयोग होने पर 'कन्यात्व' छूटता है पहले नहीं।

(२) अविवाहिता स्त्री पुरुषसंयोग होते हुये भी 'कन्या' है जिसके लिये पतंजलि मुनि लिखते हैं :—

"या चेदानीं प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह संप्रयोगं गच्छति तस्यां कन्या शब्दो वर्त्तत एव"

(३) जो विवाहिता और क्षतयोनि हो वह कन्या नहीं।

'कन्या' का तीसरा अर्थ साधारण स्त्री भी है 'श्री वामन शिवराम आप्ते जी अपने संस्कृत-अंग्रेज़ी कोष में 'कन्या' शब्द के कई अर्थ देते हैं :—

(१) An unmarried girl or daughter, एक अवि· वाहिता लड़की या पुत्री।

(२) A girl ten years old. दस वर्ष की अवस्था वाली लड़की।

(३) A virgin, maiden, अक्षत योनि या अविवाहिता।

(४) A woman in general. एक साधारण स्त्री।

साधारण स्त्री के अर्थ में कन्या शब्द मनुस्मृति अ० १० के ११ वें श्लोक में भी आया है :—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।

इस पर कुल्लूकभट्ट लिखते हैं :—

अत्र विवाहासंभवात्कन्याग्रहणंस्त्रीमात्र प्रदर्शनार्थम् ।

अर्थात् यहां विवाह असंभव होने के कारण 'कन्या' शब्द 'स्त्री मात्र' के लिये आया है ।

गणरत्न महोदधि में पण्डित वर्धमान कवि लिखते हैं :—

कनति शोभते वपुषा कन्या ।

"शरीर से शोभायमान होने से कन्या कहलाती है"

कनन्ति गच्छन्ति तस्यां रागिमनोनयनानीति कन्या । कुमारी ।

या जिसमें रागी पुरुष का मन और आंखें जावें (आकर्षित हों) वह कन्या । या कुमारी ।

उणादि कोष में स्वामी दयानन्द लिखते हैं :—

कन्यते दीप्यते काम्यते गच्छति वा कन्या कुमारी वा ।

जो शोभायमान होती या कामना की जाती है या जाती है उसे कहते हैं । या कुमारी को भी ।

'कन्या' शब्द विवाहित लड़की के लिये भी आता है :—

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठोनामजायते ।

मनु० अ० १०, श्लोक ८ ।

इसे कुल्लूक भट्ट और स्पष्ट करते हैं :—

कन्याग्रहणादत्रोढायामित्यध्याहार्यम् ।

कन्या शब्द से यहां विवाहिता कन्या समझनी चाहिये। साधारण पुत्री के अर्थ में भी कन्या शब्द आता है चाहे वह विवाहिता हो या अविवाहित :—जैसे

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुन शठ ये कन्या सम चारी॥

अर्थात् अनुजबधू, भगिनी और पुत्रबधू कन्या के समान हैं अर्थात् अगम्य हैं जिस प्रकार कन्या अर्थात् पुत्री। यहां विवाहिता और अविवाहिता दोनों से ही तात्पर्य्य है। अपनी पुत्री विवाहिता और क्षतयोनि भी अगम्य ही है।

हमारा कहना यह है कि विवाह संस्कार में जहां कन्या शब्द आया है वहां साधारण पुत्री के अर्थ में आया है वहां पहले विवाहित या पहले अविवाहित विशेषण लगाना अन्याय है। जो लोग 'कन्यात्व' और 'विवाह संस्कार के अधिकार' को एक दूसरे से सम्बद्ध करते हैं वह अपनी ही युक्ति को काटते हैं क्योंकि हम ऊपर दिखा चुके हैं कि 'कन्या' शब्द सभी अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कहीं २ तो 'कन्या' शब्द विवाहित और क्षतयोनि के लिये भी आया है जैसे :—

अहल्या द्रौपदी तारा
कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पंचकन्याः स्मरेन्नित्यं
महापातकनाशनम्॥

अर्थात् अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती और मन्दोदरी पांच कन्याओं का सर्वदा स्मरण करे जो महापातक का नाश करने वाला है।

यहां यह पांचों स्त्रियां विवाहित तथा क्षतयोनि थीं तो भी इनके लिये 'कन्या' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

यदि तुम 'कन्या' शब्द को केवल उसी अर्थ में जिसमें पाणिनि के सूत्र (कन्यायाः कनीन च) में प्र हुआ है और इसी प्रकार की कन्या को विवाह का अधि दोगे तो बड़ा अनर्थ होगा क्योंकि समस्त "वेश्यायें" " विवाह पुरुष संयोग" के कारण कन्यायें हुईं। और उन विवाह का अधिकार। परन्तु बाल विधवा अक्षत धार्मिका लड़की को विवाह का अधिकार नहीं। कहां अन्धेर।

वस्तुतः विवाह के मंत्रों में 'कन्या' से इतर 'नारी' आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

यदि बाल विधवाओं को संस्कार का निषेध होता वसिष्ठ, मनु आदि स्मृतियों में "पुनः संस्कारमर्हति" संस्कार के योग्य है" ऐसा न लिखते। क्या उन लोगों यह आक्षेप नहीं सूझता था। केवल एक शब्द पर स विवाह के गम्भीर प्रश्न को निर्भर कर देना और विवाह उद्देश, अधिकार, कर्त्तव्य सब पर पानी फेर देना विरुद्ध है।

पाणिनि मुनि के जिस सूत्र पर इतना झगड़ा म गया है वहां 'कन्या' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है कि वहां 'कानीन' शब्द सिद्ध करना था। यदि उसे स 'कन्या' शब्द को साधारण (स्त्री मात्र) अर्थ में लेते प्रत्येक पुरुष कानीन होता अतः वहां कन्या शब्द को वि कर दिया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कन्या शब्द स्थलों में भी इसी अर्थ में आता है। हम इसका अपवाद प्रमाणों द्वारा ऊपर दे चुके हैं।

(८) बाल विवाह को रोकना चाहिये न कि विधवा विवाह की प्रथा चलाना ?

कुछ लोगों का विचार है कि विधवा विवाह की आवश्यकता केवल इसलिये पड़ती है कि भारतवर्ष में बाल विवाह की प्रथा है। यदि बाल विवाह रोक दिये जायँ तो विधवायें होंगी ही नहीं फिर विधवा विवाह की क्या आवश्यकता होगी ? अतः लोगों को चाहिये कि जो समय विधवा विवाह के प्रचार में लगाते हैं वह बाल विवाह के रोकने में व्यय करें।

(उत्तर) यह अधिकांश में ठीक है कि विधवाओं की इतनी संख्या केवल बाल विवाह के कारण हुई है। परन्तु सर्वांश में यह ठीक नहीं। क्योंकि कभी कभी दैववशात् ऐसा भी हो जाता है कि पूर्ण युवा अवस्था में विवाह हुआ है और स्त्री विधवा हो गई। यद्यपि बाल्यावस्था में मृत्यु अधिक होती है तथापि ऐसा नियम नहीं है कि युवा पुरुष मरें ही नहीं। इस लिये बाल विवाह के रोकने से यद्यपि विधवाओं की संख्या बहुत न्यून होगी तथापि सौ में एक का होना सम्भव है। इसलिये विधवा विवाह की आवश्यकता सर्वांश में दूर होना असम्भव ही है।

फिर दूसरी बात यह है कि बाल विवाह का रोकना तो अच्छा है। परन्तु इतने वर्षों के बाल विवाह के कारण जो करोड़ों विधवायें इस देश में दुःख उठा रही हैं उनके लिये क्या उपाय है ? भविष्य में बाल विवाह के रुक जाने से वर्त्तमान विधवाओं का दुःख कैसे दूर हो सकेगा ?

किसी हैजे के रोगी से यह कहना कि सावधानी से रहा

करो ठीक नहीं है। परहेज़ से रहना उन लोगों के लि उपयोगी है जो अभी रोग ग्रसित नहीं हैं। किन्तु जो रो है उसको तो औषधि ही देनी होगी। यदि बाल विवाह अभाव से भविष्य में विधावायें कम होंगी तो जो हो ग उनकी औषधि विधवा विवाह ही है।

एक प्रकार से बाल-विधवा-विवाह प्रथम विवाह के तुल्य है। क्योंकि बाल-विवाह धर्म विरुद्ध होने से, न के तुल्य है। जब विवाह ही नहीं हुआ तो दूसरा वि कैसा। इसलिये बाल-विधवा विवाह का विरोध तो कि को भी उचित नहीं है।

बालक और बालिकाओं का विवाह माता पिता मूर्खता तथा कतिपय पण्डितों के बहकाने के कारण है और इसका दण्ड मुख्य अपराधियों को नहीं दिया ज किन्तु उन बालिकाओं को दिया जाता है जो अपनी अवस्था में किसी विषय की मीमांसा करने में असमर्थ यह बड़े अन्धेर की बात है कि करे कोई और भोगे कोई।

(९) विधवा विवाह लोक व्यवहार के विरुद्ध है।

जिन लोगों को युक्ति नहीं सूझती वह अन्त को व्यवहार का आश्रय लेते हैं। यह उनका पक्षपात है। इस प्रकार के लोग संसार में कोई सुधार नहीं कर केवल लकीर पीटना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यह नहीं मालूम कि लोक व्यवहार किसके आश्रित है! जो विधवा विवाह के विरोधी विधवा विवाह को

इस लिये त्याज्य समझते हैं कि लोक में इसका रिवाज नहीं, वह न केवल वेद और स्मृतियों का तिरस्कार ही करते हैं किन्तु साधारण लोकहितके भी शत्रु हैं। वस्तुतः यदि लोकाचार ही प्रत्येक कार्य्य के अच्छे बुरे होने की कसौटी होती तो फिर वेद शास्त्र के पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने की कुछ आवश्यकता न थी। जो कुछ लोक में हो रहा है वह सभी उचित नहीं। यदि लोक में उचित बातें ही होतीं अनुचित न होतीं तो किसी को दुःख न होना चाहिये था। हम देखते हैं कि संसार में इतने दुःखी पुरुष रहते हैं। इससे पता चलता है कि लोक में उचित और अनुचित दोनों प्रकार के काम होते रहते हैं। इसी लिये लोकाचार कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की कसाटो नहीं समझा गया। इसका ज्ञान तो शास्त्र और तर्क से ही होता है।

यदि हम देखते हैं कि लोक में विधवा विवाह को बुरा समझते हैं तो उसके साथ ही यह भी देखते हैं कि इस भूल के कारण सहस्रों हानियों का भार उठाते हैं अतएव यह कोई युक्ति नहीं है कि अमुक कार्य्य लोक में देखा नहीं जाता।

क्या तुमको पता है कि लोक में प्रथायें किस प्रकार चलती हैं? जब विधवा विवाह शास्त्रोक्त है तो अवश्य ही प्राचीन काल में प्रचलित था। फिर इस प्रचलित संस्था को जिसने तोड़ा उसने लोकाचार के विरुद्ध कार्य्य किया और उसके अनुयायी लोग अधिक हो जाने से लोकाचार बदल गया। इसी प्रकार यदि इस समय विधवा विवाह की प्रथा नहीं है तो बहुत शीघ्र ही यह प्रथा फिर संस्थित हो सकती है यदि हम सब इसको चलाने लगें।

(१०) विधवा विवाह आर्य्यसामाजिकों के लिये है जो आर्य्य सामाजिक नहीं उन को इससे घृणा करनी चाहिये।

बहुत से लोग समझते हैं कि विधवा विवाह आर्य सामाजिकों के ही लिये है। जो किसी कारण आर्य्य समाज के सिद्धान्तों को नहीं मानते उनको विधवा-विवाह में सहायता नहीं देनी चाहिये।

परन्तु यह उनकी भूल है। इसमें सन्देह नहीं कि आर्य सामाजिक पुरुषों ने विधवा विवाह में अधिक भाग लिया है। परन्तु सैकड़ों मनुष्य आर्य्य समाज से कुछ सम्बन्ध न रखते हुये भी विधवा विवाह को उचित समझते हैं।

देखो जिस समय श्री पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बङ्गाल में विधवा विवाह का प्रश्न उठाया उस समय आर्य समाज का जन्म भी नहीं हुआ था। और आजकल भी जिनकी आखें खुली हैं और जिनके कानों में रुई नहीं है वह अवश्य विधवा विवाह के अनुकूल हैं। बिजनौर के श्रोत्रिय शङ्कर लाल जी आर्य्य सामाजिक न थे। परन्तु विधवा विवाह में उसी प्रकार गणेश-पूजन कराते थे जिस प्रकार कट्टर से कट्टर सनातन धर्मी करते हैं। वृन्दावन के गोस्वामी राधाचरण जी आर्य्य सामाजिक नहीं किन्तु विधवा विवाह के पक्षपाती हैं। प्रयाग के कायस्थ पाठशाला के भूतपूर्व संस्कृत प्रोफेसर श्री० पं० सुदर्शनाचार्य्य जी ने बाल विधवा से अपना विवाह किया। वह आर्य्य समाजी नहीं। क्विन्सकालेज बनारस के संस्कृत के प्रिन्सिपल तथा प्रयाग विश्व विद्यालय के वायस चैन्सलर श्री० डा०

गंगानाथ जी झा विधवा विवाह के पक्ष में हैं परन्तु वह आर्य्य समाज के सभासद नहीं। आनरेबिल सी० वाई० चिन्तामणि जी आर्य्य समाज में नहीं हैं परन्तु वह विधवा विवाह को देश हित के लिये आवश्यक समझते हैं। बड़ोदा के गायकवाड़ नरेश ने तो अपने यहां नियम कर दिया है कि जो पुरुष विधवा विवाह में विघ्न डालेगा वह दण्डनीय होगा। इतने पुरुषों के विधवा विवाह के पक्ष में होते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि विधवा विवाह केवल आर्य्य समाज का ही सिद्धान्त है। आज कल सैकड़ों विधवा विवाह आर्य्य समाज के बाहर भी हुये हैं और होते रहते हैं। अब तो सनातन धर्म सभा के कुछ लोग भी इनमें सम्मिलित होने में संकोच नहीं करते। हम यहां इस प्रकार के थोड़े से उदाहरण देते हैं :—

(१) १८ अप्रेल १९१९ को रुड़की ज़िला सहारनपुर में सनातन धर्म सभा के एक पण्डित के घर विधवा विवाह हुआ। और सनातन धर्म के अन्य सभ्य हर्ष पूर्वक सम्मिलित हुये।

(२) जावड़ी ज़िला करनाल में एक सनातन धर्मी गौड़ ब्राह्मण ने अपनी १९ वर्ष की बाल विधवा लड़की का विवाह १९ अप्रेल १९१९ की रात्रि को पं० मातूराम जी गौड़ ब्राह्मण के साथ किया। यह भी सनातन धर्मी थे।

इसके अतिरिक्त बहुत से विवाह इस प्रकार के सनातन धर्मी द्वारा हो चुके हैं आर्य्य समाज के सम्बन्ध से जो बाल विधवा विवाह हुये हैं उनकी संख्या तो गणना से बाहर है। पाठक गण प्रत्येक पत्र में नित्य प्रति देख ही सकते हैं।

सनातन धर्म सभा में इस समय जो कुछ विरोध विधवा विवाह का हो रहा है वह न केवल भ्रम मूलक और स्वार्थ-

प्रेरित ही है किन्तु आश्चर्य्यजनक भी है क्योंकि सनातन धर्म सिद्धान्तानुसार जो पुरुष या स्त्री १०० योजन से भी गंगा का पवित्र नाम ले ले, उसके असंख्य पाप छूट जाते हैं फिर क्या कारण कि जिस पातक के कारण विधवा को वैधव्य का दुःख प्राप्त हुआ वह गंगाजल में डुबकियां लगा कर भी वैसे का वैसा ही बना रहे और उसमें किसी प्रकार की कमी न हो।

(११) पति पत्नी का अटल और अटूट्य सम्बन्ध।

कुछ विधवा विवाह के विरोधी आक्षेप करते हैं कि विवाह रूपी सम्बन्ध शरीर का शरीर के साथ नहीं किन्तु आत्मा का आत्मा के साथ है। आत्मा अजर और अमर है। शरीर नाशवान है। पति के मरने का तात्पर्य्य यह है कि शरीर मर गया परन्तु जिसके साथ विवाह हुआ था अर्थात् आत्मा वह तो मरा नहीं, इसीलिये विधवा स्त्री को किसी प्रकार विवाह करना उचित नहीं।

समाधान—जो लोग ऐसा कहते हैं वह वस्तुतः आत्मा के स्वरूप को न समझकर शब्द-जाल में फँसे हुये हैं। वस्तुतः यह कहना सर्वथा भ्रम मूलक है कि विवाह आत्मा के साथ होता है। यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो विवाह न तो शरीर का शरीर के साथ, न आत्मा का आत्मा के साथ, किन्तु स्त्री लिङ्ग-युक्त शरीर वाले आत्मा का पुलिङ्ग-युक्त शरीर वाले आत्मा के साथ है। वस्तुतः आत्मा न स्त्री है न पुरुष। वह कभी स्त्री का शरीर धारण करता है कभी पुरुष का। विवाह का सम्बन्ध केवल मृत्यु पर्य्यन्त रहता है तत्पश्चात् नहीं

किसी की स्त्री है न कोई किसी का पति। इसलिये यह कहना कि पति के मरने के पश्चात् भी वह स्त्री उस आत्मा की पत्नी है जो शरीर छोड़ गया, सर्वथा निर्मूल है। कल्पना कीजिये कि बारह वर्ष की स्त्री का पति मर गया उसकी अवस्था उस समय १६ वर्ष की थी। अब पति का यह आत्मा सम्भव है, स्त्री का जन्म ले, सम्भव है पुरुष का, सम्भव है किसी पशु पक्षी का। यदि स्त्री का जन्म लिया तो जिस समय तक वह विधवा २५ या २६ वर्ष की होगी उस समय तक उसके पूर्व पति की आत्मा स्त्री शरीर में जाकर किसी अन्य पुरुष की पत्नी बना होगा। उस समय उस में अपनी पूर्व पत्नी के प्रति कुछ भी भाव न होंगे। सम्भव है कि उसी आत्मा ने उस विधवा के भाई के घर जन्म लिया तो यह अपनी पूर्व पत्नी को बुआ बुआ कह कर पुकारता होगा। क्या सम्भव है कि ऐसी दशा में वह विधवा अपने भाई के उस छोटे लड़के से पति का भाव प्रकट कर सके। यदि पशु या पक्षी हुआ तो और भी विचित्र बात होगी।

जो लोग यह कहते हैं कि हिन्दू स्त्री का पातिव्रत केवल इसी संसार में समाप्त नहीं होता वरन् उसकी डोर अन्य लोकों से लगी है, उन्होंने अपने शब्दों के ऊपर कुछ भी विचार नहीं किया। कल्पना कीजिये कि विधवा मर जाय और किसी अन्य स्थान पर लड़की का ही उसको जन्म मिले। तो क्या वह लड़की फिर किसी पुरुष से विवाह ही न करेगी और अपने पहले जन्म के पति की ही स्मृति में मग्न रहेगी क्या यह सम्भव है?

यदि विवाह आत्मा का आत्मा साथ के सम्बन्ध है तो रंडुए क्यों पुनर्विवाह करते हैं? उन के लिये यह युक्ति कहाँ जाती है। वस्तुतः देश और जाति तथा धर्म की उन्नति शब्दों की दुन्दु-

भी बजाने से नहीं होती वास्तविक रीति से धर्माधर्म का विचार करना ही हम को पाप और अधर्म से बचा सकता है ।
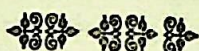
ग्यारहवाँ अध्याय

विधवा विवाह के प्रचलित न होने से हानियां ।

(१) व्यभिचार की वृद्धि ।
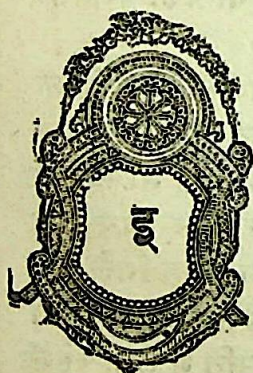
इस अध्याय में हम इस बात की मीमांसा करेंगे कि यदि विधवा विवाह सर्वथा रोक दिया जाय तो क्या हानि होती है?

सब से बड़ी हानि जो विधवा विवाह के प्रचार न होने के कारण आजकल भारतवर्ष में हो रही है वह आचार का बिगड़ना है । वस्तुतः विधवा विवाह एक आचार सम्बन्धी प्रश्न है और जो लोग इसका विरोध करते हैं उन की सब से प्रबल युक्ति यह है कि इसके प्रचार से आचार हानि होगी । परन्तु हमारा उत्तर यह है कि जिस बात का कारण समझा जा रहा है उस के अभाव में ही रोग की वृद्धि हो रही है । जिस

प्रकार साधारण विवाह गृहस्थाश्रम को ठीक ठीक चलाने और व्यभिचार के रोकने के लिये है उसी प्रकार विधवा विवाह न होने के कारण भी ब्रह्मचर्य्य व्रत को क्षति हो रही है। और व्यभिचार बढ़ रहा है। केवल विधवा विवाह रोकने से ही स्त्री पुरुषों की वृत्तियां नहीं रुक सकतीं। और जब तक स्वाभाविक वृत्तियां बनी हुई हैं उस समय तक उनकी पूर्त्ति करनी होगी।

यदि आप भारतवर्ष की विधवाओं की ओर ध्यान दें और इनके वास्तविक जीवन पर दृष्टि डालें तो यह बात भली भांति विदित हो जायगी कि उनके आन्तरिक जीवन ऐसे नहीं हैं जैसे हम समझे बैठे हैं। उनके भीतर अनेक प्रकार के घुन लगे हुये हैं जो समस्त आर्य्य जाति को पाताल की ओर ले जा रहे हैं।

१८८१ ई० की मनुष्य गणना के अनुसार भारतवर्ष में कुल विधवाओं की संख्या २ करोड़ से कम थी परन्तु १९११ ई० की मनुष्य गणना बताती है कि भारतवर्ष में कुल विधवायें २ करोड़ १९ हज़ार हैं। इस गणना को हुये बारह वर्ष हो चुके जिनमें युद्धज्वर, महा मारी तथा इससे भी भयानक यूरोप का विश्वव्यापी युद्ध भी हो चुका है इस लिये विदित होता है कि सन् १९२१ की मनुष्य गणना के अनुसार विधवाओं की संख्या में एक अद्भुत और शोकजनक आधिक्य हुआ होगा। १८८१ ई० की मनुष्य संख्या के अनुसार ९ वर्षतक की विधवायें ६३ हज़ार ५ सौ सत्तावन थीं परन्तु १९११ में ९ वर्ष तक की विधवायें ७७ हज़ार ९ सौ ८५ हो गईं। इसी प्रकार २४ वर्ष तक की विधवायें १८८१ ई० में ६ लाख दस हज़ार ९२ थीं परन्तु १९११ ई० में इसी अवस्था की विधवाओं की संख्या सात लाख दो हज़ार हो गई। हज़ारों

विधवायें इस प्रकार की हैं जिनकी अवस्था अभी एक दो वर्ष की ही है और जो अभी भली प्रकार 'मां' और 'बाप' शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकतीं। इनका जीवन अभी आरम्भ ही हुआ है और समस्त आयु काटने को पड़ी है। इनके पास कोई ऐसा साधन नहीं है जिससे यह ब्रह्मचर्य्य व्रत भली प्रकार पाल सकें। इनका ब्रह्मचर्य्य निम्नलिखित अवस्थाओं में ही सम्भव हो सकता था:—

(१) उनको इन्द्रिय दमन की शिक्षा दी जाती और सब के आत्मा इतने दृढ़ होते कि वह ब्रह्मचर्य्य व्रत के गौरव को भली प्रकार समझ सकतीं। उनको योग सिखाया जाता और वह विषयों से इतनी घृणा करने लगतीं कि उनको कभी विषय गमन की इच्छा ही न होती।

यदि ऐसा होता तो व्यभिचार में किसी अंश तक अवश्य कमी हो जाती। परन्तु नितान्त अभाव तो असम्भव ही था। क्योंकि इतिहास के अवलोकन से विदित होता है कि समस्त संसार जितेन्द्रिय और योगी राज हो ही नहीं सकता। संसार में भिन्न भिन्न स्थिति के पुरुष हैं।

विचित्र रूपाः खलु चित्त वृत्तयः।

अतः यह कहना दुस्तर है कि हम संसार की समस्त विधवा स्त्रियों को योगी बना देंगे और वह अपनी इन्द्रियों को वश में करने लगेंगी।

यदि थोड़ी देर के लिये यह कल्पना भी कर ली जाय कि यह सब योगी हो जायँगी तब भी इतिहास से हमको एक बात और विदित होती है वह यह कि जब काम का वेग होता है तो बिचारी अबलाओं का तो कहना ही क्या

है भले भले योगीराजों के छक्के छूट जाते हैं। और वह भय तथा लज्जा को छोड़कर अपने आप को बिगाड़ लेते हैं चाहे थोड़ी देर के पश्चात् उनको पछताना ही क्यों न पड़े ! बहुधा देखा गया है कि लोग बिगड़ कर पछताते हैं और थोड़े समय के पश्चात् पछताना भूल कर फिर वही काम कर बैठते हैं। इस प्रकार व्यभिचार और पछताना एक दूसरे के पश्चात् आयु-पर्य्यन्त जारी रहते हैं। और उनका अन्त होने को नहीं आता। पुराणों ने तो बड़े बड़े ऋषियों के गले ऐसे ऐसे दोष रख छोड़े हैं जिनको सुनकर हृदय कम्पायमान होता है फिर जो पुरुष मानते हैं कि ऐसे ऋषि मुनि भी काम के प्रकोपों से सुरक्षित न रह सके वह विधवाओं को ब्रह्मचर्य्यव्रत पालने पर बाधित करने का किस मुँह से साहस कर सकते हैं ? यह कह देना तो सरल है कि विधवाओं को ब्रह्मचारिणी रहना चाहिये, इन्द्रिय निग्रह सीखना चाहिये और अपने पूर्व पति की स्मृति मात्र से जीवन का अवलम्बन करना चाहिये । परन्तु ब्रह्मचर्य्य और इन्द्रिय-निग्रह खिलौना तो नहीं हैं जिनसे सभी खेल सकें। यह तो वह टेढ़ी खीर है जो भले भलों के मुँह में अटकती है। प्रिय पाठक गण ! अपने कलेजे पर हाथ रख के अपने आन्तरिक जीवन पर दृष्टि डालिये, अपने अभ्यान्तरिक भावों को टटोलिये और सत्य सत्य कहिये कि आपकी इस विषय में क्या सम्मति है।

(२) विधवाओं के व्यभिचार में उस समय भी कमी आ सकती थी जब उनको पुरुषों का दर्शन स्पर्शन ही न होता और वह सब की सब निर्जन स्थान में रख दी जातीं।

परन्तु यह केवल असम्भव ही नहीं किन्तु आचार की दृढ़ता का सब से अधम उपाय है। क्योंकि धर्म में स्वतंत्रता

आवश्यक है। जिसकी जिह्वा काट दी गई उसके लिये कहना कि यह सत्यवादी है अनर्थ और मिथ्यावाद है। इसी प्रकार यदि विधवाओं को निर्जन स्थान में रख दिया जाय तो उनको धर्मात्मा नहीं बनाया जा सकता। धर्म पालन आन्तरिक इच्छा पर निर्भर है। जिस प्रकार पुरुष स्त्रियों के भी कुचेष्टा करते हैं इसी प्रकार स्त्रियां भी पुरुषों के कुचेष्टा कर सकती हैं, और व्यभिचार के उपाय ढूंढ सकती हैं। जिन स्त्रियों को व्यभिचार से रोकने के लिये पर्दे के भीतर रक्खा जाता है और उन पर कई प्रकार के पहरे बिठाये जाते हैं उन्हीं के गुप्त रहस्य बड़े भयानक सिद्ध हुये हैं। मुग़ल बादशाहों ने जब अपनी पुत्रियों का विवाह करना छोड़ दिया तो वह कड़े से कड़े परदे में रहती हुई भी अनर्थ करने लगीं जैसा कि इटली के यात्री मनूची के लिखे हुये इतिहास से प्रकट होता है।

(३) यदि समस्त पुरुष जितेन्द्रिय हो जायं तो भी किसी अंश तक विधवाओं के ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन में सहायता मिल सकती है।

परन्तु यह भी उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार समस्त स्त्री वर्ग का योगी बन जाना। प्रायः देखा तो यह गया है कि निर्लज्ज पुरुष विधवाओं को पहले से ही बहकाना आरम्भ कर देते हैं। और जब वह एक दो बार अपने धर्म को नष्ट कर बैठती हैं तो फिर उनका स्वभाव भी वैसा ही हो जाता है और उनको किसी प्रकार भी कुचेष्टा करने में सङ्कोच नहीं होता।

इस समय भारतवर्ष में इतनी विधवाओं की विद्यमानता न केवल विधवाओं को ही, किन्तु अन्य मनुष्यों को भी व्यभिचारी और व्यभिचारिणी बना रही है। यह इस प्रकार है

है कि जो पुरुष युवती विधवाओं को पति रहित और स्वतंत्र देखते हैं वह उन पर आसक्त होकर उन्हें बहकाने में कृत-कार्य्य हो जाते हैं और विधवायें भी अपनी युवावस्था के भार को न संभाल सकने के कारण अपना सतीत्व नष्ट कर बैठती हैं। इस प्रकार न केवल यह विधवायें ही भ्रष्ट होती हैं किन्तु इनके साथ साथ अधिकांश पुरुष भी पतित हो जाते हैं।

(प्रश्न) क्या इसी प्रकार लोग सधवाओं को भी नहीं बिगाड़ते ?

(उत्तर) सधवाओं को बिगाड़ने की प्रतिशतक एक की सम्भावना है परन्तु विधवाओं के बिगाड़ने की सौ में ६६ की सम्भावना है। सधवाओं को अपनी विषय पूर्त्ति के साधन, अपने पति का भय और बिगाड़ने वाले पुरुषों को भी इनके पतियों से भय होता है। अतएव सुरक्षित रह सकती हैं। जिसके पास पुष्कल खाने को है वह भला भिक्षा क्यों माँगेगा परन्तु जो कई दिन का भूखा है वह आत्म-गौरव रखते हुये भी परवश होकर हाथ पसारने लगता है।

विधवाओं के बिगड़ने का गौण कारण उनको जीविका का अभाव भी होता है क्योंकि स्त्रियों की जीविका का एक मात्र आश्रय उनका पति ही होता है। जब पति मर जाता है तो उनको पति के भाई या अपने भाइयों के आश्रय रहना पड़ता है। उस समय जो जो अत्याचार उनको सहन करने पड़ते हैं उन को वही पुरुष जान सकते हैं जिनके हृदय में दूसरों के लिये सहानुभूति है। देवरानी! जिठानी के सदा के ताने, समस्त दिन भर का गृहस्थि का कड़ा कार्य्य, और फिर भी पेट के लिये भोजनों की कमी !! यह दुःख कभी

कभी इन को अपने सन्मार्ग से डिगा देते हैं और वह प्रलोभनों में फँस जाती हैं जो नीच पुरुष अवसर तकते हुए उन के सामने रक्खा करते हैं।

जो पुरुष विधवा स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध कर लेते हैं उन की निज स्त्रियों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। कलह और लड़ाई झगड़ा बढ़ते बढ़ते प्रेम का ह्रास हो जाता है और स्त्रियां स्वभावतः अपने ऐसे व्यभिचारी पतियों से घृणा करते करते पातिव्रत धर्म से च्युत हो जाती हैं।

जिस देश में स्त्री पुरुषों का एक बड़ा अङ्ग इस प्रकार धर्म-च्युत हो जाता है उस देश की समस्त स्थिति बिगड़ जाती है। कहावत है कि एक मछली समस्त तालाब को गन्दा कर देती है फिर जिस भारतवर्ष रूपी तालाब में २ करोड़ ७० हज़ार मछलियाँ हों उसके गन्दा होने में सन्देह ही क्या रहा। जब एक बार वायु-मण्डल व्यभिचार के भावों से पूरित हो चुका। तो यह दुर्गन्ध समस्त घरों में फैल जाती है और बूढ़ों से लेकर बच्चों तक सभी के जीवन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः विधवायें एक चिनगारी हैं जो भारत रूपी रुई को जला देने के लिये काफ़ी हैं। इस का एक मात्र इलाज यही है कि विधवा विवाह का प्रचार किया जाय।

(२) वेश्याओं का आधिक्य।

आप यदि भारत वर्ष की अवस्था पर विचार करें तो एक भयानक दृश्य सामने आ जाता है। प्रत्येक नगर की मुख्य गलियों और बाज़ारों के अड्डे आजकल वेश्याओं के निवास स्थान हो रहे हैं। लखनऊ, प्रयाग, बनारस, कलकत्ता जिस ओर निकल जाइये बड़े बड़े व्यापारियों के शिरों पर वेश्यायें बैठी हुई हैं।

अब भला ये वेश्यायें कहां से आईं। यदि इन का इतिहास लिखा जाय तो पता लगेगा कि यह उच्च घरों की बहू बेटियां हैं जो वैधव्य पीड़ा का सहन न कर के दुराचार के गढ़े में गिरी हुई हैं और अपने साथ अनेकों को गिराती चली जारही हैं। प्रत्येक पुरुष जानता है कि वेश्याओं की वर्षा नहीं होती और न उन की कोई मुख्य जाति ही है। इन का रंडी नाम ही प्रकट करता है कि यह वास्तव में रांडें (विधवायें) थीं जो किसी न किसी कारण रंडियां हो गईं। यह रंडियां अपना कुटुम्ब बढ़ाती रहती हैं। जब एक वेश्या बूढ़ी हो जाती है और उसके पास जीविका के साधन नहीं रहते तो वह किसी रूपवती विधवा को बहकाकर लाने में कृतकार्य्य हो जाती है और इस प्रकार उसका कुटुम्ब बढ़ता रहता है।

बहुत से भोले भाले मनुष्य कहेंगे कि ऐसा हमने कहीं नहीं देखा कि अमुक घराने की विधवा निकल कर वेश्या होगई। परन्तु ऐसे मनुष्यों से कहना चाहिये कि भोले भाई! अभी तुमने देखा ही क्या है? तुम तो आंख बन्द किये बैठे हो तुम्हें क्या पता है कि तुम्हारे पड़ोस में ही क्या क्या अनर्थ होते हैं? हम यहां दो तीन उदाहरण देंगे जो हमारी आंख के देखे हैं। इन के नाम हम देना नहीं चाहते, क्योंकि इस से वंश के लोगों की कीर्त्ति में बट्टा लगेगा।

एक खत्री जाति की रूपवती २० वर्ष की आयु की विधवा थी वह विचारी किसी न किसी प्रकार अपने ज्येष्ठ के यहां रह कर अपना पालन किया करती थी। उसके रूप को देख कर उसका ज्येष्ठ उस पर मोहित होगया और उसको फंसाना चाहा। कुछ दिनों तक तो वह किसी न किसी प्रकार अपने जेठ का प्रतिरोध करती रही परन्तु अन्त को वह बहक गई

और उन दोनों में गुप्त रीत्या अनुचित सम्बन्ध होगया। कु समय तक ऐसा ही रहा। परन्तु यह भेद प्रथम घर वालों प फिर पड़ोसियों और जाति विरादरी के लोगों पर विदि होगया। उस समय तो बड़ा कोलाहल मचा और जेठ अपनी पगड़ी संभालनी भारी पड़ गई। ऐसी अवस्था उनको यह सूझी की उस विचारी विधवा को घर से निका दिया। और वह अन्य स्थान में जाकर वेश्या हो गई। य उस नववयस्का बाल विधवा का विवाह कर दिया जाता जेठ के व्यभिचार, उसके व्यभिचार और उन पुरुषों के व्यभि चार में कमी हो जाती जो उस के वेश्या होने पर उसके सा बिगड़ते रहे और जिनकी संख्या बताना असम्भव है।

इसी प्रकार एक कायस्थ थे। उनकी बहिन के विषय उनकी स्त्री बताया करती थीं कि हमारी नन्द विधवा थी जि की मृत्यु हो गई। वास्तव में उस विधवा की मृत्यु नहीं हु थी। किन्तु वह नगरसे दस बारह कोस की दूरी पर ही कि नीच जाति वाले पुरुष के घर में थी। यह बात पड़ोस सभी स्त्री पुरुषों पर विदित थी। बात यह थी कि यह लड़ बाल विधवा थी और इन लाला जी के घर एक नौकर रह था उस से उसका सम्बन्ध हो गया। जब भेद प्रकट हो लगा तो नौकर उस विधवा को लेकर भाग निकला। ला जी की नाक तो कट ही चुकी थी। परन्तु नकटा कहला नहीं चाहते थे अतः उन्होंने उसकी झूठ मूठ मृत्यु प्रसिद्ध क दी और क्रिया कर्म करके जाति वालों का सहभोज भी क दिया। विचारे क्या करते? देश के रिवाज का दोष है, ला जी का नहीं।

एक जैनी वैश्य थे जिनकी पुत्रवधू विधवा थी। इन्हों स्वयं इस विधवा को बहका लिया। यद्यपि गांव वाले स

इस रहस्य को जानते थे परन्तु कोई मुँह पर कहने का साहस नहीं करता था। जब वह वैश्य जी वृद्ध हो गये तो वह विधवा बहुत सा गहना लेकर घर से भाग गई।

एक ब्राह्मण थे जिनकी बहिन विधवा थी उनके नगर में विधवा विवाह के प्रचारक और सहायक भी थे। उन्हों ने उस लड़की की चाल ढाल देख कर ताड़ लिया था कि कुछ दाल में काला है। चूंकि इस ब्राह्मण देवता का वंश उच्च था और लोग उसका आदर करते थे। अतः उस कुल को धव्वे से बचाने के लिये इस विधवा के भाई से कहा गया कि तुम इस का पुनर्विवाह कर दो। परन्तु यह महात्मा बड़े लाल पीले हुये। और खुल्लम खुल्ला लड़ना आरम्भ किया कि हम जैसे उच्च वंशज ऐसे निकृष्ट कार्य्य कब कर सकते हैं? थोड़े दिनों में कुछ गुल खिल गया। उसको तो इन्हों ने किसी प्रकार दबाया। परन्तु जब इसी नगर में एक अन्य विधवा का पुनर्विवाह हुआ, तो उस ब्राह्मणी विधवा से नहीं रहा गया। और उसने अपने भाई और भावज से प्रार्थना की कि मेरा भी पुनर्विवाह कर दिया जाय। यह बात उन दोनों को कब सहन थी। इतना तो सहन ही था कि गुप्त लीला जो चाहे होता रहे। परन्तु पुनर्विवाह पर राज़ी नहीं हुये। और भाई ने बहिन को और भावज ने नन्द को कोठरी में बन्द कर के अनेक प्रकार की अनिर्वचनीय पीड़ायें दी। इन सब का परिणाम यह हुआ कि वह अवसर पाकर एक दिन वह निकल भागी और ईश्वर जाने आज कहाँ और किस अवस्था में है!!

(३) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या ।

व्यभिचार के अतिरिक्त, जिसका वेश्या वृद्धि केवल
ही अङ्ग है, विधवा विवाह के प्रचरित न होने के कारण से
भ्रूण-हत्या अर्थात् गर्भपात और बाल हत्या भी बहुत हो
रही है। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश राज्य की ओर से
हत्या के दोषियों को बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता है
पाप केवल कड़े नियम और कड़े दण्ड से ही बन्द नहीं
जाते । "कारणाभावात् कार्य्याभावः" जब तक कारण
अभाव नहीं होता उस समय तक कार्य्य का अभाव हो नहीं
सकता। वृक्ष को उन्मूलित करने के लिये जड़ को
चाहिये। जब गर्भपात और बालहत्या की विधवा रूपी
मज़बूत हो रही हैं तो उस प्रकार के पातकों का बढ़ना
स्वाभाविक सी बात है। स्मृतियों में भ्रूण हत्या और
को महा पाप *लिखा है। इस से न केवल उसी आत्मा
पाप होता है, जो मारी जाती है, किन्तु उस जाति का
हो जाता है जिसकी व्यक्तियाँ पृथ्वी पर आने से पहले
कर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त हिंसा बढ़ जाने से
में हिंसा और क्रूरता का स्वभाव बढ़ जाता है। यदि
वर्ष में गणना की जाय तो सहस्रों गर्भपात प्रतिदिन
हैं। जो केवल विधवाओं के ही कारण हुआ करते हैं।

---

* वशिष्ठ स्मृति में लिखा है :—

पञ्चमहापातकान्याचक्षते गुरुतल्पं
सुरापानं भ्रूणहत्या ब्राह्मणसुवर्णहरणं
पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मेण वा यौनेन वा

सी विधवाओं को लोग तीर्थ स्थानों में जाकर छोड़ आते हैं और वहां वे अनेक गुप्त रीतियों से हत्याकाण्ड की प्रवृत्ति में तत्पर होती हैं।

मुझे एक सम्बन्धी का पता है कि जब उनकी बाल-विधवा लड़की किसी प्रकार गर्भवती होगई और उनको उस का पता लग गया तो उन्होंने उस को आगरे ले जाकर गर्भ से मुक्त कराना चाहा परन्तु वहां कोई डाक्टर इस भीषण कार्य्य करने के लिये राज़ी न हुआ। वह विचारे इतने तो धन-वान न थे कि जो कुछ चाहते कर लेते। वस्तुतः रुपये में बहुत बड़ी शक्ति है परन्तु अन्त को उन्होंने तीर्थ यात्रा का एक मात्र उपाय करने का निश्चय कर लिया और अपनी वृद्धा स्त्री और युवती गर्भवती पुत्री को लेकर चारों धाम करने चल पड़े। मथुरा काशी, गया, जगन्नाथ सब बड़े २ तीर्थों में फिरे और इन देवतों के प्रसाद से लड़की भी गर्भदोष से मुक्त हो गई। दैव जाने इन महाशय को क्या क्या करना पड़ा होगा। क्या? कहाँ? और किस प्रकार हुआ? मुझ को ज्ञात नहीं है।

कहीं २ तो ऐसा भी हुआ है कि माता पिता ने अपना नाम बचाने के लिये अपनी दोषयुक्त लड़कियों को विष देकर अथवा अन्यथा मार डाला है। एक महाशय ने तो अपनी लड़की के ऊपर मिट्टी का तेल डाल कर दीपशलाका लगादी और प्रसिद्ध कर दिया कि लड़की लैम्प लेकर कनस्तर के पास तेल लेने गई थी कि उसके वस्त्रों में आग लग गई और वह वहां मर गई।

पाठक गण! विचार कीजिये कि एक विधवा विवाह के प्रचार न होने के कारण ही कैसी कैसी मर्म बेधक घटनायें

हमारे देश में होरही हैं। कैसा हृदय विदीर्ण करनेवाला दृश्य है! जो माता पिता अपनी सन्तान के लिये सदैव प्राण न्यौछावर करें, जो अपने लड़की लड़कों को अपनी आंखों के तारे और कलेजे के टुकड़े कहैं, वही मा बाप एक सामाजिक निर्बलता के कारण ऐसे क्रूर हो जायँ कि अपनी कोख से ज्याये हुये अपने हाथ से पाले हुये जीवों को अपने ही हाथ से मारडालें! ऐसी क्रूरता तो पशुओं में भी देखने को नहीं आती। सिंह, भेड़िये, चीते आदि बड़े २ भयङ्कर जन्तु अन्य प्राणियों पर तो बड़ी निर्दयता करते हैं और सदैव उन के रक्त के प्यासे रहते हैं। परन्तु उनका कठोर हृदय भी अपनी सन्तान के लिये पिघल ही जाता है और सिंहनी का जो हाथ दूसरों को चीर फाड़ कर खाने के लिये दौड़ता है वही हाथ अपने बच्चों के लिये रुई और ऊन से भी कोमल हो जाता है। परन्तु यह मनुष्य जिसे अपनी उच्चता पर अभिमान है, यह हिन्दू मनुष्य जिसको अपने "अहिंसा-परमो धर्मः" पर घमण्ड है, जो समझता है कि धर्म के ठेकेदार केवल हमहीं हैं और संसार में हम से अधिक कोई धर्मात्मा ही नहीं, यह उच्च और कुलीन मनुष्य जो चीटियों के मरने पर भी प्रायश्चित करता है, केवल विधवा विवाह के प्रचार न होने के कारण अपनी ही सन्तान पर अनेक प्रकार की क्रूरतायें करता है। विधवा स्त्रियां जिस समय अपने गुप्तरीति से जन्मे हुए बच्चों को मारने के लिये उद्यत होती होंगी, तो आकाश थर्राता और भूमि कांपती होगी। हा दैव! माता का वह स्नेह कहां गया जो अपने हृदय के टुकड़े को देखकर उसका मुख चूमने की इच्छा करता है। कौन माता है जो अपने पुत्र को देखकर स्वर्गप्राप्ति के सुख को अनुभव न करती हो। परन्तु समाज की कुरीतियां मनुष्य से क्या कुछ नहीं कराती।

इधर प्रेम पात्र बच्चे ने जन्म लिया है उधर माता लोक लाज से मर रही है कहां तो इस समय बाजे गाजे होते और बच्चे को दूध मिश्री पिलाई जाती कहां इस निर्लज्ज हिन्दू जाति के बच्चे का प्राणान्त करने के लिये उसी की माता का हाथ उठ रहा है! माता कभी तो मारना चाहती है और कभी अपने प्यारे पुत्र का मुख देखकर उसे तर्स आता है। बहुत सी स्त्रियां हैं जो ऐसे समय में अपने पुत्रों को मार नहीं सकतीं और केवल दैव के आश्रय पर उनको मार्गों में फेंक कर चल देती हैं, सैकड़ों हैं जिन के बच्चे दाइयों के हाथ से नष्ट हो जाते हैं। सैकड़ों हैं जिन का पता पुलिस को लग जाता है उस समय लाला जी, पण्डित जी अथवा सेठजी की जो कुछ कीर्त्ति वृद्धि होती है वह तो पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं।

अभी हाल की घटना है कि संयुक्त प्रान्त के एक प्रसिद्ध नगर की एक मण्डी में एक बच्चा मरा हुआ पाया गया। पुलिस को ख़बर लगी। पता चल गया और मालूम हुआ कि उस नगर के बड़े माननीय महाशय की करतूत का यह फल है। पुलिस ने क्या किया और इस में किस का दोष था इसका तो पता नहीं किन्तु उक्त महाशय के पड़ोसी और सम्बन्धी नित्य प्रति इस प्रकार की कानाफुंसी करते हैं। यदि अब भी हिन्दू जाति को बुद्धि आवे और यह बुरे भले का विचार कर सके तो अच्छा है, नहीं तो इसके गिरने में सन्देह ही क्या रहा है!!

(४) अन्य क्रूरतायें।

इस देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों में विधवाओं के लिये क्रू
नियम रक्खे गये हैं। जिस समय कोई विधवा हो जाती है
उसी समय उस के सास तथा अन्य घर वाले उसे कोसने
लगते हैं कि यह अभागी ऐसी आई कि इसने मेरे लाल को
डस लिया। यह डायन है, यह साँपिनी है इत्याद इत्यादि
उस समय उसका कोई नहीं होता। प्रथम तो वह विचारी
सुसराल में अकेली होती है। माता पिता भाई बहिन सब से
छूटकर वह पराये घर आती है। उसका एक मात्र आश्रय
पति पर होता है। वह भी मर गया और वह अकेली रह
गई। फिर उस की अवस्था खेलने खाने की होती है और
संसार का कुछ अनुभव भी नहीं होता। ऐसे समय में चारों
ओर से ताने और गालियाँ सुनना और लोगों को बजाय
धैर्य्य और शान्ति देने के उसे कोसना। बड़ा भयङ्कर अवसर
होता है और विधवा का हृदय विदीर्ण हो जाता है। कैसा
अन्याय है? माता का पुत्र मरगया परन्तु माता नहीं कहती
कि मेरे दुर्भाग्य से मेरा पुत्र मर गया। बहिन नहीं कहती कि
मेरे दुर्भाग्य से भाई मर गया। दादी नहीं कहती कि मेरे
दुर्भाग्य से नाती मरगया परन्तु सब यही कहते हैं कि इस
बहू के दुर्भाग्य से उस की मृत्यु हो गई। वस्तुतः दुर्भाग्य तो
सभी का है परन्तु वह किसी के हाथ में नहीं। क्या वह विचारी
चाहती थी कि मेरा पति मर जाय? फिर उसको डायन
सांपिन आदि नामों से सम्बोधित करना कितना बुरा है।
इतने पर ही उसकी विपत्ति समाप्त नहीं होती। कहीं २ तो
उसका सिर मुंडा दिया जाता है। चूड़ियें और बिछुये तो
प्रायः सभी जगह उतार दिये जाते हैं। कहीं २ रंड़सा

पहना देते हैं जो एक अपमान और शोक सूचक वस्त्र है और जो हर घड़ी उसके घावों को ताज़ा किया करता है। इस के पश्चात् कोई उससे प्यार से नहीं बोलता न अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं और न अच्छा खाना। कभी २ तो ऐसा होता है कि विधवा बिचारी छः या ७ वर्ष की ही होती है। उसे यह पता भी नहीं होता कि स्त्री विधवा कैसे होती है। माता ज़बरदस्ती उस की चूड़ियाँ और बिछुये उतारती है और लड़की चिल्ला कर रोती है। एक कवि ने एक विधवा बाला का विलाप बड़े हृदय-वेधक शब्दों लिखा है :—

भजन

माय मोरी तुरियाँ चूँ फोरे मुझे नन्दा तरती हाय! तू तौ तहे थी बनें दी नौद्री। एत तुझे घड़वादूँ तिलरी। आज उतारे है चूँ सिंदरी। नथ बिछुये मोरे। मुझे० ॥ १ ॥ तड़े छड़े झांझन अरुबाली। झांवर नुइयांमेरीनिताली। हार पच-लड़ी भूँ में दाली। चौं फँदे तोरे ॥ मुझे० ॥ २ ॥ हाय माय! तू हो दई वैरिन, छोड़ मुझे मैं जाऊँ हूँ थेलन। ताले तरों दे है चौं हाथन। है दोरे दोरे। मुझे० ॥ ३ ॥ माता सुन २ खाय पछाड़े। खून बहे सिर दे दे मारे। छिपे चन्द्र नैनों के तारे फूटे भाग तोरे ॥ मुझे० ॥ ४ ॥ हाय शोक दिल टुकड़े होवे ज्यूँ वह विधवा कन्या रोवे। पाठक खेलें कूदें सोवें। झूले हिन् डोरे ॥ मुझे० ॥ ५ ॥

वस्तुतः इसमें उसका दोष नहीं था चेचक के खाजे से छोटी अवस्था में विवाह कर दिया गया और अब माता पिता

के दोष से वह विधवा हो गई परन्तु उसके निर्दोष होते
भी उसे दोष दिया जाता है। आज से वह सभी शुभ का
से वहिष्कृत करदी जाती है। जब कभी विवाह आदि
शुभ अवसर आता है तो स्त्रियां उसे सम्मिलित नहीं करतीं
जब घर का कोई पुरुष परदेश जाने को होता है तो
समय उसका मुख नहीं देखता। बहुधा लोग प्रातःकाल
उसका मुख नहीं देखते, इससे प्रतीत होता है कि हमा
जाति ऐसी पतित हो गई है कि उसको अपनी दुःखि
व्यक्तियों से सहानुभूति नहीं रही। इसमें सन्देह नहीं
विधवा को घोर दुःख है और वह उसका अनुभव करती
है परन्तु जाति का कर्त्तव्य था कि जिस पर विपत्ति प
है उसके साथ सहानुभूति और समवेदना प्रकट की जा
उसके घावों पर मरहम लगाया जाता, उसके साथ ऐ
वर्ताव किया जाता कि जिससे उसके दुःखरूपी पहाड़
काटने में कुछ सहायता मिलती, जिससे उसकी कड़ी
कुछ आसान होती। परन्तु जाति की क्रूरता को तो देखि
कि घायल के घावों पर और निमक छिड़कती है। मरे
मारे शाह मदार। यह भी कोई सभ्यता है। यह भी
गौरव की बात है कि गिरे के दो लातें और लगादो। वस्तु
बात यह है कि

जिसके नाहीं पैर बिवाई।
वह का जाने पीर पराई॥

बहुत से लोग कहेंगे कि हम यह सब विधवाओं
आत्मोन्नति के लिये करते हैं। यदि ऐसा न किया जाय
यह भोग विलास में फँस जायँ। लोक की अपेक्षा परलो
का सुधारना अधिक आवश्यक है। परन्तु यह हमारे

भाइयों की भूल है। वह यह नहीं समझते कि आत्मोन्नति और परलोक सुधार किसे कहते हैं। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि गुप्त व्यभिचार, वेश्यापन, गर्भपात और बाल-हत्या करने वाली आत्मायें परलोक-सुधार के लिये जो कुछ कर रही हैं उससे चुप ही भली। परन्तु एक बात और है। जो विधवायें रात दिन के अपमान सहते सहते इस लोक में समस्त आत्मगौरव खो चुकीं, जिनके हृदय से वास्तविक आत्मोन्नति का स्रोत ही सूख गया, जिनको केवल इतना ही ज्ञान रह गया है कि हम अधम, नीच और अभागिनी हैं, वे दूसरे जन्म में भी अधिक उन्नति नहीं कर सकतीं। हमारा जीवन सादि और सान्त नहीं किन्तु अनादि और अनन्त है। यह वस्तुतः एक शृङ्खला है जिसकी कड़ियां हमारे जन्म जन्मान्तर हैं। जो सामग्री हम इस जन्म में इकट्ठी करते हैं वह दूसरे जन्म में काम आती है। जितनी उन्नति हम इस जन्म में कर चुके हैं उसी के आगे दूसरे जन्म में करेंगे। जिन विधवाओं की उन्नति को इस जन्म में बन्द कर दिया गया वह परलोक में क्या करेंगी। मेरा विचार तो यह है कि जिसने इस जन्म में आत्मगौरव खो दिया वह दूसरे जन्म में दास ही उत्पन्न होगा।

बङ्गाल तथा अन्य प्रान्तों में विधवाओं को बड़े कड़े कड़े व्रत रखने पड़ते हैं। यदि कोई विधवा ऐसा नहीं करती तो समस्त घर की स्त्रियां उसे कोसतीं और ताने देती हैं। इसी घोर दुःख में उसकी कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। अभी थोड़े दिन हुये एक समाचार पत्र में एक विधवा की विपत्ति का हाल छपा था। वह विचारी रोग ग्रसित थी कि निर्जला एकादशी आगई जो ग्रीष्म ऋतु में पड़ा करती है। उस बीमार को भी व्रत रखने पर मजबूर किया गया।

वह विचारी अशक्त थी और घड़ी घड़ी पर पानी मांगती थी परन्तु क्रूर अन्ध विश्वासियों को दया न आई और ज़बरदस्ती उससे उपवास रखवा दिया। जिस बीमार को घड़ी २ पर जल की आवश्यकता हो उसे यदि दिन भर जल न मिले तो उसका बुरा हाल होता है। यही गति उसकी भी हुई। सायंकाल को पानी मांगते २ उसका चिल्लाना बन्द होगया। घर के लोग कहते थे कि १२ घण्टे की बात है, क्यों व्रत तोड़कर इसका परलोक बिगाड़ा जाय। पाठकवर्ग ! क्या कभी आप पर ऐसा कष्ट पड़ा है ? क्या कभी आपने जेठ मास की दुपहरी को बिना जल के बिताया है ? फिर इस पर भी यदि रोग की अवस्था हो तो विपत्ति का क्या कहना। जब आधी रात का समय हुआ तो विचारी लड़की की मारे प्यास के सचमुच जान निकलने लगी। परन्तु मा बाप उसे सचमुच स्वर्ग भेजना चाहते थे, उनको कुछ भी दया न आई या यों कहिये कि धर्म के वास्तविक स्वरूप को न जानकर वह अन्धे हो रहे थे। परिणाम यह हुआ कि तीन बजे रात को उस विचारी विधवा का प्राण पखेरू मारे प्यास के इस नश्वर शरीर को छोड़ कर उड़ गया।

इस प्रकार की अनेक घटनायें प्रति दिन सुनने में आती हैं जिनसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ६० वर्ष हुये कि इसी देश में विधवाओं पर इससे भी अधिक अत्याचार होता था और उनको अपने पति के साथ जीवित जलना पड़ता था। इस को लोग सती होना कहते थे। पहले तो स्त्री को अपने पति के साथ जलने के लिये उत्तेजित करते थे और जब वह तैय्यार हो जाती तो उसे चिता पर रख दिया जाता था। यदि कोई तैय्यार न होती तो घर के लोग उसे इतने ताने देते और कहते कि इस दुष्टा को अपना शरीर इतना प्यारा

है कि पति का अनुसरण ही करना नहीं चाहती, कोई कहता था कि यह कुलटा है, कोई कहता कि अजी यह तो यही चाहती थी। इन शब्दों को सुनने की अपेक्षा वह मरना ही पसन्द करती थी और जब एक बार चिता पर पहुँच गई और आग लगते ही उसने भागना चाहा तो लोग लाठियों के मारे उसे उसी चिता में भस्म कर देते थे और 'सती सती' के शब्दों से आकाश गूंज जाता था वस्तुतः बात यह है कि अपना शरीर किसको प्यारा नहीं होता? और आग में कौन जलना चाहता है? भला हो ब्रिटिश राज्य का जिसने सदा के लिये इस प्रकार की क्रूर प्रथा बन्द करदी। आजकल यदि कोई सती होने में सहायता या उत्तेजना करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है।

(५) जाति का ह्रास।

ये व्यक्तिगत हानियाँ तो विधवा विवाह के प्रचलित न होने से हैं हीं, परन्तु इनके अतिरिक्त जातिगत हानियाँ भी हैं, और हिन्दुओं की संख्या दिन प्रति कम हो रही है। १९११ ई० की भारतीय मनुष्य गणना की जो रिपोर्ट ब्रिटिश गवर्मेन्ट की ओर से छपी है उसकी पहली पुस्तक (Vol. I.) के प्रथम भाग (Part I.) के पृ० ११९ पर लिखा है कि आजकल हिन्दुओं की जन संख्या २१ करोड़ ७३ लाख है। एक समय था कि समस्त भारत वर्ष में यही लोग थे। अब घटते घटते दो तिहाई रह गये हैं अर्थात् प्रत्येक तीन में से एक इन से छिन गया। जो जाति ८ या १० शताब्दियों के हेर फेर में

दो तिहाई रह जाय वह इतने ही समय के और व्यतीत हो तक सर्वथा नष्ट हो जायगी यदि बिगड़ने के वर्त्तमान कारण ज्यों के त्यों उपस्थित रहें। हिन्दू लोग समझते हैं कि अभी तो हम बहुत हैं कुछ चिन्ता नहीं। परन्तु यह उनकी भूल है। घटते २ करोड़पति का कोष भी एक न एक दिन समाप्त हो ही जाता है और बढ़ते २ छदम्मी लाल भी करोड़ी मल हो ही जाते हैं। इसलिये जाति के नेताओं का कर्त्तव्य है कि उन कारणों पर विचार करें जिनसे इन की जन संख्या में दिन दिन कमी होती जाती रही है।

उसी रिपोर्ट के पृ० १२० पर हिन्दुओं की वृद्धि के विषय में लिखा है :—

" The number of Hindus has increased since 1901 by 5 per cent while that of Mohomedans, Sikhs and Budhists has increased respectively by 7, 37 & 13 per cent. As is now well known, the Hindus are less prolific than the Mohomedans, Budhists and Animists and other communities owing mainly to their Social customs of early marriage and compulsory widow-hood. Girls are commonly married long before they reach maturity to men who may be much older than themselves, and a very large proportion of them lose their husbands while they are still of child bearing age or even before they have attained it."

"हिन्दुओं की संख्या १६०१ से प्रति शतक ५ के हिसाब से बढ़ी है परन्तु मुसल्मान सिक्ख और बौद्धों की क्रमशः ७, ३७ और १३ प्रति शतक। यह एक प्रसिद्ध बात है कि मुसल्मान, बौद्ध तथा भूत प्रेतादि के पूजकों और अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दू कम वृद्धिशील हैं। इसका मुख्य कारण बाल विवाह और अनिष्ट वैधव्य आदि सामाजिक कुरीतियाँ हैं। कन्याओं का युवावस्था से बहुत दिन पहले ऐसे पुरुषों से विवाह कर दिया जाता है जो उनसे बहुत बड़े होते हैं और उनमें से अधिकांश के पतियों की ऐसी अवस्था में मृत्यु हो जाती है जब वे सन्तान उत्पन्न करने के योग्य होती हैं या जो अभी तक सन्तान उत्पन्न करने के योग्य भी नहीं हुईं।"

पृष्ठ १२६ पर लिखा है :—

"The greater reproductive capacity of the Mohomedans is shown by the fact that the proportion of married females to the total number of females aged 15-40 exceeds the corresponding proportion for Hindus. The result is that the Mohomedans have 37 children aged '0-5' to every hundred persons aged '15-40' while the Hindus have only 33. Since 1881 the number of Mohomedans in the areas then enumerated has risen 26.4 p.c. while the corresponding increase for Hindus is only 15.1 per cent."

"मुसल्मानों में अधिक उत्पत्ति-शक्ति होने का एक प्रमाण यह भी है कि १५ वर्ष से लेकर ४० वर्ष की अवस्था की स्त्रियों में सधवा स्त्रियों की संख्या मुसल्मानों में हिन्दुओं की अपेक्षा

अधिक है। इसका परिणाम यह है कि मुसल्मानों में १५ से ४० वर्ष के प्रति १०० मनुष्यों में ५ वर्ष या कम आयु के बच्चे ३७ मिलेंगे परन्तु हिन्दुओं में केवल ३३। १८८१ ई० से इधर मुसल्मानों में प्रति शतक २६.४ वृद्धि हुई और हिन्दुओं में केवल १५.१ ही"।

पृष्ठ १५१ पर लिखा है :—

"The Mohomedans and Christians also have considerably larger proportion children of the the Hindus, whose Social customs are less favourable to rapid growth. Hindu girls are as a rule married before puberty, and the difference in age between them and their husbands is often very great. A very large proportion of them become widows while they are still capable of bearing children and these are frequently not allowed to marry again."

"मुसल्मान और ईसाइयों में हिन्दुओं की अपेक्षा बच्चों की संख्या बहुत अधिक है क्योंकि हिन्दुओं के सामाजिक नियम जन-वृद्धि के अनुकूल नहीं है। हिन्दू लड़कियां युवावस्था से पूर्व ही व्याह दी जाती हैं और उन की तथा उन के पतियों की आयु में बड़ा अन्तर होता है। इनमें से अधिकांश ऐसे समय विधवा हो जाती हैं जब कि उन में उत्पत्ति की पूर्ण रूप से शक्ति होती है। और बहुधा उन को पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं दी जाती"।

१६६ पृष्ठ पर एक चित्र दिया है जिस से विदित होता है कि बङ्गाल में ६ वर्ष से नीचे या ३३ वर्ष से ऊपर,

प्रान्त में १६ वर्ष से नीचे या ३७ वर्ष से ऊपर, मद्रास प्रान्त में ६ वर्ष से नीचे या ३१ वर्ष से ऊपर, संयुक्त प्रान्त में ८ वर्ष से नीचे या १८ वर्ष से ऊपर मनुष्यों की अपेक्षा स्त्रियां कम मरती हैं अर्थात् चूंकि ६ या १० वर्ष से पूर्व ही लोगों का विवाह हो जाता है इस लिये अधिक स्त्रियां इसी अवस्था में विधवा हो जाती हैं। यह बात पृ० २७८ पर दिये हुये एक और चित्र से भी विदित होती है अर्थात् हिन्दुओं में प्रति एक सहस्र मनुष्यों में पांच वर्ष तक की आयु की ५, १० से १५ वर्ष तक की आयु की १७, १५ से ४० वर्ष तक की आयु की १२४ और ४० वर्ष से ऊपर की ६२७। इस प्रकार प्रत्येक अवस्था की विधवा को मिला कर प्रति १०००, १८८ विधवायें हैं अर्थात् जन संख्या का लगभग पांचवां भाग विधवा हैं"।

२७३ पृ० पर लिखा है :—

"The statistics of marriage by caste show that except in Bengal, the proportion of widows is greatest among the higher castes. Thus in Behar and Orrissa, of every 100 females aged 20—40, more than one fifth are widowed among the Babhans, Brahmans, Kayasthas and Rajputs. In Bombay among Brahmans are fourth."

"विवाहित जन-संख्या के जाति-आत्मक अङ्कों से प्रकट होता है कि बङ्गाल को छोड़कर अन्य प्रान्तों में विधवाओं की संख्या उच्च जातियों में अत्यधिक है। विहार और उड़ीसा में २० से लेकर चालीस वर्ष तक की प्रति १०० स्त्रियों में पांचवें भाग से अधिक विधवाओं की संख्या बाभन, ब्राह्मण, कायस्थ और राजपूतों में हैं। बम्बई में ब्राह्मणों में

चौथाई विधवायें हैं।" इसका कारण यही है कि उन जातियों में विधवा पुनर्विवाह का निषेध है। समस्त भारतवर्ष में १५ से ४२ वर्ष के भीतर की स्त्रियों में ११ प्रति शतक विधवायें हैं। हिन्दुओं में १२ प्रति शतक और मुसल्मानों में ६ प्रति शतक"। मुसल्मानों में भी इतनी विधवाओं के होने का कारण यह है कि यद्यपि उनके यहां विधवा विवाह की विधि है तथापि हिन्दुओं की देखा देखी मुसल्मान उच्च वंश भी विधवाओं का बहुत कम विवाह करते हैं। और इस प्रकार हिन्दुओं के दोष मुसल्मानों में भी प्रवेश होने लगे हैं यद्यपि आधिक्य के साथ नहीं।

हिन्दुओं के सामाजिक दोष इन को अन्य जातियों की अपेक्षा कई गुनी हानियां पहुँचाते हैं। यह एक विचित्र बात है कि जो रोग मुसल्मान आदि को कम हानि पहुँचाता है वही रोग हिन्दुओं के लिये अधिक हानि का कारण हो जाता है। वस्तुतः बात भी यह है कि दीर्घ रोगियों के लिये छोटी सी बीमारी भी मृत्यु का कारण होती है।

जन संख्या पर दृष्टि डालने से प्रकाशित होता है कि कई सौ वर्षों से हिन्दुओं की संख्या कम और मुसल्मानों की अधिक हो रही है और दिन पर दिन घटते घटते हिन्दू अब दो तिहाई रहगये हैं। यह तो एक प्रसिद्ध बात है कि आज जो भारतवर्ष में छः करोड़ छियासठ लाख मुसल्मान पाये जाते हैं उन में से एक करोड़ भी बाहर से नहीं आये। परन्तु इन्होंने हिन्दुओं में ही से अधिक पुरुषों को लिया। इस का परिणाम यह हुआ कि जितनी संख्या हिन्दुओं की कम हुई उतनी मुसल्मानों की बढ़गई। और इस का एक मुख्य कारण हिन्दुओं में विधवा विवाह के प्रचार का अभाव था। मनुष्य गणना की रिपोर्ट के १२१ पृष्ठ पर लिखा है:—

संन्यासनी विधवा ।

A. L. J. PRESS, ALLAHABAD.

["Though there is at present no organized proselytism by the Mullas, here and there individuals are constantly attorning to Mohomedanism............in the case of widows, the allurement of an offer of marriage. Whenever there is a love affair between a Hindu and a Mohomedan, it can only culminate in an open union if the Hindu goes over to Islam, while the discovery of a secret liaison often has the same sequel."

"यद्यपि आजकल मुसल्मानों में मुल्लाओं के द्वारा मुसल्मान बनाने की नियम वद्ध संस्था नहीं है तथापि एक दो व्यक्तियाँ सदैव मुसल्मानों में मिलती ही रहती हैं।...... और विशेष कर विधवायें हैं जिन को वहाँ विवाह का लालच है। जब कभी किसी हिन्दू और मुसल्मान में प्रेम होता है तो हिन्दू मुसल्मान हो जाता है और खुल्लम खुल्ला उनका विवाह हो जाता है और यदि गुप्त प्रेम होता है तो भेद के खुल जाने पर भी वही परिणाम होता है"। वस्तुतः देखा गया है कि यदि ख़रबूजा छुरी पर गिरे तो भी ख़रबूज़ा ही कटता है और यदि छुरी ख़रबूजे पर गिरे तो भी ख़रबूजा को ही हानि पहुँचती है। यही हाल हिन्दू और मुसल्मान का है। यदि कोई मुसल्मान किसी हिन्दू स्त्री से फँस जाता है तो वह हिन्दू स्त्री तथा उसकी सन्तान मुसल्मान हो जाती है और यदि कोई हिन्दू किसी मुसल्मानी के साथ लग जाता है तो वह हिन्दू पुरुष तथा उसकी सन्तान मुसलमान हो जाती है। इस प्रकार दोनों प्रकार से हिन्दुओं की क्षति और मुसल्मानों

की वृद्धि होती है। वस्तुतः हिन्दू इतने निर्बल होगये हैं कि इनका न वीर्य्य प्रधान है और न रज। मुसल्मानों के रज और वीर्य्य दोनों ही प्रधान हैं।

अब मुसलमानों के अतिरिक्त एक और धर्मानुयायी मैदान में आ गये हैं, जो हमारी विधवाओं के लिये सदा हाथ फैलाये रहते हैं। इनका नाम ईसाई है। इनकी संख्या आजकल मुसलमानों की अपेक्षा भी बढ़ रही है। १८८१ ई० में केवल १३ हज़ार ईसाई थे परन्तु तीस वर्ष में ही उनकी संख्या एक लाख अड़तीस हज़ार अर्थात् १०॥ गुनी अधिक हो गई। इस सब के उत्तरदाता हिन्दू हैं। मुझे याद है कि एक खत्री विधवा का एक समय एक बंगाली ब्राह्मण युवक के साथ अनुचित सम्बन्ध होगया। हिन्दुओं में उनका विवाह दुस्तर क्या असम्भव था अतः वह दोनों ईसाई हो गये। इस समय उन दोनों के ६ बच्चे हैं। इनमें कई लड़के और लड़कियाँ हैं। जब इन लड़के लड़कियों का विवाह होगा तो बहुत शीघ्र ६ के ५० हो जायंगे। इस प्रकार हिन्दू जाति ने विधवा विवाह का निषेध करके अपने दो आदमी खोकर थोड़े ही दिनों में ५० की संख्या कम कर दी। और इन ५० के प्रचार के कारण जो हिन्दू ईसाई हो जायंगे उनकी संख्या अगणनीय है।

जो हिन्दू लोग विधवा विवाह का निषेध इस लिये करते हैं कि ब्रह्मचर्य्य की वृद्धि होगी वह सर्वथा भूलते हैं। ब्रह्मचर्य्य की वृद्धि तो होती नहीं। होता वही है जो प्रकृति के नियमानुसार होता है। परन्तु हिन्दुओं की संख्या घट कर अन्य जातियों की अवश्य बढ़ जाती है। आजकल प्रत्येक स्थान में देखा जाता है कि हिन्दू विधवायें निकल कर अन्य जातियों के घर में बैठ जाती हैं। यदि विधवा विवाह की

होता तो ऐसा कभी न होता। हिन्दू लोग अपने को उत्कृष्ट रखना चाहते हैं परन्तु उनको पता नहीं कि उत्कृष्टता सामाजिक वस्तु है व्यक्तिगत नहीं। अर्थात् आप अकेले धर्मात्मा बन ही नहीं सकते जब तक आपके साथी भी साथ साथ धर्मात्मा न बनें। जो मनुष्य झूठ से बचना चाहता है उसे यत्न करना चाहिये कि संसार सत्यवादी बने। नहीं तो उसे भी झूठ बोलना ही पड़ेगा। जो मनुष्य स्वयं मांस से घृणा करता है परन्तु मांसाहारियों से मांस भक्षण छुड़ाने का यत्न नहीं करता उसको याद रखना चाहिये कि कम से कम मांस की दुर्गन्ध ही उसकी नाक द्वारा उसके पेट में अवश्य पहुँचेगी। इसी प्रकार यदि संसार व्यभिचार में फंसा हुआ है तो आप या आपका परिवार ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन कर ही नहीं सकता।

यदि केवल हिन्दू ही हिन्दू संसार में होते तो कुछ सम्भव था कि आप विधवा विवाह न करके भी इन विधवाओं को हिन्दू जाति में रहने देते। परन्तु जब अन्य जातियाँ भी उन विधवाओं को लेने और उनसे विवाह करने को तैय्यार हैं तो उनका हिन्दू रहना कैसे सम्भव हो सकता है?

बहुत से लोग कहेंगे कि हम को जन संख्या बढ़ाने की परवाह नहीं हम तो गुणवृद्धि चाहते हैं। हिन्दू धर्म में दो आदमी ही रहें और अच्छे रहें वह अच्छा है और सहस्रों अधर्मी रहना अच्छा नहीं। परन्तु यह उनका स्वार्थ है जो धर्म के मूलतत्व से सर्वथा विरुद्ध है। दो आदमी भी तभी धर्मात्मा रह सकते हैं जब उनको धर्म पर स्थिति रखने के लिये अनेक पुरुष उपस्थित हों। सहस्रों के अधर्मी रहते हुये दो का भी धर्मात्मा रहना असम्भव है। यदि आपके नियम

इस प्रकार के हैं कि आप के मित्र मित्रता छोड़ कर शत्रु बन रहे हैं, तो ऐसे नियमों से अनियमित होना ही भला! जिन लोगों ने विधवा पुनर्विवाह इस समय कराये हैं वह उनको वैदिक धर्म के अनुयायी रखने में कृतकार्य्य हुये हैं। इनकी सन्तान पूर्व की भाँति ही राम और कृष्ण की भक्त है और वेद शास्त्रों पर श्रद्धा रखती है। परन्तु जब पुनर्विवाह के शत्रुओं के कारण विधवायें ईसाई या मुसल्मान हो गईं तो उनकी सन्तान सदा के लिये वेद विमुख हो गई। और राम कृष्ण के स्थान में ईसा, अली आदि को अपने पूर्वज मानने लगेगी। इस प्रकार विधवा विवाह के विरोधी वस्तुतः वैदिक धर्म के मित्र नहीं किन्तु शत्रु ठहरते हैं। हम प्रमाण देकर बता चुके हैं कि वैदिक धर्म अक्षतयोनि विधवा के पुनर्विवाह को विधियुक्त बताता है। परन्तु यदि ऐसा न होता तो भी संसार की दशा को देख कर विधवा विवाह की आज्ञा देनी ही उचित थी, क्योंकि आजकल वैदिक धर्म के आदर्श तक ले जाने के लिये लोगों को कई ऐसी अवस्थाओं से गुजरना है जो यदि निरन्तर धर्म नहीं तो धर्म की ओर ले जाने वाली ज़रूर हैं, और जिन पर न गुज़रने से हम वैदिक आदर्श तक पहुँच ही नहीं सकते।

इस समय विधवा विवाह का विरोध करने से कई गौओं की हत्या का पाप लगता है। वह इस प्रकार। सभी जानते हैं कि यद्यपि चींटी मारना पाप है किन्तु बकरी के मारने में सैकड़ों चींटियों के मारने के बराबर पाप लगता है और गौ के मारने में कई बकरियों के बराबर। इसी प्रकार मनुष्य के मारने में कई गौओं के बराबर पाप होता है। विधवा विवाह के विरोधी भ्रूण हत्या की वृद्धि के एक मुख्य कारण हैं अतएव गौ हत्या के पाप से वह मुक्त नहीं हो सकते

स्मृति भी कहती है कि भ्रूण हत्या और ब्रह्म-हत्या बराबर है। अतः ब्रह्म-हत्या के पाप से बचना भी विधवा विवाह के विरोधियों के लिये दुस्तर है। इसके अतिरिक्त विधवा विवाह के न होने से वेश्याओं की वृद्धि हो रही है और यह एक प्रसिद्ध बात है कि वेश्याओं की आय का एक अंश गौओं के वध की भेंट होता है। इस प्रकार विधवा विवाह करने से गौ-हत्या में भी बहुत कुछ कमी हो सकती है?

बारहवाँ अध्याय

विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

त १८ फ़रवरी सन् १९२३ के, सहयोगी उर्दू प्रताप (लाहौर) का कहना है:—

"मौज़ा बागड़ियां ज़िला लुधियाना की एक विधवा।को अपने सम्बन्धी के साथ अनुचित सम्बन्ध होने के कारण गर्भ रह गया और बच्चा उत्पन्न हुआ। बच्चा पैदा होने की कोई रिपोर्ट दाखिल नहीं की गई। गाँव के पास एक स्थान पर नवजात बच्चा फेंक दिया गया जिसकी। लाश कुत्ते नोच नोच

कर खा रहे थे। पुलिस में खबर पहुँचने पर भारतीय दण्ड विधान की ३१८ वीं धारा के अनुसार उस विधवा का चालान किया गया..............."

❀ ❀ ❀

पुत्र की घातक माता।

बम्बई प्रान्त में २५ अगस्त १९१७ ई० को गंगाबाई नाम की एक विधवा के एक लड़का उत्पन्न हुआ। उसका पिता काशीराम और उसकी स्त्री वहीं उपस्थित थे। लड़का जीवित उत्पन्न हुआ था। कुछ देर के बाद लड़का चिल्लाने लगा। गंगाबाई ने अपना पैर उसके गले पर पटक कर उसे मार डाला और लड़के को एक कपड़े में लपेट कर अपने पिता को दे दिया। वह उसे कहीं छिपा आया। अगले दिन लड़के की लाश मिली और काशीराम पकड़ा गया।

❀ ❀ ❀

बच्चे को फाँसी।

३ कार्तिक १९७४ विक्रमी के "आर्य्य गज़ट" लाहौर में एक पुरुष लिखते हैं :—

हमारे यहाँ वैश्य अग्रवाल की १४ वर्ष की लड़की विधवा होगई, और कुछ दिनों पश्चात् एक जुलाहे नौकर से फंस गई। जब गर्भ रहने का हाल जेठ और ससुर को मालूम हुआ तो मैके भेज दी गई। जब मा बाप को पता मिला तो उसे लुधियाना हस्पताल में भेजा गया। परन्तु गर्भ के कारण माता पिता उसके साथ न गये। किन्तु दो और पुरुषों को साथ कर दिया गया कि या तो गर्भ गिरा आवें या अ

लड़की को खो आवें। वह लड़की पहिले मिस ज़ोन के पास गई फिर हरिद्वार चली गई। वहाँ उसके बच्चा उत्पन्न हुआ जो उसी समय फाँसी लगा कर गंगा जी में डुबो दिया गया। लड़की घर वापिस आगई परन्तु अब माता पिता की यही कोशिश थी कि उसको किसी प्रकार मार दिया जावे इस भय से लड़की किसी का पकाया भोजन न करती, रातों रोती और लड़की की मां उसको बहुत तंग किया करती थी। इस वर्ष कई स्त्रियों ने गुरुकुल काङ्गड़ी जाने का विचार किया जिनमें वह भी एक थी। मुझे ज्ञात न था इसलिये साथ ले आया। गुरुकुल में हरिद्वार आकर वह लड़की गुम हो गई। थोड़े दिनों पश्चात् सुसराल से पता चला कि हरिद्वार से रेल में सवार होकर लड़की जुलाहे नौकर के घर पहुँची और पुलिस ने गिरफ्तार करके उसे जेठ के सुपुर्द किया। इस समय न सुसराल वाले उसे रखते हैं और न मैके वाले। उसका बुरा हाल है"।

❀ ❀ ❀

बच्चा फेंक दिया गया।

तीर्थराज प्रयाग में अगस्त १९१९ में एक अभियोग चला जिसका वृत्तान्त यह है :—

एक विधवा गोमती और उसके ससुर केदारनाथ पर एक मुक़द्दमा चला था। जिसमें उन पर दोष लगाया गया था कि उन दोनों में अनुचित सम्बन्ध था। उससे जो बच्चा उत्पन्न हुआ उसको एक वृक्ष के नीचे फेंक दिया गया। जिसे एक मातादीन नामी पुरुष ने देखा और पुलिस में पहुँचा दिया। आठ दिन पीछे वह मर गया। केदारनाथ कहता है

कि गोमती का एक ब्राह्मण से सम्बन्ध था यह उसी का लड़का है।

❀ ❀ ❀

प्रयाग का दूसरा मामला।

लगभग दो वर्ष हुये इलाहाबाद के अहियापूर मोहल्ले की एक गली में जहाँ कूड़ा फेंका जाता था, एक नवजात बालक की लाश पाई गई थी। बच्चे में उस समय कुछ कुछ जान बाकी थी। बालक लम्बे क़द का बहुत सुन्दर और प्यारा था, वह रस्सियों से इस बुरी तरह जकड़ कर बांधा गया था कि उसके मुँह से ख़ून जा रहा था। अहियापूर निवासी घर घर इस घटना से परिचित हैं..........."

❀ ❀ ❀

लोहार के घर में ब्राह्मणी।

सोनीपत्ति के निकट एक गांव ब्राह्मणों की गढ़ी है वहां सन् १९१७ ई० में एक विधवा ब्राह्मणी लोहार के घर में बैठ गई। उसका पिता पुनर्विवाह करने को राज़ी था परन्तु उसके भाई बान्धवों ने उसका विरोध किया। अब वह और लोहार कालका में हैं।

❀ ❀ ❀

ऋषिकेश में बाल-हत्या।

एक विधवा ब्राह्मणी की सास ने अपनी सम्पत्ति एक ऋषिकेष के महन्त के सुपुर्द करदी कि वह विधवा उसके संरक्षण में रह कर भगवान का स्मरण करे। सास के मरने

पर वह ऋषिकेश में रहने लगी। परन्तु वहाँ उसे गर्भ रह गया। गर्भपात का बहुत यत्न किया गया पर बच्चा उत्पन्न ही हुआ जिसे बड़ी भयानक रीति से मारा गया। उस विधवा की भी बड़ी हृदय वेधक दुर्गति हुई। हा दैव !!

❀ ❀ ❀

सुसराल की दुकान के सामने वेश्या।

लुधियाना के एक प्रसिद्ध वंश की कन्या ज़िला जालन्धर में विवाही थी। थोड़े दिनों में उसका आचार बिगड़ने लगा। सुसराल वालों से पुनर्विवाह के लिये कहा गया परन्तु उन्होंने कहा हमारी नाक कट जावेगी। उसका आचार और भी बिगड़ने लगा तब लोगों ने किसी के साथ उसका पुनर्विववाह कर दिया। इस पर उसके सुसराल वाले बड़े क्रुद्ध हुये कि हमारे घर की विधवा दूसरे घर में बैठी है। बिरादरी को उसकाया और उस लड़की को बड़ा तंग किया गया अन्त में उसके दूसरे पति ने उसके सुसराल वालों के कहने से उसे निकाल दिया। अब वह सुसराल वालों की दूकान के सामने ही वेश्या बन कर बैठी है। शायद अब तो उनकी नाक बच गई होगी।

❀ ❀ ❀

मुसलमान के साथ निकाह।

आर्य समाज मन्दिर लाहौर में एक विधवा अपनी लड़की के साथ आई और शुद्ध होने की प्रार्थना की। इसका वृत्तान्त उसी के मुख से यह है।

"मैं एक हिन्दू थानेदार की स्त्री हूँ जिसकी दो स्त्रियाँ

थीं। थानेदार बूढ़ा था और मेरा विवाह इसके बुढ़ापे में हुआ था। थानेदार की मृत्यु पर मेरी सौत की सन्तान ने अभियोग किया क्योंकि थानेदार अपनी सब जायदाद मुझे दे गया था। मेरा कोई तरफ़दार न था। मैं पूर्ण युवा थी मैंने स्वयं ही मुक़द्दमे की पैरवी की। दो वर्ष तक मेरी दुर्गति रही और मैं मुक़द्दमा भी हार गई। तब एक मुसलमान मिला जिसके साथ मुसलमान बन कर निकाह कर लिया इससे पहले एक लड़की मेरे पैदा हो चुकी थीं। अब मुसलमान से भी न बनी। मुझे अपनी पुरानी दशा पर पश्चाताप है। और शुद्ध होना चाहती हूं।"

❀ ❀ ❀

एक ज़िमींदार का क़त्ल।

बाबू प्राण क्रिस्टो सरकार बंगाल के एक ज़िमींदार अपने पड़ोस की एक २० वर्ष की विधवा से सम्बन्ध रखते थे। एक दिन विधवा को घर में न पाकर उसके भाई और चचा प्राण क्रिस्टो के घर में पहुंच गए और उसको वहीं मार डाला, मुक़द्दमा भी चलाया।

❀ ❀ ❀

१८ वर्ष के लिये काला पानी।

ज़िला बिजनौर के एक रईस ने मरते समय एक युवती छोड़ी। जिसका शीघ्र ही एक ज़िमींदार से अनुचित सम्बन्ध हो गया। यह बात उसके भांजे को बुरी लगी। और उसने ज़िमींदार को बन्दूक़ से मार दिया। कहते हैं की भांजे का दोष था अब वह १८ वर्ष की सज़ा भोग रहा है। उस स्त्री का अब भी यही हाल है।

गर्भवती को विष।

राजपूताने की एक रियासत में ओसवाल जाति के एक पुरुष की विधवा चाची किसी प्रकार गर्भवती होगई। लाला जी ने विष देकर अपनी चाची और गर्भस्थ बच्चे दोनों को समाप्त कर दिया। यह वह हैं जो चीटीं को मारना भी पाप समझते हैं।

❀ ❀ ❀

भ्रूण-हत्या की पुनरावृत्ति।

ज़िला मुरादाबाद की एक कायस्थ विधवा को गर्भ रह गया जो उसके पिता ने बड़े यत्न से गिरवाया। जब वह लड़की सुसराल पहुँची तो वहाँ देवर से गर्भ रहा वह भी गिराया गया। इस समय समस्त बिरादरी जानती है कि उसका देवर से गुप्त सम्बन्ध है।

❀ ❀ ❀

पिता और विधवा पुत्री।

सेण्ट्रल इण्डिया की एक रियासत में एक बाल विधवा महाजनी का उसके पिता से ....पुलिस में रिपोर्ट हुई। हा दैव !!

❀ ❀ ❀

"देशदर्शन" में भी कुछ स्त्रियों के बयान छपे हैं वह इस प्रकार हैं :—

"विश्वबन्धु के मकान के पास ही एक कुलीन ब्राह्मण महाशय का घर था। उनके यहाँ एक परम रूपवती विधवा

थी । उनके यहां परदे का बड़ा नियम था तो भी विश्वबन्धु उनके यहाँ बे रोक टोक जाया करते थे, कुछ दिनों के बाद जब न जाने क्यों ब्राह्मण महाशय ने मकान छोड़ देने का निश्चय किया तब विश्वबन्धु ने अपनी मां से कह सुन कर उस मकान को ख़रीद लिया, ब्राह्मण महाशय सपरिवार अपने देश (क़न्नौज) चले गये और उस मकान की मरम्मत शुरू हुई । एक कोठरी जिसे पण्डिताईन, "ठाकुर जी की कोठरी" कहा करती थीं और जो साल में केवल कुलदेवता की पूजा के समय खोली जाती थीं, (बड़ी सड़ी नम और बदबूदार थी) उसे पक्की करा देना निश्चय किया, जब मिट्टी मजदूर खोदने लगा, सुना जाता है कि उसमें से एक ही उम्र के कई बच्चों के पन्जर निकले, एक तो हाल ही का दफ़नाया जान पड़ता था ।

लेखक का फिर कहना है :—

"सिविल सार्जन साहब जेल और अस्पताल आदि से लौट कर लगभग एक बजे बङ्गले पर आये मेजपर तार मिला जिसका आशय यह था 'रोगी सख़्त बीमार है जल्दी आने की कृपा कीजिये-देवदत्त ।" साहब बड़े दयालु थे। उसी समय घोड़े पर सवार हो गये । उन्होंने देवदत्त के घर जा कर पूंछा कि रोगी कहां हैं ? देवदत्त हाँफते हाँफते आये और बोले हुजूर बड़ी ग़लती हुई माफ़ कीजिये। साहब ने डपट कर पूछा कि रोगी कहाँ है ? देवदत्त गिड़गिड़ाते हुए साहब के हाथ में फ़ीस रख कर पैरों पर लोट गये और गर्भपात (Abortion) की दवा पूंछने लगे। साहब लाल हो गये। जमीन पर ज़ोर से पैर पटक कर छिः कहकर चले गये बंगले पर पहुंच कर उन्हों ने इस बात की सूचना पुलिस कप्तान के पास भेज दी ।

उसी दिन रात को देवदत्त के चचेरी बहिन अकस्मात् मर गई और रातों रात चिता पर भस्म कर दी गई। यह विधवा थी। कई दिनों के बाद देवदत्त की तलबी कोतवाली में हुई। सुना जाता है कि वहाँ के देवता ने अपनी पूजा पाई और रिपोर्ट में लिख दिया कि देवदत्त एक प्रतिष्ठित रईस हैं। उस दिन उनकी बहिन को हैजा हो गया था इसीलिए साहब को बुलवाया था। वे Abortion नहीं बल्कि बन्धेज की दवा पूछना चाहते थे और यह क़ानूनन कोई जुर्म नहीं है।

❀ ❀ ❀
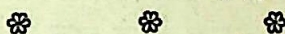
(१) रामकली, विंध्याचल—"मैं क्षत्रानी हूँ। मेरे भाई दर्शन कराने के वहाने से मुझे छोड़ गए। उनके इस तरह त्याग का कारण मैं समझ गई। इसलिये मैंने कभी पत्र नहीं भेजा और न लौटने की चेष्टा की। अब भीख माँगकर अपनी गुजर करती हूं मैं सर्वथा असहाय हूँ और कोई जरिया पेट पालने का नहीं है। उमर २०-२२ वर्ष की है। यहां मुझसी अभागिनी ८-९ स्त्रियाँ और हैं। उनका चरित्र ठीक नहीं है।"

❀ ❀ ❀
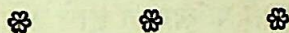
(२) लक्ष्मी, वृन्दावन—"मैं ब्राह्मणी हूं। मेरी सास आदि कई स्त्रियां मुझे यहाँ छोड़ कर चल दीं। पत्र भेजने पर उत्तर मिला कि अपना कर्त्तव्य स्मरण करो यहाँ लौट कर क्या मुंह दिखलाओगी, यहां जमुना में डूब मरो। मेरी मा नहीं है। पिता ने मेरे पत्र का कभी उत्तर नहीं दिया।"

❀ ❀ ❀

(३) श्यामा हरिद्वार—मेरे पिता मुझे यहां छोड़ गये हैं..............."

❀ ❀ ❀

(४) राजदुलारी, गया—"मेरे ससुराल के लोग बड़े ... हैं। यहां मुझे पुरोहित जी छोड़ गये हैं। कुछ दिनों तक ... रुपया मासिक आता रहा। पर अब कोई ख़बर नहीं ... पत्रोत्तर भी नहीं आता"।

❀ ❀ ❀

(५) नलिनी और सरोजनी, काशी—"हम दोनों अर्थात् ... बंगाल की रहने वाली हैं। हम दोनों का एक ही ... में विवाह हुआ था। नलिनी विधवा हो गई। मेरे पति ... एक लड़की होने पर वैराग लेकर चल दिये। मेरे ससुर ... १०) मासिक पेनशन पाते थे काशी-वास करने वहां ... और हम दोनों को साथ लेते आये। तीन महीने बाद ... मर गये। एक परिचित बंगाली महाशय सहायता देने ... बहाने से मिले और एक दिन हम दोनों का जेवर चुरा ... गये। फिर इसी से लगी हुई पुलिस की एक घटना सं... पूर्वक हम अनाथों का सर्वनाश किया गया और इस ... हीन दशा को पहुंचाई गईं। एक सौ और बीस रुपया ... हो गया है। इस पुत्री के सयाने होने पर इसी को बेच ... अथवा वेश्या बनाकर क़र्ज़ अदा करूंगी"।

❀ ❀ ❀

सहयोगी "प्रताप" के विशेष सम्वाददाता ने कुछ वि... वाओं के बयान प्रकाशित कराये थे जो नवम्बर मास ... 'चांद' में भी प्रकाशित हो चुके हैं। वह इस प्रकार है :—

मुसम्मात माया देवी, ब्राह्मणी, मौज़ा अशरफ़पुर, थाना ... अथवा बसखारी, ज़िला फ़ैज़ाबाद—

बयान किया "मेरा विवाह बहुत बचपन में मेरे ...

पिता ने अपना धर्म समझ कर कर दिया, दो वर्ष पश्चात् मेरा पति मर गया। मैं विधवा हो गई। विधवा होने की वजह से ससुराल और मायके में दोनों ओर मेरा निरादर होता था। खाने-पीने को ठीक न मिलता था। कपड़े तक अच्छे नहीं पहन सकती थी। शादी विवाह में विधवाओं का शरीक होना पाप समझा जाता था। मैं जवान हो गई। घरवालों ने मेरा कोई इन्तज़ाम नहीं किया। सदार-सिंह सिक्ख, जो मौज़ा भल्लू ज़िला गुजरात का रहनेवाला है कपड़ा बेचने को जाया करता था। वह मुझे लालच देकर भगा लाया। १० वर्ष तक उसके घर में रही। वहीं पर मेरे एक लड़की पैदा हुई। जब मैं कुछ बीमार हुई काम करने के क़ाबिल न रही तब उसने एक दिन मेरे पेट में एक लात जोर के साथ मारी; मैं जमीन पर गिर पड़ी। मेरे पाख़ाने और पेशाब की जगह से ख़ून गिरने लगा। उसने मेरा ज़ेवर और पैसा छीन कर निकाल दिया। अब बीमार होकर धर्मशाला में पड़ी हूं। मेरी लड़की घरों से रोटी मांग लाती है; तब खाना खाती हूँ अब वह एक मोहनी नाम की ब्राह्मणी बाराबङ्की के जिले से भगा लाया और २००) रु० में स्यालकोट बेच आया है। उधर से सैकड़ों औरतें पञ्जाब में भगा लाई जाती हैं और बेची जाती हैं। प्रायः कपड़े बेचने वाले पूरब से औरतें भगा लाते हैं। बहुत सी हिन्दुओं की औरतें मुसलमानों के साथ फ़रोख़ की गई हैं। बहुत सी हिन्दुओं की औरतें ईसाइन भी हो गईं। यह केवल बाल-विवाह का कारण है। अब मेरी बहुत बुरी दशा है।

निशानी अंगूठा—मायादेवी।

❀ ❀ ❀

मुसम्मी रामलाल बेटा मायादेवी—बयान किया कि मेरी अवस्था १२ वर्ष की है। मेरा पहिला बाप हाकिम सिंह सन्तपुर ज़िला गुजरात का था। फिर मेरी मा मायादेवी सर्दार सिंह, ग्राम भल्लू ज़िला गुजरात वाले के घर आई। अब उसने मुझे और मेरी मा को निकाल दिया। वह बीमार है। यहाँ से कपड़े बेचने वाले पूर्व में जाते हैं और औरतों को निकाल लाते हैं। मुसलमानों के हाथ बेच डालते हैं। ब्राह्मण क्षत्रियों की सैकड़ों औरतें मुसलमान हो गई हैं।

निशानी अंगूठा—रामलाल झेलम।

✿ ✿ ✿

कपड़े के व्योपार करनेहारे जो पञ्जाबी स्त्रियों को भगा लाते हैं और पञ्जाब में उन्हें बेच लेते हैं, उनका वृत्तान्त मैं लिख चुका हूँ, किन्तु वह लेख पूरा नहीं हुआ। मैं ने पता मंगाया है कि सैकड़ों की संख्या में विधवा स्त्रियां संयुक्त प्रान्त से भगाई गईं और पञ्जाब में वेची गई हैं। पञ्जाबी कपड़े के व्यापारी देहली और कानपुर से सड़े गले कपड़े खरीद कर सयुक्त प्रान्त में उधार देकर फ़सल पर अधिक मुनाफ़ा करते हैं और फिर अपने दलालों द्वारा विधवा स्त्रियों को अपने साथ भगा लाते हैं और वे पञ्जाब में बेची जाती हैं। नीचे मैं उन कुछ स्त्रियों की फ़ेहरिस्त देता हूं जो संयुक्त प्रान्त से भगा लाई गई हैं—

(१) मुसम्मात माया देवी, ब्राह्मणी, मौज़ा अशरफ़पुर (फैज़ाबाद)।

(२) रामदेवी, ब्राह्मणी, शहर बरेली,——,ससियां ले लाया और कुञ्जाह ज़िला गुजरात में रहता है।

(३)........मौज़ा गुल ग्राम का जवलपुर से तीन औरतें भगा लाया। १ को ४००) रुपये में बेचा, दूसरी को रावलपिण्डी में २५० में बेचा, तीसरी को एक गूजर के हाथ बेचा।

(४)........मौज़ा कुंजाह ज़िला गुज़रात का—सुन्दरिया ब्राह्मणी को शहर प्रयाग से भगा लाया २००) रु० में मुसल्लानों के हाथ बेचा जो मौज़ा सिरगोदा के रहने वाले थे।

(५) मथुरी ब्राह्मणी को शहर सीतापुर से......पार्चा फ़रोश कुंजाह का रहने वाला भगा लाया ४०० रु० में.........के हाथ बेचा।

(६) शहर सीतापुर की लछमिनियां ब्राह्मणी को जो वेवा हो गई थी......कुंजाह का पार्चाफ़रोश भगा लाया। एक माह उसे रखकर मुसल्मान के हाथ ७०) में बेच दिया।

(७) रामप्यारी क्षत्राणी शहर पीलीभीत की वेवा को कुंजाह का भगा.........लाया और अपने मामा के लड़के के हाथ बेच डाला।

कृपा करके "प्रताप' द्वारा आप आन्दोलन करें कि बाल विवाह बन्द किया जाय और विधवा-विवाह जारी करके या किसी भी उपाय से हिन्दू समाज की रक्षा की जाय।

इसी प्रकार के सैंकड़ों बयान और घटनाएं हमारे पास मौजूद हैं पर स्थानाभाव के कारण उन सभों को हम इस में प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। समाज में हर तरह की होने वाली घटनाओं का केवल एक एक नमूना ही हम ने पाठकों के सामने रक्खा है।

—लेखक

तेरहवाँ अध्याय।

विधवाओं की दुर्दशा।

एक प्रतिष्ठित महिला का पत्र।

श्रीयुत सम्पादक महोदय "चांद"

वारम्वार नमस्कार,

द द्वारा स्त्री-संसार का जो अक्षय
उपकार आप कर रहे हैं इसके
हमारी बहिनों को ही नहीं
उनकी सन्तानों को आजीवन
का ऋणी रहना होगा। खास
विधवाओं की दीन दशा पर
प्रकाश आप समय समय पर
आये हैं यह बात संसार से
छिपी नहीं है। "समाज
द्वारा भी आपने विधवाओं की दशा का वास्तविक
जनता के सामने रक्खा है। मैं एक अभागी विधवा
समस्त विधवा बहिनों की ओर से आपको हार्दिक ध
देती हूं। जिस समय आपके प्रभावशाली लेख अन्य मा

पत्रिकाओं में छपा करते थे मैंने उन सभों को भी बड़े ध्यान से पढ़ा है और उनका सदैव प्रचार करती रही हूं। अभी मैंने कलकत्ते के "भारतमित्र" में इस बात की सूचना पढ़ी है कि 'चाँद' का अगला अङ्क विधवाङ्क के रूप में निकल रहा है। सर्व शक्तिमान परमात्मा आपको इसमें सफलता प्रदान करें और जनता को इतनी बुद्धि दें कि वे हम अभागी विधवाओं की ओर शीघ्र ध्यान दें। हमारी दशा बड़ी करुणा जनक और लागूर है और देश की उन्नति में इसके द्वारा भारी बाधा पड़ रही है।

मैं भी एक अच्छे घराने की लड़की और उससे भी अच्छे खत्री घराने की बहु हूं। मेरे पिता कट्टर सनातन धर्मी और भारत-धर्म-महामण्डल के सदस्य भी हैं। पर चूंकि मैं विवाह के केवल २१ दिन बाद विधवा हो गई और तब से उनके गले पड़ी हूं इसलिये उन्हें मेरी दशा पर दया आई और उन्होंने मेरा पुनर्विवाह करना निश्चय किया।

जिस समय मेरा विवाह हुआ उस समय मेरे पति को पहिले से ही संग्रहणी की बीमारी थी। जो शायद शादी विवाह में कुपथ्य (बदपरहेज़ी) के कारण बढ़ गई और ठीक इक्कीसवें दिन तार आया कि वे परलोक सिधार गए। उस समय मेरी उम्र ८ वर्ष की थी। मैंने सुना था कि वे (पति) पहले से ही बीमार रहते थे। उनकी आयु जब विवाह हुआ, तो ३५ साल की थी और उनकी पहिली दो स्त्रियां प्रसूत रोग से मर चुकी थीं।

इस समय मेरी अवस्था १७ साल की है। मैंने······क्लास तक अङ्गरेज़ी शिक्षा भी पाई थी। मेरी माता भी सौतेली होने के कारण स्वभावतः मुझ पर वह प्रेम नहीं रख सकतीं जो आज मेरी वह माता कर सकती, जिसके उदर से मैं

जन्मी हूं। उनका विरोध होते हुये भी मेरे पिता जी ने मुझ से एक दिन एकान्त में कई प्रश्न पूछे। थोड़ी देर की लज्जा को त्याग कर और सौतेली माता के अत्याचार से छुटकारा पाने की अभिलाषा से मैंने सजल नेत्रों से उनके प्रश्नों का निर्भीकता से उत्तर दिया। उन बातों का खुलासा केवल इतना ही है कि मैंने पुनर्विवाह करने की अनुमति दे दी। मेरे पिता उस समय बहुत फूट फूट कर रोये और बहुत देर तक रोते रहे। मेरी....... अवस्था की ओर देखते हुए एकदम अधीर हो उठे और उसी दिन उन्होंने मेरा पुनर्विवाह करना निश्चित कर लिया जैसा कि मैं पहिले ही निवेदन कर चुकी हूं।

जिस दिन से घर और बाहर वालों को इस बात का पता लगा है— कि मेरा दूसरा विवाह होने वाला है— घर में मेरे पिता जी की निन्दा हो रही है और लोग हमें बहुत दिक़ कर रहे हैं। हमारे रिश्तेदारों ने भी हमसे नाता को छोड़ देने की धमकियाँ दीं और बहुत ही नीचता का परिचय दिया।

मुझे समाज से कुछ नहीं कहना है। मैं केवल यह ही जानना चाहती हूँ कि किस वेद, पुरान या क़ुरान में यह आज्ञा दी गई है कि पुरुष जब चाहें पैर की जूतियों के समान हमें त्याग कर एक, दो, तीन, चार अथवा पांच विवाह करलें पर स्त्रियां बेचारी ऐसी स्थिति में रहते हुए भी, जैसी आज मैं हूं—दूसरा विवाह न कर सकें! यह समाज की भयङ्कर नीचता नहीं तो और क्या है?

मैं विधवा विवाह के पक्ष में तो अवश्य हूँ पर मेरे विचार यदि मेरी माता तथा घर वालों का अच्छा व्यवहार

तो मैं अपने पुनर्विवाह की कल्पना, अपने दिल में भी न आने देती और चूंकि अब मेरे विवाह कर लेने से मेरे पिता जी पर एक भारी आपत्ति आ जाने की संभावना है इसलिये पहिले तो मैंने आत्महत्या की बात सोची थी पर नहीं—मैं ऐसा न करूंगी। मैं अपने घर का परित्याग अवश्य करूंगी और आज ही ऐसा करूंगी।

मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि आजीवन मैं अपनी विधवा बहिनों की सेवा में अपना शेष जीवन लगाऊंगी और जो कुछ मैं इस सम्बन्ध में कर सकती हूं करूंगी।

भारत में ऐसी कोई संस्था भी नहीं है कि जिससे मिल कर मैं कार्य्य कर सकूं। आप निसंकोच मेरे इस पत्र को विधवा अंक में प्रकाशित करदें पर मेरा नाम वगैरह न लिखें, ताकि हमारी अन्य विधवा बहिनें, जिनका जीवन भी आज मेरे जैसा ही हो रहा है, स्वयं अपनी सहायता करें और शीघ्र एक बड़ा भारी आन्दोलन महात्मा गांधी जी, और उनके अनुयायियों के सामने उपस्थित करदें और उन्हें इस बात के लिये बाध्य करें कि राजनैतिक आन्दोलन करते हुये वे अपनी विधवा बहिनों की दशा पर भी ज़रा ध्यान दें। मेरा पूर्ण रूप से विश्वास है कि जब तक स्त्रियां, स्वयं इन बातों पर ध्यान न देंगी उनका उद्धार न हो सकेगा अतएव परमात्मा के नाम पर, समाज के नाम पर और राष्ट्रीयता के नाम पर उन्हें तुरन्त इस ओर ध्यान देना चाहिये। सम्पादक जी! अन्त में मैं फिर आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूं और इस बात का विश्वास दिलाती हूं कि अन्य कार्य्यों के साथ ही साथ "चाँद" जैसे अमूल्य पत्र का घर घर प्रचार करना भी मेरा एक प्रधान उद्देश है क्योंकि मैं

स्वयं 'चाँद' को अपना पथ प्रदर्शक समझती हूं। मेरी
चूक को क्षमा कीजिएगा.......... ...."

देहली। } भवदीया।

ता०......३—२३ } ....कपूर"

❀ ❀ ❀ ❀

विधवा विवाह सहायक सभा, लाहौर के मुख्य उर्दू पत्र "विधवा सहा
के गत मार्च १९२३ वाले अङ्क में दो भिन्न भिन्न पत्र प्रकाशित हुए
विधवा विवाह सहायक सभा के मंत्री महोदय के पास आये थे उनका
अनुवाद हम नीचे दे रहे हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

एक विधवा के पिता का पत्र।

धर्ममूर्ति परोपकारी जन लाला जी साहब,

तस्लीम।

निवेदन है कि मेरी पुत्री, जिसकी अवस्था इस सम
वर्ष की है, विधवा हो गई है। दो साल हुए मैंने एक वि
के साथ विवाह कर दिया था लेकिन दुर्भाग्यवश वह
कठिन परिश्रम करने के कारण इन्ट्रैंस की परीक्षा पास
ही बीमार हो गया। मैंने, यद्यपि मेरी हैसियत न थी-
मरता क्या न करता—डाक्टरों की आज्ञानुसार उसे
साल पहाड़ पर भी रक्खा लेकिन वह अच्छा न हो
चार मास हुये देहान्त हो गया!

लाला जी..........................उसे* देख कर मुझे
ही दुःख और क्लेश होता है। मेरे परम मित्र लाला...
.........हेडक्लर्क दफ्तर.................... लाहौर में हैं।

* अर्थात् पुत्र वधू को।

ने यह सलाह दी थी कि ऐसी विधवा हो जानें वाली लड़कियों की दूसरी शादी करा देने का प्रबंध करने वाले आप हैं—उनसे तुम पत्र व्योहार करो। सो आपकी सेवा में विनीत और बहुती नम्र निवेदन है कि मेरी लड़की के वास्ते कोई सुशील............लड़का जिस की अवस्था २० या २२..हद्द पच्चीस वर्ष की हो—और पहिली स्त्री से उसे कोई सन्तान न उत्पन्न हुई हो तो कृपा करके उसके पूरे पते से मुझे क़ायदे से, या लहौर में लाला............जी को बतला दें।

और यदि इसी समय आप की निगाह में कोई ऐसा लड़का नहीं है, तो मेरा नाम अपने रिजिस्टर में नोट करलें.. सुविधा होने पर अवश्य इसकी सूचना दें मैं आप की इस महती कृपा को कभी न भूलूंगा।

वैसाख तक मैं लड़की का पुनर्विवाह अवश्य कर देना चाहता हूं क्योंकि नव—विवाहित युवती बालिका को घर में बैठी देखकर मेरा और मेरी स्त्री का दिल बहुत दुःखी होता है।

लाला............जी ने श्रीमान् लालो शिवदयाल साहब, एम० ए० से भी इस बात की चर्चा की थी और उन्होंने भी इस बात की सलाह दी थी कि आप लाला लाजपतराय साहनी के पास इसलिए प्रार्थना पत्र भेज दें फिर हम सोच कर और अच्छा लड़का देखकर इस बात की सूचना दिला देंगे। लाला शिवदयाल जी को मेरी इस विपत्ति का सारा हाल विदित है।

सो आप कृपा करके इस मामले में आवश्य मेरी सहायता करें और कोई बहुत ही सुशील, नेकचलन और किसी उच्च कुल का लड़का अवश्य बतला दें।

लड़की की अवस्था १८ वर्ष की है......क्लास तक पढ़ी हुई है। उर्दू भी लिख पढ़ सकती है। घर गृहस्ती के काम काज से भी भली भांति परिचित है और वह बेचारी देवी फेरों की चोर है। एक दिन भी अपने सुसराल के घर नहीं गई है। अगर आप के यहां चंदे के रूप में कुछ रुपया जमा कराने का नियम हो तो वह बाबू............जी से वसूल कर लीजिये या मुझे लिख दीजिये मैं यहां से मनीआर्डर द्वारा भेज दूंगा *।

यदि इसके अलावा आप कोई बात जानना चाहें तो आप के लिखने पर लिख दूंगा।

आवश्यक प्रार्थना यह है कि इस बात को गुप्त रखा जावे † और मैं सामाजिक ‡ रीति से या सनातन रीति से अर्थात् जैसा कि लड़का या उसके माता पिता स्वीकार करेंगे, विवाह करने को तैय्यार हूं। यद्यपि मेरे धार्मिक विचार सनातनी हैं किन्तु मुझे सामाजिक रीति से कराने में कोई आपत्ति नहीं है।

भवदीय..............

❀ ❀ ❀ ❀

---

* लाहौर की विधवा सहायक सभा ऐसे सम्बंध कराने में किसी प्रकार का चंदा नहीं लेती बल्कि यथाशक्ति आर्थिक सहायता भी देती है। पत्र व्यवहार लाला लाजपतराय जी साहनी, बी० ए० अवैतनिक मंत्री, विधवा सहायक सभा, मैकलागन रोड सलीम बिलडिंग्ज़, लाहौर पंजाब से करना चाहिये।

† ऐसी घटनाओं के प्रगट होजाने पर ऐसे सज्जनों की, जो अपनी विधवाओं का वास्तव में पुनर्विवाह करना चाहते हैं, घर घर निन्दा होने लगती है और समाज उनका बहिस्कार कर देता है।

‡ अर्थात् आर्यसमाजी नियमानुसार।

एक विधवा कन्या के अपने हाथ से हिन्दी में लिखे हुए पत्र का सारांश।

पूजनीय दुःखियों पर दया करने वाले मंत्री जी,

सेवा में निवेदन है कि मैं एक विधवा दुःखियारी आप की सहायता के लिये प्रार्थना करती हूं। मेरी अवस्था इस समय १८ वर्ष की है। मुझे विधवा हुए ३ साल होगए। मैं वैश्य-अग्रवाल जाति की हूं। मेरे एक लड़की हुई थी जो इस समय ४ वर्ष की है और कोई सन्तान नहीं हुई। मेरे माता पिता जाति का डर होने के कारण और निर्धन होने के कारण चुप हैं और मेरे शत्रु बन रहे हैं। मेरे सास ससुर भी, जैसा हिन्दु विधवा के साथ, इस जाति में घोर अत्याचार प्रचलित है कर रक्खा है, करते हैं। शोक है मेरे जेठ जिनकी उम्र ५० वर्ष से कम नही है, जिसके दो लड़के १७ और १२ वर्ष के, और एक लड़की ११ वर्ष की है— पिछले साल १६ साल की एक विधवा से विवाह कर लाए लेकिन मुझ दुःखिया पर जिस का न पिता के घर जीवका का सहारा है और न ससुराल में, किसी को परमात्मा के भय का भी ख्याल नहीं होता। दिन भर सारे कुटुम्ब की सेवा करते रहने पर भी रोटी का सहारा नहीं दीखता! हर समय सब की घुड़कियों और तानों से अति दुःखित हो रही हूँ। कई बार जी में आता है कि कूएं में छाल मार कर इस मुसीबत से छुटकारा पा लूं।

हे दयालु! मैं आप से इस बात की प्रार्थना करती हूँ कि इस पत्र का पता मेरे सम्बन्धियों को न हो और यदि किसी प्रकार आप मेरा पुनर्विवाह कर दें या करवा दें तो आजीवन

आपका अहसान न भूलूंगी और ईश्वर आपको इस दया
शुभ फल देंगे। मेरे पिता का पता यह है।

लाला.................... मौज़ा............................तहसी
.........................और मेरे ससुर लाला..............
कसबा.........में रहते हैं। मेरी खुफ़िया कोशिश करो तो
जी से ही करना। ससुर जी से न करना। मेरे पास
पत्र न डालना। मैं अबला दुःखिया पराधीन हूं। यदि
मेरा काम करदें तो मानों मुझे मरने से बचा लेंगे।
सिवाय ईश्वर के या आप ऐसे परोपकारियों के कोई
आशा है मेरी प्रार्थना पर शीघ्र ध्यान देकर कोई उचित प्र
कर देंगे।

आप से परोपकारियों की शुभचिन्तका
दीन दुखिया........."वश्य अग्रवा

❀ ❀ ❀ ❀

अभी हाल ही की बात है एक रानी साहिबा ने अपनी एक
(स्त्री) को इस आशय का एक पत्र लिखा था :—

"बहिन............. तुमने कई बार मुझ से ऐसे प्रश्न
हैं जिन से मैं अत्यन्त लज्जित हूं पर आज मैं तुम्हें अप
कहानी जी खोल कर सुनाऊंगी ....

मैं १२ वर्ष की अवस्था ही में विधवा हो गई। अपने
की मैं तीसरी स्त्री थी? वे जीवन पर्यन्त वेश्याओं के हा
की कठपुतली बने रहे। उनमें और भी कई दुर्व्यसन
शिकायतें थीं। पर थे तो—मेरे धैर्य्य धरने को यही
था। उनके देहांत के बाद जब मैंने १६ वें वर्ष में पदा
किया तो मुझे जिन कष्टों का सामना करना पड़ा मैं ही जा

हूं। मैंने अपनी सास से एक दिन बातों बातों में विधवा विवाह की सराहना की, मेरा मतलब यह था कि शायद यह मेरा मतलब समझ सकेंगी। पर वह तो उलटी आग बबूला हो गई और न जाने क्या क्या बकने लगी। मेरी जी में तो आया कि बुढ़िया का गला घोट दूं पर जी मसोस कर रह गई क्योंकि वह जानती थी कि जब से मेरा विवाह हुआ मैंने एक दिन भी पति का मुंह नहीं देखा था। परदे का मेरे यहां बड़ा कड़ा प्रबन्ध था। सन्तरी वरदी तलवार लिये पहरे पर खड़ा रहता था। केवल नौकर चाकर या मेरे सम्बन्धी ही कोठी के भीतर आ सकते थे। मैंने मन ही मन अपनी काम वासना को शान्ति करने की बात स्थिर कर ली। पर सोचने लगी कि इन इने गिने लोगों में से किस को अपने प्रेम का पात्र चुनूं ? एक नौकर (बारी) पर एक दिन मेरा दिल आगया। मैंने अपना सर्वस्व उसी को सौंप दिया और यहां से मेरी पाप वासना का 'श्री गणेश' आरम्भ हुआ। कुछ दिनों के बाद लोग कुछ कुछ भांप गये। मैंने उसको (बारी को) निकलवा दिया। पर मुझे चैन नहीं पड़ा। फिर पति के एक नज़दीकी रिस्तेदार पर मैं मुग्ध हो गई। पर उनसे भी पटी नहीं। फिर राम लाल ख़िदमतगार से मेरा सम्बन्ध हो गया। कहने का सारांश यह कि केवल बीस साल के भीतर ही क़रीब तीस व्यक्तियों का आशय मैंने लिया। पर किसी से भी मैं सन्तुष्ट नहीं हुई। अन्त में एक दिन मैंने मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप किया। अपने को धिक्कारा भी बहुत पर मैंने अपने को अन्त में दोषी नहीं पाया इन कुल व्यभिचारों का दोष मैंने समाज के सर छोड़ा, मैं पहिले ही पुनर्विवाह करना चाहती थी, वह क्यों नही किया गया ? क्या जहाँ पानी नहीं होता वहाँ प्यास भी नहीं लगती ? उस दिन बजाए इसके कि मैं

अपने किये पर पश्चात्ताप करूं, मैं नित्य नया आनन्द ले लगी, पर मेरी पापात्मा को शान्ति कभी भी प्राप्त नहीं हु कहते लाज आती है कि चौदह बार मुझे गर्भ रह चुका बनारस आदि से दाइयें बुलवाकर मुझे खासी भ्रूण-हत्या करनी पड़ीं। पर मेरे स्वास्थ का भी अन्त नहीं हुआ।

जिस प्रकार विधवाओं को शास्त्रानुकूल रहना चाहि मैं ठीक उसके विपरीत रहती भी थी। मैं नित्य कामोत्पाद वस्तुएं रोज़ खाती। मेरा आहारादि भी, कहने की ज़रू नहीं, रानियों ही की तरह होना चाहिए। शास्त्र में लिखा कि विधवाओं को एक बार भोजन करना चाहिए वह रींधा हुआ चावल, लपसी और केवल एक साग। सो चाहिये तख़्त पर अथवा ज़मीन पर सोना चाहिये, कम्ब ओढ़ना चाहिये और कफ़नी पहिननी चाहिए। पान इ आदि से परहेज़ करना चाहिये इत्यादि। अब मैं अपना क कहूं प्रातःकाल ४१ बादाम और आध सेर दूध बसंलोच और इलायची आदि डाल कर पीती हूं फिर हलुआ या ऐ ही कोई पुष्ट चीज़ ६ बजे खाती हूं। दोपहर को रसोई में खीर वगैरह, फिर सो रहती हूं? मेरा पलंग कलकत्ते Whiteway Laidlaw के यहां से ५८०) रुपये में आया है उस पर से तो उठने का जी नहीं चाहता। फिर शाम शर्बत आदि पीती हूं। मेरे कहने का मतलब सिर्फ़ इतना है कि भला यह खुराक आदि खाकर कौन ऐसा पुरुष अथवा स्त्री है जो अपने को वैधव्य में सम्हाल सके? हां एक बा तो कहना मैं भूल ही गई। मैं कम से कम पांच छः सौ पा प्रति दिन खाती हूं, यहां तक कि मेरे दांत घिस गये हैं मेरी अवस्था इस समय ५० वर्ष के ऊपर है पर मैं अब उन युवतियों के कान काटती हूं जिनको १५ या १६ वर्ष

नवयुवती होने का घमण्ड है।..... तुमसे कोई बात छिपी तो है नहीं ? आजकल मेरा सम्बन्ध एक........ से है पर नहीं कह सकती कि यह प्रेम कब तक क़ायम रहेगा। मैंने भी प्रतिज्ञा कर ली है कि अब मैं बदनाम तो काफ़ी से ज्यादा हो चुकी हूं मेरे बहुतेरे सम्बन्धियों ने भी मुझे छोड़ दिया है और जो आते जाते हैं उनको मुझ से 'पैदा' की आशा है। धन मेरे पास काफ़ी है और ऐसा है कि अभी हज़ारों वर्ष इस दौलत पर चैन कर सकती हूं। बहिन ! क्या करूं मेरे हृदय में अग्नि दहक रही है। मैं भीतर से तो समझती हूं कि घोर नरक की यातना है पर बिना लिखी पढ़ी हूं। कथा पुराण मैंने बहुत सुने हैं। पूजा भी वर्षों की है पर आत्मा को शान्ति नहीं ! फिर सोचती हूं कि मनुष्य का चोला बार बार थोड़े ही मिलता है। पर साथ ही बहिन मैं साफ़ कहे देती हूं कि यदि मेरा विवाह दुबारा हो गया होता तो आज मैं ऐसी व्यभिचा-रिणी कदापि न होती। पर यह मैंने इतना उपद्रव किया है, जान बूझ कर इसलिये कि हमारे बिरादरी वाले देखें और मुझसे सबक़ लें। नवयुवतियों का, जो विधवा हैं और जिन-को पति की आवश्यकता है, उनका पुनर्विवाह करें। और इस पापमय जीवन से उनकी रक्षा करें। मुझे आशा है कि मेरी कहानी से लोग ज़रूर सबक़ सीखेंगे और यदि वास्तव में ऐसा हुआ तो मेरी आत्मा बहुत कुछ शांति लाभ कर सकेगी और तभी मैं अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित करूंगी। पर बात गुप्त रखना, नहीं तो लोग मुझसे नफ़रत करेंगे। बहिन ! यदि लोग मुझे प्रेम से वश किये होते तो क्या ही अच्छा होता ?

तुम्हारी.........................

ता० ५-१९१७ }

रानी...............''

इस पत्र का उत्तर बङ्गालिन स्त्री ने यह दिया था :—

" रानी बहिन !

नमस्ते,

तुम्हारा पत्र मिला ! जितनी बार पढ़ती हूं उतना ही आनन्द और दुःख दोनों ही होते हैं। मैं आपके प्रेम की पा[त्र] हो सकी यह जानकर मुझे बड़ा ही हर्ष हुआ। आप जान[ती] हैं कि मैं भी इस वेदना का बहुत नहीं, तो कुछ अंशों में अ[व]श्य अनुभव कर चुकी हूं और करती भी हूं। मेरा विवाह [क]ब हुआ और मेरे पति देवता कब चल बसे इसका मुझे ज्ञान नहीं है। मेरी अवस्था केवल सात वर्ष की थी, जब ह[मारा] सब कुछ हो चुका था। पर पिता जी ने मेरी शिक्षा की [ओर] विशेष ध्यान दिया। मैंने १० वर्ष तक संस्कृत अध्ययन क[र]के बहुत कुछ सीखा और देखा भी। मेरे पिता पुनर्विवाह [के] पक्ष में थे और मैंने स्वयं ऐसा करना उचित तो समझा [पर] किया नहीं। मैंने मन ही मन इस बात की प्रतिज्ञा अवश्य [की] कि आजीवन मैं अपना तन मन इस आन्दोलन में लगाऊं[गी] कि मेरी अन्य बहिनों का कष्ट नाश हो सके। मैं परमात्मा [का] स्मरण करती थी। घण्टों प्रार्थना करती थी कि मुझ में इ[तना] बल दें कि मैं अपने कठिन व्रत को कुछ अंशों में पूरा [कर] सकूं। आपको यह जान कर हर्ष होगा कि मैं बहुत [कुछ] करने में सफल हो सकी। इस समय मेरी अवस्था ४२ [वर्ष] की है। मैं अन्य बहिनों से विशेष संतुष्ट हूं। समय समय [पर] मुझे अपार आनन्द प्राप्त होता है।

मनुष्य को अपनी बुद्धि के अनुसार परमात्मा का [ज्ञान] होता है। ज्यों ज्यों परमात्मा की कृपालुता, दयालुता [और] प्रेम को अपने चित्त में स्थापना करके उसे अनुभव कर[ता]

ज्यों त्यों वह सर्वशक्तिमान परमात्मा के समीप होता जाता है।

मैं भी आज दिल खोलकर अपना हाल कहूंगी, पर आपके चरणों की शपथ खाकर कहती हूं वास्तव में मैं प्राणीमात्र को देवता समझती हूं और उनकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य।

मैंने आपका पत्र पढ़ा, और कई बार पढ़ा। आपके चित्त की स्पष्टता और सच्चाई देखकर मैं गदगद हो गई हूं। आपने सच्चे दिल से अपने हार्दिक भावों को मुझ पर बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रगट किया है। मैं आपको सादर एक सलाह दूंगी या यों कहिये कि आप का सर्वनाश करूंगी।

आप जानती हैं कि संसार भर के भाग्य का निपटारा होने वाला है। भारत की जानों की भी बाजी लगी हुई है, विजय-लक्ष्मी भारत माता की गोद में कब आवेगी यह कोई नहीं कह सकता, पर उद्योग करना भारतीय मात्र का, चाहे वह स्त्री हो वा पुरुष, लक्ष्य होना चाहिये। समय बड़ा उत्तम है। मैं जानती हूं कि आपके पास जंघम सम्पत्ति अपार है और गोकि आप उसे बेंच नहीं सकतीं पर साथ ही मैं यह भी जानती हूं कि नक़दी भी अपार है। मेरी राय में, यदि आप उचित समझें, तो यह कुल धन राष्ट्रीय कोष में मेरा पत्र पहुंचते ही दान दे दें। स्वयं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें। अपने नौकर चाकर और अन्य सम्बन्धियों को भी यही सलाह दें। अपना रहन सहन बड़ा ही सीधा और सरल कर लें। हर साल आपको एक लाख के ऊपर धन मिलेगा उसे आप किसानों की उन्नति में व्यय करें। यही सब कार्य ऐसे हैं जिनसे इस पाप का वास्तविक प्रायश्चित हो सकेगा और आपकी आत्मा शांति लाभ कर सकेगी।

परमात्मा को साक्षी देकर आप को सच्चे दिल से अ
इन कामों के लिये पछताना होगा। तभी आप में धैर्य
आत्म-शक्ति का संचार होगा। अपने चित्त को सदैव
और एकाग्र रखना नितान्त आवश्यक है।

मैं आपको शिक्षा नहीं देती, नहीं दे ही नहीं सकती
आप स्वयं बड़ी हैं बुद्धिमान हैं और यदि ज़रा भी ध्यान दें
बड़ी सरलता से समझ भी सकती हैं। आपके पत्र द्वारा
स्पष्ट रूप से समझ सकी हूं कि आप अवश्य ही इस
ध्यान देने की कृपा करेंगी।

सदैव आपकी-

....

(समाज दर्शन से उद्धृत)

❀ ❀ ❀ ❀

बाल हत्या।

श्री० छेदालाल सिंह बी० ए० हेडमास्टर गवर्नमेंट नार्मल
स्कूल फैज़ाबाद ने सहयोगी "विधवा-सहायक" में प्रकाशित
कराया है कि नवेली नाम की एक विधवा बालिका को,
ज़िला पीलीभीत की रहने वाली है, अनुचित सम्बन्ध से
बच्चा उत्पन्न हुआ। उसने नवजात बालक के मुंह में रुई
कर एक तालाब में डाल दिया ताकि उसकी बदनामी न
लेकिन दुर्भाग्यवश बच्चे की लाश पानी पर तैरती हुई
गई। पुलिस ने जांच करके स्त्री को गिरफ़्तार कर लिया
और उस पर मुक़द्दमा चलाया गया। गत १६ मार्च १९
को पीलीभीत के सेशन जज ने स्त्री को आजीवन काले पानी
की सज़ा दी। हाईकोर्ट में अपील की गई। स्त्री का
करके हाईकोर्ट ने नवेली को केवल ६ मास का कठोर
देकर छोड़ दिया।

विद्वानों की सम्मतियाँ

महात्मा गांधी के विचार ।

"नवजीवन" में विधवाओं के विषय में मि० खाण्डेलवाल ने एक लेख लिखा था उसमें उन्होंने समस्त भारत की मनुष्य संख्या से निम्नलिखित अङ्क दिये थे। मुसलमान हिन्दुओं में विधवाओं की संख्या साथ व अलग अलग, नीचे दी जाती हैं:—

उमर	विवाहित बालिकायें	विधवायें
१ महीने से १२ महीने तक	१३,२१२	१७,०१४
१ वर्ष से २ वर्ष तक	१७,७५३	८५६
२ ,, ३ ,,	४९,७८७	१,८०७
३ ,, ४ ,,	१,३४,१०५	९,२७३
४ ,, ५ ,,	३,०२,४२५	१७,७०३
५ ,, १० ,,	२२,१९,७७८	९४.२४०
१० ,, १५ ,,	१,००,८७,०२४	२,२३,०३२

उमर	हिन्दु विधवायें	मुसलमान विधवायें
१ महीने से १२ महीने तक	८६६	१०९
१ वर्ष से २ वर्ष तक	७५५	६४
२ ,, ३ ,,	१,५६४	१६६
३ ,, ४ ,,	३,९८७	५,८०६
४ ,, ५ ,,	७,६०३	१,२८१
केवल ५ वर्ष की	१४,७७५	२,१३३
५ से १० वर्ष की	७७,५८५	२४,२७६
१० से १५	१,८१,५०७	३६,२६४

भिन्न भिन्न प्रान्तों में विधवाओं की संख्या इस प्रकार है:-

बंगाल	१७,५८३	यू० पी०	१७,...
बिहार	३६,२७५	बड़ौदा	...
बम्बई	६,७२६	हैदराबाद	६,...
मद्रास	५,०३८		

इन संख्याओं पर महात्मा गांधी ने यह टिप्पणी दी: "जो इन अङ्कों को पढ़ेगा वह अवश्य रोवेगा, अन्धेर सुधा... यह कहेंगे कि विधवा विवाह इस रोग की सब से अ... औषधि है। किन्तु मैं यह नहीं कह सकता। मैं बाल ... वाला आदमी हूं। मेरे कुटुम्ब में भी विधवायें हैं। किन्तु ... उनके यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि तुम ... विवाह कर लो, पुनर्विवाह करने का ख़याल तक उनके ... में न आवेगा। इसका मतलब यह है कि पुरुष यह प्र... कर लें कि हम पुनर्विवाह न करेंगे। किन्तु इसके अ... और भी उपाय हैं जिनको हम काम में नहीं लाते, नहीं ... हम काम में लाना ही नहीं चाहते, और वे यह हैं:—

(१) बालविवाह एक दम रोक दिया जावे।

(२) जब तक पति और पत्नी इस अवस्था तक ... पहुँचे, कि एक दूसरे के साथ रह सकें तब तक ... विवाह न होना चाहिए।

(३) जो बालिकाएं अपने पति के साथ नहीं ... उन्हें केवल विवाह करने की आज्ञा ही नहीं किन्तु पुनर्... करने के लिए उत्साहित भी करना चाहिए। ऐसी लड़कि... को तो विधवा ख़याल ही न करना चाहिए।

(४) वे विधवायें जिनकी अवस्था १५ साल से ...

था जो अभी जवान हैं उन्हें पुनर्विवाह की इजाज़त देनी चाहिए।

(५) विधवा को लोग अशुभ समझते हैं किन्तु इसके विपरीत उसे पवित्र समझना चाहिए और उनका सन्मान करना चाहिए और:—

(६) विधवाओं की शिक्षा का उचित प्रबंध होना चाहिए।

❀ ❀ ❀

श्री ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर के विचार।

श्रनन्य समाज सुधारक और विधवाओं के मुक्ति के कार्य में अविरल परिश्रम करने वाले प्रसिद्ध विद्वान पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी ने भारतीय विधवाओं को घोर दुःख से छुड़ाने के लिये पुरुष समाज से कितने मार्मिक शब्दों में अपील की है :—

"देश निवासियो! आप धोखे और निद्रा में कब तक पड़े रहेंगे? एक बार तो अपने नेत्र खोलिये और देखिये कि हमारे ऋषियों और पूर्वजों की वही धर्म-प्राण भूमि भारत-मही, जो एक समय में संसार के सर्वोच्च आसन पर विराज-मान थी, आज व्यभिचार की प्रबल धार में बही जारही है। भयङ्कर और गहरी खड्ड में आप गिरे हुए हैं। अपने वेद और शास्त्रों की शिक्षाओं की ओर दृष्टि फेरिए और उनकी आज्ञाओं पर चलिए तब आप अपने देश की कलङ्क—कालिमा को धो सकेंगे। परन्तु अभाग्यवश सैकड़ों वर्षों के पक्षपात से आप ऐसे प्रभावित होगये हैं और पुरानी रीति रिवाज के

ऐसे 'लकीर के फ़क़ीर' हो गए हैं कि मुझे भय है कि
शीघ्र ही अपनी मर्यादा पर आकर शुद्धता और ईमानदारी
के मार्ग पर नहीं आ सकेंगे। आपकी आदतों ने आपकी
बुद्धि पर ऐसा परदा डाल दिया है और आपके विचारों
ऐसा संकुचित कर दिया है कि आपको अपनी विधवा
बहिनों पर दया का भाव लाना कठिन हो गया है।

जब काम-शक्ति के प्रबल आक्रमण के कारण वे धर्म
के नियमों का उल्लंघन कर देती हैं। उस समय आप उनके
व्यभिचार से आंख मूंद लेते हैं। उस समय उनका उचित
प्रबन्ध न कर और अपनी मान-मर्यादा खोकर उन्हें व्यभिचार
करने देते हैं। किन्तु कितने आश्चर्य का स्थान है कि
अपने शास्त्रों की आज्ञा नहीं मानते और शास्त्रों की आज्ञा
नुसार उनका पुनर्विवाह करके उन्हें भयङ्कर दुःखों से छुट-
कारा नहीं दिलाते। उनका पुनर्विवाह करने से आप
अनेक, पाप, दुःख और अधर्म से बच जायँगे। आप, स्व-
वतः, यह ख़्याल करते हैं कि पति के मर जाने के बाद स्त्रियां
मनुष्यता तथा प्रकृति के प्रभावों से सर्वथा शून्य हो जाती
हैं और उनकी कामेच्छा भी उन्हें नहीं सताती। किन्तु
व्यभिचार के नित्य नए उदाहरण से आपका विचार
सर्वथा ग़लत सिद्ध हो जाता है। खेद है कि आप अमृत
वृक्षों से ज़हर के बीज बो रहे हैं। यह कैसा शोक का स्थान
है? जिस देश के मनुष्यों का हृदय दया और तर्स से खाली
है, जिन्हें अपने भले बुरे का ज्ञान नहीं है और जहां के मनुष्य
साधारण शिक्षा देना ही अपना बड़ा भारी कर्तव्य और
समझते हैं उस देश में स्त्रियां कभी उत्पन्न ही न हों।"

डाक्टर सप्रू के विचार।
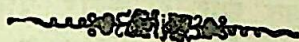
डाक्टर सर तेज बहादुर सप्रू महोदय, एम० ए० एल० एल० डी०, के० सी० आई० ई०, से विधवाओं के सम्बंध में उनके विचार जानने के लिये, चांद के ख़ास प्रतिनिधिने उनसे भेंट की थी अतएव आप के विचार हम प्रश्नोत्तर के रूप में नीचे देते हैं।

प्रश्न—विधवाओं के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—मैं बहुत ज़ोरों से विधवा-विवाह के पक्ष में हूं। विधवाओं का पुनर्विवाह अवश्य और ज़रूर होना चाहिए। ऐसा न करना मैं मनुष्यता के ख़िलाफ़ (Inhuman) समझता हूं।

प्रश्न—यह ख़्याल आपका समस्त विधवाओं के लिए है अथवा केवल बाल-विधवाओं के लिए?

उत्तर—बाल विधवाओं का पुनर्विवाह तो अवश्य ही होना चाहिए पर अन्य विधवाओं की इच्छा पर ही पुनर्विवाह का प्रश्न छोड़ देना चाहिए। यदि स्त्री की इच्छा है कि वह पुनर्विवाह करे तो इसमें किसी प्रकार की रोक टोक न होनी चाहिए और समाज में उनके प्रति अश्रद्धा के भाव न उत्पन्न होने चाहिएं।

प्रश्न—जो विधवाएं कुछ दिन अपने पति के साथ रह चुकी हैं अथवा जिन्हें बच्चे उत्पन्न हो चुके हैं उनके बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—मैं इन विधवाओं में और उनमें कोई भी फ़र्क़ नहीं

समझता। यदि वे चाहें तो फ़ौरन उनका नि[illegible]
कर देना चाहिए।

प्रश्न--आप सुनते और समाचार पत्रों में पढ़ते होंगे
प्रायः स्त्रियाँ और ख़ास कर विधवाएं भगाई और [illegible]
जा रही हैं इन्हें किस प्रकार रोका जावे और किस [illegible]
उनकी रक्षा हो सकती है?

उत्तर—स्त्रियों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध होना चा[illegible]
ताकि वे बदमाशों के बहकावे में न आ जावें। जो [illegible]
विधवाओं को इस तरह बहकाकर उनका जीवन नष्ट [illegible]
हैं उन्हें सरकार की ओर से कठोर से कठोर और [illegible]
से सख़्त दण्ड मिलना चाहिए। इतना ही नहीं स[illegible]
को चाहिए कि ऐसे बदमाशों का सामाजिक बहि[illegible]
(Social Boycott) अवश्य करे और यथा शक्ति [illegible]
कड़े से कड़ा दण्ड दिलाने का प्रयत्न करे इसके [illegible]
क़ानून मौजूद हैं।

प्रश्न—क़ानून मौजूद तो अवश्य हैं पर होता कुछ भी न[illegible]
सरकार की खुफ़िया पुलिस की समस्त शक्ति तो [illegible]
बचाव में लगी है। वह राजनैतिक आन्दोलन-कारि[illegible]
पीछे लगे रहना ही अपने कर्त्तव्य का 'इति श्री' सम[illegible]
है तो भला इन मामलों की जांच किस प्रकार हो?

उत्तर—मैं यह बात मानने के लिए तय्यार नहीं हूं। [illegible]
दूसरे मामले में पुलिस भले ही आनाकानी करे पर [illegible]
मामलों में वह अवश्य काफ़ी जांच पड़ताल कर[illegible]
जब तक उसे ऐसी घटनाओं का पता ही न लगे [illegible]
क्या कर सकती है?

प्रश्न—ऐसी बात तो नहीं है। पंजाब की सरकार इस [illegible]

भली भांति जानती है कि वहां लड़कियों की ख़रीद फ़रोख़ अन्य प्रान्तों से अधिक है। सन् १९११ में स्वयं पञ्जाब की सरकार ने हिन्दू सभा की रिपोर्ट को सत्य बतलाया है और इस बात को तसलीम किया है। लेकिन जानते हुए भी कोई ख़ास प्रबन्ध मेरी समझ में आज तक नहीं किया गया। रही बात पता लगाने की सो यह असम्भव है कि यदि वास्तव में इन मामलों की जांच की जाय और पता न चले। असल बात तो यह है कि भारत सरकार को ऐसी बातों की परवाह ही नहीं है। क़ानून पास कर देने ही से क्या होता है ?

उत्तर—यह सच है कि ऐसी घटनाओं की जांच उचित रीति से नहीं की जाती पर मैं तो समझता हूं कि जनता को स्वयं यह कार्य्य करना चाहिए। जहां कहीं भी ऐसे धूर्त्तों का पता लगे अथवा वे ऐसी बातें सुनें उन्हें तुरन्त पुलिस में इसकी सूचना देना चाहिए और जांच में पुलिस का साथ देना चाहिए। मैंने अकसर देखा है कि लोग यथा शक्ति ऐसी बातों को, बदनामी के भय से, छिपाने की कोशिश करते हैं पर ऐसा कदापि न होना चाहिए।

प्रश्न—ख़ैर! विधवाओं की वास्तविक सहायता के लिए आप क्या करना उचित समझते हैं ?

उत्तर—मेरा तो ख़्याल है कि विधवाओं की यदि पुनर्विवाह कर दिया जावे तो इससे काफ़ी संख्या में विधवाओं की तकलीफें घट सकती हैं पर साथ ही विधवाओं के लिए जगह जगह आश्रम खुलने चाहिए और उनका इन्तज़ाम बहुत ही माक़ूल होना चाहिए। और बाल-विवाह की कुप्रथा, जिससे हिन्दोस्तान को बेशुमार हानि हो रही है, जल्द से जल्द अवश्य रोकना चाहिए।

प्रश्न—भारत जैसे अन्ध परम्परा को चक्कर में पड़े हुए दे
में—बाल-विवाह की प्रथा रोकने के लिए बहुत स
की ज़रूरत है। मेरा ख्याल है कि इस प्रथा को रोकने
हमें तब तक सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकती
तक सरकार इसके विरुद्ध कोई क़ानून पास न क
क़ानून पास हो जाने से अन्य नियमों की भांति
इस आज्ञा का पालन अवश्य करेंगी और तभी कुछ स
लता भी हो सकती है।

उत्तर—पर सरकार धार्म्मिक मामलों में दख़ल ही क्यों
लगी ?

प्रश्न—अव्वल तो यह मामला बिलकुल सामाजिक (Pu
Social) है और धर्म्म से इसका संम्बन्ध ही नहीं
चाहिए। पर यदि थोड़ी देर के लिए इसे धार्मि
मामलों में हस्तक्षेप ही मान लिया जावे तो लार्ड बें
(Lord Bentick) ने विधवाओं का सती होना ही
रोका था ?

उत्तर—वह समय और था और अब समय और है।
बात उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य की है। उसके बाद
कार ने और भी कई ऐसे क़ानून पास कर डाले
इसके पहले, कि उन्हें असली जामा पहनाया जावे,
५७ का बलवा हो गया और इससे सरकार बहुत
गई। मैं तो समझता हूं कि कोई भी विदेशी सर
(Foreign Government) ऐसे मामलों में हाथ नहीं

प्रश्न—सन ५७ से आज ज़माना बहुत बदल गया है।
लोग आज दिन बालविवाह को बुरा समझते
और जनता इस प्रथा को मिटाना चाहती है अवश्य
भिन्न भिन्न जात पात होने के कारण सभी लोग

अपने विश्वास के अनुसार काम करते हैं। हिन्दुस्थान की तो सभी बातें धर्म्म से मढ़ी हैं। "स्नान करना हिन्दुओं का धर्म्म है" गीला कपड़ा पहन कर भोजन करना धर्म्म है" कहने का मतलब यह है कि इसी प्रकार आठ वर्ष की बालिकाओं का विवाह कर देना भी 'धर्म्म' है। देखिए न मुसलमानों के शासनकाल में उनके पाप-पूर्ण नेत्रों से बालिकाओं के सतीत्व की रक्षा करने के लिए धर्म्म ग्रन्थों में नए श्लोक जोड़ जाड़ कर ही यह बात सिद्ध की गई थी कि बाल-विवाह करना धर्म्म है। क्योंकि उस समय भी विचारशील नेता इस बात को भली भांति जानते थे कि जब तक धर्म्म में लपेट कर कोई बात न कही जायगी भारतवासी उसे मानने के लिए तय्यार न होंगे और था भी ठीक ही। जैसा मैं पहिले कह आया हूं कि स्वभाव से अंधविश्वासी और सरल हृदय होने के कारण जब तक भारतवासी किसी बात को धर्म्म अथवा क़ानून के जामे में नहीं देख लें उनको विश्वास ही नहीं होता और वे उसे मानते भी नहीं।

उत्तर—यह तो ठीक ही है पर सवाल तो इतना ही है कि यदि आज सरकार ने कोई ऐसा क़ानून पास कर दिया तो कल ही एक बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा हो जायगा कि "हिन्दू धर्म्म में हस्तक्षेप किया गया और इसकी रक्षा करो"। "Hindu Religion in Danger" की घोषणा कर दी जायगी।

प्रश्न—यह बात तो हुई सरकार के क़ानून पास करने के सम्बन्ध में। मैं आप से केवल यह बात पूछना चाहता हूं कि किसी तरह यदि ऐसा क़ानून पास हो जावे तो उससे बाल विवाह की प्रथा रुक भी सकती है कि नहीं?

उत्तर—ज़रूर ! इससे निसन्देह बहुत कुछ लाभ हो सक
है। पर इस विषय में सरकार को दोषी ठहराना अ
होगा। यह कार्य्य तो कौंसिल के मेम्बरों का है। सर
इन मामलों में बिलकुल दख़ल न देगी। वे स्वयं
चाहें कर सकते हैं पर मुशकिल तो यह है कि आम
से कौंसिल के मेम्बर स्वयं ही ऐसे महत्वपूर्ण सामा
मामलों से दिलचस्पी ही नहीं लेते। यदि वे चाहें
बहुत कुछ काम कर सकते हैं।

प्रश्न—यही तो मैं भी कहता हूं कि यदि डाक्टर गौड़
सुयोग्य मेम्बर लोग इन मामलों को उठावें और प्र
द्वारा जानता की नब्ज़ टटोल कर इन्हें कार्य
परिणित कर सकें तो बात की बात में बहुत कु
सकता है ?

उत्तर—मैं आप की इस राय से बिलकुल सहमत हूं।

❀ ❀ ❀

पं० कृष्णाकान्त मालवीय के विचार

विधवाओं के सम्बंध में पण्डित कृष्णाकान्त जी मालवीय,
सम्पादक "अभ्युदय" के विचार जानने के लिये चांद के ख़ास प्रति
उन से भेट की थी। आप के विचार भी हम प्रश्नोत्तर के रूप में
रहे हैं।

प्रश्न—विधवाओं के सम्बन्ध में आपके क्या विचार
उनका पुनर्विवाह कर देना आप उचित समझते
नहीं ?

उत्तर—अवश्य ! जो विधवाएं विवाह करना चाहें

मार्ग में अड़चनें न होनी चाहिएं। इसके साथ ही बाल विधवाओं से, उनकी अवस्था और भविष्य जीवन पर ध्यान रखते हुए यह परामर्श देना, कि वे अपना विवाह कर लें अनुचित न समझा जाना चाहिए।

प्रश्न—जो लोग अपने घरों की विधवाओं का पुनर्विवाह करना चाहते हैं उन्हें समाज बुरी निगाह से देखता है। हमेशा ही ऐसे लोग, उचित समझते हुए भी, समाज के डर से अपनी कन्याओं का विवाह नहीं कर सकते। इस विषय में समाज का सुधार किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर—समाज को सुधारने के लिए कोई राजपथ नहीं बतलाया जा सकता। समाज को किसी विशेष मत को स्वीकार करने के लिए समय की आवश्यकता है। समाज अपनी अवहेलना के लिए कठिन से कठिन दण्ड देना अपना कर्त्तव्य समझता है। अपने सिद्धान्तों के लिए, तय्यार होवे, "क्या करें?" यह सवाल हमारी समझ में उठता ही नहीं। जिनमें आत्मबल की कमी है या जो अपने सिद्धान्त के लिए कष्ट सहन करने को तय्यार नहीं हैं उनको, बात चीत, व्याख्यान, पुस्तकों और लेखों द्वारा समाज के मत में परिवर्तन करने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—जो विधवाएं कुमार्ग के पथ में पड़ चुकी हैं अथवा मुसलमानों या ईसाइयों के हाथ में पड़ चुकी हैं और अब पश्चाताप प्रकट करती हैं आप उन्हें फिर अपने समाज में ले लेना उचित समझते हैं या अनुचित?

उत्तर—जो पवित्र जीवन व्यतीत करने को तय्यार हों उन्हें

फ़ौरन ले लेना चाहिए। प्रायश्चित के बाद उनको समाज में ले लेना सर्वथा उचित है। अगर समाज में सम्मिलित होकर वे शीघ्र ही विवाहित जीवन धारण करें...

प्रश्न—आप रोज़ ही देखते और सुनते होंगे कि कुछ लोग स्त्रियों और ख़ास कर विधवाओं को भड़का कर दूसरे प्रांतों में ले जाते हैं और उन्हें बेच कर फ़ायदा उठाते हैं इसका क्या इलाज हो सकता है?

उत्तर—विधवाओं को शिक्षा देना, उन्हें इस योग्य बनाना कि वे दुष्टों के बहकाने में न आ जावें—समाज का कर्त्तव्य है? समाज अगर अपना कर्त्तव्य पालन करेगा तो कन्याओं और विधवाओं की बिक्री की समस्या इतने विकट रूप में समाज के सामने न उपस्थित होगी।

❀ ❀ ❀

स्वामी राधाचरण गोस्वामी के विचार
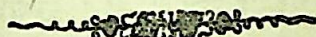
कट्टर सनातन धर्म्म के आचार्य वृन्दावन निवासी श्री स्वामी राधाचरण जी गोस्वामी महोदय के विचार :—

हाय ! अन्ध परम्परा ।

२५-३० वर्ष से बड़ी बड़ी कान्फ्रेंसें हो रही हैं हज़ारों रुपये ख़र्च हो रहे हैं? हर एक जाति के नेता अपनी धुन की झोंक में मस्त हैं? मामूली कामों में बहुत सी नुक़्ताचीनी करते हैं, पर विधवा-विवाह का नाम सुनते ही होश फ़ाख़्ता... हमारी जाति के लोग हमसे बिगड़ न जायें, हमारा नेतृत्व न मारा जाय, इससे विधवा विवाह का प्रकरण आते...

चुप ! चुप ! हमारी सभा न टूट जाय ! भीतर से कुछ लोग विधवा विवाह के सपक्ष भी हैं पर क्या करें अन्धपरम्परा के तोड़ने योग्य साहस नहीं ! न इतना बल ! न इतना स्वार्थ त्याग ! अमेरिका से गुलामों का व्यवसाय केवल बकवाद से नहीं उठा ! इन अनाथ विधवाओं का उद्धार भी बिना पूर्ण कष्ट उठाये न होगा। पानीपत की गौड़ महासभा में कुछ ग्रामीण गौड़ों ने अपनी विधवाओं को जाट मुसलमान आदि के द्वारा नष्ट भ्रष्ट होते देख कर, सभा से विधवा-विवाह की आज्ञा मागी, पर सभा ने केवल चिकनी चुपड़ी बातों में टाल दिया। दिल्ली में भटनागर कायस्थों की सभा में स्त्रियों की अर्जी पेश हुई कि विधवा-विवाह की आज्ञा हो, परन्तु दाखिल दफ़्तर ! कब तक यह बहाना चलेगा ?

❀ ❀ ❀
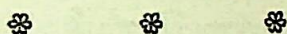
अपने दुखड़े।

[ले० कविवर श्री० पण्डित अयोध्या सिंह जी उपाध्याय।]

देखता हूँ कि जाति डूबेगी, है जमा नित्त हो रहा आँसू।
लाखहा बेगुनाह बेवों की, आँख से है घड़ों बहा आँसू॥
सोग बेवों का देखती बेला, बैठती आँख टूटती छाती।
जो न रखते कलेजे पर पत्थर, आँख पथरा अगर नहीं जाती॥
ब्याह दी जायँगी न बेवायें, कौन सिर पर कलंक ले जीवे।
नीच का घर बसा बसा करके, मूँछ नीची करें भले ही वे॥
सुन सकें क्यों गोहार बेवों की, क्यों गलेपर छुरी न हो फिरती।
हम गिरेंगे कभी न ऊँचे चढ़, गिर गई मूँछ तो रहे गिरती॥
जाति कैसे भला न डूबेगी, किस लिये जाय बहन दे खेवा।

जब नहीं सालती कलेजे में, चार औ पाँच साल की वेवा॥
दिन व दिन वेवा हमारी हीन बन, दूसरोंके हाथ में हैं पड़ रहीं
जन रही हैं आँख का तारा वहीं, जो हमारी आंखमें है गड़ रहीं
लाज जब रख सके न वेवों की, तब भला किसतरह लजायें वे
घर बसे किस तरह हमारा तब, जब कि घरऔरका बसायें वे
गोद में ईसाइयत इसलाम की, बेटियां बहुयें लटाकर हम लटे
आह! घाटा पर हमें घाटा हुआ, मान वेवों जाघटाकरहमघटे
है अगर वेवा निकलने लग गईं, पड़गयातोबढ़तियोंकाकाल भी
आबरू जैसा रतन जाता रहा, खोगये कितने निराले लाल भी

—चांद।

❀ ❀ ❀

जग-निठुरई।

—❀❀—
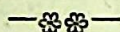
[ले० कविवर पण्डित श्रीधर जी पाठक।]

सखिरी रीति बैरिनि भई।
प्रीति मान मृजाद की बिधि मूल सों मिटि गई।
निरपराधिनि बालिका लघु बैस मृदु लरिकई।
व्याहि रांड बनाइये यह कौनसी सुघरई।
जन्म भर त्रिय देह जारत काम बल कठिनई।
निबल प्रान सताइबे में, कहु कहा ठकुरई।
स्वार्थ-प्रिय पाषान सो हिय, निपट शठ निरदई।
भयो आर्य अनार्य भारत कुमति मन में छई।
होय छिन छीन तन सहि आपदा नित नई।
मूढ़ सर्वस खोय निज-हित-सीख नेंक न लई।

वाल विधवा-स्राप-वस, यह भूमि पातक-मई।
होत दुःख अपार सजनी निरखि जग-निठुरई।

—मनोविनोद से।

❀ ❀ ❀

बाल-विधवा।

[ले० श्री० "विनय"]

कोमल कुसुम कली के ऊपर, क्यों निष्ठुर बिजली टूटी?
स्वयं वाल-परिणय की आँखों, से वह जल धारा छूटी!
किसका तारा सा टूटा है, भाग्य जगत के नभ में आज?
जिसकी जली चमकती सजती, चिता-लपट, करुणाका साज?
सदय-दिवाकर किस नलिनी का, आज सदा को अस्त हुआ?
आज चन्द्रमा किस कुमुदिनि का, सतत ग्रहण से ग्रस्त हुआ?

[२]

औचक किसकी ऐंठ गई हैं, भावी आशाएं अज्ञात?
वाद वाल-मधु के ही तप है, फिर है आँसू की वरसात!
वालापन में हाथ! खुल गए, आज सदा को किसके केश?
किस जीवित पुतली में, पाया है, मुर्दे ने आज प्रवेश?
किसे जलाने वाला है आ, करके यौवन का अङ्गार?
आहों की वारुद भरी है, वाल- हृदय का बना अनार?
किसका विधि के कोपानल में, भस्म हुआ सारा शृङ्गार?
किस की छाया शुभ-कार्यों में, हुई छूत की अब आगार?

[३]

किसके लोचन वदन-श्री में, लगे हुए से दो अंगार?
देख देख कर जला करेंगे, कभी जगत का सौख्य-प्रसार?

और जलावेंगे दर्शक गण—को पड़ उन पर बारम्बार,
लाल लाल रह कर निस, करते व्यक्त वह्नि-मय हृदय-विकार।
किसकी दृष्टि गिरेगी भूपर, खो करके अपना आधार?
खो देंगे किसके कटाक्ष हृद-भेदन का अपना अधिकार?
किसकी आँखों में दिखता है, हमको यह अद्भुत व्यापार?
चरम-शुष्कता-मरु से, टकराता आँसू का पारावार?

[४]

छिपा आज किसकी बेफ़िकरी, में चिन्ता का नीरागार,
जिसकी सरल हँसी की सीपी, में है जल मद-मुक्ताहार?
रस नायक की छाया भी छू, नहीं सकेगा किसका प्रेम?
शारीरिक सुख से विरक्त हो—करही होगा किसका क्षेम?
किस दुखिया का हटा रहेगा, सदा वा ह्य-दुनियाँ से ध्यान?
हुई क्रूरता से समाज के, नष्ट कौन वाला अनजान?
देखेंगे सवस्व चित्र में, किस दुखिया के लोचन म्लान?
देख देख कर किया करेंगे, मन में वह गत-मूर्ति विधान।

[५]

सुना करेंगे गत जीवन की, गुण गाथा ही किसके कान?
किया करेगी कम्पित रसना, जिसके विगत गुणों का गान।
जीते जी ही किसे मिलेगा, श्वेत वस्त्र का शव-परिधान?
गूँजा सदा करेगी किसके, मन में नीरव करुणा-तान?
पारस के विपरीत धातु ने, किसका सोने का संसार,
बनकर के वैधव्य, बनाया, आज लोहमय जगत अपार?

[६]

जैसे शिशु हँस कर बढ़ता है, छूने को जलता अंगार।
हँस कर श्वेत वस्त्र पहनेगी, रोएगा सारा संसार॥
खसक गया है छोड़ अधर में, तुझे हाय! तेरा आधार।

अगर सार* होता तुझमें तो, गिर कर हो जाती निस्सार ॥
रोती है इस लिए कि सुन्दर, चूड़ी फोड़ी जाती हैं।
क्या समझे ? तेरे सुहाग की, हड्डी तोड़ी जाती हैं ॥

[७]

हाय ? करेगा भाल न भूषित, अब तेरा प्यारा सिन्दूर।
रंग विरंगापन जीवन केनभ का होगा उससे दूर ॥
उसकी नील छटा भी होगी, सतत मेघमाला का ग्रास —
तारों की मृदु चमक न होगी, और न शशि का हास्य-विलास
हाय जलाया सदा करेगा, तुझे चन्द्रमा का आभास।
उषा और संध्या सखियां, होकर भी देंगी तुझको त्रास ॥
ऋतु-पति का स्वागत करने को, मुग्ध प्रकृत का नूतन साज।
तेरे मन की मरूस्थली में, ला देगा निदाघ का राज ॥

[८]

तारे छेद करेंगे उर में, प्रभा करेगी तमः प्रसार।
शीतल पवन स्वेद लावेगा, झुलसावेगा चन्दन सार ॥
मलय-पवन, प्रमत्त, वासन्तिक, कोइलियों की कूक रसाल।
लूक लगाती, हूक उठाती, हुई हृदय में होगी काल ॥
आस पास व्यापक शोभा, मुख-विकृति का देगी उपहार।
हरियाली हर लेगी मुख श्री, कर पीला अन्तसंसार ॥

[९]

गरज गरज का घन उस्थित—कर देंगे मन में हाहाकार।
चमक चमक कर चपला मन में, चिलक उठावेगी हर वार ॥
इन्द्र-धनुष को देख आँख में, मुख पर रंगों का संचार।
वर्षा की रिमझिम में आँसू, उमड़ पड़ेंगे बारम्बार ॥

* (१) भार। (२) समझ।

चमक करेगी जुगुनू की, मन में चिनगारी का संचार।
कूक मोरनी की करती दो—टूक हृदय को, होगी पार॥
हिलती हुई अधखिली कलियों—पर भौरों की मृदु गुञ्जार।
आग लगा देगीं नस नस में, दहक उठेगा तृण-भण्डार॥

[१०]

शशि से देख निशा का मिलना, करके तारों से शृङ्गार।
तुझसे आ वैकल्य मिलेगा, पहने अंगारों का हार॥
सागर को जाता ज्योत्स्ना में, स्नात-सरित का स्वच्छ प्रवाह।
देख, हृदय पर बह जावेगा, द्रव-लपटोंमय अन्तर्दाह॥
देख श्यामघन की गोदी में, चपला का सानन्द विहार।
अन्धकार से भरे हृदय पर, होगी तड़ित-व्यूह की मार॥
देख नई बधुओं की व्रीड़ा, प्रौढ़ा का स्वच्छंद विलास।
मुग्धाओं का नटखट क्रीड़ा, पीड़ित होंगे नयन उदास॥

[११]

चपल नाव पर देख सकुचमय, पति-पत्नी का सलिल-विहार।
छूटेगा तेरे हाथों से, जीवन- नौका का पतवार॥
देखेगी सर में ललनागण—की व्रीड़ामय जल क्रीड़ा।
निकल वहीं कमलों से तेरे, मन को खाएगा कीड़ा॥
देख देख फूले फूलों को, स्थिर मन कुम्हला जाएगा।
उनपर बिखरी देख ओस दृग, रुधिर-बिन्दु टपकाएगा॥
देख शरत्शोभा का आना, दिल मुंह को आ जाएगा।
रंग त्रिरंगा देख गगन को, मुंह का रंग उड़ जाएगा॥

[१२]

सुन कर मत्त खगों का गाना, तुझको रोना आएगा।
देख मौज में उनका उड़ना, मन तेरा उड़ जाएगा॥
बहते देख नदी मन करुणा—धारा में बह जाएगा।

झरनों की झर झर सुन कर, वह हहर हहर रह जाएगा ॥
देख मीन की केलि-हृदय पर, लोट सांप सा जाएगा ।
देख सुखी पशुओं की क्रीड़ा, मानस पीड़ा पाएगा ॥
मंद पवन की मृदु सर सर से, वह थर थर कांप जाएगा ।
अर्ध निशा के झन्नाटे से—सन्नाटे में आएगा ॥

[१३]

देख झूलना पत्तों का मारुत—लहरों के झूलों में ।
मन झूलेगा झूले के अनुरूप गुण-ग्रथित शूलों में ॥
दिन में देख कमल को विकसित, मन होगा सकुचित नितान्त
देख कुमुद के दृग खुलना निशि, में दृग होंगे वन्द अशान्त ॥

❀ ❀ ❀

किन्तु देखकर देह जीव के, बिना करो मन में सन्तोष ।
सूखी हुई नदी को देखो, नहीं तुम्हीं पर विधि का रोष ॥
दिन को दशा कुमुद की देखो, और कमल का निशि में हाल ।
एक तुम्ही को नहीं फंसाए—है कितनों को दुख का जाल ॥

[१४]

सांझ सवेरे सूर्य-चन्द्र की, महिमा का देखो अवसान ।
तम का शोक-वस्त्र पहने, वसुधा का देखो मुखड़ा म्लान ॥
देखो कोयल का दुखियापन, जब बौरें हों नहीं रसाल ।
एकाएक सूखता देखो, कोई मीन वृन्द का ताल ॥
देख प्राणियों को कितने ही, कतिपय दुःखों से आक्रान्त ।
समझ एक ही अपने दुख को, तुम हो जाओ कुछ तो शान्त ॥
दुष्पति के दुर्व्यहारों से, सधवा का भी विधवापन ।
देख भालकर सोचो समझो, तनिक उठाओ अपना मन ॥

[१५]

फिर देखो दुनियाँ के सारे, सुख हैं कैसे क्षणिक नितान्त ।

कभी चार दिन भी रह पाता, कहां एक रस कोई शान्त ?
आते जाते ही रहते हैं, सुख दुख एक एक के बाद ।
रक्खेगा अह्लाद मूल्य क्या, जो होगा ही नहीं विषाद ॥
इस पर भी सन्तोष न हो तो, फैले हैं आशा के हाथ ।
उससे मिल जाओ, पाओगी, जन्मान्तर में पति का साथ ॥

—चांद
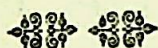
अबल—विधवा ।

[ले० श्री० "विक्रम"]

हरे चन्द्र ! तू क्यों करता है मुझ अबला पर अत्याचार।
सह न सकूंगी तेरी शीतल किरणों का मैं कोमल भार॥
तेरी सुधामयी किरने हैं विषमय तीरों की बाछार।
लम्पट पुरुषों के सम तू क्यों करता है गर्हित व्यवहार?

(२)

इस विराग के श्वेत-वसन पर उठे न क्या श्रद्धा के भाव!
क्या इन कङ्कन-हीन-करों पर हुआ न करुणा रस का स्राव!
क्या इस संदुर-हीन मांग पर तुझे न लज्जा आई चाँद?
क्या मेरे बिखरे बालों पर तू ने तरस न खाई चाँद?

(३)

क्या इस विन्दु विहीन भाल को देख नहीं पाया तू चांद!
मुझे बतादे किस धोखे से मेर ढिग आया तू चाँद?
आदि काल से देख रही हूं कलुषित तेरा कोमल अङ्ग?
क्या ईर्षा से प्रेरित होकर मुझे लगायेगा "अकलङ्क"?

(४)

हाय ! विवशतः होता जाता है मेरे पन में रोमाञ्च,
किस का पाहन हृदय ने पिघला देगी तेरी मधुमय आंच ?
हरे निर्दयी ! किस अनर्थ का करता है तू आयोजन।
किस अनिष्ट की ओर खींचता जाता है तू मेरा मन ?

(५)

दौड़ो ! अपना सारा बल ले कर हे स्मृति के पावन दूत !
टूट न जाये धक्का खाकर मर्य्यादा का कच्चा सूत ॥
तितर बितर होती जाती है संयम की सारी सेना ॥
इस दुर्बल मानस के कारण मुझे न फिर गाली देना ॥

(६)

अखिल-प्रकृति की प्रबल शक्तियां से करती हूं मैं संग्राम।
कब तक रमणी की लज्जा का व्यूह सकेगा, रिपुदल थाम ?
बच न सकूंगी उच्चादर्शों के इस सूक्ष्म-कवच की ओट !
सह न सकेगी ख़्याली बख़्तर व्यवहारिक शस्त्रों की चोट।

(७)

मानस-सर में रह कर मुझको है जल-का छूना पाप।
अनल कुण्ड के बीच बसूं पर लगे न मेरे तन को ताप !
हरे भरे उपवन में रह कर है निषिद्ध फूलों का वास।
मधुर रसीले इन अधरों पर कभी न वांछित सुख मय हास ॥

(८)

है विकसित यौवन, पर दूषित है मादकता का सञ्चार।
बहती प्रबल वेग की आँधी, पर वर्जित है मुझे बयार ॥
प्रखर धार में फेंक दिया, पर दिया न बहने का अधिकार।
अगर डूब मरते पानी में तो भी हो जाता निस्तार ॥

(९)

कैसे देवी बन सकती हूं भगवान्! इन असुरों के बीच।
जिधर निकलती उधर छेड़ते हैं, कुत्सित मन वाले नीच!
किया विधाता ने नारी को पुरुषों पर आश्रित निर्माण।
यदि आश्रय-दाता धोखा दे, तो किस विधि अबला का त्राण।

(१०)

हे भगवन् दो इन पुरुषों को निज मर्य्यादा का सम्मान।
या वह बल दे जिससे, अपने कर से हो अपना कल्यान॥
विधवा-पन की जो महिमा का करते हैं गौरव मय गान।
वही चलाते हैं क्यों उन पर मतवाले नयनों के बान?

(११)

उच्च शिखर से विश्वप्रेम का जो हमको देते उपदेश।
वही हमारा मन हरने को धारण करते नाना वेष॥
धृष्ट कुटिल भ्रमरों से घिर कर, रहे अछूता क्यों कर फूल!
कब तक पौधा जी सकता है पा कर जल वायू प्रतिकूल!

(१२)

उठें न क्यों कर प्रलोभनों से उद्वेजित हो मनोविकार।
सुस्थिर सर में भी झोंकों से उठे न क्यों लहरों का तार!
मनोवेग की रगड़ मिटा देती है अस्फुट-स्मृति का दाग।
प्रबल मोह की आँधी में बुझता विवेक का मन्द चिराग!

(१३)

जो बहनें इस कठिन परीक्षा से निकला करतीं बेदाग।
त्रिभुवन का स्वामी करता है उनके चरणों में अनुराग।
सीता, सावित्री का सत् भी, है उनके चरणों की धूल।
स्वयं विधाता उन्हें चढ़ाता है अपनी श्रद्धा का फूल॥

मुझ दुर्बल-हृदया को दुर्लभ है वह दैवी पदाधिकार।
यद्यपि लज्जा-वश न करूंगी खुल कर दुर्बलता स्वीकार॥
पर तुमसे क्या छिपा हुआ है हे समाज के चतुर सुजान!
कर सकते हो सेहृदय होकर मेरे भावों का अनुमान॥

(१४)

यदि निर्बल को घृणित समझ कर जाने दोगे उसकी राह।
अधःपतन के साथ उसी के होगी सारी सृष्टि तबाह॥
कर निर्बल का त्याग न होगा केवल सबलों का उत्कर्ष।
ले कर डूब मरेगी अबला, सबला के ऊंचे आदर्श!!

(१५)

हे समाज! यदि तुझको दुनियां में रखना है ऊँचा माथ।
तो आगे बढ़ जीवन-यात्रा में विधवा को लेकर साथ॥
उच्चकोटि की विधवाओं का कर देवी-समतू सम्मान।
अधम कोटि को समझ मानवी, रच दे उनके योग विधान॥

—चांद।

❀ ❀ ❀

स्वर्गीय प्रियतम के प्रति।

[ले० श्रीमती विमलादेवी जी।]

पता नहीं तुम क्या करते हो, स्वर्ग लोक में प्राणाधार?
करते हो विरह व्रत पालन, या परियों के संग विहार?
करते थे अद्वैत हृदय से, हा! प्रियतम, तुम मुझको प्यार।
फिर भी यों शङ्का करना हा! हन्त!! मुझे सौ सौ धिक्कार!

(२)

पर जो कुछ मैं देख रही हूँ, जग में पुरुषों के व्यवहार।
उससे अनायास उठते हैं, मन में शङ्का के अविचार॥
एक प्रेयसी से ख़ाली जो, आज हुई प्रियतम की गोद।
अन्य प्रियतमा उसमें आकर, कल करती है मनोविनोद॥

(३)

प्रथम प्रेयसी के विछोह में, आज वहे नयनों से नीर।
लगी दूसरी के हित हा! पति— को, कल पुनर्व्याह की भीर।
यदि वसुधा में पुरुष जाति के, क्षणिक प्रेम का है यह हाल।
तो सुनती हूँ स्वर्ग लोक में, सुन्दरियों का नहीं अकाल॥

(४)

हा! मेरे मन में उठते हैं, क्यों ईर्षा के कलुषित भाव।
किन्तु कहाँ मेटा जा सकता, मानव-हिय का सहज स्वभाव!
आत्मा के अनन्त जीवन हित, जिसको अपनाया एक बार।
अखिल विश्व में जिसे समझतीं, हम अपनी सम्पति का सार।

(५)

पञ्च भूत में मिल कर भी, जो नारी जीवन का आधार।
क्या उस पतिपर तनिक नहीं, हैं हम पत्नीगन का अधिकार?
रुष्ट न होना प्यारे प्रितयम! सुन कर मेरे नये विचार।
निशि वासर सा साथ लगा है, कर्तव्य के पीछे अधिकार।

(६)

प्यारे पति का हृदय छोड़ कर, जिस ललना का स्थान न और।
हा! उससे भी वञ्चित हो कर, कहाँ उसे त्रिभुवन में ठौर!

मुझे बता दो प्राणनाथ यदि—बना हुआ मेरा वह स्थान।
तो मैं इस वैधव्य-क्लेश को, समझूँगी तृण-मात्र समान॥

—चांद।

❀ ❀ ❀

विधवायें।

[ले० श्री० अनूपशर्मा जी० बी० ए०]

(चौपदे)

(१)

थी बदी भाग्य-हीन भारत की, इस तरह हाय! दुर्गती होना
इन दुराचार के प्रभावों से, श्रेय था अग्नि मे सती होना॥
देश की ये असंख्य विधवायें बालिकायें विदीर्ण-हृदया सी।
रो रहीं फूट फूट कर दिल में, कुप्रथा की वृथा बनीं दासी॥

(२)

हाय! इनके जले कलेजे से, पूछिए तो भला कथा इनकी।
कौन स-हृदय न कह देगा, 'हो रही दुर्दशा वृथा इनकी'॥
हो गया भाग्य संकुचित जैसा, हो चला क्षीण है वदन वैसा।
सास सधवा, बहू बनी विधवा, हो जहां, स्वाँग है सदन कैसा?

(३)

विश्व भर की असीम इच्छायें, हृदय में जिस समय उछलती है
वे बिना भाग्य के विधाता के भाल को ठोंक, हाथ मलती हैं?

कामिनी, ये अस्वामिनी होकर, मारतीं, चित्त मार कर डाहें।
भस्म सारा समाज हो जावे, चित्त से आह ! आह ! जो काढ़ें।

(४)

मांग है शून्य, स्वल्प इच्छा है, लाख की चूड़ियां चहैं दो ही।
देके छीना कठोरता द्वारा, ईश लोभी हुआ महा द्रोही॥
प्राण प्राणेश संग जो जाते, पूजती वैठ व्यर्थ व्रीड़ा क्यों?
बुद्धि विपरीति है विधाता की, आँख फोड़ी, हरी न पीड़ा क्यों!

(५)

सारे जग से वियोगिनी बन कर, नारियां—बीत राग कैसे हों!
भक्ति का हेतु ही नहीं उनके, युग नहीं, योग-याग कैसे हों!

❀ ❀ ❀

जिनके हों भाव वे तहा डालें, जिनके हो धैर्य्य वे ढहा डालें
नेत्र को फोड़ फोड़ कर अपने, जितने आंसू हों, वे बहा डालें

—चांद।

❀ ❀ ❀

विधवा-विनय।

—❀❀❀—

[ले० श्रीयुत "किरीट"।]

हाय विधाता! उठा लिया क्यों, तुमने मेरा जीवन धन!
सुना, सदा हित ही करते हो, है यह कैसा हित-साधन!
विधि, मैं तुमको पूजती थी नित, चढ़ा चढ़ा कर कितने फूल-

तुमने मन में चुभा दिए, चुन चुन कर उनके सारे शूल !
इस वियोग के द्वारा ही क्या, देना है अनन्त संयोग ?
या कि परीक्षा है कंचन की, 'विधवापन' है "अग्नि प्रयोग" ?
वह कैसा कमनीय कुसुम है, लगा हुआ जिसमें यह शूल ?
है तो नहीं तुम्हारी, बोलो विधि, यह कोई भारी भूल !
निष्ठुर ! बतला कर रहस्य, कुछ तो कम कर दो मन का भार।
लिए हुए हूं अभी तुम्हारे लिए, एक अन्तिम उपहार ॥
मत बोलो, प्रतिकूल स्वयं हूं, यदि तुम मुझ से हो प्रतिकूल।
तुम्हें न दूंगा फटे हृदय का, भुवन पूज्य यह बिखरा फूल ॥

—चांद।

❀ ❀ ❀

विधवा।

[लेखिका :—श्रीमती महादेवी जी वर्मा।]

क्यों व्याकुल हो विरहाकुल हो, शोकाकुल को प्यारी भगनी।
संतापित हो अविकासित हो, सर भारत की न्यारी नलिनी ?
आश नहीं अभिलाष नहीं, निःसार तुम्हारे जीवन में।
क्यों तोष नहीं परितोष नहीं, निर्दोष दुखारे जीवन में ॥
पावनता की पूर्ति अहो, मृत-प्राय हुई वैधव्य हनी।
करुणोत्पादक मूर्ति लखो, अति दीन हुई दुखरूप बनी ॥
हा हन्त हुई यह दीन दशा, फिर स्वार्थ दली दुर्दैव छली।
नव कोमल जीवन की कलिका, हा सूख चली बिन पूर्ण-खिली ॥
अम्बर तन जीर्ण मलीन खुले, कच रुक्ष हुए शृङ्गार नहीं।
मधुराधर पै मुस्कान नहीं, उर में आशा सञ्चार नहीं ॥
अश्रु-भरे नयनाम्बुज में, हीना क्षत है तन क्षीण अहो।

लख कर तव दीन दशा भगिनी, हैं कौन, धरे जो धैर्य्य कहो।
तुमने क्या कण्टक की आकर, इस जग उपवन में पाये हैं।
नये मुकुल तव आशा के कैसे, हा हा मुरझाये हैं!
जला मनोरथ कञ्ज दिया हिम, वैधव ने क्या मंजु खिला।
हृदय हुआ मरु-भूमि गया, सिंदूर साथ सौभाग्य चला!!
प्रकृति विपिन की कालिका हो, तुम पुत्री भारतमाता की।
प्यारी आर्य्य कुमारी हो तुम, सृष्टि पुनीत विधाता की॥
शान्ति सौम्यता की प्रतिमा, तुमने उन्नति थी अपनाई।
सुविचारों ने सद्भावों ने, उत्पत्ति तुम्हीं से थी पाई॥
स्वार्थ-अंध स्वेच्छाचारी, पुरुषों ने किन्तु सताया है।
हृदय-हीन निर्दय हो, तुम को अवनत दीन बनाया है!!
जब तुम थी निर्बोध मृदुल, कलिका ही जीवन डाली की।
करती मधुर विकास मधुर प्यारी रचना थी माली की॥
शैशव में ही प्रिय स्वजनों ने, तुम से कैसा वैर लिया।
स्वाभि-अर्थ-अनभिज्ञ बालिका, का विवाह अविचार किया।
भाग्य-चक्र ने उस पर तुम पर, किया घोरतर अत्याचार।
उजड़ गया सौभाग्य दीन का, बिगड़ गया सुखमय संसार।
होकर परवश बाध्य पड़ी हा, कठिन आपदायें लेनी।
ज्वालामय संसार कुंड में, पड़ा जीवनाहुति देनी॥
किया किसी ने दोष और, प्रतिफल ऐसा हमने पाया।
नहीं किसी को किन्तु तुम्हारा, मुख दर्शन भी अब भाया।
करके सेवा-वृत्ति स्वजन की, जीवन धारण करती हो।
होकर कुमति अधीन कभी फिर, पद कुपंथ में धरती हो॥
ध्यान न देते किन्तु अहो, निद्रित हो सारे भ्राता।
लज्जा पाते नहीं, नहीं बनते अबलाओं के त्राता॥
स्वयं साठ के होने पर भी, विषय वासना से जलते।
प्रिया वियोग कठिन लगता है, झटपट की मग में चलते।

पाके किसी नवल कलिका को, वृद्ध भ्रमर हरषाते हो।
होगा क्या भविष्य कलिका का, नही ध्यान में लाते हो॥
विधवाओं, अबलावों ने है, किया कौन अपराध अहो॥
उनकी अवनति देख तुम्हे क्यों होता है आह्लाद कहो॥
दीन हुई, श्रीहीन हुई, मझधार बही भवसागर में।
आधार गया, सुखसार गया, और आश रही करुणाकर में॥
देशबन्धु यदि नहीं कभी तुम, इनकी ओर निहारोगे।
दैव पीड़िता विधवाओं का, दारुण कष्ट निवारोगे।
पाप मूर्ति बन जायेंगी, हैं जो पावनता·पूर्ति अभी।
तुम भी होगे हीन नहीं, पावोगे उन्नति कीर्ति कभी॥

—चांद।

❀ ❀ ❀

विधवाओं की आह !

[ले० श्री० "बहादुर"]

सावधान ! पाण्डित्य परम प्रकटाने वालो,
कर पुरोहिती—धर्म, धर्म विनसाने वालो !
बाल विवाह कराकर, कुछ न लजाने वालो,
गणना विधवाओं की सदा बढ़ाने वालो !

सम्हलो बड़वानल बनी, विधवाओं की आह है !
इन आहों की दाह में, भला कहीं निर्वाह है ?॥

सुन विधवा की आह आसमाँ हिल जाता है,
और कलेजा सहृदय का मुंह को आता है,
क्रूर हृदय पर नहीं तनिक भी शर्माता है,
कौन नहीं कुत्सित कर्मों का फल पाता है ?

फलतः हो सकता नहीं, कुछ भी जाति—सुधार से।
विधवाओं की वेदना, औ आहों की मार से॥

सनातनी हो तो नियोग मत करो कराओ,
पर भट बाल विवाह—प्रथा का नाम मिटाओ,
प्रौढ़-विवाह कराय वीर संतति उपजाओ,
मृत-प्राय मत दिव्य जाति का नाम धराओ,

यत्न करो अब वह सखे, निज अदम्य उत्साह से।
जिसमें हो न विकल महा, विधवाओं की आह से।

बाल व्याह कर वंश न जो निर्बल उपजाते,
प्लेग महामारी न हमें यों चट कर जाते,
कभी विपक्षी मन मानी हमको न सताते,
बतलाते हम उन्हे. हमें जो हवा बताते,

सब अनर्थ का मूल बस, विधवाओं की आह है।
ध्यान इधर भी दें जिन्हें, देशोन्नति की चाह है॥

—चांद।

❀ ❀ ❀

फ़रयादे-विधवा।

—❀❀❀—

[ले० श्री० मोहनलाल जी मोहियाल]

अजब दुख दर्द सहती हूं, ग़मों से नीमजाँ होकर।
टपकते खून के आँसू, इन आंखों से रवाँ होकर।
सिधारे प्रानपत, डेरा जमाया, यास हसरत ने।
बिसारी सुध गुलिस्तां की, उन्होंने बाग़बां होकर।
ससुर सुसराल ने त्यागा, व ताने दे करें घायल।
हुई दूबर हूं मैके में, मुफ़्त बारे गिराँ होकर।

न पुरसाँ हाल है कोई, न दुःख और दर्द का साथी।
सुनाए किसको ग़म अपना, जो पूछे मेहरबां होकर ?
बुलावे जो कोई हमको, बराबर पुत्र या भाई।
वह खुद बदनाम होता है, हमारा पासबां होकर।
किया मोहताज क़िस्मत ने, गज़ब की बेबसी डाली।
ज़मीं लरजे, फ़लक कांपे, शफ़क़ से खूं-फ़िशा होकर।
हज़ारों लानतें रहतीं, हमारे ताक़ में हर दम।
डुबाने के लिए अस्मत, हमारी बेइमाँ होकर।
ग़रज़ रुसवाई है हरसू, तलख़ जीना हुआ अपना।
न मिलती मौत भी मांगे, है डरती बेगुमां होकर।
पछत्तर वर्ष के रण्डवे, हैं करते शादियां देखो ?
मगर हम सितम सहती हैं, खुर्द-साला जवां होकर।
गुज़रती दिल पै जो जो है, हमारा दिल ही सहता है।
मज़े से ऐश करते हो—मरें हम नातवां होकर।
तुम्हें तो नींद प्यारी है, हमें अख़्तर शुमारी है।
निकलती जाँन फ़ाक़ों से, बेहालो रायगाँ होकर।
ग़रज़ मजबूर हों 'मोहन' धरम से, गिरती जाती हैं।
मिटा देंगी तुझे ए क़ौम, ईसाई मुसलमां होकर।

—"विधवा सहायक"

❀ ❀ ❀

एक बेवा की फ़रयाद।

[श्रीयुत "फ़िदा", बी० ए०]

हिन्दुओ तुमको अगर कुछ भी दिखाई देता,
चख़ पर नालः मेरा यों न दोहाई देता।

मैं वह बेकस हूं कि जुज़ नालः कोई काम नहीं,
दर्द होता तो तुम्हें भी वह सुनाई देता।
तीरे बख़्ती से शबे ग़म है भयानक ऐसी,
हाथ को हाथ नहीं इस में सुझाई देता।
इस मुसीबत की ख़बर होती जो पहिले मुझको,
मैं न लेती जो ख़ुदा साथ ख़ुदाई देता।
इससे बेहतर तो यही था कि ख़ुदा के हाथों,
मांग लेती जो मुझे मौत बन-आई देता।
कौन से जुर्म में गर्दानी गई हूँ मुजरिम,
और तो और तसल्ली नहीं भाई देता?
फूल से मिलने की उम्मीद जो जाती रहती,
कौन बुलबुल को स्तरे नग़मे सराई देता।
मेरे गुलशन को भी मकलूस बिहारी मिलती,
काश आहों का मेरा वक़्त रसाई देता?
ऐ 'फ़िदा' ग़म में न विधवाएं हज़ारों घुलतीं,
क़ैदे-ग़म से जो इन्हें कोई रिहाई देता।

—चांद।

❀ ❀ ❀

* ओ३म् *

विधवोद्वाहमीमांसा

जिसमें

शास्त्रीय और लौकिक प्रमाणों से

विधवाविवाह की

निष्पक्ष आलोचना कीगई है
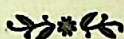
लेखक व प्रकाशक

पं० बदरीदत्त जोशी
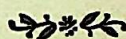
नेमीचन्द जैन के प्रबन्ध से

"शर्मा मैशीन प्रिंटिङ्ग प्रेस" मुरादाबाद में छपा।

संवत् १९८० वि०

प्रथमसंस्करण] [मूल्य
१०००] [१।)

समर्पण

श्रीमान् ठाकुर बैजनाथसिंहजी

अध्यक्ष नाथ नायल कंपनी

इनानजांग (बरमा)

श्रीमन् !

आपकी ही प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है। सम्भव है कि मेरी अल्पज्ञता से इसमें बहुतसी त्रुटियां रह गई हों, और यह आपके मन को भी आकर्षण करने योग्य न हो, अस्तु यथाशक्ति मैं इसे जैसा भी संपादन कर सका हूं सादर आपकी सेवा में समर्पित करता हूं। आशा है कि आप सेवक के इस प्रेमोपहार को स्वीकार करके अपनी उदारता का परिचय देंगे।

भवदीय-कृपापात्र-

[illegible]दत्त जोशी

[illegible] कार्यालय, मुरादाबाद ।

आवश्यक निवेदन !

प्रियहिन्दू बान्धवो ! हमने अबतक प्रमाद से या स्वार्थ से या भ्रमात्मक विश्वास से जिस भी कारण से हो, स्त्री जाति की उपेक्षा की और उसीका यह फल है कि आज हमारी सभ्यता ही नहीं, किन्तु जातीय सत्ता भी संसार से मिटने को है और क्यों नहो जबकि हमारे पूर्वज ही कहगये हैं:—

> स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेवच ।
> स्वंच धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ मनु०

क्या सचमुच हम इन सन्तान और कुल की ही नहीं, किन्तु जातिय चरित्र और जातीय धर्म को भी ढालने वाली देवियों की उपेक्षा करके एक पग भी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। कदापि नहीं। आज पचास वर्ष से इतना आन्दोलन होनेपर भी हम वहीं खड़े हैं, जहां हमारे पूर्वजों ने हमको छोड़ा था। इसका कारण यही है कि हम अपने संसार और परमार्थ के साथी को छोडकर आगे बढना चाहते हैं। अस्तु

अब यदि हम इस संसार में अपनी जातीय सत्ता की रक्षा करना चाहते हैं तो सब से पहले हमें इस अबला स्त्री जाति के प्रति अपने कर्तव्य को पालन करना होगा। इसी उद्देश से यह पुस्तक आपकी सेवा में भेट की जाती है। आशा है कि आप सबलों से अपने अधिकार मांगने के पहले निर्बलों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

लेखक

विषयानुक्रमणिका।

विषय पृष्ठाङ्क

पहला अध्याय।

दूसरा अध्याय ।

तीसरा अध्याय।

चौथा अध्याय।

परिशिष्ट ।

प्रस्तावना ।

विवाह का उद्देश ।

इस सृष्टि की गाड़ी को चलाने के लिए विधाता ने स्त्री और पुरुष रूप दो चक्र निर्माण किए हैं। ये दोनों मिलकर ही सृष्टि के उद्देश को पूरा कर सकते हैं, पृथक् २ रहकर नहीं। इसीलिए प्रकृति देवी ने इनमें परस्पर सख्य और साहचर्य स्थापित किया है। जहां जहां मनुष्यसृष्टि है, वहां वहां हम इन दोनों को मिलकर रहते और काम करते हुवे पाते हैं। यहां तक कि जंगली और असभ्य जातियों में भी स्त्री पुरुषों का स्वाभाविक प्रेम और सहवास अनिवार्य है। चाहे वह अनिबंध और अमर्याद ही क्यों न हो। इस प्रेम को पवित्र और स्वर्गीय बनाने के लिए संसार की समस्त सभ्य जातियों ने विवाह का वन्धन नियत किया है। यदि यह वन्धन न होता, न तो गृहस्थाश्रम ही होता और न सन्तान या वंश की परंपरा ही इस संसार में चलती। गृहस्थाश्रम जो सब आश्रमों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ माना गया हैं इसी विवाह का परिणाम है। यदि विवाह न होता तो फिर मनुष्यों में और पशुओं में कुछ भी अन्तर न होता।

विवाह के दो उद्देश सर्वसम्मत हैं, (१) दाम्पत्य प्रेम (२) सन्तानोत्पत्ति, इन दोनों में भी पहला ही मुख्य है, क्योंकि उसके विना न तो कोई गृहस्थ का आनन्द ही अनुभव कर सकता है और न योग्य एवं अनुकूल सन्तान की उपलब्धि होस-

कती है। यों सन्तान तो पशु पक्षी भी उत्पन्न करते हैं और समर्थ होनेतक उनका लालन पोषण भी करते हैं। दाम्पत्य प्रेम के ही कारण एक दरिद्र और अकिञ्चन का घर भी स्वर्ग बन जाता है और इसके अभाव में संपन्न और समृद्ध घर भी कांटे की तरह खटकता है। इस दाम्पत्य प्रेम की महिमा अचिन्त्य और अवर्णनीय है। बडे बडे ऋषि मुनि भी उसका वर्णन करते करते थक गये हैं। मनुष्य जन्म पाकर जिन्होंने इस प्रेम पीयूष का पान नहीं किया वे या तो योगी हैं या पशु?

अब प्रश्न रह है कि यह दाम्पत्य प्रेम जो विवाह का सर्वोच्च उद्देश और गार्हस्थ्य जीवन का सर्वस्व है, स्त्री पुरुषों में कब और क्योंकर रह सकता है? संसार में प्रेम का आधार केवल एक वस्तु है, जिसको समता कहते हैं। सहानुभूति विषमता में भी होती है, पर प्रेमलता सर्वत्र समता की छाया में ही फैलती है। विषमता की ऊंची नीची भूमि में उसे फैलने का अवकाश ही नहीं मिलता। मन का धर्म है कि वह अनुकूल वस्तु को पाकर प्रसन्न और प्रतिकूल से अप्रसन्न होता है। अनुकूलता विना समता का आधार पाये ठहर नहीं सकती वह विषमता से उतनी ही दूर भागती है, जितनी कि पर्वत की विषमभूमि से कोई नदी। भय या आतङ्क से प्रेम नहीं किंतु उद्वेग उत्पन्न होता है। जो लोग अपने धनमद, बलमद या धर्ममद से इस प्राकृतिक नियम का उल्लंघन करके असमानों में मैत्री स्थापन करना चाहते हैं, वे वास्तव में मित्रता को शत्रुता के रूप में परिणत करना चाहते हैं। जैसा कि किसी कविने कहा है:—

सरलयोः सखि सख्यमुदीरितं तरलयोर्घटनैव न जायते।
यदि भवेत्सरले सरलेऽथवा न च रमेत्तरलः शरयोरिव॥

प्राचीन भारत की स्त्रियां।

मनके इसप्राकृतिक झुकावको देखकरही संसारकी समस्त सभ्य जातियों में युवा और समर्थ स्त्री पुरुषों के विवाह की परिपाटी प्रचलित है। क्योंकि बाल्यावस्था में न तो वे एक दूसरे की परीक्षा ही कर सकते हैं और न उनकी की हुई प्रतिज्ञायें किसी धर्म या कानून की दृष्टि में कुछ मूल्य रखती हैं। इसविषय में और २ देशों ने तो पीछे से उन्नति की है, पर भारत का प्राचीन इतिहास देखने से पता लगता है कि यहां पूर्वकाल में मानसिक, शारीरिक और सामाजिक जो कुछ उन्नति हुई, उसमें भारतीय महिलाओं ने किसी अंश में भी पुरुषों से कम भाग नहीं लिया। और तो और ब्रह्मविद्या जैसी सूक्ष्म और महाविद्या के अध्ययन और प्रवचन में भी हम याज्ञवल्क्य और जनक जैसे तत्वदर्शियों के साथ गार्गी और सुलभा जैसे स्त्री रत्नों को बराबर काम करता हुवा पाते हैं। ऋग्वेदके (जो संसार के साहित्य में सब से प्राचीन पुस्तक है) ऋषियों में जहां हम विश्वामित्र, वामदेव और वशिष्ट आदि पुरुषों का नाम पाते हैं, वहां घोषा, लोपामुद्रा और विश्ववारा आदि स्त्रियों का नाम भी चमकते हुवे अक्षरों में लिखा पाते हैं। शास्त्रार्थ, युद्ध, यात्रा और उत्सवों में न केवल स्त्रियां सम्मिलित होती थीं, किन्तु महत्व पूर्ण भाग लेती थीं, इसके शतशः प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान हैं।

प्राचीन काल में हमारा कोई धार्मिक और सामाजिक कृत्य ऐसा नहीं था, जो स्त्रियों के बिना केवल पुरुषों से किया जाता हो। चारों आश्रमों में पुरुषों के समान ही इनका अधिकार था। ये ब्रह्मचारिणी होकर गार्गी और सुलभा के सदृश

स्वाध्याय में अपना जीवन व्यतीत करती थीं और गृहस्थाश्रम की तो अधिष्ठात्री देवी ही मानी जाती थीं। वानप्रस्थ में जाकर पुरुषों के सम्बन्ध से नहीं किन्तु अपनी योग्यता से ऋषिका (१) और आचार्या (२) बनती थीं। विरक्त होकर मोक्ष धर्म में अभिनीत होनेका इनको भी वैसा ही अधिकार (३) था, जैसा कि पुरुषों को। बौद्धकाल में भी इस देश की स्त्रियों के ये अधिकार अक्षुण्ण थे। निदान मानव जीवन के उपयोगी किसी अंश में भी भारतीय महिलायें पुरुषों से पीछे नहीं रहती थीं।

स्त्री जाति का महत्त्व।

हमारे लिये यह कितने गौरव का स्थान है कि सबसे पहले इस संसार में स्त्री जाति के महत्व को हमारे पूर्वजों के मस्तिष्क ने ही अनुभव किया। शक्तिरूप से ईश्वर की पूजा यदि किसी धर्म में पाईजाती है, तो वह हिन्दूधर्म ही है। हिन्दू धर्म की पुस्तकों में ईश्वर की इस शक्ति का वर्णन भिन्न भिन्न रीति से पाया जाता है। कहीं प्रकृति,कहीं माया, कहीं जननी और कहीं जाया के अर्थगौरव युक्त नामों से इसी जगद्धात्री आद्या शक्ति का परिचय दिया गया है। संसार में केवल हिन्दू धर्म ही है जो सृष्टि से पहले अज और अजा (प्रकृति और पुरुष) दोनों की सत्ता को मानता है। ईसाइयों की इञ्जील में लिखा है कि "आरम्भ में ईश्वर ने हज़रत 'आदम' को उत्पन्न किया, जब 'आदम' को स्त्री की आवश्यकता हुई तो उसने अपनी पसली की हड्डी से "हव्वा"को बनाया।" परन्तु

---

(१) देखो सायणकृत ऋग्वेद भाष्य की अनुक्रमणिका।

(२) देखो सिद्धान्त कौमुदी ४–१–४९ सूत्र की व्याख्या।

(३) देखो महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३५१।

भारत का सबसे पहला दार्शनिक कपिल प्रकृति और पुरुष से सृष्टि का होना मानता है। मनु भी अपनी स्मृति में यही कहता है कि ब्रह्मा ने अपने देह के दो भाग किए आधे से स्त्री और आधे से पुरुष बना, तब यह सृष्टि उत्पन्न हुई।

इटली का प्रसिद्ध संशोधक जोज़ेफ़ मेज़िनी अपनी पुस्तक "मनुष्य के कर्त्तव्य" में लिखता है "ईसाइयों की वर्त्तमान इञ्जील सर्गारम्भ में केवल पुरुष का उत्पन्न होना बतलाती है, परन्तु आगामी काल की इञ्जील स्त्री को भी सृष्टि के उत्पादन में पुरुष के बराबर ही भाग देगी।" बेचारे मेज़िनी को भारत की इन्जील का पता न था, अन्यथा वह आगामी के स्थान में भूतकाल का संकेत करता।

संसार में तीन बल प्रसिद्ध हैं, धनबल, बाहुबल और विद्याबल। ये ही तीनबल मनुष्य जन्म की सफलता का कारण हैं। हिन्दूधर्म में इन तीनों बलों की अधिष्ठात्री देवता स्त्री को माना गया है। धनकामुक हिन्दू लक्ष्मी की, बलप्रार्थी शक्ति की और विद्यार्थी हिन्दू सरस्वती की आराधना करते हैं। पाठक! जिन लोगों ने मानव जीवन के सर्वस्व इन तीनों बलों की अधिष्ठात्री स्त्री को बनाया, उनकी दृष्टि में उसका कितना मान और गौरव था, इसका अनुमान करना कुछ कठिन नहीं है। प्राचीन स्त्रियों का हिन्दू समाज में क्या स्थान था? इसके हम यहां पर केवल दो ही उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जो कि बृहदारण्यक उपनिषद् से सम्बन्ध रखते हैं। पहला याज्ञवल्क्य और उसकी स्त्री मैत्रेयी का संवाद है। दूसरा जनक की सभा में गार्गी वाचक्नवी का याज्ञवल्क्य के मान की रक्षा करना है।

जब याज्ञवल्क्य वानप्रस्थ आश्रम में जारहे थे, तब उन्होंने अपनी प्रियपत्नी मैत्रेयी से कहा। "मैत्रेयी! मैं घर छोड़कर

जा रहा हूं, मेरी इच्छा है कि अपनी सम्पत्ति का विभाग तुझ में और कात्यायनी में करजाऊँ, जिससे पीछे कोई झगड़ा न उठे।" इसपर मैत्रेयी ने कहा। "भगवन्! यदि यह धन से पूर्ण सारी पृथिवी मेरी होती तो क्या मैं उससे अमर होजाती?" याज्ञवल्क्य ने कहा। "नहीं, तेरा जीवन वैसा ही होता, जैसा कि धनवानों का होता है. धन से अमर होने की आशा नहीं।" तब मैत्रेयी ने कहा। "मैं उस वस्तु को लेकर क्या करूं। जिससे कि मैं अमर नहीं हो सकती। अमृतत्व के विषय में आप जो कुछ जानते हैं, मुझसे कहिये।" तब याज्ञवल्क्य ने कहा। "मैत्रेयि! तू प्रिय वचन कहती है, आ यहाँ पर बैठ और जो कुछ मैं कहता हूं, उसे ध्यान लगाकर सुन।"

(बृहदारण्यक अध्याय २ ब्राह्मण ४)

तब याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को उस अध्यात्मतत्व का उपदेश किया, जिसके जानने से मनुष्य जीवन्मुक्त होजाता है। आज कल की स्त्रियों के समान पूर्वकाल की स्त्रियाँ धन और आभूषणों पर नहीं मरती थीं, किन्तु उनके जीवन का उद्देश विद्या और मुक्ति थी, इसका यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

दूसरा उदाहरण गार्गी वाचक्नवी का है। विदेह के राजा जनक ने एक बड़ा यज्ञ किया, उसमें ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी गई। उस यज्ञ में कुरु और पञ्चाल देश के बहुत से ब्राह्मण आये थे। राजा जनक ने यह जानना चाहा कि इनमें सबसे बड़ा विद्वान् कौन है? अतएव उसने एकहजार गायों को उनके सींगों में दस दस सुवर्ण के पदक बाँधकर रोका और उन ब्राह्मणों से कहा कि आप लोगों में जो सबसे बड़ा विद्वान् हो वह इन गायों को हाँक लेजावे। यह सुनकर ब्राह्मण एक दूसरे की ओर देखने लगे! याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य सामश्रवा से

कहा कि वह इन गायों को हाँककर ले जावे। गुरु की आज्ञानुसार शिष्य उन गायों को हाँककर ले गया। याज्ञवल्क्य का यह घमण्ड देखकर ब्राह्मण कुपित हुये और वे उससे कठिन एवं जटिल प्रश्नपर प्रश्न करने लगे। याज्ञवल्क्य को जब उनका उत्तर देते देते पसीना आगया, तब यकायक उससभा में एक व्यक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और उसने ब्राह्मणों की अनुमति लेकर याज्ञवल्क्य से कहाः—

"जैसे किसी काशी वा विदेह के योद्धा का पुत्र अपने धनुष् को खींचकर दो नोकीले बाणों से अपने शत्रु को बींधना चाहता है, वैसे ही मैं दो प्रश्नों को लेकर तुमसे लड़ने के लिये उपस्थित हुई हूं।"

पाठकों को आश्चर्य होगा कि यह व्यक्ति एक स्त्रीथी,जिसका नाम गार्गी वाचक्नवी था। ये दोनों प्रश्न किये गये और इनका उत्तर जब याज्ञवल्क्य देचुके, तब गार्गी ने ब्राह्मणों से कहाकि "आप लोग नमस्कार करके याज्ञवल्क्य से अपना पीछा छुड़ायें' इसको जीतने का सामर्थ्य आप लोगों में नहीं है, ब्राह्मण चुप होगये।" (बृहदारण्यक अ० ३ ब्रा० ८)

इन और ऐसे ही अन्य अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में स्त्रियों का जो स्थान था, वह हम को संसार की किसी भी प्राचीन जाति के इतिहास में नहीं मिलता। इसके पश्चात् मध्यकाल में भी जब इनके लिए कुछ २ सामाजिक बन्धनों का सूत्रपात होचुका था बहुत सी स्त्रियों ने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। उनमें से भी यहाँ दोही उदाहरण पर्याप्त होंगे। पहला मण्डन मिश्र की स्त्री भारती का, जिसने शङ्कर और मण्डन के शास्त्रार्थ में नकेवल मध्यस्थता की किन्तु पति के परास्त होजाने पर

शङ्कर से शास्त्रार्थ भी किया और इस प्रकार अपने पति को शङ्कर के बन्धन से मुक्त किया। (१)

दूसरा उदाहरण विदुषी विद्याधरी का है, जिसका विवाह धूर्त्त पण्डितों ने (जिनका उसने तिरस्कार किया था) छल से महामूर्ख कालिदास के साथ (जो उसी शाखा को काट रहा था, जिसपर बैठा हुआ था) करादिया। इस विदुषी स्त्री ने "अस्ति कश्चित् वाग्विभवः?" इस एक ही प्रश्न से कालिदास को ऐसा महापण्डित और महाकवि बना दिया कि वह प्रश्नात्मक वाक्य के एक २ शब्द से एक २ महाकाव्य बनाने में समर्थ हुवा। अर्थात् 'अस्ति' से कुमारसम्भव, 'कश्चिद्' से मेघदूत और 'वाग्' से रघुवंश। (२)

विकास का विपरीत परिणाम।

संसार के समस्त देशों का प्राचीन इतिहास देखने से पता लगता है कि आरम्भ में सर्वत्र ही बल का प्राधान्य था। जो जातियाँ इस बीसवीं शताब्दी में अपने ही देश में नहीं, किन्तु सर्वत्र न्याय की प्रतिष्ठा करना चाहती हैं, सभ्यता के आरम्भ में वे अपने ही निर्वल अङ्गों के साथ अन्याय करती थीं। ज्यों ज्यों सभ्यता का विकास होता गया, त्यों त्यों उनका निर्वलों पर अत्याचार भी कम होता गया और साम्यवाद की ओर उनकी प्रवृत्ति बढ़ती गई। पर यह कैसे आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष का इतिहास बिलकुल इसके विपरीत आदर्श हमारे सामने उपस्थित करता है। यहाँ ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती गई, त्यों त्यों उसका उपयोग निर्वलों को दबाने और उनके

(१) देखो शङ्करदिग्विजय अध्याय ८-९

(२) देखो मालविकाग्निमित्र नाटक की प्रस्तावना।

प्राकृतिक स्वत्वों को कुचलनेमें कियागया। बलवान् निर्बलों पर अत्याचार करने लगे और उनको ऐसे कठोर और भीषण धार्मिक तथा सामाजिक नियमोंमें जकड़ दियागया कि वे जीते जी कभी उनसे छुटकारा न पासकें, इसको हम विकास कहें या ह्रास ?

अब प्रश्न यह होता है कि सारे संसार के विरुद्ध भारत में ही सभ्यता का यह विषम परिणाम क्यों हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर कुछ कठिन नहीं है। स्वतन्त्रता का मूल्य स्वतन्त्र जाति ही जान सकती है। जबतक आर्य जाति स्वतन्त्र रही, प्राण से भी अधिक स्वतन्त्रता को प्यार करती रही और जब उसने खुद दूसरों से दब कर या सांसारिक प्रलोभनों में पड़कर परतन्त्रता की बेड़ी अपने पावों में डालली, तब वह कब हो सकता था कि वह दूसरों की स्वतन्त्रताका मूल्य समझ सकती। जो अन्याय से डरकर बलवानों के सामने सिर झुका देता है, वह कभी निर्बलों के साथ न्याय नहीं करसकता जो अपनी स्वतन्त्रता को कौड़ियों के मोल में दूसरों के हाथ बेच देता है, वह दूसरों की स्वतन्त्रता छीनने में कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचता। भारतवासी जब अपनी स्वतन्त्रता खोचुके, तब क्रमशः उस परतन्त्रता का प्रभाव उनके धर्म और समाज पर भी पड़ने लगा क्योंकि किसी परतन्त्र जाति का धर्म या समाज कभी स्वतन्त्र नहीं रह सकता।

स्वतन्त्रता के युग में जिस जाति ने कुछ शताब्दियों में ही अपनी सभ्यता और प्रतिभा का वह चमत्कार दिखाया था कि उपनिषद् जैसी गूढ़ विद्या (जिस का आज संसार के समस्त ईश्वरवादी आदर ही नहीं किन्तु अनुकरण भी कररहे हैं) यहाँ प्रतिष्ठित होकर कपिल जैसे दार्शनिक, पाणिनि जैसे

वैयाकरण और गोतम बुद्ध जैसे संशोधक उत्पन्न हुवे, जिन के मस्तिष्क और हृदय की प्रशंसा आज सारे संसार में होरही है। परतन्त्र होकर उसी जाति की ऐसी काया पलट गई कि वह अपनी सारी योग्यता और उस बढ़ी हुई सभ्यता का उपयोग अपने निर्बल अङ्गों को दबाने और सताने में तथा जाति भेद को अप्राकृतिक रूप से बढ़ाने में करने लगी। इसी मध्यवर्ती समय में जिस को हम आर्यों की अवनति का युग कहते हैं, यहाँ बालविवाह सतीदाह और पर्दे आदि की प्रथायें प्रचलित हुईं और स्त्रियों को संपूर्ण मनुष्योचित अधिकारों से वञ्चित करके अपनी क्रीड़ा की सामग्री बनायागया।

अराजकता का समाज पर प्रभाव।

उस समय की सारे देश में फैली हुई अराजकता का भी हिन्दू समाज पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। शहाबुद्दीन गोरी से लेकर महम्मद शाह तक अर्थात् दसवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक लगभग नौ सौ वर्ष के लम्बे समय में भारत में जैसी अराजकता और उसके कारण घोर अशान्ति मचीरही उसको आज हम बृटिश शासन की छत्रछाया में शान्ति और स्वच्छन्दता का सुख भोगते हुवे अनुभव करने में भी असमर्थ होगये हैं। इस बीचमें कितने चंगेज़खाँ, तैमूरलंग और नादिरशाह जैसे भयानक लुटेरे इस देशमें आये और उन्होंने क्या २ उत्पात और अत्याचार किये। तथा कितने अलाउद्दीन, महम्मदशाह और औरंगज़ेब जैसे परधर्मविद्वेषी राजा भारत के सिंहासन पर आसीन हुवे और उनके कारण हिन्दूधर्म और हिन्दूसमाज की कैसी दुर्गति और दुर्दशा हुई, यह किसी इतिहासपाठक से छिपा नहीं है। ऐसे विपत्ति के समय में यदि

हिन्दूधर्म की मर्यादा और हिन्दूसमाज की व्यवस्था अक्षुण्ण न रहसकी और उसमें समयानुसार बहुत से परिवर्तन और अपवाद हुवे तो इसके लिए न्यायतः हिन्दूसमाज दोषी नहीं ठहराया जासकता। उस आपत्ति के समय में जबकि हमलोगों के प्राण और धर्म दोनों ही संकट में थे, सबसे पहले हमको चिन्ता अपनी स्त्रियों और बच्चों की हुई और यह स्वाभाविक बात है, पशुपक्षी भी जब उनपर आक्रमण किया जाता है तो पहले अपनी स्त्रियों और बच्चों की रक्षा करते हैं। यही कारण है कि उस समय के बने या सङ्कलित हुवे ग्रन्थों में इनकी रक्षा पर ही विशेष बल दियागया है और उसके लिए इनकी शिक्षा और स्वतन्त्रता भी (जिनसे भारत की प्राचीन सभ्यता पद २ पर आलोकित होरही है) उनकी दृष्टि में खटकने लगीं।

उस भयानक स्थिति में उनको यह भय हुवा कि कहीं इनकी योग्यता और स्वतन्त्रता ही इनके और हमारे वियोग का कारण न हो और यह भय उनका निर्मूल नथा, क्योंकि अच्छी वस्तु को सभी चाहते हैं। अतएव उसी कराल समय में "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" तथा "अष्टवर्षा भवेद्गौरी नव वर्षा च रोहिणी" इत्यादि वाक्यों की सृष्टि हुई और स्त्रियाँ भी अन्य भौतिक संपत्ति की भान्ति एक गोपनीय और रक्षणीय वस्तु मानी जाने लगीं। उस आपत्काल में युवावस्था तक पुत्रियों का कुमारी रहना, विद्यालयों में जाकर विद्याध्ययन करना और स्वतन्त्रता पूर्वक समाज में आना जाना, ये सब बातें इनके संरक्षकों और हितचिन्तकों को अपने स्वार्थ के लिए नहीं, किन्तु इन्हीं के हित के लिए खटकीं। इस दशामें यदि इनकी स्वतन्त्रता छीनीगई, तथा बालविवाह और सतीदाह जैसी दुष्ट प्रथाओं का भी हिन्दुओं को आश्रय लेना पड़ा

तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? आश्चर्य और शोक तो हमारी बुद्धिपर है कि हमने तात्कालिक आपद्धर्म को साधारण धर्म मानलिया और अब उन कारणों के न होते हुवे भी हम इनको उस गिरी हुई दशासे (जिसमें पड़ी हुई ये न खुद संसार का भार बन रही हैं, किन्तु हमारे जीवन का शूल भी बनरही हैं) उठाने का यत्न नहीं करते और लकीर पर फ़क़ीर बने बैठे हैं।

यद्यपि इस मध्यकालिक हिन्दू सभ्यता में भी कोई कोई स्मृतिकार ऐसे सहृदय और दयाशील हुवे हैं, जिन्होंने इस दीन अवलाजाति पर अपनी दया और सानुभूति का परिचय दिखाया है। अर्थात् हम उन्हीं ग्रन्थों में जिनसे इनके गलों में छुरी फेरी जाती हैं, कहीं कहीं पर ऐसे वचन पाते हैं जिनसे इनके घावों की कुछ मरहम पट्टी कीगई है। तथापि उनग्रन्थों की वागडोर जिन लोगों के हाथ में है और जो शास्त्र को भी रूढिवाद का पुंछल्ला बनाना चाहते हैं, वे खींच तान कर और तोड़ मरोड़ कर उनका सामञ्जस्य भी उन निष्ठुर वाक्यों से जिनमें सहृदयता और सानुभूति का गन्ध भी नहीं है) करने लगते हैं। जहां इसमें उनको सफलता नहीं होती, वहां कलयुग का पचड़ा लगादिया जाता है। जब उन ग्रन्थों से भी जो उन्हीं के मतानुसार कलिधर्म का निरूपण करते हैं, उनके आक्षेपों का निरसन किया जाता है, तब "यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्" कहकर लोकाचार की आड़ लीजाती है और यह उनका अन्तिम शस्त्र है, जिसके सामने सारे शास्त्र, विवेक, विद्या, युक्ति, तर्क, दया, क्षमा, वत्सलता, सहृदयता और सानुभूति ये सब मानुषिक गुण कुण्ठित और विकृत होजाते हैं।

एक और परिवर्तन का कारण।

इतिहास हमको बतला रहा है कि हिन्दूसमाज में इस परिवर्तन का कारण एक दूसरी सभ्यता का संसर्ग भीहै,जो मुसलमानों के साथ यहाँ आई। बौद्धों की सभ्यता यहीं की सभ्यता थी, इसलिए उसके संयोगसे इसमें सिवाय कुछ कुछ धार्मिक संशोधनों के विशेष परिवर्तन नहीं हुवा था। पर मुसलमानों की सभ्यता (चाहे पीछे से परस्पर संसर्ग के कारण वह बहुतसी बातों में इस से मिलजुल गई हो) आरम्भ में यहाँ के लिए एक अजनबी सभ्यता थी और उसने बलपूर्वक यहाँ अपना अधिकार जमाया था, इसलिए उसके आतङ्क और भय से इस देशकी सभ्यता ने कुछ और ही रूप धारण करलिया। बालविवाह, परदे की प्रथा, सतीदाह और कहीं कहीं पुत्रीवध जैसी भयानक रीतियाँ भी उस भय के कारण यहाँ प्रचलित होगई। विजेता मुसलमानोंकी दृष्टि अपने धर्मके आदेशानुसार हिन्दुओं की कुमारी कन्याओं और विधवाओं पर ही विशेष थी। इसलिए उस समय कन्याओं की धर्मरक्षा के लिए बालविवाह जैसी जातिनाशक प्रथा का और विधवाओं की धर्मरक्षा के के लिए सतीदाह जैसी अमानुषिक प्रथा का भी हिन्दुओं को आश्रय लेना पड़ा, फिर समय पाकर येही प्रथायें हिन्दुओं के धर्म का अङ्ग बनगईं। पुनः ईश्वरीय प्रेरणा से जब इस देश में न्यायी बृटिश शासन की स्थापना हुई, तब शान्ति और व्यवस्था के प्रतिष्ठित होने से वह भय और आतङ्क जो जातारहा, पर ये प्रथायें धर्मका सहारा पाकर हिन्दू समाज में रूढ़ होगई इन में से सतीदाह और पुत्रीवध की महाजघन्य रीतियों को तो हमारी हृदयवती सरकार ने लोकमत के विरुद्ध होने पर भी क़ानून के ज़ोर से रोक दिया, पर बालविवाह, वृद्धविवाह

और बहुविवाह की निर्लज्ज प्रथायें अवतक हिन्दू समाज का गला मसोस रहीं हैं। भारत में एक करोड़ के लगभग बालविधवायें इसी तिगड्डे के कारण हिन्दू समाज का सुख उज्वल कररही हैं।

बालविधवाओं की शोचनीय दशा।

सन् १९२१ की मनुष्य गणना के अनुसार इस देश में ६० लाख से ऊपर बालविधवायें हैं, यदि इनमें युवती भी शामिल करदी जाँय तो इनकी संख्या १॥ करोड़ से भी ऊपर पहुंचती है। ये हमारी पुत्रियाँ और भगिनियाँ इस प्रलोभनमय संसार में जैसा नैराश्य पूर्ण और सन्देहात्मक जीवन व्यतीत कर रही हैं, उसका यहाँ पर चित्र खींच कर हम पाठकों के हृदय में ठेस लगाना नहीं चाहते। परमेश्वर ने जिनको हृदय दिया है, वे स्वयं उसका अनुभव करते होंगे। संसार के जिस आमोद और प्रमोद के लिए हमारे देशके पचास २ और साठ २ वर्ष के धर्मधुरीण वृद्ध भी (जिनके मुंह में दान्त और पेटमें आन्त तक नहीं) लार टपकाते हैं, ये दस २ और बारह २ वर्ष की अबोध कन्यायें, जिनके अभी दूधके दान्त तक नहीं टूटे, उसके अयोग्य सिद्ध की जाती हैं। जिस काम के वेग को विश्वामित्र और पराशर जैसे तपस्वी महर्षि भी दमन नहीं करसके, उसका मुक़ाबला करने के लिए हमारे वीर सेनापति आप मैदान छोड़कर इन अबलाओं की सेना खड़ी कररहे हैं।

ब्रह्मचर्य का हमारे पूर्वजों ने बहुत कुछ माहात्म्य वर्णन किया है और आजकल का शिक्षित वर्ग भी उसपर आवश्यकता से अधिक बल देता है। हम भी ब्रह्मचर्य को यदि वह स्वेच्छापूर्वक धारण किया जाय तो स्त्री पुरुष दोनों के लिए

अच्छा समझते हैं। परन्तु कोई वस्तु चाहे कैसी ही अच्छी क्यों न हो, बलपूर्वक या दबाव डालकर उसको किसी के गले का हार बनाना हमारी सम्मति में उस वस्तु के महत्व को कम करना है। फिर यह कैसा अन्धेर है कि इस ब्रह्मचर्य की आवश्यकता उन पुरुषों के लिए जो अपनी संसारयात्रा समाप्त करचुके हैं, उतनी नहीं समझीजाती, जितनी उन अबोध बाल विधवाओं के लिए, जिनकी संसारयात्रा अभी आरम्भ भी नहीं हुई है, मानी जाती है। ६० वर्ष का बूढ़ा खूसट, जिसपर मौत हँस रही है, ब्रह्मचर्य के अयोग्य समझा जाय और १० वर्ष की बालविधवा, जिसपर मौत भी आंसू बहा रही है, आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करने के लिए बाधित कीजाय। जिस देश या समाज में यह अन्धेर और अन्याय प्रचलित हो और वहभी धर्म के नाम से, उसकी जितनी अवनति और अधोगति हो थोड़ी है।

अपने जीवन को व्यर्थ समझकर और अपने दुःखों की इस जन्म में निष्कृति न देखकर पहले ये सती होजाती थीं और इस प्रकार उस प्राणशोषक रोग से जो आजीवन इनको जलाता था, छुटकारा पाती थीं। संसार में और तो कोई इनको अधिकार न था, ले देकर एक मरने का अधिकार था, सो वह हमारी दयावती सरकार ने छीन लिया। अब सिवाय जन्मभर चिन्तानल में जलने के और इनका क्या काम रह गया ? परन्तु यह चिन्तानल चितानल से कहीं अधिक भयंकर है, जैसाकि किसीने कहा है:—

चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता चैव गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता नित्यं सजीवकम्॥

इस विषय में सरकार को दोष देना सर्वथा अनुचित है,

कोई भी हृदयवती सरकार ऐसे भीषण काण्ड को, जिसमें जीवित व्यक्ति को निर्दयता के साथ (चाहे उसकी इच्छानुसार ही क्यों न हो) अग्नि में जलाया जावे, अपनी आँखों से नहीं देख सकती। इसके अतिरिक्त चाहे दुःखी हो या सुखी, प्रजाजन की प्राणरक्षा करना सरकार का कर्त्तव्य है। अतएव सरकार ने सतीदाह जैसी अमानुषिक प्रथा को बन्द करके अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है। हां यदि वह इस प्रथा को रोककर विधवाविवाह का क़ानून पास न करती, तब तो उसपर यह दोष लगाया जा सकता था कि क्या उसने इनको जन्मभर चिन्तानल में जलाने के लिये ही चितानल से बचाया था? सतीदाह की प्रथा को बंद करने के बाद यह कब सम्भव था कि हमारी दूरदर्शिनी सरकार अपने इस आवश्यक कर्त्तव्य की उपेक्षा करती। अतएव उसने लोकमत के विरुद्ध होने पर भी सन् १८५६ ई० में विधवाविवाह एक्ट १५ पास करदिया। सरकार इस विषय में पूर्णतया अपना कर्त्तव्य पालन करचुकी क़ानून के होते हुवेभी विधवाओं की वर्त्तमान दशा का दायित्व हम पर है।

विधवाओं के प्रति शिक्षितों का कर्त्तव्य।

अब प्रश्न यह होता है कि जो हिन्दू स्वभाव से ही दयाशील हैं, जिनसे मनुष्य तो मनुष्य, पशु पक्षियों का भी कष्ट देखा नहीं जाता, उनका हृदय अपनी पुत्रियों और भगिनियों के इस अथाह दुःख को देखकर भी क्यों नहीं पसीजता और इसके महाअनर्थकारी भयानक परिणामों को जान बूझकर भी वे क्यों उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं?

यह बात नहीं है कि हिन्दुओं में ऐसे सहृदय मनुष्य नहीं हुवे या नहीं हैं, जिनकी दृष्टि में वे अमानुषिक अत्याचार जो

विधवाओं पर किये जाते हैं, न खटकते हों या जो वैधव्य के सर्वभक्षकारी परिणामों को अनुभव न करते हों। भारत के प्रत्येक प्रान्त में चोटी के ऐसे हिन्दू विद्वान् हुवे हैं और हैं, जिन्होंने विधवाविवाह के अनुकूल न केवल अपनी सम्मति प्रकट की है, किन्तु इसके प्रचार के लिए यावज्जीवन अनवरत उद्योग और अनथक आन्दोलन भी किया है। स्वनामधन्य स्वर्गीय श्रीयुत पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को कौन नहीं जानता, जिन्होंने कट्टर हिन्दू होते हुवे विधवाविवाह को हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुकूल सिद्ध किया और आजीवन इसका प्रचार करते रहे। इनके आगे पीछे हिन्दूसमाज में और भी अनेक गण्य मान्य पुरुष ऐसे हुवे हैं और हैं, जिन्होंने विधवा-विवाह की न केवल वाचिक पुष्टि की है, किन्तु इसका उपयोग करने में भी बहुत कुछ पुरुषार्थ किया है। जिनमें से कुछ प्रसिद्ध पुरुषों का परिचय पाठकों को इस ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में मिलेगा।

यह सब कुछ होते हुवे भी विधवाविवाह का प्रचार इस देश में बहुत कम हुआ है, साधारण हिन्दू अबतक इसके नाम से चौंकते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि लोग विधवा विवाह को धर्मविरुद्ध समझते हैं। धर्मशास्त्र के रहस्य को समझने वाले हममें बहुत ही कम मनुष्य निकलेंगे। प्रत्येक समाज में अधिकतर संख्या ऐसे ही मनुष्यों की होती है, जो प्रायः प्रचलित लोकाचार का अनुसरण करते हैं, न वे धर्मशास्त्र को जानते हैं और न उनको अपने विवेक पर भरोसा होता है। अन्धे की लाठी के समान लोकाचार ही एक मात्र उनका आधार होता है। जिस समाज में वे रहते हैं और जिन लोगों से रात दिन उनका काम पड़ता है, उनकी रुचि और

मति के विरुद्ध किसी काम के करने का उनमें साहस ही नहीं होता। अतएव विधवाविवाह के इस प्रचार का दोष ऐसे लोगों पर नहीं लगाया जा सकता। इस दोष के भागी न्यायतः वे लोग हैं, जो सभाओं में और समाचार पत्रों में विधवाओं की करुणाजनक दशा का हृदयद्रावक चित्र खींचकर आठ आँसू रोते और रुलाते हैं और बात २ में न्याय, विवेक और नैतिक बल की दुहाई देते हैं, पर जब परीक्षा का समय आता है, तब वे उन्हीं लोगों से डरकर जिनको पापराक्षस कहते थे, चट कुमारी कन्या के साथ अपना दूसरा विवाह करलेते हैं। जिस देश के शिक्षित और समर्थ पुरुष नैतिक बल में इतने गिरे हुवे हों, वहाँ सर्वसाधारण से क्या आशा की जा सकती है?

सर्वसाधारण सर्वत्र अनुकरणशील होते हैं, उनकी दृष्टि सदा उदाहरण पर होती है, वे यह नहीं देखते कि हमें कहां जाना है और क्यों जाना है? लोगों को जाता हुवा देखकर वे भी उनके पीछे हो लेते हैं। कोई कैसा ही अच्छा काम हो, पर वे उसमें अगुआ बनना नहीं चाहते उनको यह उक्ति प्रसिद्ध है।

> न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम्।
> यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते॥

हममें हज़ारों माता पिता ऐसे होंगे जो अपनी विधवा पुत्रियों को देखकर मन ही मन में कुढ़ते हैं और बिरादरी को गालियां सुनाते हैं, पर उनमें इतना साहस और नैतिक बल कहां? जो वे मैदान में आगे बढ़ें और दूसरों के लिये उदाहरण बनकर दिखावें। वे हर बात में दूसरों की ओर देखते हैं और चाहते हैं कि हम पर किसी की उङ्गली न उठे। जब वे बुरे से बुरे उदाहरण का भी अनुकरण करने लगते हैं, तब यह कब सम्भव है कि उनपर अच्छे उदाहरणों का प्रभाव न पड़े।

उनके लिए अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करना यह काम शिक्षित और समर्थ पुरुषों का है। जैसाकि भगवान् गीता में कहते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

प्रत्येक देश में शिक्षित पुरुष ही समाज के लिए आदर्श बने हैं, उन्होंने ही अपनी दृढ़ता, सहिष्णुता और आत्मत्याग से गिरती हुई जातियों को ऊपर उठाया है। पर भारत में प्रथम तो शिक्षितों की संख्या ही बहुत कम है। जो इने गिने शिक्षित हैं, वे वाचिक ज्ञान में तो समाज के स्वयम्भू नेता बनने के लिये तय्यार हैं, पर जब काम करने का समय आता है, तब वे अपने रूढ़िवादी समाज का मुँह ताकते हैं। हम ऐसे कई पुरुषों को जानते हैं कि जो प्रसङ्ग आने पर विधवा विवाह का समर्थन ही नहीं करते थे, किन्तु आवेश में आकर इसके विपक्षियों को खरी खोटी भी सुना डालते थे। पर जब उनको पहली स्त्री का वियोग हुआ, तब उन्होंने उन्हीं लोगों से डर कर जिनको बुरा भला कहते थे, चट कुमारी कन्या के साथ विवाह कर लिया। ऐसे बनावटी मित्र समाज को जितनी हानि पहुंचाते हैं, उतनी उसके प्रकट शत्रु नहीं पहुंचा सकते।

हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि जो लोग अपने समाज को प्रसन्न रखना चाहते हैं, या कमसे कम अपने ऊपर उङ्गली उठवाना नहीं चाहते, वे अपने समाज की इच्छा के विरुद्ध अपने को इस कठिन परीक्षा की जोखम में डालें। यदि किसी विधवा का पाणिग्रहण करने में उनकी सामाजिक मानमर्यादा भङ्ग होती है तो वे ऐसा न करें और न कोई ऐसा करने के लिए उनको बाधित कर सकता है। परन्तु उनको इसका अधिकार कब है कि वे उन कुमारी कन्याओं को जो उनकी

पुत्रो और पौत्री के समान हैं, अपनी पत्नी बनाने का दुःसाहस करें। यदि समाज उनको इस अनर्थ के करने से नहीं रोकता तो कम से कम मनुष्यता के नाते इतना तो उनको अपने विवेक से काम लेना चाहिए कि जिस आधार पर उनकी विधवा बहिनें अपना विवाह का स्वत्व खो चुकी हैं, उसी आधार पर वे भी अपना वैवाहिक स्वत्व गवाँ चुके हैं। फिर उनको यह अनधिकार चेष्टा, चाहे उनके पक्षपाती समाज की दृष्टि में क्षन्तव्य हो, पर उस रुद्र और यम के कोपानल से, जिसमें पड़कर सैकड़ों अन्यायी और अत्याचारी राज्य तक नष्ट भ्रष्ट हो गए, वे अपने को कैसे बचा सकेंगे ?

लेखक का वक्तव्य ।

अस्तु, अब हम प्रकृत विषय पर आते हैं। स्वर्गीय पं० विद्यासागर के समय से लेकर आजतक विधवाविवाह पर बहुत कुछ आन्दोलन और शास्त्रार्थ हो चुके हैं, जिसका परिणाम यह हुवा है कि भारत के शिक्षितवर्ग में (चाहे वह किसी धर्म का अनुयायी हो वा नहो) अब इसका कोई विरोध नहीं करता। यहांतक कि वे लोग भी जो धार्मिक दृष्टि से इसको अच्छा नहीं समझते, नैतिक और सामाजिक दृष्टि से अब इसकी उपयोगिता को स्वीकार करते जाते हैं। द्विजों में अब इसका प्रचार भी बढता जारहा है। भारत का कोई ऐसा प्रान्त नहीं, जिसमें प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्या में विधवाविवाह न होते हों। पंजाब की सिक्ख और खत्री जातियों ने तो अपनी जातीय सभाओं में बहुमत से इसको स्वीकार कर लिया है। अन्य जातियों में भी अब कोई शिक्षित और समझदार लोग इसका विरोध नहीं करते, किन्तु अवसर पड़ने पर अपनी आन्तरिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। विरोध करने वाले प्रायः

ऐसेही लोगहैं, जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का गला काटने में पाप नहीं समझते या जो स्वयं ज्ञान विवेक से काम न लेकर दूसरों के हाथ का औजार बनेहुवे हैं।

यद्यपि इस कहावत के अनुसार कि "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" यह प्रस्ताव स्वयंमेव लोगों के हृदय में अपना उचित स्थान बना रहा है और उनकी सहानुभूति अपनी ओर खींच रहाहै। तथापि इसके विरोधियों ने धर्मशास्त्र या लोकाचार को आड़ लेकर जो भ्रान्ति सर्वसाधारणमें फैलाई हुई है और जिस प्रकार खींचतान कर वे अर्थ का अनर्थ करते हैं। तथा उनकी ओरसे जो २ निर्मूल आक्षेप और निःसार कल्पनायें इसके विरुद्ध की जाती हैं, उनका निरसन करने के लिए अबतक हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी में कोई ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुवा, जिसमें कम से कम विवादास्पद विषयों की संक्षेप से ही आलोचना कीगई हो। विद्यासागर ने जो इस विषय की विस्तृत और पाण्डित्यपूर्ण आलोचना की है, वह बंगभाषा में हैं, जिससे हिन्दी भाषी कुछ लाभ नहीं उठासकते। उसीके आधार पर अंगरेज़ी तथा अन्य भाषाओं में भी कई निबन्ध और पुस्तकें प्रकाशित हुईहैं, पर खेद का स्थान है कि हिन्दी भाषा का साहित्य (जो हमारी राष्ट्रभाषा बनने वाली है) अबतक ऐसे आवश्यक विषय से शून्य है। इस अभाव को किसी अंशतक दूर करने के लिए ही मेरा यह प्रयास और साहस है कि मैं इस पुस्तक को पाठकों की सेवा में समर्पित करता हूं।

ऐसी पुस्तक के संग्रह करने में किसी बहुश्रुत लेखक की आवश्यकता थी, जो अपने दीर्घकालिक अनुभव और अनुसन्धान से इसको सर्वाङ्गसंपन्न बनाने में समर्थ होता। पर जब हिन्दी के दौर्भाग्य से इसमें और भाषाओं की अपेक्षा विद्वान्

लेखक ही कम हैं, जो हैं भी वे धार्मिक और सामाजिक विषयों को विवादास्पद समझकर इनसे उदासीन रहते हैं। इस दशा में "अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः" इस जनश्रुति के अनुसार यदि मुझ जैसा अल्पश्रुत लेखक ऐसे गहन विषय में लेखिनी उठाने का साहस करता है, तो उसका यह अपराध महानुभावों की दृष्टि में क्षम्य होना चाहिये। आशा है कि विवेकशील पाठक लेखक की त्रुटियों पर ध्यान न देकर उसके भाव और पुस्तक के उद्देश को अपना लक्ष्य बनावेंगे।

हिन्दू बालविधवाओं का उस शोचनीय दशा से, जिसमें पड़ी हुई वे न केवल स्वयं नैराश्यमय और सन्देहात्मक जीवन व्यतीत कररही हैं, किन्तु अपने समाज और सम्बन्धियों के जीवन का शूल भी बनरही हैं, उद्धार करना और उनके जीवन को सार्थक और समाज के लिए उपयोगी बनाना, बस यही इस पुस्तक का उद्देश है। यदि हिन्दू दया का स्रोत जो पशु पक्षियों के लिए भी बन्द नहीं है, कुछ भी इनके मानसताप को शान्त करेगा और इनके शुष्क हृदय क्षेत्रों को अपने स्नेह जल से सींच कर उनमें आशाके अंकुर उत्पन्न करेगा तो मैं अपने को सफल मनोरथ समझूँगा।

मैंने इस पुस्तक को चार अध्यायों में विभक्त किया है, अन्तमें एक परिशिष्ट भी दियागया है, जिनके विषयों की सूची अनुक्रमणिका में दीगई है। यहांपर सधन्यवाद उन ग्रन्थों की सूची दीजाती है, जिनके प्रमाण इस पुस्तक में यथास्थान संग्रहीत हुवे हैं, या जिनसे इसकी रचना में अपेक्षित सहायता लीगईहै, जिसके लिए मैं उनके प्रणेताओं और प्रकाशकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

मुरादाबाद ... दत्त जोशी

ग्रन्थ-सूची ।

जिनसे इस पुस्तक के प्रणयन में सहायता लीगई है

संख्या	नाम ग्रन्थ	प्रणेता या भाष्यकार
१	ऋग्वेद	सायनाचार्य
२	अथर्ववेद	"
३	ऐतरेय ब्राह्मण	"
४	तैत्तिरीय संहिता	"
५	शुक्ल यजुर्वेद	महीधराचार्य
६	बृहदारण्यक उप०	शंकराचार्य
७	भगवद्गीता	"
८	पूर्वमीमांसा	जैमिनि
९	अष्टाध्यायी	पाणिनि
१०	महाभाष्य	पतञ्जलि
११	सिद्धान्तकौमुदी	भट्टोजिदीक्षित
१२	निरुक्त	यास्काचार्य
१३	मनुसंहिता	भाष्यषट्क
१४	नारदसंहिता	नारद
१५	वसिष्ठसंहिता	वसिष्ठ
१६	याज्ञवल्क्यस्मृति	मिताक्षरा
१७	पराशरस्मृति	माधवाचार्य
१८	चतुर्विंशतिस्मृतिव्याख्या	भट्टोजिदीक्षित
१९	स्मृतितत्व	रघुनन्दन भट्टाचार्य
२०	वीरमित्रोदय	मित्र मिश्र
२१	महाभारत [illegible]	द्वैपायन

संख्या	नाम ग्रन्थ	प्रणेता या भाष्यकार
२२	अग्निपुराण	द्वैपायन
२३	ब्रह्मपुराण	"
२४	पद्मपुराण	"
२५	महाभारत आदिपर्व	नीलकण्ठ
२६	" वनपर्व	"
२७	" भीष्मपर्व	"
२८	" शान्तिपर्व	"
२९	महानिर्वाणतन्त्र	तन्त्रशास्त्र
३०	सारसंग्रह	मन्त्रशास्त्र
३१	गृह्यसूत्र	गोभिल
३२	व्यवहारमयूख	नीलकण्ठ भट्ट
३३	विवादचन्द्र	मश्रु मिश्र
३४	विवादचिन्तामणि	वाचस्पति मिश्र
३५	केशव वैजयन्ती	नन्द पण्डित
३६	शिवार्चनचन्द्रिका	श्रीनिवास
३७	शङ्करदिग्विजय	पद्यात्मक
३८	अमरकोश	अमरसिंह
३९	रघुवंश	कालिदास
४०	कुमारसम्भव	"
४१	मालविकाग्निमित्र	"
४२	अभिज्ञान शाकुन्तल	"
४३	कथा सरित्सागर	सोमदेव
४४	मृच्छकटिकनाटक	शूद्रक
४५	भर्तृहरि शतक	भर्तृहरि
४६	हितोपदेश	विष्णुशर्मा

संख्या	नाम ग्रंथ	प्रणेता या भाष्यकार
४७	राजतरंगिणी	कल्हणमिश्र
४८	चाणक्य नीति	चाणक्य
४९	भामनीविलास	पं० जगन्नाथ
५०	जनरल जुलाई १८३५	एशियाटिक सो० बंगाल
५१	,, नोवेम्बर १८३६	,,
५२	टगोर ला लेक्चर्स १८७८	सर गुरुदास बनर्जी
५३	विधवाविवाह एक्ट १५ सन् १८५६	भा०गवर्नमेंट
५४	सत्यार्थ प्रकाश	स्वामी दयानन्द
५५	सत्यामृत प्रवाह	पं०श्रद्धाराम फुल्लौरी
५६	बंकिम निबन्धावली	बंकिमचन्द्र चटर्जी
५७	भारत की प्राचीनसभ्यता	सर रमेशचन्द्र दत्त
५८	भारतीय प्रतिनिधि	सर०टी०मुथू स्वामी आयर
५९	सनातन धर्म	डाक्टर मुकन्दलाल
६०	विधवा विवाह	डाक्टर मुरारीलाल
६१	टाड राजस्थान का सार	बा० शिवव्रतलाल
६२	विधवाविवाहविवरण	पं०राधाचरण गोस्वामी
६३	विधवापुनःसंस्कार	पं० शङ्करलाल श्रोत्रिय
६४	गोपाल सिद्धान्त	गोपाल शास्त्री
६५	देशदर्शन	ठाकुर शिवनन्दनसिंह
६६	चीप्स फ्राम जर्मन वर्कशाप	प्रोफेसर मैक्समूलर
६७	मैन आन हिन्दूला	मिस्टर जानदी मैन

——:+:——

विधवोद्वाहमीमांसा।

पहला अध्याय।

धर्मशास्त्र और विधवाविवाह।

समाज और धर्मशास्त्र।

पूर्व इसके कि विधवाविवाह की सिद्धि में धर्मशास्त्र के प्रमाणों का संग्रह किया जावे, यह जतला देना आवश्यक है कि धर्मशास्त्र किसको कहते हैं और उसका समाज से क्या सम्बन्ध है? प्रत्येक जाति का प्राचीन इतिहास देखने से पता लगता है कि उसमें जब समाज संगठन की योग्यता उत्पन्न हुई तभी शास्त्र का भी प्रादुर्भाव हुवा, जब बहुत से मनुष्य मिलकर कोई समाज बनाते हैं, तब परस्पर व्यवहार चलाने के लिए उनको किन्हीं नियमों की आवश्यकता होती है, वे नियम ही विधि निषेध के रूप में धर्मशास्त्र बन जाते हैं। जो कि समय की गति उत्तरोत्तर आगे की ओर बढ़ रही है, तथा परिणामवाद विकास के सिद्धान्त को सदा से ही प्रश्रय देता चला आया है, अतएव किसी भी समाज की दशा सदा एक सी नहीं रही। उसमें यथासमय बहुत से परिवर्तन और कभी २ तो क्रान्ति होती रहती है, अतः उन नियमों में भी अपवाद और संशोधन होते रहते हैं। यही कारण है कि हम भिन्न २ शास्त्रों में ही नहीं, किन्तु एक ही शास्त्र में यहांतक कि एक ही विषय में परस्पर विरुद्ध [illegible] पाते हैं।

उदाहरणार्थ आप मनुस्मृति को ही लेलीजिये, उसके ९वें अध्याय में पहले तो "देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रियासम्यङ् नियुक्तया" इत्यादि वचनों में नियोग का विधान किया गया है और वे नियम भी दिये गये हैं, जिनका नियोग करने वाले स्त्री पुरुष पालन करें। इसी के कुछ आगे चल कर वह सारी इमारत जो अभी चिनी जारही थी, एकदम ढादी गई है और उसी नियोग को पशुधर्म कह कर निन्दा की गई है। इसी प्रकार तीसरे तथा पांचवें अध्याय में श्राद्ध और यज्ञादि के लिये ही हिंसा का विधान नहीं किया गया, किन्तु युक्ति और तर्क से भी मांसभक्षण की उपयुक्तता सिद्ध की गई है। यथाः—

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः॥
नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च।
(मनु ५। २९-३०)

इसी के कुछ आगे चलकर पद्य ४५ से ५५ तक सब प्रकार के मांसभक्षण और हिंसा का निषेध किया गया है। ऐसे ही परस्पर विरुद्ध प्रसङ्ग अन्य ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। इस से सिद्ध है कि जब जो रीति समाज में प्रचलित हुई, तब उस समय के ग्रन्थों में उसका विधान किया गया, जब समाज की सभ्यता का परिवर्तन हुआ और उसमें वह निन्दनीय समझी जानेलगी, तब उसका निषेध भी अपवाद रूप से उस विधि के साथ जोड़ दियागया। यह उनलोगों की ईमानदारी है कि उन्होंने अपने सम्मत पक्ष के ही समान असम्मत पक्ष को भी उन ग्रन्थों में सुरक्षित रक्खा, प्रक्षिप्त कहकर निकाल नहीं दिया। अस्तु, जब मनुष्यों की मति और रुचि भिन्न २ हैं, तब उनके बनाये

ग्रन्थों में और वह भी भिन्न २ समय और परिस्थितियों में यदि सामञ्जस्य और अविरोध न हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य तो हम लोगों की बुद्धि पर है, जो धर्मशास्त्र से व्यवस्था लेने में देश, काल और पात्र का कुछ भी विचार नहीं करते और उन नियमों को जो किसी विशेष समय या परिस्थिति से सम्बन्ध रखते हैं, सब दशाओं में समाज के लिए लागू बनाना चाहते हैं।

देश, काल और पात्र।

यद्यपि सामान्य रीति पर प्रत्येक धर्मशास्त्र में कर्तव्य का विधान और अकर्तव्य का निषेध होता है, तथापि देश, काल और पात्र के भेद से कर्तव्याकर्तव्य में अन्तर पड़ता रहता है। जो काम किसी देश, काल और स्थिति विशेष में कर्तव्य हैं, वे ही भिन्न देश, समय और परिस्थिति में अकर्तव्य होजाते हैं। जो उष्णोपचार शीत कटिबन्ध में आवश्यक हैं, वेही उष्ण कटिबन्ध में अनावश्यक होजाते हैं। जो भोजन भूख और नीरोगिता की दशा में हितकारी है, वही अजीर्ण या ज्वर होने पर दुःखदायी होजाता है। जिस दान के दीनता और असमर्थता के कारण शूद्र और अन्त्यज भी पात्र होसकते हैं, उसी दान के सम्पन्न और समर्थ होने से ब्राह्मण भी अपात्र हैं।

जो काम एक चतुर वैद्य का है, वही बुद्धिमान् धर्मशास्त्रज्ञ का भी है। वह वैद्य जिसको रोगी की शारीरिक दशा का ठीक ठीक ज्ञान नहीं है और न वह उसके जानने का यत्न ही करता है। चाहे उसने आयुर्वेद शास्त्र को मथ डाला हो, कभी रोगी की चिकित्सा में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार जो धर्मशास्त्रज्ञ समाज की वर्तमान दशा और समय की आवश्यकताओं पर ध्यान न देकर केवल शास्त्रीय सन्दिग्ध और

परस्पर विरुद्ध प्रमाणों के आधार पर किसी विषय की व्यवस्था देने लगे, तो ऐसी व्यवस्था न केवल लोक में अमान्य और अनाचार्य होती है, किन्तु शास्त्रीय गौरव को भी हानि पहुंचाती है। हमारे इस कथन की पुष्टि बृहस्पति के निम्नलिखित वचन से भी होती है—

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥

(स्मृतितत्त्वधृत बृहस्पतिवचन)

अमुक बात शास्त्र में लिखी है, केवल इस आधार पर जो धर्म का निर्णय करते हैं और यह नहीं देखते कि किसने, क्यों और किस दशा में लिखी है ? वे धर्म के गूढ़ तत्व को नहीं जान सकते। धर्म का तत्व जानने के लिए देश, काल और सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान होना वैसा ही आवश्यक है, जैसा रोग का निदान करने के लिए रोगी की शारीरिक और मानसिक परिस्थिति का। धर्म की इसी दुरूहता का अनुभव करके मनुस्मृति में इसकी चार कसौटी बतलाई गई हैं:—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्यच प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

धर्म के निर्णय में यदि केवल श्रुति और स्मृति ही पर्याप्त होतीं तो सदाचार और स्वात्मप्रत्यय को उसके लिए आवश्यक न बताया जाता। इन चारों में भी स्वात्मप्रत्यय (विवेक) सब से मुख्य है और इसीलिए वह सब के अन्त में रक्खा गया है। बिना विवेक की सहायता के नतो हम श्रुति और स्मृति से ही लाभ उठा सकते हैं, न सदाचार को ही अनाचार या अत्याचार या मिथ्याचार से अलग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त जब शास्त्रकारों ने स्मृति और

पुराणों में ही नहीं, किन्तु श्रुति में भी द्वैध का होना माना है तो इस दशा में यदि विवेक से काम न लिया जाय तो शास्त्रों के विवादग्रस्त प्रमाणों से धर्म का निर्णय कैसे होसकता है। एक जिसका धर्म कहता है, दूसरा उसी को अधर्म बतलाता है। इसी असामञ्जस्य को लक्ष्य में रखकर महाभारत के वनपर्व में धर्मात्मा युधिष्ठिर ने यक्षकृत प्रश्न के उत्तर में यह वचन कहा है—

> वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
> धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

इस पद्य में सन्दिग्धावस्था में सदाचार का प्रधान माना गया है, कहीं कहीं ऐसी अवस्था में विवेक को प्रधानता दी गई है। जैसा कि अज्ञातकुलशीला शकुन्तला का परिग्रह कराते हुये कविवर कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त से कहलाते हैं:—

> सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

निदान जब पूर्वकाल में भी जबकि हेतुवाद अत्यन्त ही अप्रौढ़दशा में था, हमारे देश काल के पूर्वजों ने धर्म के निर्णय में तर्क, युक्ति और विवेक की उपेक्षा नहीं की, तब आजकल इस प्रकाश के युग में जबकि रूढ़िवाद प्रौढ़िवाद के अञ्चल में मुंह छिपाना चाहता है, केवल शास्त्र का आश्रय लेकर और वह भी अपने अभिमत अंश का, धर्म का निर्णय करने में कहां तक सफलता प्राप्त होसकती है? यह बात अब हमारे रूढ़िवादी भाइयों को भी सूझने लगी है। यही कारण है कि अब वे शास्त्रवचनों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए युक्ति और विज्ञान का भी आश्रय लेने लगे हैं, चाहे इसमें उनको सफलता होया न हो।

उत्सर्ग और अपवाद।

सब शास्त्रों में दो प्रकार के नियम होते हैं, एक उत्सर्ग, दूसरे अपवाद। इन्हीं को सामान्य और विशेष भी कहते हैं। उत्सर्ग वे नियम हैं, जो सामान्य धर्म का प्रतिपादन करते हैं। जैसे-अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य्य। अपवाद वे नियम हैं, जो विशेष धर्म के प्रतिपादक हैं। जैसे—यज्ञ में वा युद्ध में हिंसा करना, परहित के लिए असत्य बोलना और ऋतुकाल में स्वस्त्री के साथ मैथुन करना। अब यदि कोई अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का साधारण धर्म मानकर अपवाद के स्थानों में भी इनको कर्तव्यता सिद्ध करने लगे तो कोई बुद्धिमान् उसको धर्मशास्त्र न कहेगा। क्योंकि उत्सर्ग की प्रवृत्ति अपवाद को छोड़कर ही होती है। अर्थात् अपवाद तो उत्सर्ग को रोक सकता है, पर उत्सर्ग अपवाद के विषय में प्रवृत्त नहीं होता।

अब प्रकृत यह है कि पुनर्विवाह चाहे पुरुष का हो या स्त्री का, आपद्धर्म होने से अपवाद का विषय है। क्योंकि पति और पत्नी की विद्यमानता और समर्थता में कोई इसका विधान नहीं करता, किन्तु इनकी असमर्थता और एक दूसरे के वियोग में ही विवाह की आवश्यकता होती है। उसके लिए भी कोई शास्त्र या कानून इनको बाधित नहीं करता, किन्तु इनकी इच्छा पर निर्भर है। यदि इस दशा में ये विवाह करना चाहें, तो इनके लिए समाज में कोई रुकावट न होनी चाहिए। विशेष कर उस समाज में जो बिना विवाह सम्बन्ध के स्त्री पुरुष समागम को पाप और व्यभिचार मानता हो, यह रोक कभी न होनी चाहिए। यदि पुरुषों के लिए स्त्री की अयोग्यता या उसके वियोग में पुनर्विवाह वैध है, तो किसी

शास्त्र या क़ानून में यह शक्ति नहीं है कि वह स्त्रियों के लिये इन्हीं दशाओं में पुनर्विवाह को अवैध ठहरा सके। विवाह की जितनी आवश्यकता जिन कारणों से पुरुषों को है, उससे रत्ती भर भी कम स्त्रियों को नहीं और हिन्दू समाज में तो जिसमें बिन व्याही स्त्रियाँ (चाहे वे कैसी ही सुशीला और सच्चरित्रा क्यों न हों) शंका की दृष्टि से देखी जाती हैं, यह आवश्यकता न्यायतः और भी बढ़ जाती है।

कैसे आश्चर्य्य की बात है कि जो हिन्दू कन्याओं को दीर्घ काल तक कुमारी रखना अच्छा नहीं समझते और इसलिए उनका समय से पहले विवाह करदेते हैं, वे ही उनको आजन्म विधवा बनाये रखने में कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचते। यह उनकी कितनी भारी भूल है। दूसरा आश्चर्य्य यह है कि शास्त्र और लोकाचार की आड़ लेकर पचास २ और साठ २ वर्ष के बूढ़े बाबा अपने लिए पुनर्विवाह को वैध ठहराते हैं पर आठ २ या दस २ वर्ष की अबोध कन्याओं के लिए उसे अवैध कहते उन्हें लज्जा नहीं आती।

विधि और निषेध।

हमारा यह पक्ष नहीं है कि शास्त्रों में विधवाविवाह के निषेधक वाक्य नहीं हैं। उनमें निषेधक वाक्यों का होना ही इस बात को सिद्ध करता है कि पहले यहाँ विधवाविवाह की रीति प्रचलित थी। अन्यथा "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" इस नियम के अनुसार बिना प्राप्ति के निषेध का होना ही असम्भव था। हमारा कथन केवल यह है कि जहाँ शास्त्रों में स्त्री जाति की निन्दा और विधवाविवाह के निषेधक वाक्य मौजूद हैं, वहाँ उनमें ऐसे वाक्य भी मिलते हैं, जिनमें विधवा विवाह की पुष्टि और स्त्रीजाति के प्रति आदर का भाव दिखाया

है। यह कहां का न्याय है कि निन्दा और निषेध को तो जो किसी विशेष परिस्थिति से सम्बन्ध रखते हैं, हम वैध और प्रामाणिक सिद्ध करने की चेष्टा करें, पर प्रशंसा और विधि को जो हमारे पूर्वजों की उदारता और सहृदयता का परिचय देते हैं, हम अवैध और शास्त्रविरुद्ध सिद्ध करने की दुश्चेष्टा करें। समय और समाज की वर्त्तमान दशा को देखकर होना तो यह चाहिए था कि हम उन असद्भावों की जो स्त्रियों के प्रति हमारे शास्त्रों में कहीं २ प्रकट किए गए हैं, उपेक्षा करते और सद्भावों पर जो उन में अप्राप्य नहीं हैं,विशेष ध्यान देते। पर ऐसा तो तब करते, जब कि भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार बुराई में से भी भलाई ग्रहण करने की योग्यता हम में होती। हमतो अपनी बड़ाई इसी में समझते हैं कि भलाई में से भी बुराई ढूंढकर निकालें।

कहां हमारे प्रातःस्मरणीय पूर्वजों की वह कारुणिकता और उदारता कि उन्होंने किसी २ ग्रन्थ में विधवाविवाह का आंशिक निषेध होते हुवे भी समय की गति और समाज की स्थिति को देख कर इस का स्पष्ट रीति पर विधान करके अपने उत्कृष्ट नैतिक बल का परिचय दिया और कहां हमारी यह संकीर्णता और निष्ठुरता कि अनेक प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों में इसका स्पष्ट विधान होते हुवे भी, हम इसको शास्त्रविरुद्ध और अवैध सिद्ध करने में अपने पाण्डित्य का दुरुपयोग करते हैं।

क्या सब बातों में हम शास्त्र की आज्ञा का पालन करते हैं ?

थोड़ी देर के लिए हम विधवाविवाह को सर्वथा शास्त्रविरुद्ध भी मान लेवें, तब भी हम इस के विरोधियों से पूछ

सकते हैं कि वे अपने हृदय पर हाथ रखकर बतलावें कि क्या वे सब बातों में शास्त्र की आज्ञा का पालन करते हैं? यदि धर्मशास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध उन्होंने विदेशयात्रा, सेवा-वृत्ति, शूद्रों से विद्याध्ययन और सब जातियों का परस्पर संसर्ग आदि अनेक बातें स्वीकार करली हैं और करते जाते हैं, तो फिर एक विधवाविवाह ने ही ऐसा क्या अपराध किया है जिस के विरुद्ध शास्त्र की दुहाई मचाई जाती है? क्या वे बतलासकते हैं कि चारों वर्ण और आश्रमों के जो धर्म शास्त्रों में बतलाये गये हैं, आज हिन्दूसमाज में उनका यथाविधि पालन होरहा है? जब छोटी छोटी और तुच्छ बातों में जिनमें यदि हम शास्त्र की आज्ञा का पालन करते तो हमारे देश या समाज को कुछ हानि की संभावना न थी, हमने शास्त्र को उठाकर ताक़ में धर दिया और समयानुकूल आचरण करने लगे, किन्तु समय से भी आगे बढ़ने की चेष्टा करने लगे। तब विधवाविवाह जैसे आवश्यक और उपयोगी विषय में जिसके अप्रचार से आज हिन्दू समाज में हज़ारों पाप और अनर्थ होरहे हैं और लाखों निरपराध बालविधवाओं का जीवन नष्ट होरहा है, शास्त्र की पूंछ बनाना, क्या यही शास्त्र की भक्ति है? जहां बलवानों के स्वार्थ से शास्त्र का विरोध होता है, वहां तो हम शास्त्र को उठा कर ताक़ में धर देते हैं, किन्तु जहां निर्बलों के स्वार्थ से शास्त्र टकराता है, वहां हम उस के अनन्यभक्त बनजाते हैं। यह शास्त्र की भक्ति नहीं किन्तु अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए टट्टी की आड़ में शिकार खेलना है।

विधवाविवाह शास्त्र सम्मत है

उक्त कथन से कोई महाशय यह न समझें कि हम विधि

विवाह को शास्त्रविरुद्ध मानते हैं। हमारा कथन केवल यह है कि यदि विधवाविवाह के लिए शास्त्र में कोई आज्ञा न भी होती, तब भी मनुष्यता के अनुरोध से लाखों निरपराध बालविधवाओं को अमानुषिक अत्याचार और नैराश्यजनित पाप और व्यभिचार से (जिस के कारण हिन्दूसमाज कलङ्कित होरहा है) बचाने के लिए हमें उसका आश्रय लेना चाहिये था, क्योंकि सब बातों के लिए हम शास्त्र की व्यवस्था नहीं ढूंढते फिरते। पर हमारे सौभाग्य से यह बात नहीं है, हमारे पूर्वज हमारे समान निष्ठुर और हृदयहीन न थे और वे यह भी खूब जानते थे कि समय किसी की अपेक्षा नहीं करता, किन्तु समय की अपेक्षा यदि हम संसार में रहना चाहते हैं, तो हम को करनी चाहिये। यही कारण है कि उन्हों ने समय समय पर जब जैसी आवश्यकता हुई, तब वैसेही नियम हमारे लिए बनाये।

हम मानते हैं कि किसी विशेष परिस्थिति के कारण स्त्री समाज के नियन्त्रण की उनको आवश्यकता हुई, जिसके कारण उनको इनके लिए कुछ कठोर नियम बनाने पड़े और इनकी स्वतन्त्रता पर भी हस्तक्षेप करना पड़ा। परन्तु इस से उनका उद्देश इन को सताना या पृथ्वी का भार बनाना नहीं था, उस आकस्मिक विपद् से जिसमें हिन्दू धर्म के प्राण और हिन्दू जाति की सत्ता दोनों संकट में थे, इनकी और जाति की रक्षा करने के लिए ही उन्होंने इनके नियन्त्रण और रक्षण पर अधिक बल दिया। यही समय था जबकि इनको शिक्षा और स्वतन्त्रता से वञ्चित करके कुमारियों की धर्मरक्षा के लिए बालविवाह और विधवाओं को विधर्मियों के चुंगल से बचाने के लिए सतीदाह की प्रथायें प्रचलित हुईं। विधवा

विवाह यद्यपि पूर्वकाल में प्रचलित था, पर इस समय के कुछ स्मृतिकारों ने उसका आंशिक विरोध किया, किसी २ ने पुष्टि भी की, पर लोकाचार ने अधिकतर विरोध का ही अनुसरण किया। उधर बालविवाह का जारी होना, इधर विधवा विवाह का रुकना, जब इन दोनों बातों का परिणाम बड़ा ही भयंकर हुवा और होना चाहिये था। जो विधवायें इस अत्याचार को सहन न करसकीं, वे कुलटायें बनगईं, जहां तहां गुप्तव्यभिचार; गर्भपात और भ्रूणहत्यायें होने लगीं और जो लोकलज्जा और अपने संबन्धियों की मानरक्षार्थ इस पाप पङ्क में लिप्त न हुईं, उनका जीवन उनके लिये ही नहीं किन्तु उनके सम्बन्धियों की दृष्टि में भी कांटे की तरह खटकने लगा और वे सोते, जागते, उठते, बैठते, बोलते, चालते और आते जाते सर्वत्र शंका की दृष्टि से देखी जाने लगीं।

इसप्रकार इस पापके कारण न मालूम कितनी अधखिलीं कलियां असमय में ही मुरझाकर अपनी जीवनलीला समाप्त करने लगीं। इन अनर्थों को देखकर उस समय के अनेक धर्मात्मा पुरुषों का हृदय पसीजा और उन्होंने उन्हीं ग्रन्थों में, जिनमें विधवाविवाह के निषेधक वाक्य मौजूद थे, विधायक वाक्य बनाकर जोड़ दिये, जिनमें अक्षतयोनि विधवाओं का विवाह तो बहुसम्मति से वैध ठहराया गया। पर किसी २ उदारचेता ग्रन्थकार ने तो क्षतयोनि विधवाओं को भी पाप जीवन से बचाने के लिए उनके विवाह की व्यवस्था दी, जिसका परिचय इसी अध्याय में आगे चलकर पाठकों को मिलेगा।

वेद और विधवाविवाह।

अब हम इस प्रकरण में पाठकों को यह दिखलाना चाहते

कि जो लोग धर्मशास्त्र की आड़ लेकर विधवाविवाह का विरोध करते हैं और एड़ी से चोटी तक बल लगाकर इसको शास्त्रविरुद्ध सिद्ध करने में अपने पांडित्य का दुरुपयोग करते हैं, उनको कहांतक इस अभद्रोचित प्रयास में सफलता होती है? हिन्दू धर्मशास्त्र के सर्व सम्मत तीन अङ्ग हैं—

श्रुति, स्मृति और पुराण। इन तीनों में भी श्रुति का प्रमाण मुख्य माना जाता है। प्राचीन या अर्वाचीन जितने धर्मशास्त्र के प्रणेता या व्याख्याता हुवे हैं। चाहे वे पौरुषेय वादी हों या अपौरुषेय वादी, सबने प्रमाण विषय में श्रुति को अनपेक्ष और स्मृत्यादि को सापेक्ष माना है, स्मृति भी वही प्रमाण मानी गई हैं, जो श्रुति से अविरुद्ध हों। श्रुति से अविरोध होनेपर तो सभी का प्रमाण माना गया है, परन्तु जहां श्रुति, स्मृति और पुराण इन तीनों का विरोध हो, या स्मृति और पुराण का विरोध हो, वहां उत्तर २ की अपेक्षा पूर्व २ का प्रमाण माना गया है। इस सर्वसम्मत शास्त्रीय व्यवस्था को कोई सनातनधर्मी अस्वीकार नहीं कर सकता। जैसाकि महर्षि द्वैपायन महाभारत के शान्तिपर्व में लिखते हैं:—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥

अन्यत्र भी इसकी पुष्टि की गई है—

स्मृतेर्वेदविरोधे तु परित्यागो यथा भवेत्।
तथैव लौकिकं वाक्यं स्मृतिबाधे परित्यजेत्॥

इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि जब वेदके विरुद्ध स्मृति और पुराण को भी नहीं माना गया है, तब लोकाचार और कुलाचार की तो कथा ही क्या है। वसिष्ठ का कथन है:—

देशधर्मं जातिधर्मं कुलधर्मान् श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः।

इसी प्रकार गौतम ने भी कहा है:—

देशजातिकुलधर्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम्।

इन वचनों से सिद्ध है कि स्मृति से लेकर कुलधर्म तक वेद के अविरुद्ध का ही प्रमाण माना गया है। अब रही यह बात कि क्या वेद के विरुद्ध है और क्या अविरुद्ध, इसका निर्णय कैसे हो? इस पर जैमिनि पूर्वमीमांसा में लिखता है:—

विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्। (१)
(पूर्वमीमांसा २–३–३)

इस जैमिनीय व्यवस्था के अनुसार जिन विषयों का साक्षात् श्रुति से विरोध हो, वेही त्याज्य हैं और जिनका श्रुति में स्पष्ट विधि या निषेध कुछ न हो, वे यदि श्रुति के किसी आदेश के विरुद्ध नहीं हैं तो उनके विषय में अनुमान किया जायगा कि वे श्रुतिसम्मत हैं। जैसे कि षोड़श संस्कार या पञ्चमहायज्ञ, जिनका सूत्रों और स्मृतियों में तो सविस्तर उल्लेख पाया जाता है, पर किसी श्रुति में अनुक्रम पूर्वक नहीं। इस व्यवस्था के अनुसार कोई इनको अवैदिक नहीं कहसकता। यदि श्रुति में हमारे विधेय विधवाविवाह की कोई स्पष्ट आज्ञा न भी होती, तब भी हम इस जैमिनीय व्यवस्था के अनुसार उसके वैदिक होने का अनुमान कर सकते थे। क्योंकि आजतक इसके विपक्षियोंको इतना अन्वेषण करने पर भी किसी वेद में कोई श्रुति ऐसी नहीं मिली, जिस में विधवाविवाह का स्पष्ट तो क्या सांकेतिक रीतिपर भी निषेध कियागया हो। पर हमारे सौभाग्य से विधवाविवाह ऐसा सन्दिग्ध या श्रुति में अप्रतिपादित विषय नहीं है, जिस को सिद्ध करने के लिए हमको कल्पना या अनुमान से काम लेना पड़ेगा, उसके लिए वेद में स्पष्ट आज्ञा है॥

(१) विरोध में तो त्याज्य है, पर विरोध न होनेपर अनुमान करना चाहिये।

वैदिक प्रमाण।

निदान हिन्दू शास्त्रकारों ने एकमत होकर प्रमाण विषय में वेद को सर्वोपरि महत्व दिया है। कोई हिन्दू चाहे किसी धर्म या संप्रदाय से सम्बन्ध रखता हो, वैदिक प्रमाण की उपेक्षा नहीं कर सकता। अतएव सबसे पहले हम यही देखना चाहते हैं कि जिस वेद का हिन्दू इतना आदर करते हैं, उसकी प्रस्तुत विषय में क्या सम्मति है ? लीजिये :—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकमितासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिपोस्त्वमेतत्पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव॥
(कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयसंहिता ६-१-१४)

इस मन्त्र का सर्ववेदभाष्यकार श्री सायणाचार्य ने जो भाष्य किया है, उसको अविकल हम यहां पर उद्धृत करते हैं:-

सायणकृतभाष्यम्—"तां प्रतिगतः सव्ये पाणावभिपाद्योत्थापयति देवरः जरद्दासो वा। हे नारि ! त्वमितासुं गतप्राणमेतं पतिमुपशेषे, उपेत्य शयनं करोषि। उदीर्ष्व, अस्मात्पतिसमीपादुत्तिष्ठ। जीवलोकमभिजीवन्तं प्राणिसमूहमभिलक्ष्यैहि, आगच्छ। त्वं हस्तग्राभस्य पाणिग्राहवतो दिधिषोः पुनर्विवाहेच्छोः पत्युरेतज्जनित्वं जायात्वमभिसंबभूव, आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहीत्यर्थः।"

भाषानुवाद:—"देवर वा कोई वृद्ध सेवक विधवा स्त्री का (जो मृतपति के पास बैठी हुई है) हाथ पकड़कर उठाता है और कहता है। हे नारि ! तू मरे हुवे इसपति के पास बैठी है; यहां से उठ और जीवित प्राणिसमूह में आ। अब तू हाथ पकड़ने वाले और पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले पति के सम्मुख होकर उसके पत्नीत्व को प्राप्त कर।"

पाठक ! यह उन सायनाचार्य्य का, जिनको हिन्दू वेदभाष्यकारों में प्रधान मानते हैं, शब्दशः अनुवाद है, इसमें कितनी स्पष्टता से पत्यन्तर का विधान कियागया है । विधवाविवाह का इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण और क्या होसकता है? पर शोक कि हमारे रूढ़िवादी भाई जो शास्त्र को भी रूढ़ि की पूंछ बनाना चाहते हैं, ऐसी स्पष्ट और असन्दिग्ध आज्ञा के होते हुवे भी इसको शास्त्रविरुद्ध कहने का हठ और साहस करते हैं।

यही मन्त्र कुछ पाठान्तर के साथ ऋग्वेद के मण्डल १० में भी आया है, वहाँ इसका पाठ और अर्थ सायनभाष्य में इस प्रकार दिया गया है :—

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ ॥
(ऋ वेद १०–२–१८–८)

सायनभाष्यम्—"देवरादिकः प्रेतपत्नीमुदीर्ष्व नारीत्यनया भर्त्तृसकाशादुत्थापयेत् । हे नारि ! मृतस्यपत्नि ! जीवलोकं जीवानां पुत्रपौत्रादीनां लोकं स्थानं गृहमभिलक्ष्य उदीर्ष्व अस्मात्स्थानादुत्तिष्ठ । गतासुमपक्रान्तप्राणमेतं पतिमुपशेषे, तस्य समीपे स्वपिषि । तस्मात्त्वमेह्यागच्छ, यस्मात्त्वं हस्तग्राभस्य पाणिग्राहं कुर्वतः दिधिषोः गर्भस्य निधातुः तवास्य पत्युः सम्बन्धादागतमिदं जनित्वं जायात्वमभिलक्ष्य संबभूथ संभूतासि अनुसरणनिश्चयमकार्षीः तस्मादागच्छ ।"

भाषानुवाद—"देवरादि प्रेतपत्नी को इस मन्त्र से पति के समीप से उठावै । हे नारि ! जीवित पुत्रपौत्रादि के गृहको लक्ष्य करके तू यहां से उठ, तू इस मृतपति के पास पड़ी है। तू पाणिग्रहण और गर्भधारण करने वाले इस पति के सम्बन्ध

से प्राप्त हुवे पत्नीत्व को लक्ष्य करके सन्तप्त होरही है और इस के मरने का तुझे निश्चय होगया है, इसलिये यहां से उठ।"

पूर्व मन्त्र के अर्थ से इस मन्त्रके अर्थ में कुछ भेद है। पूर्व मन्त्रमें तो सायनने स्पष्ट और असन्दिग्ध रीतिपर विधवाविवाह का विधान किया है। इस मन्त्र के अर्थ में पदों की खींचतान और अध्याहारों की भरमार ही सिद्ध कररही है कि "भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः" इतनी खींचतान करने पर भी मन्त्र का कोई विधेय सिद्ध नहीं होता। जब लौकिक वाक्य भी विधेयशून्य नहीं होते, तब यह कैसे होसकता है कि वैदिक वाक्य का कोई अभिधेय नहो? इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि पति की विद्यमानता में पत्नी कहलाती है, जब पतिही न रहा, तब पत्नीत्व धर्म कैसा? इस दशा में तो उस से वैधव्य धर्म के पालन करने का अनुरोध करना चाहियेथा। क्या विधवा भी पत्नीत्व धर्म का पालन कर सकती है? यदि कर सकती है तो फिर विधवा और सधवा में भेद क्या रहा? और यदि नहीं करसकती तो फिर उससे 'इदम्' सर्वनाम से जो अङ्गुलिनिर्देश में आता है, यह कहना कि तू मृतपति के इस पत्नीत्व को लक्ष्य करके उठ, सर्वथा अशक्योपदेशहै। जब मृतपतिही न रहा तब उसके सम्बन्ध से पत्नीत्व का आवाहन करना सूखे और मुरझाये हुवे पुष्प की सुगन्धि को फिर लाने की चेष्टा करना है। अतएव निम्नलिखित कारणों से यह दूसरा अर्थ असंगत है और मन्त्र के वास्तविक अभिप्राय को छिपाने के लिये कियागया है।

प्रथम तो इसमें पूर्वार्ध की उत्तरार्ध के साथ संगति ही नहीं मिलती। जब पूर्वार्ध में विधवा स्त्री को मृतपति के पास से उठाकर जीवितों में लाया गया है, तब उत्तरार्ध में फिर

उसको मृतपति के सम्बन्ध की याद दिलाना असङ्गत ही नहीं, किन्तु शोकवर्द्धक भी है। उसके दुःख का कारण क्या है? मृतपति की स्मृति, उससे उसका ध्यान हटाने से ही शोकापनोदन हो सकता है। उसको वहां से उठाकर फिर उसके सम्बन्ध की याद दिलाना, यह शोकापनोदन है या शोकाभिवर्द्धन ?

दूसरे जब उसका पति ही न रहा, तब उसमें पत्नीत्वधर्म का आरोप कैसा ? क्या बिना पति के भी वह पत्नीत्व धर्म का पालन कर सकती है ? अब जनित्व कहां है ? जिसको 'इदम्' शब्द से कहा जाता है। अब तो वैधव्य है, इसलिए 'इदम्' सर्वनाम से उसीका निर्देश होसकता है। यदि श्रुति का तात्पर्य पूर्वपति के ही जनित्व से होता तो उसका निर्देश 'तद्' सर्वनाम से होना चाहिये था। साधारण वैयाकरण भी इस बात को जानते हैं कि 'इदम्' सर्वनाम संनिकृष्ट में और 'तद्' सर्वनाम परोक्ष में प्रयुक्त होता है। जैसा कि निम्नलिखित कारिका में भर्तृहरि ने कहा है:-

> "इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
> अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात॥"

जब यहां जनित्व उसके पूर्वपति के सम्बन्ध से आया हुआ है, तो उसके लिये पूर्व परामर्शक 'तद्' सर्वनाम का प्रयोग होना चाहिए था, न कि वर्त्तमान काल के सूचक 'इदम्' सर्वनाम का। इससे सिद्ध है कि " इदं जनित्वम् " का सम्बन्ध वर्त्तमान पति से है, न कि मृतपति से। यदि " इदं जनित्वम् अभिसम्बभूथ" के स्थान में " इदं वैधव्यम् अभिसंबभूथ" कहा जाता, तब तो अर्थ की सङ्गति होजाती और "अस्य ज...

स्यात् आगतम्" इस लम्बे अध्याहार के भी जोड़ने की आवश्यकता न होती।

तीसरे इस अर्थ में इतनी खींचतान करने पर भी "जादू वह जो सिर पै चढ़के बोले" इस कहावत के अनुसार 'हस्तग्राभस्य' इस पद के अर्थ में "पाणिग्राहं कुर्वतः" यह 'शतृप्रत्ययान्त' प्रयोग भाष्यकार की लेखिनी से भी निकल ही पड़ा। इसने स्वयं ही पूर्वपति के सम्बन्ध का निराकरण कर दिया। क्योंकि "लटःशतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इस पाणिनीय सूत्र (३-२-१२४) के अनुसार 'शतृ' प्रत्यय सदा वर्त्तमान काल में होता है। यदि यहां पाणिग्रहण करने वाला विधवा का मृतपति होता तो भूतार्थक 'क्तवत्' प्रत्ययान्त का प्रयोग किया जाता, अर्थात् "पाणिग्राहं कृतवतः" पाठ होता। क्योंकि मृतपति तो उसका पाणिग्रहण करचुका है, न कि अब करता है। फिर उसके लिए 'कुर्वतः' यह 'शतृ' प्रत्ययान्त प्रयोग देना उस विना नींव की भित्ति को जो वास्तविक अर्थ को छिपाने के लिए उठाई गई है, एक दम ढा देता है।

चौथे इस अर्थ में 'दिधिषु' शब्द का अर्थ, जो द्विरूढ़ापति के लिये प्रयुक्त हुवा है, 'गर्भधाता' करना अप्रासङ्गिक है। देखो, मनु इसका प्रयोग द्विरूढ़ापति के लिए करता है:—

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः।
धर्मेणापि नियुक्तायां सज्ञेयो दिधिषूपतिः॥ (३-१०३)

अन्य भी स्मृतिकारों ने प्रायः इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। प्रसिद्ध कोशकार अमरसिंह भी इस शब्द का यही निर्वचन करता है:—

पुनर्भूर्दिधिषूरूढा द्विस्तस्या दिधिषुःपतिः।
सतु द्विजोऽग्रेदिधिषूः सैव यस्य कुटुम्बिनी (२-६-२३)

अमरकोश के इस प्रमाण से सिद्ध है कि अमरसिंह के समय में द्विजोंमें विधवा का पुनर्विवाह प्रचलित था। अन्यथा "सतु द्विजोऽग्रेदिधिषुः सैव यस्य कुटुम्बिनी" वह न लिखता अर्वाचीन अभिधानकारों ने भी प्रायः इसी का अनुसरण किया है, विस्तरभय से हम यहाँ पर उसका उल्लेख करने में असमर्थ हैं। इसके अतिरिक्त 'गर्भधाता' अर्थ करने से वेद में व्यर्थापत्ति दोष भी आता है, जो सर्वथा अनिष्ट है। यदि कोई गर्भाधान किए विना ही पञ्चत्व को प्राप्त होजाय तो उसके लिए यह विशेषण व्यर्थ होगा। अतएव 'दिधिषु' शब्द का यहां पर 'गर्भधाता' अर्थ करना किसी प्रकार ठीक नहीं।

पांचवें इतनी पदों की खींचतान और अध्याहारों की भरमार करने पर भी मन्त्र का कोई विधेय सिद्ध नहीं होता। आश्चर्य की बात है कि मुर्दे के पास से तो विधवा को उठाया जाता है और जीवितों में भी लाया जाता है पर इस प्रश्न का उत्तर कि अब वह प्राणिसमूह में आकर क्या करे और किस प्रकार अपने जीवन को यापन करे, इस अर्थ में कुछ नहीं मिलता और यही इसकी अविधेयता है।

छठे इससे पहले मन्त्र में मृतक को श्मशान में पहुंचाकर जो स्त्रियां गृह में प्रवेश करें, उनको सामान्यतः अविधवा और सुपत्नी आदि विशेषणों से अलङ्कृत किया गया है, उससे इसकी सङ्गति नहीं मिलती, हम उस मन्त्र को भी सायनकृत अनुवाद सहित यहां उद्धृत करते हैं।

> इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु।
> अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥
> (ऋग्वेद १०-२-१८-७)

सायनभाष्यम्—"(अविधवाः) जीवत्भर्तृकाः (सुपत्नीः) शोभनपतिकाः (इमा नारीः) एता नार्यः (आञ्जनेन) सर्व

तोऽञ्जन साधनेन (सर्पिषा) घृतेनाक्तनेत्राः सत्यः (संविशन्तु) गृहान् प्रविशन्तु तथा (अनश्रवः) अश्रु वर्जिताः (अनमीवाः) अमीवा रोगस्तद्वर्जिता मानसदुःखरहिता इत्यर्थः (सुरत्नाः) रत्नैरलंकृताः (जनयः) जनयन्त्यपत्यमिति जायाः (अग्रे) सर्वेषां प्रथमतएव (योनिम्) गृहम् (आरोहन्तु) आगच्छन्तु ।"

भाषानुवाद—"जीवित और शोभनपति वाली ये स्त्रियां अञ्जन और घृत आँखों में लगा कर घरों में प्रवेश करें। ये दुःख और शोक से रहित एवं रत्नों से अलंकृत होकर सबसे पहले घरों में आवें।"

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का हृदय कोमल होता है, उनपर शोक या हर्ष का प्रभाव अधिक और शीघ्र पड़ता है, उससे बचाने के लिये ही उन्हें शोक और विलाप से रोका गया है। इस मन्त्र में जो स्त्रियों के विशेषण दिये गये हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि उस समय का पुरुष समाज इनको इस भयानक दशा में, जिसमें आजकल लाखों बालविधवायें अपना दुःखमय जीवन व्यतीत करती हैं, देखना पसन्द नहीं करता था, वह जिस स्थिति में इनको देखना चाहता था, उसीका संक्षिप्त चित्र इस मन्त्र में खींचा गया है।

पाठक ! यही मन्त्र है, जिसमें 'अग्रे' का 'अग्ने' बनाकर बंगाल के कुछ पण्डितों ने सतीदाह प्रथा की पुष्टि में इस मन्त्र को प्रस्तुत किया था और इसका यह अर्थ किया था कि "हे अग्ने ! ये स्त्रियां विधवापन के दुःखों को न भोगने के लिये आंखों में अञ्जन और घी लगाकर शोक न करती हुई तेरी ज्वाला में प्रवेश करें।" सर रमेशचन्द्र दत्त अपने प्राचीन सभ्यता के इतिहास में लिखते हैं कि "धर्मोन्माद का इससे अधिक निन्दनीय उदाहरण और क्या होसकता है ?" हर्ष का

विषय है कि श्री सायनाचार्य के उक्त अर्थ की विद्यमानता में धर्मध्वज परिडतों की यह चाल न चलसकी और सब पोल खुल गई।

अस्तु, जब सायन पूर्व मन्त्र के अर्थ में तो स्त्रियों का विधवा रहना अच्छा नहीं समझता और उनको सुहाग के अलङ्कारों से भूषित देखना चाहता है। फिर यह कब होसकता है कि वह उत्तर मन्त्र के अनुवाद में उनको मृतपति के पत्नी-त्व में जकड़ना चाहे। अतएव पूर्वमन्त्रके अर्थसे तथा यजुर्वेदान्त तैत्तिरीय संहिताके इसी मन्त्रके सायणकृत अर्थ से (जैसा कि हम दिखलाचुके हैं) विरुद्ध होने के कारण यह अर्थ (चाहे सायन का किया हो या उसके नामसे किसी अन्य का) कदा-पि माननीय नहीं होसकता।

सातवें यदि प्रदर्शित हेतुओं की उपेक्षा करके "तुष्यतु दुर्जनः" न्याय से हम इस अर्थ को भी ठीक मानलें। तब भी विपक्षियों का यह कहने का अधिकार कब है कि हम सायन के इस अर्थ को तो ठीक मानते हैं, पर पूर्व मन्त्र के अर्थ को नहीं। मन्त्र दोनों वेद के हैं और भाष्यकार भी दोनों का एक ही है, फिर कोई कारण नहीं कि एक को तो प्रमाण माना जाय और दूसरे को अप्रमाण। वेदानुयायी लोगों के लिए मनु की इस व्यवस्थानुसार दोनों ही प्रमाण होने चाहियें:—

> श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
> उभावपिहि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः॥ (२-२४)

अब हम ऋग्वेद का एक मन्त्र और उद्धृत करते हैं, जिससे पूर्वकालिक विधवाओं की परिस्थिति का अच्छा परिचय मिलता है और हर्ष का विषय है कि वह परिस्थिति सर्वथा विधवाविवाह की पोषक है। वह मन्त्र यह है:—

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
कोवां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थआ ॥
(ऋग्वेद १०-८-४०-२)

सायणभाष्यम्—'हे अश्विनौ ! (कुहस्वित्) कस्वित् (दोषा) रात्रौ (कुह) क्वा (वस्तोः) दिवा भवथः (कुह) क्वा (अभिपित्वम्) प्राप्तिम् (करतः) कुरुथः (कुह) क्वा (ऊषथुः) वसथः। किंच (वाम्) युवाम् (कः) यजमानः (सधस्थे) सहस्थाने वेद्याख्ये (आकृणुते) आकुरुते, परिचरणार्थमात्माभिमुखीकरोतीत्यर्थः। अत्र दृष्टान्तौ दर्शयति-(शयुत्रा) शयने (विधवेव) यथा मृतभर्तृका नारी (देवरम्) देवरमभिमुखीकरोति । (मर्यंन) यथाच सर्वं मनुष्यम् (योषाः) सर्वा नारीः संभोगकालेऽभिमुखीकरोति, तद्वदित्यर्थः ।"

भाषानुवाद—"हे अश्विन देवताओ ! तुम रातमें और दिन में कहां रहे, कहां तुमने आवश्यक पदार्थों का पाया और कहां तुम वसे ? किस यजमान ने यज्ञशाला में तुम्हारी सेवा की ? जैसे शय्या में विधवा देवर को और स्त्री मैथुनकाल में पुरुष की सेवा करती है । "

इसी मन्त्र की व्याख्या करता हुआ यास्क निरुक्त में देवर शब्द का यह निर्वचन करता है "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" देवर इसलिये कहलाता है कि वह दूसरा वर है।

पाठक ! अब आप न्याय करें कि इस से अधिक विधवा-विवाह की पुष्टि और क्या होसकती है ? यदि वैदिक काल में विधवाविवाह वर्जित होता तो वेद का यह मन्त्र इतनी स्पष्टोक्ति में शयन स्थान में विधवा को देवर के पास जाने और उसकी सेवा करने की अनुमति कदापि न देता। वेद मन्त्रों में

इतना स्पष्ट विधान होने पर भी विपक्षी इसको वेदविरुद्ध कहने का हठ और साहस करते हैं। किमाश्चर्य्यमतः परम्?

अब हम अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों को उद्धृत करेंगे, जिनमें विधवाविवाह की स्पष्ट आज्ञा दीगई है। अथर्ववेदके नवें काण्ड में एक अजपञ्चौदन सूक्त है, जिसमें कुल ३८ मन्त्र हैं, उसके २७ वें और २८ वें मन्त्र में कितनी स्पष्टता से विधवाविवाहका प्रतिपादन कियागया है। यथा :—

या पूर्वं पतिं वित्वाऽथान्यं विन्दते परम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः॥
समानलोको भवति पुनर्भुवाऽपरः पतिः।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥

(अथर्व० ९।३।५।२७—२८)

सायणकृतपदच्छेदः—या पूर्वं पतिं वित्वा अथ अन्यं विन्दते परम्। पञ्चौदनं च तौ अजं ददातः न वियोषतः॥ २७॥ समानलोकः भवति पुनर्भुवा अपरः पतिः यः अजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥ २८॥

भाषानुवाद—जो पहले पति को प्राप्त होकर तदनन्तर दूसरे पति को प्राप्त होती है, वे दोनों अजपञ्चौदन दानको देते हुवे वियुक्त नहीं होते॥ २७॥ विधवा के साथ दूसरा पति एकही लोक में रहता है, जो दक्षिणा की ज्योतिवाले अजपञ्चौदन दान को देता है॥ २८॥

पहले मन्त्र से विधवा और उसके दूसरे पतिका चिरकाल तक बिना वियोग के इस लोकमें संयुक्त रहना और दूसरे मन्त्र से परलोक में भी एक ही साथ स्वर्गसुख का भोगना किस स्पष्टता के साथ दिखलाया गया है। पाठक! जिस हिन्दूधर्म में स्त्री के लिए पति संयोग से बढ़कर और कोई सुख

और पतिलोक की प्राप्ति से बढ़कर और कोई गति नहीं मानी गई है। जब वेद भगवान् स्वयं अजपञ्चौदन यज्ञ करने से पुनर्विवाहिता विधवा को भी उसी सुख और गति का अधिकारी बतलाते हैं, तब वे लोग जो वेद की इस आज्ञा के विरुद्ध रूढ़ि का आश्रय लेकर विधवाओं को इस स्वत्व से वञ्चित करना चाहते हैं, वे संसार में केवल पाप और अनर्थ का ही बीज नहीं बोरहे, किन्तु जान बूझकर शास्त्र की विडंबना कर रहे हैं। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ऐसे ही लोगों के विषय में लिखते हैं:—

कल्प २ भरि एक २ नर्का। परहिंजे दूषहिं श्रुति कर तर्का॥

इसी अथर्ववेद के अठारहवें काण्ड में दो मन्त्र और हैं, उनसे भी विधवाविवाह की भली प्रकार पुष्टि होती है पहला मन्त्र यह है:—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्यप्रेतम्।
धर्मं पुराण मनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥

(अथर्व १८। ३। १। १)

श्री सायणाचार्य ने जो इस मन्त्र का अर्थ किया है, वह इस प्रकार है:—

"हे मर्त्य! यह स्त्री पतिलोक को चाहती हुई और पुराण धर्म का पालन करती हुई तुझ प्रेत के पास आई है, उसके लिए इस लोक में सन्तान और धन को धारण कर।"

यदि इस मन्त्र से मृतपति के साथ विधवा का सहमरण अभीष्ट होता तो चतुर्थपाद में इस लोक में उसके लिये सन्तान और धन की प्रार्थना करना निष्फल होता है। अतएव सहमरण की कल्पना को तो यह प्रार्थना ही निरस्त करदेती है। अब रहा उसका प्रजावती और धनवती होना, सो बाहे धन-

वती होना किसी और प्रकार से भी सम्भव होसके, पर प्रजा-वती होना तो पति के अभाव में सर्वथा असम्भव है। अतएव इस मंत्र की आज्ञानुसार जबतक वह पुनर्विवाह न करेगी, प्रजावती कैसे होसकती है? इस मंत्र का यही निष्कर्ष बंगाल के सुप्रसिद्ध विवेचक पं० महेशचन्द्र घोषने भी कार्तिक संवत् १९७६ के प्रवासी में (जो वंगभाषा का एक प्रसिद्ध मासिक पत्र है) निकाला है।

इसके आगे दूसरा मन्त्र वही है, जो तैत्तिरीय यजुः संहिता और ऋग्वेद से हम उद्धृत कर चुके हैं। यद्यपि उसके अर्थ में कुछ विशेषता नहीं है, तथापि मृतपति से सन्तान और धन का अनुज्ञा लेने के पश्चात् विधवा को उसके पास से उठाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि यदि भविष्य में उसे धन और सन्तान की कामना है, तो पुनर्विवाह के द्वारा वह उसे पूर्ण करे, क्योंकि बिना पुनर्विवाह के चाहे धन की कामना पूरी होजाय, पर सन्तान की कामना पूरी करने का तो सिवाय इसके और कोई उपाय ही नहीं है।

इनके अतिरिक्त अथर्ववेद के ५ वें काण्ड में एक मन्त्र और है, जिससे पूर्वकाल में बहुपत्नीत्व के समान बहुपतित्व का होना भी सिद्ध होता है:—

उतयत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्सएव पतिरेकधा॥
(अथर्व ५। ४। १७। ८)

भावार्थ—यदि पहले किसी स्त्री के अब्राह्मण दश पति हों, ब्राह्मण यदि एक भी हाथ पकड़े तो वह सच्चा पति है।

इससे सिद्ध है कि पूर्व काल में पति के मरने पर ही नहीं किन्तु जीवितावस्थामें भी स्त्रियां दूसरा पति कर सकती थीं।

द्रौपदीके पांच पति की कथा चाहे कल्पित हो वा वास्तविक, उसका आधार भी हम तो इसी प्रकार की श्रुतियों को समझते हैं। इससे कोई महाशय यह न समझें कि हम बहुपतित्व की प्रथा को अच्छा समझते हैं। हमारा आशय केवल इतना ही है कि जिस वेदमें बहुपतित्व तक का विधान किया गया है, उसको विधवाविवाह के विरुद्ध बतलाना विपक्षियों का कितना बड़ा साहस है ?

क्या वेद में कहीं विधवाविवाह का निषेध भी है ?

पाठक ! वेदों में और भी अनेक मन्त्र हैं, जो विधवा विवाह को पुष्टि में प्रस्तुत किये जासकते हैं, परन्तु हम इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। जो वेदानुयायी हैं, उनके लिए एक भी वेदवचन पर्याप्त है। पर हां जो वेद को अपना अनुयायी बनाना चाहते हैं, उनके लिए सारे वेद भी कुछ नहीं कर सकते। यदि वेद में कोई वचन ऐसा भी होता कि जिसमें विधवाविवाह का प्रत्यक्ष या परोक्ष रीतिपर निषेध भी होता तौ भी शास्त्रकारों की बान्धी हुई मर्यादा के अनुसार कोई वेदानुयायी इन विधायक वाक्यों को अप्रमाण कहने का साहस नहीं कर सकता था, क्योंकि श्रुतिद्वैध में सब शास्त्रकार दोनों पक्षों को ही प्रमाण मानते हैं। पर वेद का कोई ऐसा वचन आजतक इसके विपक्षी इतना गर्जन और तर्जन करने पर भी प्रस्तुत नहीं कर सके, जिसमें विधवा विवाह का स्पष्ट निषेध किया गया हो, जैसा कि उक्त मन्त्रों में स्पष्ट विधान किया गया है। बड़ी ढूंढभाल के पश्चात् दो प्रमाण उनको ऐसे मिले हैं, जिनको वे इसके खण्डन में प्रस्तुत करते हैं। उनमें से एक ऐतरेय ब्राह्मण का है और दूसरा तैत्तिरीय संहिता का। हम उन दोनों प्रमाणों को भी

यहां उद्धृत करते हैं और उनसे कहां तक विधवाविवाह का खण्डन होता है, इसका निर्णय पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं।

तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतयः।
(ऐतरेयब्राह्मण पञ्चिका ३ खण्ड १२)

भावार्थ—"इसलिए एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियां होती हैं, एक स्त्री के एक साथ अनेक पति नहीं होते।"

इस वचन को विधवाविवाह के खण्डन में प्रस्तुत किया जाता है। हम आश्चर्य में हैं कि इससे विधवाविवाह का खंडन क्योंकर होता है? जबकि इसमें 'पतयः' शब्द के साथ 'सह' अव्यय प्रयुक्त हुआ है। क्या यह कहना कि किसी स्त्री के एक साथ अनेक पति नहीं होसकते, इस बातको सिद्ध नहीं करता कि समयान्तर में हो सकते हैं। जब श्रुति में स्पष्ट यह कहा गया है कि एक साथ स्त्री के अनेक पति नहीं होसकते, तब अर्थापत्ति से स्वयमेव यह सिद्ध होगया कि समयान्तर में ऐसा होसकता है, फिर यह प्रमाण विपक्ष का साधक है या बाधक? हमारे इस कथन की पुष्टि में दो प्रमाण ऐसे हैं, जिन पर विपक्षियों को कुछ कहने का अवकाश ही नहीं मिलसकता पहला 'वीरमित्रोदय' ग्रन्थ के प्रणेता मित्र मिश्र का और दूसरा महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ का। इसी श्रुति की विवेचना करते हुवे मित्र मिश्र वीरमित्रोदय में लिखते हैं:—

"अथाधिवेदनम्, तदुक्तमैतरेय ब्राह्मणे—" एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतय इति" सह शब्द सामर्थ्याद् क्रमेण पत्यन्तरं भवतीति गम्यते। अतएव "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयत इति" मनुना स्त्रीणामपि पत्यन्तरं स्मर्यते।"
(वीरमित्रोदय अधिवेदन प्रकरणम्)

भाषार्थ–" अब अधिवेदन (बहुविवाह) का प्रकरण आरम्भ करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि "एक पुरुष की अनेक स्त्रियां होसकती हैं, परन्तु एक स्त्री के एक साथ अनेक पति नहीं होसकते।" इस पर मित्र मिश्र लिखते हैं— "सह शब्द के सामर्थ्य से क्रम पूर्वक पत्यन्तर का होना सिद्ध होता है, तभी तो "नष्टे मृते प्रव्रजिते" इस पद्य में मनु ने भी स्त्रियों के पत्यन्तर का विधान किया है।" यह है उक्त श्रुति पर मित्र मिश्र की सम्मति।

आधुनिक मनुस्मृति में "नष्टे मृते प्रव्रजिते" यह पद्य नहीं मिलता, किन्तु पराशर स्मृति और नारदस्मृति में मिलता है! पर मित्र मिश्र के इस लेख से यह सिद्ध है कि पहले मनुस्मृति में यह पद्य था, अन्यथा " मनुना स्मर्यते " यह वे न लिखते। इसके अतिरिक्त माधवाचार्य ने भी पराशर स्मृति की टीका में इसे मनु का वचन लिखा है, जब दो विद्वानों की यह सम्मति है, तब यदि हम यह अनुमान करें कि विपक्षियों के हस्तक्षेप का यह फल है तो यह उनपर मिथ्यापवाद लगाना न होगा। अस्तु, ऐसा करने से भी उनका मनोरथ सिद्ध न हुवा, अबकि पराशरस्मृति में जो विशेषतः कलियुग के लिए है और नारदस्मृति में जो मनुस्मृति का संक्षेपसार है, यह पद्य मौजूद है।

दूसरा प्रमाण महाभारत का है। जब युधिष्ठिर ने पांचों भाइयों के साथ राजा द्रुपद से द्रौपदी के विवाह का प्रस्ताव किया, तब द्रुपद ने युधिष्ठिर से कहाः—

> एकस्य बह्वयो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन।
> नैकस्या बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित्॥

इसका उत्तर युधिष्ठिर ने यह दियाः—

सूक्ष्मो धर्मो महाराज नास्य विद्मो वयं गतिम्।
पूर्वेषामानुपूर्व्येण यातं वर्त्मानुयामहे ॥
(महाभारत आदिपर्व अध्याय १९५)

इन पद्यों की टीका करता हुवा नीलकण्ठ उक्त श्रुति की प्रतीक देकर लिखता है:—

"नैकस्यै बहवः सह पतय इति श्रुत्या सहेति युगपद्बहुपतित्व निषेधो विहितो नतु समयभेदेन। पूर्वेषां प्रचेतः(१) प्रभृतीनां तैर्यातं वर्त्म बहूनामेकपत्नीत्वमनुयामहे। तच्च आनुपूर्व्येणैव न त्वक्रमेण।"

भाषार्थ—"नैकस्यै बहवः सहपतयः" इस श्रुति में 'सह' शब्द के प्रयोग से एक साथ बहुपतित्व का निषेध है, न कि समयान्तर में। हमारे पूर्वज प्रचेतस् आदि जिस मार्ग से चले हैं, हम भी उसी का क्रम से अनुसरण करेंगे।"

जब इस वचन से नीलकण्ठ पति की जीवितावस्था में भी केवल समयभेद के कारण बहुपतित्व का विधान करता है, तब किस में सामर्थ्य है कि पति के मरने पर पत्यन्तर विधान को इस श्रुति के विरुद्ध ठहरा सके।

अब रहा दूसरा प्रमाण तैत्तिरीय संहिता का, वह भी इसी प्रकार का है:—

यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्देत।
यन्नैकां रशनां द्वयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौपती विन्देत॥
(तैत्तिरीय संहिता ६-६-४)

भाषार्थ:—"एक खूंटे में दो रस्सी बाँधी जाती हैं, इसलिए एक पुरुष दो स्त्रियों को प्राप्त करसकता है। पर एक रस्सी

---

(१) प्रचेतस् नाम के १० क्षत्रिय थे, जिन्होंने 'मारिषा' नाम्नी स्त्री से विवाह किया था। जिससे गर्भ से "दक्ष" प्रजापति उत्पन्न हुवे।
(देखो ब्रह्मपुराण अध्याय २)

दो खूँटों में नहीं बाँधी जाती, इसलिए एक स्त्री दो पति नहीं करसकती।"

इसका तात्पर्य भी बिलकुल उक्त श्रुति से मिलता है, जैसे एक पुरुष एक ही समय में दो विवाह करसकता है, वैसे एक स्त्री एक ही समय में दो विवाह नहीं करसकती। इस बातको खूँटे और रस्सी के दृष्टान्त से कहागया है। यद्यपि न्याय की दृष्टि से एकही समय में दो स्त्रियों का रखना पुरुष के लिए भी अच्छा नहीं और इसका परिणाम भी बड़ा भयानक होता है,तथापि पूर्वकाल में यह प्रथा इस देश में प्रचलित थी। यही कारण है कि इस वाक्य में बहुपतित्व का तो निषेध कियागया है, पर बहुपत्नीत्व का नहीं। किन्तु इस निषेध का तात्पर्य यह नहीं है कि पूर्व पति के न रहने पर भी स्त्री यदि चाहे तो दूसरा पति न कर सके। खूँटे और रस्सी का दृष्टान्त ही इस निषेध की सीमा का निर्धारण करदेता है। पहले खूँटे के होते हुवे कौन उसकी रस्सी दूसरे खूँटे से बाँधता है? वह दूसरे खूँटे से तभी बाँधी जाती है, जब पहला खूँटा नहीं रहता, या निकम्मा होकर रस्सी बाँधने के अयोग्य होजाता है। इसी प्रकार जिस स्त्री का पति विद्यमान एवं समर्थ है, उसका कौन दूसरे पति के साथ विवाह करता है? वह पूर्व पति के अभाव था असामर्थ्य में ही पत्यन्तर की अधिकारिणी होती है। अतएव इस श्रुति में जो बहुपतित्व का निषेध है, वह पूर्व पति की विद्यमानता में है और इसकी पुष्टि ऐतरेय ब्राह्मण के उल्लिखित प्रमाण से भली प्रकार होती है।

पाठक! आपने देखलिया, विपक्षियों की ओर से बड़ी ढूँढभाल के पश्चात् जो दो वैदिक प्रमाण विधवाविवाह के खण्डन में दियेगये थे, उनका क्या परिणाम हुवा? बस ऐसे

ही प्रमाणों से जो किसी विशेष अवस्था में वहुपतित्व का निषेध करतेहैं, हमारे भाई विधवाविवाह को अवैध सिद्ध करना चाहते हैं। यदि इनसे विधवाविवाह अवैध सिद्ध होसकता है तो फिर आशौच में यज्ञ, दान और व्रत आदि वर्जित होने से ये सव अवैध होजायेंगे। किसी विशेष परिस्थितिमें कोई काम वर्जित होने से उसको सव अवस्थाओं में वर्जित समझ लेना यह बुद्धि की जीर्णता नहीं तो और क्या है?। हम वलपूर्वक यह बात कह सकते हैं कि ऐसा कोई वैदिक प्रमाण जिस में स्पष्ट और प्रत्येक दशा में स्त्रियों के लिए पत्यन्तर का निषेध कियागया हो, आजतक इसके विपक्षी न तो प्रस्तुत कर सके हैं और न कर सकते हैं।

स्मृतिशास्त्र और बिधवाविवाह

अब हम स्मृतिशास्त्र से विधवाविवाह का वैध होना सिद्ध करेंगे। याज्ञवल्क्य के मतानुसार स्मृतिसंहिता २० हैं, जिनके नाम ये हैं:—

मन्वत्रिविष्णु हारीत याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती॥
पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ।
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १

ये २० स्मृतिकार हुवे हैं जिनके वनाये ग्रन्थ संहिता या स्मृति कहलाते हैं अव विचारणीय यह है कि इन स्मृतियों में जो कुछ प्रतिपादन किया गया है, वह सव युगों के लिये समान है, या भिन्न २ युगों के लिए भिन्न २ धर्म नियत किये गये हैं? इस प्रश्न का उत्तर मनु यह देता है:—

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः॥ (मनु १-८५)

कृतयुग आदि में जो धर्म माने जाते थे, वे कलियुग में नहीं माने जासकते। क्योंकि कलियुग में मानुषी बुद्धि और बल का बहुत कुछ ह्रास होगया है। अब प्रश्न यह होता है कि कलियुग के धर्म किस या किन ग्रन्थों में वर्णन किये गये हैं? इसका उत्तर पराशर अपनी स्मृति में यह देता है:—

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः
द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराःस्मृताः।

(पराशरस्मृति १–२४)

इसकी पुष्टि इसबात से भी होती है कि अन्य स्मृतिकारों ने किसी युगविशेष का निर्देश न करके अपने २ धर्मशास्त्र को आरम्भ किया है, पर पराशर ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में ही कलिधर्मनिरूपण की प्रतिज्ञा की है। यथाः—

अतः परं गृहस्थस्य धर्माचारं कलौयुगे।
धर्मं साधारणं शक्यं चातुर्वर्ण्याश्रमागतम्।
संप्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पराशर वचो यथा॥

(पराशर स्मृति २–१)

पराशरस्मृति और विधवाविवाह।

उक्त कथन से सिद्ध है कि पराशरस्मृति का कलियुगसे विशेष सम्बन्ध है, क्योंकि वह मुख्यतः उसी के लिए बनाई गई है अतएव यदि किसी विषय में अन्य स्मृतियों से पराशर स्मृति का विरोध हो तो कलियुग के लिए उसी का प्रमाण माना जाना चाहिये। अब हम देखना चाहते हैं कि भगवान् पराशर ने विधवा विवाह के विषय में क्या आज्ञा दी है? वे लिखते हैं:—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवेच पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
सामृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ।
तिस्रः कोट्योर्धकोटीच यानि लोमानि मानवे ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गं भर्त्तारं यानुगच्छति ॥
(पराशरस्मृति ४ । २८-२९-३०)

इन पद्यों में भगवान् पराशर ने विधवा स्त्री के लि तीन धर्म बतलाये हैं । पहला यह कि वह विवाह करै, दू यह कि ब्रह्मचर्य धारण करे और तीसरा यह कि वह पति अनुगमन करै । इन में से तीसरा सहमरण तो पहले का चित्क ही था, यवनों के समय में उसका कुछ प्र अवश्य हुवा, परन्तु आजकल की सभ्यता तो उसका कि प्रकार अनुमोदन नहीं कर सकती । यही कारण है कि आजकल के क़ानून में वर्जित किया गया है । अतएव उसका उपयोग करने में सर्वथा असमर्थ हैं । पराशर आज्ञानुसार अब केवल दो धर्म विधवाओं के लिए अव रहजाते हैं । यातो वे आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करके तपस्वि का जीवन व्यतीत करें या पुनर्विवाह करके गृहस्थ का करें । इन दोनों में भी आठ २ या दस २ वर्ष की बाल वाओं के लिए आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करना और उस काम के वेग को जीतना, जिसके सामने विश्वामित्र पराशर जैसे तपस्वियों ने भी शिर झुकादिया हो, कठिन और दुष्कर काम है ? इसको और कोई अनुभ करें तो न करें, पर उन लोगों को तो अवश्य अनुभव चाहिये जो पचास २ और साठ २ वर्ष की अवस्था बिना स्त्री के नहीं रह सकते ।

अतएव बालविधवाओं के लिए पराशरोक्त केवल उपाय ही शेष रहजाता है कि वे पुनर्विवाह करके गृहस्थ

का पालन करें और इसी लिए पराशरने कलियुग में उसको सब से आवश्यक समझकर पहली कक्षा में रक्खा है। इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि जो विधवायें सन्तान वालीहैं, या गृहस्थ का कुछ सुख भोग चुकी हैं, वे भी ब्रह्मचर्य से पुनर्विवाह को श्रेष्ठ समझें। हाँ यदि उनमें से भी किसी की प्रवृत्ति विषयवासना की ओर है तो छिप छिप कर पाप करने की अपेक्षा उनके लिए भी पुनर्विवाह बहुत ही उत्तम है।

अब रही यहबात कि इस पुनर्विवाह से जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह पौनर्भव कहलायगी या औरस ? मन्वादि स्मृतिकार तो जिन्होंने बारह प्रकार की सन्तति मानी है, ऐसी सन्तानको पौनर्भव मानते हैं, पर पराशर ने केवल तीनही प्रकार की सन्तति मानी है :—

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकःसुतः।

औरस, क्षेत्रज, दत्त या कृत्रिम। इन में से क्षेत्रज तो वह सन्तान है, जो नियोग के द्वारा दूसरे के लिए उत्पन्न की जाती है। दत्त और कृत्रिम भी दूसरे की सन्तान हैं, केवल औरसही अपनी सन्तान है। दूसरी बात यह है कि पुनर्विवाह करने से केवल स्त्री की ही 'पुनर्भू' संज्ञा नहीं होती, किन्तु पुरुष की भी होती है, यही कारण है कि यह शब्द स्त्रीलिङ्ग और पुँलिङ्ग दोनों में आता है। "एकस्य भूत्वा पुनरन्यस्य भवतीतिपुनर्भूः" सो यह लक्षण स्त्री पुरुष दोनों में समान है। फिर यह कैसा अन्धेर है कि हज़ारों पुनर्भू पुरुष पुनर्विवाह से जो सन्तान उत्पन्न करते हैं, उनकी बाबत यह प्रश्न नहीं होता कि वे औरस हैं या पौनर्भव? केवल पुनर्भू स्त्रियों के विषयमें यह प्रश्न किया जाता है। हमारा उत्तर यह है कि यदि पुनर्भू पुरुष की सन्तान निर्विवाद औरस मानी जाती है तो फिर हम पुनर्भू

स्त्री को भी इस अधिकार से वञ्चित नहीं कर सकते। यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि सन्तान का नामकरण पुरुष के नाम से न करके स्त्री के नाम से किया जाता है। हमारे कथन की पुष्टि महाभारत के भीष्म पर्व में महर्षि द्वैपायन करते हैं:-

अजानन्नर्जुनश्चापि निहतं पुत्रमौरसम्।
जघान समरे शूरान् राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः॥

(म० भा० भीष्मपर्व अध्याय ९१ श्लोक ८०)

इस श्लोकमें 'इरावान्' को अर्जुन का औरस पुत्र कहा गया है। यदि पुनर्विवाह से उत्पन्न पुत्र औरस न कहलाकर पौनर्भव कहलाते तो व्यास जी पुनर्विवाहिता नागराजसुता के पुत्र को कदापि औरस न लिखते।

जो लोग कहते हैं कि मनुने पुनर्भू स्त्री की ही सन्तति पौनर्भव माना है न कि पुनर्भू पुरुष की। यथा :—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते॥ (मनु०९-१७५)

उनके प्रति हमारा यह निवेदन है कि मनु ने तो बारह प्रकार के पुत्रोंमें क्षेत्रज=नियोगसे उत्पन्न अपविद्ध=परित्यक्त और गूढोत्पन्न=जारज को भी दायाद (वारिस) माना है। क्या आज कल वे ऐसे पुत्रों को यह अधिकार देने के लिये प्रस्तुत हैं? यदि नहीं तो फिर मनु की दुहाई देकर पौनर्भव को हीन क्यों सिद्ध किया जाता है? यदि मनु निर्दिष्ट दायक्रम कलियुग के लिए सम्मत होता तो वृहस्पति अपनी स्मृति में यह न लिखता:—

अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिर्ये पुरातनैः।
न शक्यास्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदन्तनैः॥

(वृहस्पति स्मृति १४-१५)

इससे सिद्ध है कि चाहे अन्य युगों में पुनर्विवाह की सन्तान पौनर्भव कहलाती हो, पर कलियुग में भगवान् पराशर ने उसको औरस ही माना है। यदि वे उसको औरस न मानते तो फिर कोई कारण न था कि पुनर्विवाह का विधान करके एक चौथी संख्या पौनर्भव की और न रखते।

विपक्षियों के आक्षेप और उनकी आलोचना।

अब हम उन आक्षेपों की भी कुछ आलोचना करना चाहते हैं, जो विधवाविवाह के विपक्षी पराशरोक्ति पर कियाकरतेहैं।

पहला आक्षेप उनका यह है कि माधव ने जो पराशर स्मृति का प्रसिद्ध टीकाकार है, पराशर के इन वचनों को युगान्तरीय कहकर कलियुग के लिये पुनर्विवाह को निषिद्ध ठहराया है।

समीक्षा—कैसे आश्चर्य की बात है कि जो पराशर अपनी संहिता के आरम्भ में ही यह प्रतिज्ञा करता है "अतः परं गृहस्थस्य धर्माचारं कलौयुगे" "अब मैं कलियुग में गृहस्थ के धर्म और आचारों का वर्णन करता हूं" जिसके विषय में प्रायः स्मृतिकारों की यह सम्मति है कि पराशर स्मृति कलि-धर्म का निरूपण करती है, उसके इन वचनों की बाबत माध-वाचार्य का यह लिखना कि ये कलियुग के वास्ते नहीं हैं, क्या यह वही बात नही है कि "मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त" तभी तो माधव के इस प्रलाप का श्रीभट्टोजिदीक्षित ने चतुर्विंशति स्मृति की व्याख्या में इस प्रकार निराकरण किया है:—

"नच कलिनिषिद्धस्यापि युगान्तरीयधर्मस्यैव 'नष्टे मृते प्रव्रजिते' इत्यादि पराशरवाक्यं प्रतिपादकमिति वाच्यं कलावनुष्ठेयान् धर्मानेव वक्ष्यामीति प्रतिज्ञाय तद्ग्रन्थ प्रणयनात्।"

(चतुर्विंशतिस्मृतिव्याख्यायाम्)

भाषार्थः—" 'नष्टे मृते प्रव्रजिते' इत्यादि यह पराशर वाक्य कलिनिषिद्ध युगान्तरीय धर्म का प्रतिपादक है, माधव का यह कथन अयुक्त है, क्योंकि कलियुग में अनुष्ठेय धर्मों का वर्णन करता हूं, यह प्रतिज्ञा करके ही पराशर स्मृति बनाई गई है।"

भट्टोजिदीक्षित के इस कथन से सिद्ध है कि सारी पराशर स्मृति कलियुग से सम्बन्ध रखती है, फिर उसके किसी वचन को कलियुग के लिए निषिद्ध ठहराना उसके उद्देश और विधेय को ही नष्ट करना है ? इसके अतिरिक्त नन्द पण्डित ने भी "औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः" इस पराशरीय वाक्य की व्याख्या करते हुवे "इति कलिधर्मप्रस्तावे पराशरस्मरणात्" लिखा है, जिससे सिद्ध है कि नन्दपण्डित की दृष्टि में भी पराशर स्मृति कलिधर्म का ही निरूपण करती है।

अच्छा इसको भी जाने दो, "जादू वह जो सिर पै चढ़ के बोले" स्वयं माधवाचार्य ही पराशर स्मृति के पहले अध्याय के तीसरे पद्य की व्याख्या करता हुवा लिखता है:—

"यद्यपि मन्वादयोऽपि कलिधर्माभिज्ञास्तथापि पराशरस्यास्मिन् विषये तपोविशेषबलादसाधारणः कश्चिदतिशयो द्रष्टव्यः।"

भाषार्थः—" यद्यपि मन्वादि भी कलिधर्म के जानने वाले थे, तथापि तपोविशेष के कारण पराशर का इस विषय में असाधारण महत्व देखाजाता है।"

तत्पश्चात् इसी अध्याय के ४४ वें पद्य की व्याख्या करता हुवा पुनरपि माधव लिखता है:—

"सर्वेष्वपि कल्पेषु पराशरस्मृतेः कलिधर्मपक्षपातित्वात्। ग्रन्थेष्वपि कलिविषयेषु पराशरः प्राधान्येना दरणीयः।"

भावार्थः—"सब कल्पों में पराशरस्मृति कलियुग के धर्म की पक्षपातिनी है, कलिसम्बन्धी प्रायश्चित्तों में भी पराशर प्रधानता से आदरणीय है।"

पाठक! जो माधव स्वयं ही ग्रन्थारम्भ में बलपूर्वक यह कहता है कि पराशरस्मृति सब युगों में कलिधर्म का ही निरूपण करती है और यहाँतक लिखता है कि कलियुग में प्रायश्चित्त भी उसी के अनुसार होने चाहियें, वही आगे चलकर यदि पुनर्विवाह को युगान्तरीय कहकर कलिवर्ज्य ठहराने लगे तो क्या उसका यह कथन (चाहे वह माधव हो या उद्धव) वदतोव्याघात या उन्मत्तप्रलाप नहीं समझा जायगा?

हम यह कल्पना करलेते हैं कि माधव ने सारी पराशर स्मृतिको कलियुगके लिये मानकरभी तत्प्रतिपादित पुनर्विवाह को कलिनिषिद्ध ठहराया है। हम मानलेते हैं कि स्वतन्त्र होने से प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह अपनी कुछ सम्मति रक्खे! पर कम से कम इसका कारण तो उसे बतलाना चाहिये था कि जिस सम्पूर्ण स्मृति को वह कलियुग के लिए मानचुका है, उसके केवल इन्हीं वचनों को उसे अपवाद मानने की आवश्यकता क्यों हुई? अच्छा, हम कारण बताने के लिये भी उसे बाध्य नहीं करसकते। हम केवल उसके कथनानुसार ही पराशर की उक्त आज्ञा को कलिनिषिद्ध मानलेते हैं, तब क्या विधवा के लिये ब्रह्मचर्य धारण करना और पतिका अनुगमन करना ये दोनों धर्म भी कलिनिषिद्ध माने जायँगे? यदि कहो कि नहीं, केवल स्त्री का पुनर्विवाह ही कलिवर्जित माना जायगा, अन्य नहीं। तो कैसे आश्चर्य की बात है कि तीन आज्ञाओं में से जो एक साथ दीगई हैं, केवल पहली आज्ञा को कलिनिषिद्ध ठहराया जाता है, दूसरी और

तीसरी का सम्बन्ध फिर कलियुग से जोड़दिया जाता है। खूब !! पराशरस्मृति क्या हुई ? माधव की बालक्रीड़ा के लिए एक खिलौना होगया, जहां चाहा उसे तोड़ दिया और जहां चाहा फिर जोड़ दिया।

और भी देखिए !! पहले अध्याय के १६ वें पद्य की व्याख्या करता हुवा माधव स्वयं लिखता है:-

"अतःकलौ प्राणिनां प्रयाससाध्ये धर्मे प्रवृत्यसम्भवात् सुकरो धर्मोऽत्र बुभुत्सित इति।"

भावार्थः-अतएव कलियुग में प्राणियों की कठिन धर्म में प्रवृत्ति का होना असम्भव जानकर ही पराशरने उनके लिए सुगम धर्म का प्रतिपादन किया है।

सब जानते हैं कि आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करना अथवा जीवित ही अग्नि में प्रवेश करना ये कैसे कठिन और उग्र धर्म हैं, इनकी अपेक्षा पुनर्विवाह कितना सरल और सुसाध्य है। फिर आगे चलकर माधव का उसको युगान्तरीय कहकर कलिवर्ज्य ठहराना न केवल पराशर के उद्देश को ही नष्ट करना है, किन्तु स्वयं अपनी बार बार की हुई प्रतिज्ञा के विरुद्ध लिखकर अपनी साख को भी गंवाना है।

दूसरा आक्षेप कोई कोई यह भी करते हैं कि "नष्टे मृते प्रव्रजिते" यह पराशरीय वचन वाग्दत्ता कन्या से सम्बन्ध रखता है नकि विवाहिता से। उनका कथन यह है कि जिस कन्याका वाग्दान होगया हो, पर विवाह न हुवा हो उसका उक्त पाँच अवस्थाओं में दूसरा विवाह होसकता है नकि विवाहिता का।

समीक्षा-यदि यहां वाग्दान का प्रकरण होता तो पराशर स्पष्ट लिखता, जैसा कि मनु ने वाग्दान के अनन्तर-

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ (मनु ६-६६)

इस पद्य से नियोग का विधान किया है । पर पराशर स्मृतिमें स्पष्ट तो क्या कहीं साँकेतिक रीति पर भी वाग्दानका उल्लेख नहीं है । दूसरे उक्त पद्य में प्रयुक्त हुवे 'पतौ' और 'नारीणाम्' शब्द इस शंका को उत्पन्न होने का अवकाश ही नहीं देते । क्योंकि पाणिग्रहण संस्कार के पहले न पुरुष किसी का पति कहलाता है और न स्त्री किसी की पत्नी । जैसा कि वसिष्ठ का कथन है:-

अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेताथो वरो यदि ।
न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥

जब वसिष्ठ पाणिग्रहण के विना वाणी तो वाणी जल से भी दीहुई कन्या को कुमारी मानता है और लोकाचार भी ऐसा ही देखने में आता है । वाग्दान तो एक ओर बरातें जाकर लौट आती हैं और कन्या का विवाह दूसरे के साथ करदिया जाता है। इस दशा में शास्त्र और लोकाचार दोनों के अनुसार न तो वाग्दत्ता का पति ही होसकता है और न वह नारी ही कहलासकती है, क्योंकि नर की स्त्री होने से नारी कहलाती है। जब पराशर उक्त पद्य में स्पष्ट कहता है कि पति की पांच अवस्थाओं में नारी का अन्यपति होसकता है, तब यहाँ वाग्दान की कल्पना करना (जिसमें नतो पुरुष की पति संज्ञा होती है और न स्त्री की नारी) कैसी निर्मूल कल्पना है। माधवाचार्य ने भी यद्यपि युगान्तरीय कहकर इसको टाला है, पर वाग्दान की गन्ध इसमें उसको भी न आई, अन्यथा वह इसका उल्लेख अवश्य करता ।

तीसरा आक्षेप कोई कोई यह भी करते हैं कि पराशर ने यह व्यवस्था द्विजों के लिए नहीं, किन्तु द्विजेतरों के लिये दी

है, अतएव शूद्रों में इसके अनुसार स्त्रीका पुनर्विवाह हो-सकता है।

समीक्षा– पराशर तो आरम्भ में जैसा कि हम उद्धृत कर चुके हैं, यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं चारों वर्ण और चारों आश्रमों के धर्म वर्णन करूंगा, पर हमारा प्रतिवादी कहता है कि नहीं, इस पद्य में पराशरने केवल शूद्रों के लिए व्यवस्था दी है। अच्छा यदि प्रतिवादी की प्रसन्नता के लिये हम इसे शूद्रों के लिये ही मानलें तो इस में 'पति' के 'प्रव्रजित' और 'पतित' दोनों विशेषण व्यर्थ होजाते हैं। क्योंकि हिन्दू शास्त्र की मर्यादा के अनुसार न तो शूद्र को संन्यास ही लेने का अधिकार है और न वह पतित ही होसकता है। द्विज पतित होकर शूद्र बन सकता है, पर शूद्र पतित होकर क्या बनेगा! क्या पांचवां वर्ण कोई और भी है? जब शूद्र सन्यासी और पतित नहीं होसकते, तब उनके लिए यह व्यवस्था कैसी! विचारे माधवाचार्य को भी यह बात नहीं सूझी, नहीं तो वह कलिवर्ज्य के समान द्विजवर्ज्य भी इसको लिखदेता।

चौथा आक्षेप कोई मनचले विपक्षी यह भी कर बैठते हैं कि पद्य के उत्तरार्ध में जो 'पति' शब्द आया है, उस के अर्थ संरक्षक के हैं, नकि भर्ता के। अर्थात् इन पांच अवस्थाओं में स्त्री को अपना दूसरा संरक्षक बनाना चाहिये, न कि दूसरा पति करना चाहिये।

समीक्षा–जब पूर्वार्ध में 'पति, शब्द का अर्थ भर्ता विपक्षियों को भी स्वीकृत है, तब उत्तरार्ध में उस के विरुद्ध अर्थ की सम्भावना होही नहीं सकती। क्योंकि 'पति' शब्द का 'अन्य' विशेषण ही जो उत्तरार्ध में दिया गया है, उसको सापेक्ष सिद्ध कररहा है। इस बात को सब जानते हैं कि

पहले की अपेक्षा से दूसरा होता है। पहला पति यदि भर्त्ता है तो दूसरा संरक्षक कैसे होजायगा ? हाँ यदि पहले को भी संरक्षक मानलो तो बात दूसरी है। इस दशा में इस व्यवस्था की ही कुछ आवश्यकता नहीं रहती। यदि पराशर को इन पांच अवस्थाओं में संरक्षक ही बनाना अभीष्ट होता तो वह "पतिरन्यो विधीयते" के स्थानमें "रक्षकोऽन्यो विधीयते" ही न लिखता। पुनरुक्त 'पति' शब्द के साथ 'अन्य' शब्द का प्रयोग करना इस बात को सिद्ध करता है कि पूर्वपति के जो अधिकार और स्वत्व थे, वही इस दूसरे पति के भी होंगे।

एक बात और भी इसमें ध्यान देने योग्यहै कि पूर्व पति के नपुँसक और पतित होनेपर भी इस पद्य में दूसरा पति करने की आज्ञा दीगई है। यदि प्रतिवादी के कथनानुसार हम दूसरे पति का अर्थ संरक्षक ही मानलें, तो फिर प्रश्न यह है कि क्या नपुंसक और पतित अपनी स्त्रीके संरक्षक नहीं बनसकते? यदि बन सकते हैं तो फिर ऐसी अवस्था में दूसरा संरक्षक बनाने की आज्ञा क्यों दीगई ?

पाँचवां आक्षेप कोई २ महात्मा यह भी करते हैं कि पद्य में पुनर्विवाह का विधान नहीं, किन्तु निषेध है और यह सिद्ध करने के लिए वे पद्य के चतुर्थपाद का "पतिरन्योऽविधीयते" ऐसा पदच्छेद करने लगते हैं।

समीक्षा—प्रथम तो व्याकरण के नियमानुसार ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि आख्यातिक क्रिया के साथ "नञ्" का समास नहीं होता यदि "अविधीयते" के 'अ' को 'नञ्' नमान कर निषेधार्थक अव्यय मानें तो फिर पूर्वरूप सन्धि न होसकेगी। अतएव "अविधीयते" यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है। यदि "तुष्यतु दुर्जनः" न्याय से हम इस असाधु प्रयोग को भी

साधु मानलें, तो फिर अर्थापत्ति से इसका यह अर्थ होगा कि इन पाँच दशाओं के अतिरिक्त दूसरा पति हो सकता है। अर्थात् पति के मरने पर तो स्त्री दूसरा विवाह न करै, पर उसके जीतेजी करलेवे। इसी प्रकार उसके विवासित, विरक्त, नपुंसक और पतित होने पर तो वह विवाह का नाम नले, पर इनके अभाव में उसे विवाह अवश्य करना चाहिए, पराये अपशकुनके लिए अपना नाक कटाना इसीको कहतेहैं। चाहे अनवसर प्राप्त पुनर्विवाह सिद्ध होजाय, पर अवसरप्राप्त का खण्डन हम अवश्य करेंगे। इसी प्रकार के कुतर्कों से हमारे भाई विधवाविवाह को शास्त्रविरुद्ध सिद्ध करना चाहते हैं।

छठा आक्षेप एक यह भी किया जाता है कि इस पद्य में सप्तमीके एकवचनमें जो 'पतौ' प्रयोग दियागयाहै, वह व्याकरण के नियमानुसार अशुद्ध है, 'पत्यौ' होना चाहिये था, अतएव यह माननीय नहीं होसकता।

समीक्षा—यद्यपि 'पतौ' प्रयोग व्याकरण की रीति से अशुद्ध है, तथापि पद्यात्मक ग्रन्थों में व्याकरण से अधिक छन्दोनियमों का ध्यान रक्खा जाता है। छन्दोनियम के अनुसार यहां 'पत्यौ' हो नहीं सकता था, अतएव छन्दोभङ्ग दोष से पद्य को बचाने के लिए ग्रन्थकार को विवश होकर 'पतौ' प्रयोग देना पड़ा। नारदस्मृति के पद १२ में और अग्नि पुराण के अध्याय १५४ में भी यह पद्य आया है, वहां भी ऐसा ही पाठ है और इसी पराशर स्मृति के दसवें अध्याय के ३४वें पद्य में भी यही पद प्रयुक्त हुवा है। सो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि संस्कृत का कोई पद्यात्मक ग्रन्थ ऐसा नहीं है, जिसमें व्याकरण की ऐसी त्रुटियां न हों। महाभारत, रामायण और भागवत आदि ग्रन्थों में भी कहीं २ ऐसे

व्याकरणनियमविरुद्ध प्रयोग आजाते हैं, पर वे आर्ष होने से प्रमाण मानलिए जाते हैं कोई उनको असाधु प्रयोग नहीं कह-सकता। पराशर भी ऋषि थे, इसलिए उनका प्रयोग भी आर्ष होने से साधु है।

सातवाँ आक्षेप—कोई २ यह भी करते हैं कि पद्योक्त पाँच दशाओं में पराशर ने नियोग की आज्ञा दी है, न कि पुनर्विवाह की। इसलिए इन पांच दशाओं में नियोग होना चाहिये, न कि पुनर्विवाह।

समीक्षा—यह आक्षेप उन लोगों की ओर से कियाजाता है जिन्होंने प्रतिज्ञा करली है कि चाहे सब कुछ शास्त्र से सिद्ध होजाय, पर जहाँतक हमारा बस चलेगा हम विधवाविवाहको शास्त्र से सिद्ध न होने देंगे। कहीं तो नियोग को पशुधर्म बत-लाया जाताहै और कहीं उसकी आड़ ली जातीहै। पर यहाँ पर इस आड़ लेने से भी काम न चलेगा। क्योंकि नियोग में तो पतिपत्नीभाव हो नहीं होता, उसमें सन्तानार्थ केवल वीर्य-दान दिया और लिया जाता है। नियुक्त पुरुष न तो स्त्री का पति होसकता है और न नियुक्ता स्त्री उसकी पत्नी ही कहला सकती है और न किसी शास्त्र में उनके पतिपत्नीधर्म के पालन करने की आज्ञा है। परन्तु इस पद्य में तो पराशरने स्पष्टही पुरुष के लिए 'पति' और स्त्री के लिये 'नारी' शब्द का प्रयोग किया है, जो दोनों के पतिपत्नी सम्बंध को सूचित करताहै। यदि पराशर को नियोगकी ही आज्ञा देनी अभीष्ट होती तो वह 'पतिरन्यो विधीयते' के स्थान में 'सन्तानोत्पत्तिरिष्यते' न लिखता। अतएव पद्य में पत्यंतर का विधान करने से परा-शर को पुनर्विवाह ही इष्ट है न कि नियोग।

नियोग की प्रथा चाहे पूर्वकाल में यहां प्रचलित रही हो और उसके उदाहरण भी महाभारतादि ग्रन्थों में कहीं कहीं पाये जाते हों, पर आधुनिक सभ्यता किसी दशा में भी उसे स्वीकार नहीं कर सकती। अतएव किसी शास्त्र में यदि उसका विधान भी हो तो भी इस समय वह हमारे लिये उपेक्षणीय है। पर पराशर स्मृति में तो उसका कहीं गन्ध भी नहीं।

मानवधर्मशास्त्र और विधवाविवाह।

वर्त्तमान मनुसंहिता।

विधवाविवाह के विपक्षी मनुस्मृति पर बड़ा जोर देते हैं और कहते हैं कि चाहे पराशरादि अन्य स्मृतिकारों ने विधवा विवाह का किसी अंश में विधान भी किया हो, पर वह मनुस्मृति के विरुद्ध होने से माननीय नहीं होसकता। मनु के प्राधान्य में वे बृहस्पति का यह वचन प्रस्तुत करते हैं:—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते॥

इसपर हमारा यह वक्तव्य है। यद्यपि यह निर्णय करना कि जो ग्रन्थ आजकल मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है, जिस में १२ अध्याय और २६८५ पद्य हैं, बड़ा कठिन है। हमारे सन्देह के ये कारण हैं:—

प्रथम तो इसमें "मनुरब्रवीत्" "मनुरकल्पयत्" इत्यादि वाक्य ही सिद्ध कर रहे हैं कि यह ग्रन्थ मनु का बनाया हुआ नहीं है, किन्तु मनु के नाम से संग्रह किया गया है, क्योंकि मनु स्वयं अपने निर्मित ग्रन्थ में ऐसा नहीं लिख सकता। दूसरे इसकी नवीन शैली की पद्यरचना तथा इसमें वेन, नहुष, पृथु, सुदास, निमि और यवन आदि राजाओं का उल्लेख होने से

भी यह बात अवगत होती है कि यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है। तथापि हम इस विषय पर कि यह ग्रन्थ कब और किसने बनाया? विवाद करना नहीं चाहते। हम मान लेते हैं कि यह मनुकाही बनाया हुआ है और बहुत प्राचीन है। यह मान लेने पर भी इसकी उपयुक्तता तबतक सिद्ध नहीं होसकती, जबतक कि इसके सिद्धान्त लोगों को मान्य और ग्राह्य न हों। प्रत्यक्ष है कि मनु के बहुत से सिद्धान्त आजकल समाज को अग्राह्य हैं। चाहे अपने पूर्वजों का आदर करते हुवे वाणी से हम उनका तिरस्कार न करें, किन्तु अपने को ही उनके अयोग्य सिद्ध करें, पर समाज की वर्तमान अवस्था में किसी प्रकार भी हम उनको अपने आचरण में नहीं लासकते। उदाहरणार्थ हम मनुके कुछ नियम यहांपर देते हैं, जो आजकल हिन्दूसमाज में अप्रचलित ही नहीं किन्तु घृणाकी दृष्टि से देखे जाते हैं। वाग्दत्ता कन्याके विषय में मनुलिखता है:—

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥
यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्।
मिथो भजेदाप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ॥
न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः।
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्॥
(मनु० ६। ६६-७०-७१)

इन पद्यों में मनुने वाग्दान के अनन्तर यदि वर की मृत्यु होजाय तो पुनः कन्या के विवाह का निषेध किया है और उसको देवर के साथ नियोग करने की आज्ञा दी है पर आजकल कोई भी हिन्दू मनु की इस कठोर आज्ञा को नहीं मानता और हम समझते हैं, जब से इतिहास का आरम्भ हुवा है, कभी यह आज्ञा नहीं मानी गई। इसके विरुद्ध आजकल

हिन्दूसमाज में सर्वत्र वसिष्ठ की आज्ञा मानी जाती है, जो इस प्रकार है:—

> अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेताथो वरो यदि।
> न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा॥
> यावच्चेदाहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
> अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा॥
> (वसिष्ठस्मृति १७। ६४-६५)

वसिष्ठ इन पद्योंमें वाग्दत्ता ही नहीं, किन्तु उदकस्पर्शिता कन्या के भी पुनर्विवाह की आज्ञा देता है और स्पष्ट कहता है कि जबतक मन्त्रोच्चारण पूर्वक पाणिग्रहण संस्कार न हो, तबतक वह कन्या है, उसका दूसरे के साथ विवाह करदेना चाहिये। यम और गौतम भी वसिष्ठ के मत की पुष्टि करते हैं। यथा—

> नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरिष्यते।
> पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे॥ (यमस्मृति)

गोतम भी अपनी स्मृति में इसी की पुष्टि करता है:—

> प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्। (गोतमस्मृति)

पाठक देखें, इन दोनों ऋषियों की आज्ञामें कितना अन्तर है? कहना नहीं होगा कि आजकल का लोकाचार वसिष्ठ की आज्ञा का अनुसरण करता है, मनुकी आज्ञा को उसने ताक़ में धर दिया। इसी प्रकार मनुके नवें अध्याय में जो दायभाग के नियम दिये गये हैं, हिन्दुओं में वे आजकल कहीं नहीं माने जाते और न वे वर्तमान परिस्थिति में मानने के योग्य ही हैं। इस विषय में प्रचलित हिन्दूला भी याज्ञवल्क्य और मिताक्षर के नियमों का किसी अंशतक अनुसरण करता है, जो कि मनु की अपेक्षा कुछ सुधरे हुवे हैं। मनुकी क्रूरताका सबसे अधिक परिचय हमको आठवें अध्यायमें मिलता है, जहां उसने शूद्रोंकेलिये

सामान्य अपराधों में भी ऐसे लोमहर्षण दण्डों का विधान किया है, जिनको स्मरण करके शरीर के रोंगटे खड़े होजाते हैं और इस बीसवें शतक में किसी मनुष्य के ध्यान में भी यह बात नहीं आसकती कि कभी ऐसी दण्डविधि यहां प्रचलित रही हो। देखिए! ब्राह्मण के पास बैठने की इच्छा करने मात्र से मनु ने शूद्र के लिए कैसा भीषण दण्ड लिखा है:—

> सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।
> कट्या कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं चास्यावकर्त्तयेत् ॥
> (मनु ८-२८१)

इसी मनुस्मृति में स्त्रीजाति के प्रति जैसे उद्गार प्रकट किये गये हैं और सती, सीता तथा सावित्री की उत्तराधिकारिणियों पर जो मिथ्यापवाद लगाये गये हैं। यदि आजकल कोई ऐसा करता तो हम उसका सिर कुचलने के लिए तय्यार होजाते। पर जैसे गङ्गा में मिलकर मैला भी पवित्र होजाता है, ऐसे ही धर्मशास्त्र में स्थान पाकर ऐसे मलिन विचार भी आज हिन्दूसमाज में किसी को नहीं खटकते। हम उनकी बानगी भी पाठकों को दिखलाते हैं:—

> नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ।
> सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥
> पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः ।
> रक्षिता यत्नतोपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥
> एवं स्वभावं ज्ञात्वासां प्रजापतिनिसर्गजम् ।
> परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥
> शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् ।
> द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥
> नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः ।
> निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥

तथाच श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि।
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः॥
यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता।
तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम्॥ (१)
(मनु० अ० ६ प० १४-२०)

ये पवित्र उद्गार हैं जो हमारे इस प्रधान धर्मशास्त्र की शोभा को बढ़ा रहे हैं। इस दशा में बृहस्पति का यह लिखना कि मनु के विरुद्ध जो स्मृतियां हैं, उनका प्रमाण नहीं मानना चाहिये, ठीक नहीं। हमारे लिये सब ही ऋषि माननीय हैं, जिनके वचन मनु की ही बतलाई हुई चार कसौटियों के अनुकूल हैं वे चाहे मनु के हों, वा वसिष्ठ के, याज्ञवल्क्य के हों या पराशर के, हमारे लिये माननीय हैं। उनकी उपयुक्तता नाम से नहीं, किन्तु काम से देखी जायगी। यदि मनु के कोई सिद्धान्त काम से हमारे वर्त्तमान समाज के अनुकूल नहीं हैं तो हम केवल मनु के नाम से उनको समाज में प्रतिष्ठित नहीं करा सकते। समाज धर्मशास्त्र के उन्हीं आदेशों का पालन कर सकता है, जो उसकी वर्त्तमान स्थिति और मर्यादा के प्रतिकूल न हों।

एक बात और ध्यान देने योग्य है, यदि मनु के ही नियम हमारे लिये पर्याप्त होते तो उनकी विद्यमानता में अन्य स्मृतियों की आवश्यकता ही क्या थी? फिर ये मनु के अतिरिक्त २० वा २८ स्मृतियां क्यों बनाई गईं? इसी प्रसङ्ग में एक प्रश्न यह भी होता है कि ख़ास कलियुग के लिये पराशर स्मृति की रचना क्यों की गई? इस प्रश्न का उत्तर इसके सिवाय इसके और क्या होसकता है कि जब समय ...

(१) पाठकों के हृदय में क्षोभ उत्पन्न न हो, इसलिए हमने इनका अनुवाद या इनपर कुछ टिप्पणी नहीं दी।

प्रभाव से सभ्यता का परिवर्त्तन हुआ, तब उस समय के देशकालज्ञ विद्वान् लोगों ने समाज में मनूक्त नियमों के पालन करने की क्षमता न देखकर ही समयानुसार सरल नियम बनाये और मनु के नियमों को कठिन समझकर ही उन्होंने कृतयुग के लिये रक्खा। जैसा कि हम पूर्व प्रकरण में पराशर और माधव के लेखों से सिद्ध कर चुके हैं, उनको जाने दीजिये खुद वृहस्पति भी जिसके प्रमाण से मनु की श्रेष्ठता सिद्ध की जाती है, कलियुग के लिये उसे अशक्य ठहराता है:—

उक्तो नियोगो मनुना निषिद्धः स्वयमेवतु।
युगह्रासादशक्योऽयं कर्त्तुमन्यैर्विधानतः॥
तपोज्ञानसमायुक्ता कृतत्रेतादिके नराः।
द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हि निर्मिता॥
अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिर्ये पुरातनैः।
अशक्यास्तेऽधुना कर्त्तुं शक्तिहीनैरिदन्तनैः॥
(वृहस्पति स्मृति १४। १२-१३-१४)

इन पद्यों में वृहस्पति स्पष्ट कहता है कि यदि कृतादि के धर्म कलियुग में अनुष्ठेय होते तो मनु नियोग का विधान करके स्वयं उसका निषेध न करता। कृतादि के लोगों में अनेक प्रकार के पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति थी, पर कलियुग के शक्तिहीन लोग वैसा नहीं कर सकते। इससे सिद्ध है कि नियोग आदि के द्वारा सन्तान उत्पन्न करना कृतादि के लिये था, कलियुग के लिए उन उपायों को उचित न समझकर ही ऋषियों ने पुनर्विवाह की आज्ञा दी है।

मनुस्मृति में विधवाविवाह की आज्ञा।

चाहे मनुस्मृति का सम्बन्ध किसी युग से हो और चाहे उसके बहुत से धर्म इस समय हमारे लिये अशक्य हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि उसमें विधवाविवाह की स्पष्ट और अस-

ान्दिग्ध आज्ञा है और उस आज्ञा का महत्त्व इसलिये और भी बढ़ जाता है कि उसमें नियोग के समान विधवाविवाह का कहीं निषेध नहीं है। देखिए !! अक्षतयोनि विधवाओं के पुनः संस्कार की मनु कितनी स्पष्टता से आज्ञा देता है:—

साचेदक्षतयोनिःस्याद् गत प्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनःसंस्कारमर्हति॥

(मनु० ९-१७६)

इसका अर्थ हम अपनी ओर से कुछ न करेंगे, किन्तु मनुस्मृति के पांचों प्रसिद्ध टीकाकारों ने जो इसका अर्थ किया है उसीका अक्षरशः अनुवाद हम यहां पर उद्धृत कर देते हैं:—

सर्वज्ञनारायण—"पति ने संस्कार करके जिसको त्याग दिया हो या जिसको पिता ने किसी और के लिये देना स्वीकार किया हो और अपनी इच्छा से उसने किसी अन्य के साथ विवाह करलिया हो, पुनः वह उसको छोड़ कर पितानुमोदित वरके पास आवे। यदि उसका पति के साथ समागम न हुआ हो तो वह पौनर्भव पति के साथ पुनःसंस्कार के योग्य है।"

कुल्लूक—"वह स्त्री यदि अक्षतयोनि हो और अन्य का आश्रय करै तो पौनर्भव भर्त्ता के साथ पुनःसंस्कार करने योग्य है। यद्वा कुमारपति को छोड़कर अन्य का आश्रय करे और फिर उसी कुमार पति के पास आजावे तो उसके साथ उसका पुनःसंस्कार होना चाहिये।"

राघवानन्द—"जिस कुमार पति को छोड़कर गई हो, युवावस्था में फिर उसीके पास आवै या किसी दूसरे के पास जावे, दोनों के 'पुनर्भू' भर्त्ता होने से उसका पुनर्विवाह हो सकता है। वा अव्यय से क्षतयोनि भी संस्कार के योग्य है। जैसा कि याज्ञवल्क्य ने क्षता और अक्षता दोनों प्रकार की

स्त्रियों का जो कामवासना से पति का त्याग करती हैं, पुनः संस्कार कहा है। ज्ञाति और धन के गर्व से जो स्त्री पति का त्याग करे. उसे कुत्तों से नुचवाना चाहिये, पर जो काम के वेग से ऐसा करै वह क्षम्य है क्योंकि काम स्वाभाविक है।"

नन्दन—"पति के घर से गई हुई और फिर आई हुई स्त्री यदि अक्षतयोनि हो तो पुनर्भू पति के साथ संस्कार के योग्य है।"

रामचन्द्र—'वह पुनर्विवाह करनेवाली यदि अक्षतयोनि हो और पति के घर जाकर लौट आई हो तौ वह पौनर्भव भर्त्ता के साथ पुनः संस्कार चाहती है।"

देखा पाठक! मनु के उक्त प्रमाण से अक्षतयोनि विधवा का पुनर्विवाह तो पांचों टीकाकारों को सम्मत है। पर राघवानन्द वा अन्वय से क्षतियोनि विधवा का भी पुनर्विवाह सिद्ध करता है और अपने कथन की पुष्टि में याज्ञवल्क्य का प्रमाण उद्धृत करता है इसलिए उसकी सम्मति विशेष ध्यान देने योग्य है। साथ ही उसकी दृष्टि में काम का वेग स्वाभाविक होने से दुर्धर्ष है, अतएव उसके कारण यदि कोई स्त्री पति का त्याग करती है तो वह क्षम्य है। पर जो अपने ज्ञाति एवं धन के गर्व से ऐसा करती है, उसे वह क्षमा नहीं करता। इससे अधिक स्पष्ट और विधवाविवाह का विधान क्या हो सकता है? इस पर भी जो लोग विधवाविवाह को मनुविरुद्ध कहते हैं उनके हठ और दुराग्रह का क्या ठिकाना है?

विपक्षियों की शंकायें।

अच्छा अब हमारे विपक्षी इस पर क्या कहते हैं ज़रा उनकी भी तो सुननी चाहिये:—

पहला आक्षेप तो उनका यही है कि यह कलिवर्ज्य है। मनु ने कृतयुग के लिए विधवाविवाह या नियोग का विधान किया था, कलियुग से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

समीक्षा—जब सारी मनुस्मृति पराशर के वचनानुसार कृतयुग के लिये है तो यह कैसे होसकता है कि उसमें प्रतिपादित केवल विधवाविवाह या नियोग का सम्बंध तो कृतयुग से जोड़ा जाय और अन्य सारे धर्म कलियुग से लागू होजांय! मालूम नहीं कलियुग में और विधवाविवाह में वह कौनसा नाड़ीविध है ? जिस के कारण इनका कहीं भी साम्य नहीं होने पाता। यदि कृतयुग की स्मृति में इसका विधान आता है तब तो इसके विपक्षी यह कहते हैं कि इसका कलियुग से कुछ सम्बंध ही नहीं। चाहे उस स्मृति की और सब बातें कलियुग की सहचरी होजांय, पर उसको छूत केवल विधवाविवाह की लगती है और यदि कलियुग की स्मृति में इसका विधान होता है, तब भी आश्चर्य है कि युगांतरीय का फांसा इसी के ऊपर पड़ता है और यहां कलिवर्ज्य कहकर वहां से भी हटाया जाता है। मानो कलियुगने और तो सब बातों का ठेका लिया हुवा है, पर इसकी नहीं पटती केवल विधवाविवाह से, इसके लिए ख़ास कलियुग की स्मृति में विधान होते हुवे भी इसका बहिष्कार किया जाता है।

अब प्रश्न यह होता है कि इसको कलिवर्ज्य किसने ठहराया है ? मनुस्मृति में तो कहीं नहीं लिखा कि यह कलिवर्ज्य है, न पराशर स्मृति में ही कहीं ऐसा उल्लेख है। फिर कलिवर्ज्य की कल्पना किसने की ? इसका उत्तर यह है कि किसी २ पुराण में कुछ वचन ऐसे मिलते हैं, जिनमें बहुतसी और बातों के साथ विधवाविवाह को भी कलिवर्ज्य ठहराया

गया है, वे प्रमाण और उनकी सविस्तर आलोचना तो दूसरे अध्याय में की जायगी। यहां केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि पुराणों में जितनी बातें कलिवर्ज्य ठहराई गई हैं, यदि उन में से बहुत सी बातें कलियुग में मानीजाती हैं तो फिर केवल विधवाविवाह के लिए कलियुग का पचड़ा लगाना सिवाय हठ और दुराग्रह के और क्या होसकता है?

दूसरा आक्षेप यह है कि मनुने पौनर्भव भर्त्ताके साथ विधवाके पुनःसंस्कार को आज्ञा दी है। पौनर्भव वह है जो पुनर्भू स्त्री से उत्पन्न होता है, उसको मनुने दायाद नहीं माना और कश्यप ने पुनर्भू कन्याओं को अधम और विवाह के अयोग्य लिखा है। यथाः—

> सप्त पौनर्भवाः कन्या वर्जनीयाः कुलाधमाः।
> वाचादत्ता मनोदत्ता कृतकौतुकमङ्गला ॥
> उदकस्पर्शिता याच याच पाणिगृहीतिका।
> अग्निं परिगता याच पुनर्भूः प्रभवा च या ॥

(स्मृतितत्वधृत कश्यपवचन)

समीक्षा–इस आक्षेप में पुनर्विवाह की आज्ञा तो विपक्षियों को स्वीकृत है, पर वे इसलिए उसको अच्छा नहीं मानते कि कश्यप ने पुनर्भू स्त्री को अधम और विवाह के अयोग्य लिखा है, तथा मनु ने पौनर्भव पुत्र को दायभागी नहीं माना। कैसे आश्चर्य की बात है कि कन्या तो बिना विवाह के अपने मन और वाणी से नहीं, किन्तु दूसरों के मन और वाणी से दीहुई भी पुनर्भू मानी जाय, पर पुरुष स्वेच्छा और विषयवासनाकी तृप्ति के लिए तीन २ और चार २ विवाह करके भी स्वयम्भू बनारहे, इस अन्धेर काभी कुछ ठिकाना है? यदि पुनर्भू होना वास्तव में निन्दनीय है तो यह दोष स्त्री पुरुषों में समान है। जिस समाज या धर्म में आठ २ या दस २ वर्ष की अबोध

कन्यायें किसी स्वकृत अपराध के कारण नहीं, किन्तु समाज के अत्याचार और संरक्षकों के प्रमाद के कारण विवाह के अयोग्य समझी जावें, क्या वह समाज या धर्म बहुत दिन तक संसार में रह सकता है? अब इस प्रकाश के युग में हम ऐसे अनर्गल वचनों से चाहे वे कश्यप के नाम से हों या भरद्वाज के) उस अमानुषिक अत्याचार को जो स्त्रीजाति के प्रति किया जारहा है, बहुत दिनों तक जारी नहीं रख सकते। अच्छा, अब हमें जरा इस वाक्य की पड़ताल भी तो करने दीजिये।

इस वाक्य में जो सातप्रकार की पौनर्भव कन्या मानी गई हैं; वे सब अधम और विवाह के अयोग्य बतलाई गई हैं। पर आधुनिक हिन्दूसमाजमें पहली चारप्रकारकी कन्यायें, अर्थात् (१) वाचादत्ता (२) मनोदत्ता (३) कृतकौतुकमङ्गला (४) उदकस्पर्शिता, ये न तो पुनर्भू मानी जाती हैं और न उनका विवाह ही निषिद्ध समझाजाता है। जब चार बातों के लिए हिन्दूसमाजने कश्यप की आज्ञा को ताक़ में धर दिया, तब शेष तीन बातों के लिए भी वह बहुत दिन उसका अनुसरण करेगा, इसकी आशा नहीं है। इसके विरुद्ध नारद स्मृति में जो तीन प्रकार की पुनर्भू कन्या मानी गई हैं, उनके विवाह की नारद ने स्पष्ट आज्ञा दी है:—

कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कारकर्मणा॥
कौमारं पतिमुत्सृज्य यात्वन्यं पुरुषं श्रिता।
पुनः पत्युर्गृहमियात्सा द्वितीया प्रकीर्तिता॥
असत्सु देवरेषु स्त्री बान्धवैर्या प्रदीयते।
सवर्णाय सपिण्डाय सा तृतीया प्रकीर्तिता॥
(नारदस्मृति १२। ४६-४७-४८)

नारद के ही समान याज्ञवल्क्य भी पुनर्भू के विवाह की (चाहे वह क्षता हो वा अक्षता) स्पष्ट आज्ञा देता है:—

"अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः" । (३-६७)

पाठक ! देखिये. इन दोनों में अर्थात् कश्यप और नारद में कितना अन्तर है ? पहला तो वाणी और मन से दी हुई को भी विवाह के अयोग्य बतलाता है। दूसरा पति को छोड़कर अन्य का आश्रय लेने वाली के भी विवाह की आज्ञा देता है। बतलाइये !! अब हम किसकी आज्ञा को मानें ? पर इसका निर्णय करने से पूर्व इस बात का ध्यान रहे कि यह कश्यप न तो याज्ञवल्क्य निर्दिष्ट २० स्मृतिकारों में है और न इसकी कोई अन्य स्मृतिकार पुष्टि ही करता है। इसके विपरीत नारदस्मृति यही नहीं कि मनुस्मृति का सार है, किन्तु याज्ञवल्क्य जैसा प्रसिद्ध स्मृतिकार उसकी पुष्टि भी करता है।

अब रही यह बात कि मनु ने पौनर्भव पुत्र को दायाद नहीं माना है। प्रथम तो १२ प्रकार के पुत्र जो मनु ने वर्णन किये हैं, वे कलियुग के लिये नहीं हैं। हम बृहस्पति के प्रमाण से यह बात दिखला चुके हैं कि पूर्व युग के लोगों में अनेक प्रकार के पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति थी। कलियुग में उस शक्ति का ह्रास हो गया है और यही कारण है कि पराशर ने अपनी स्मृति में जो कलियुग के लिये बनाई गई है। केवल तीन ही प्रकार के पुत्रों का उल्लेख किया है। अतएव कलियुग में पुनर्विवाह से उत्पन्न सन्तान भी औरस ही मानी जाती है, जिस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि पुरुष पुनर्विवाह से जो सन्तान उत्पन्न करते हैं, उसको कोई पौनर्भव नहीं कहता, किन्तु वह औरस कहलाती है। फिर कोई कारण नहीं है कि स्त्रियाँ पुनर्विवाह से जो सन्तान उत्पन्न करें, वह औरस न कहलावे।

यदि हम उसको पौनर्भव भी मानलें, तब भी विपक्षियों का यह कहना कि मनुने पौनभव को दायाद नहीं माना, सर्वथा अयुक्त है। एक मनुने ही नहीं, किन्तु मनु, वसिष्ठ और याज्ञवल्क्य इन तीनों प्रसिद्ध स्मृतिकारों ने पौनर्भव को केवल दायाद ही नहीं किन्तु पिण्डदाता भी मानाहै। देखो मनुस्मृति अ० ९ पद्य १८० और १८५ तथा वसिष्ठस्मृति अ० १७ प० १९ २०-२१ और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० २ प० १२२।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। यदि मनु कन्या के समान पुनर्भू कन्या के विवाह को हीन या वर्जनीय मानता तो पुनः शब्द के साथ संस्कार शब्द का प्रयोग न करता। मनुने तथा अन्य स्मृतिकारोंने भी पुनर्विवाह के लिए निःशङ्क होकर संस्कार शब्द का प्रयोग किया है। अतएव पुनर्विवाह में दोष की कल्पना करना 'संस्कार' जैसे धार्मिक और पवित्र शब्द का अपमान करना है। यह बात दूसरी है कि प्रथम संस्कार की अपेक्षा पुनःसंस्कार कुछ उदास माना जावे। क्यों कि पहला विवाह चाहे पुरुष का हो या स्त्रीका, जिस इच्छा और उत्साह से किया जाता है, दूसरे में उसका नहोना स्वाभाविक ही है। पर बिना संस्कार के स्त्री पुरुषों का परस्पर सङ्गत होना या स्वाभाविक कामवृत्ति को चरितार्थ करना पशुधर्म है। इसलिए क्या शास्त्रमें और क्या शिष्ट लोगोंके आचारमें दाम्पत्य के पवित्र सम्बन्ध को स्थापन करने से पूर्व संस्कार का होना आवश्यक माना गया है। जो लोग बालविधवाओं के लिए संस्कार को अनावश्यक समझते हैं, वे जानबूझकर उनको पशुधर्म में प्रवृत्ति दिलाते हैं। क्योंकि भय या दबाव से मनुष्य के स्वाभाविक वेग रोके नहीं जासकते, किन्तु रुके हुवे जलकी भाँति वे समाज में दुर्गन्ध फैलाने का कारण होते हैं।

मनुवाक्यों का दुरुपयोग।

अब हम यह देखना चाहते हैं कि आखिर मनुस्मृति में विधवाविवाह के विरुद्ध वे कौनसे प्रमाण हैं, जिनपर इसके विपक्षी इतनी उछल कूद मचाते हैं। पहला प्रमाण उनकी ओर से यह दिया जाता है :—

> कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
> न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु॥
> आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
> यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥
> (मनु ५।१५७-१५८)

समीक्षा—इन पद्यों में मनुने उन स्त्रियों के लिए जो ब्रह्मचर्य धारण करके एकपत्नीव्रत का पालन करना चाहती हैं पत्यन्तर का निषेध किया है। इसको उन बालविधवाओं से लागू करना जो अभी यह भी नहीं जानतीं कि पति किसको कहते हैं और एकपत्नीधर्म क्या वस्तु है? सर्वथा अनुचित और असंगत है। क्योंकि दूसरे पद्य के उत्तरार्ध में स्पष्ट कहा गया है कि जो एकपत्नी धर्मका पालन करना चाहती है, वह आजीवन ब्रह्मचर्य्य का पालन करे। हमारे इस कथन की पुष्टि मनु का भाष्यकार नन्दन भी करता है—जो नवें अध्यायके ७६ वें पद्य की टीका में स्पष्ट लिखता है :—

"यत्तु मृतभर्तृकाणां ब्रह्मचर्यवचनं तत्फलातिशयकामानाम् नान्यासामिति।"

भावार्थ—"विधवाओं के लिए जो ब्रह्मचर्य की आज्ञा है, वह उन्हीं के लिये है, जो विशेष फलकी कामना करती हैं, न कि औरों के लिये।"

इसी फलातिशय की कामना से बहुत से पुरुष नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, सो क्या इससे उनका विवाह करने का अधि-

कार जातारहता है ? अतएव बालविधवायें तो एक तरफ़ जो स्त्रियाँ संसार का सुख भोगना चाहती हैं और ब्रह्मचर्य में जिनकी निष्ठा नहीं है, उनके लिए भी ज़बर्दस्ती इस नियम को लागू बनाना न केवल उनके प्रति अन्याय है, अपितु इस पवित्र धर्म के महत्व को भी कम करना है। क्योंकि कैसाही कोई उत्तम धर्म हो, जो बलात् दूसरों के गले मढ़ाजाता है, उसकी श्रद्धा लोगों में फिर वैसी नहीं रहती, जैसी कि स्वेच्छापूर्वक पालन करने में। हां जो स्त्रियाँ अपने मनसे इसधर्म का पालन करना चाहती हैं और संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन और उत्तेजन भी जिनको इससे विमुख नहीं करसकते उनके लिए इससे बढ़कर और क्या धर्म होसकता है ?

दूसरा प्रमाण वे यह उपस्थित करते हैं :—

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्। (मनु० ९—४७)

समीक्षा—इस पद्य में कन्यादान का एक बार होना कहा गया है। इसका विशेष विवरण तो पाठक दूसरे अध्याय में देखेंगे। यहाँ हम केवल इतनाही कहते हैं कि शास्त्र में जहाँ मातापिता को कन्यादान देने का अधिकार दियागया है वहाँ प्रतिग्रहीता के अपात्र होने पर या न रहने पर उसके लौटाने काभी अधिकार दियागयाहै। देखो, याज्ञवल्क्य क्या कहताहै—

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तांश्चौरदण्डभाक्।
दत्तामपि हरेत्पूर्वात् श्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्॥
(याज्ञवल्क्य अ० १)

इस पद्यमें याज्ञवल्क्य ने कन्यादान का एकवार होना मान कर भी यदि पुनः श्रेष्ठ वर मिले तो दी हुई कन्या को लौटा लेने की आज्ञा दी है। ऐसी कन्या का पुनः दान करना आवश्यक

में सकृद्दान ही है, क्योंकि ऐसी दशा में यह समझा जायगा कि पहला दान दान ही न था। देखो !! नारद १६ प्रकार के दानों को अदान मानता है:—

> अदत्तंतु भयक्रोधशोकवेगरुजान्वितैः।
> तथोत्कोचपरीहास व्यत्यासच्छलयोगतः॥
> बालमूढास्वतन्त्रार्तमत्तोन्मत्तापवर्जितम्।
> कर्त्ता ममेदं कर्मेति प्रतिलाभेच्छया च यत्॥
> अपात्रे पात्रमित्युक्ते कार्ये वाधर्मसंहिते।
> यद्दत्तं स्यादविज्ञानाददत्तमिति तत्स्मृतम्॥
>
> (नारदस्मृति ४। ९-१०-११

इन १६ प्रकार के दानों को नारद अदान मानता है, अर्थात् उक्त १६ दशाओं में जो दान किया जाताहै, वह वास्तव में दान ही नहीं है। कैसे आश्चर्य की बात है कि अन्य लौकिक दानों में यदि हमसे थोड़ी सी भी भूल हो जाती है, तो हम शास्त्र की भी कुछ परवा न करके उसका प्रतिशोध करने के लिए तयार होजाते हैं। पर इन अबोध कन्याओं के दान को शास्त्रमें उसके प्रतिशोध की आज्ञा होते हुवे भी अमिट मान बैठते हैं।

तीसरा प्रमाण यह प्रस्तुत किया जाता है:—

> मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
> स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथाते ब्रह्मचारिणः॥
> अपत्यलोभाद्यातु स्त्री भर्त्तारमतिवर्तते।
> सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते॥
> नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह नचाप्यन्यपरिग्रहे।
> न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते॥
>
> (मनु० ५। १६०-१६१-१६३)

इन पद्यों में ब्रह्मचर्य का महत्व वर्णन किया गया है और उसकी आवश्यकता इसलिए हुई कि हिन्दू शास्त्रों में पुत्र के बिना पितरों की गति नहीं मानी गई है, जैसा कि वसिष्ठ अपनी संहिता में लिखता है:—

"अनन्ताः पुत्रिणां लोका नाऽपुत्रस्य गतिः श्रूयते।" (१७-२)

भाषार्थ—"पुत्रवालोंके अनन्त लोक हैं, अपुत्र की गति वेद में नही सुनी जाती।"

यदि इस श्रुति पर जिसका वसिष्ठ ने संकेत किया है, विश्वास करके स्त्री परपुरुषसे और पुरुष परस्त्री से सन्तान उत्पन्न करने लगें तो समाजमें बड़ी गड़बड़ मच जाय और अपने पराये का कोई नियम न रहे। इस साङ्कर्य दोष को मिटाने के लिए ही उनको ऐसा करने से रोका गया है। तभी तो अन्तिम पद्य में कहा गया है कि "अन्य से उत्पन्न सन्तान अपनी नहीं होती।" क्या पुरुष के लिए अपनी स्त्री और स्त्री के लिए अपना पति भी 'अन्य' कहला सकते हैं? यदि नहीं कहला सकते तो जिन स्त्री पुरुषोंने धर्म और क़ानून के मुताबिक़ अपना विवाह कर लिया है, वे कदापि 'अन्य' शब्द के वाच्य नहीं हो सकते। जब विवाहिता युवती (चाहे पहले वह कुमारी रही हो या बिधवा) अब अपने पति की स्त्री है, तो उसके लिए उसका पति न तो 'अन्य' होसकता है और न दूसरा। पहले की अपेक्षा से दूसरा होता है, जब पहला ही नहीं तो दूसरा कहां? यदि विवाह होजाने पर भी स्त्री के लिए अपना पति अन्य या दूसरा कहा जायगा तो पुरुष की स्त्री भी (जिसने दूसरा विवाह किया है) उसके लिए अन्य और दूसरी होनी चाहिये। यदि कहो कि अन्तिम पद्य के उत्तरार्ध में केवल स्त्रियों के लिए ही दूसरे पति का निषेध किया गया है तो हम कब कहते हैं

कि जिस स्त्री का पति विद्यमान है, वह दूसरा पति करै। हमतो इतना और विशेष कहते हैं कि जिस पुरुष की स्त्री विद्यमान है, वह दूसरी स्त्री भी न करै।

चौथा प्रमाण यह रक्खा जाता है:—

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु, नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥ (मनु० अ० ६)

समीक्षा—यह पद्य नियोग प्रकरण का है, इसको विवाहसे सम्बद्ध करना भूल ही नहीं, किन्तु छल है। नियोग और पुनर्विवाह में बड़ा अन्तर है, जिसको हम दिखला चुके हैं। अत एव नियोग के खण्डन को पुनर्विवाह से लागू करना सरासर अनुचित है। जब पूर्व से नियोग का प्रकरण चला आरहा है और इस पद्य के पूर्वार्ध में भी स्पष्ट नियोग का शब्द विद्यमान है, तब उत्तरार्ध में "विधवावेदन" शब्द से विधवाविवाह का ग्रहण करना सर्वथा अयुक्त है। मेधातिथि 'वेदनम्' का अर्थ 'गमनम्' करता है। जिससे सिद्ध है कि यहां विना विवाह के विधवा से सम्बन्ध पैदा करने का नाम 'वेदन' है और यही नियोग का भी तात्पर्य है। इससे पूर्वार्ध को उत्तरार्ध के साथ सङ्गति भी मिलजाती है। क्योंकि जिस नियोग का विवाह के मन्त्रों में वर्णन नहीं है, वही विवाहविधि में भी अविहित होसकता है। यह नहीं होसकता कि मन्त्रों में तो नियोग वर्जित हो और विवाह की विधि में विधवाविवाह निषिद्ध हो। यदि उसको निषिद्ध माना जाय तो इस पद्य में वदतोव्याघात दोष आता है। विवाह विधि में विवाह काही निषेध, यह कभी होसकता है? अतएव विवाह के अतिरिक्त स्त्री पुरुष समागम के और जितने प्रसङ्ग हैं, उन्हीं का विवाह विधि में वर्जन होसकता है, नकि स्वयं विवाह का, चाहे वह

विधवा का हो या विपत्नीक का। अतः विधवाविवाह से इस पद्य का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

यदि थोड़ी देरके लिए हम विधवाविवाह से भी इसका सम्बन्ध मानलें, तब भी इससे विधवाविवाह का निषेध कहां होता है ? किन्तु समयान्तर में विधान सिद्ध होता है। विवाह के समय कौन यह चाहता है कि स्त्री पुरुषों का परस्पर वियोग हो और पुनर्विवाह की आवश्यकता पड़े। सब यही चाहते हैं कि यह जोड़ी दीर्घायु हो और फले फूले। पर जब दैवात् एक को दूसरे का वियोग होजाता है, तभी पुनर्विवाह की आवश्यकता होती है। अतएव यह कहना कि विवाहविधि में अर्थात् विवाह के समय विधवा का पुनर्विवाह अनुक्त अर्थात् अनीप्सित है, युक्त ही है। जब विधवा होना ही कोई नहीं चाहता, तब उसके विवाह की तो कथा ही क्या है ?

पाठक ! उदाहृत मनुवचनों से कहांतक विधवाविवाह का खण्डन होता है, इसका न्याय हम आपके ऊपर ही छोड़ते हैं। यदि विपक्षियों की प्रसन्नता के लिये इनको निषेध परक भी मानलिया जाय, तब भी "स्मृतेर्वेदविरोधेतु परित्यागो यथा भवेत्"; इस आर्ष व्यवस्था के अनुसार श्रुति के विरुद्ध स्मृतिवचन आदरणीय नहीं होसकते। विधवाविवाह का श्रुति सम्मत होना वैदिक प्रकरण में हम प्रमाणित करचुके हैं।

अन्य स्मृतियां और विधवाविवाह।

अब हम विधवाविवाह की पुष्टि में कुछ अन्यस्मृतियों के प्रमाण भी उद्धृत करते हैं, जिनसे पाठकों को इसकी शास्त्रीयता और अपने पूर्वजों की देशकालज्ञता का परिचय मिलेगा। हम नारदस्मृति से आरम्भ करते हैं, पूर्व इसके कि हम नारद

के वचनों को उद्धृत करें, नारदस्मृति का कुछ परिचय पाठकों को देदेना चाहते हैं। नारदस्मृति के आरम्भ में ही लिखा है कि "स्वायम्भव मनु ने एक लाख पद्यों में मानव धर्मशास्त्र को बनाया। सबसे पहले नारद ने उसको बारह हज़ार पद्यों में, फिर मार्कण्डेय ने आठ हज़ार पद्यों में, पुनः भृगुने चार हज़ार पद्यों में उसे संक्षिप्त किया।" इस से सिद्ध है कि नारद भी भृगु के समान मनुस्मृति के संग्रहकारों में है।

एशियाटिक सोसायटी बंगाल की ओर से जो नारद-स्मृति की पुस्तक छपी है, उसकी भूमिका में, जो अंगरेज़ी में है, डाक्टर जूलियस जूली लिखते हैं:—

"ब्रिटिश म्यूज़ियम के मैनेजर मिस्टर बन्डल ने मुझे एक प्राचीन नारदस्मृति की पुस्तक दी थी, जो नैपाली अक्षरों में ताड़के पत्तों पर लिखी हुई थी। उसके प्रत्येक पद की समाप्ति में यह लिखा हुवा था। "इति मानवे धर्मशास्त्रे नारदप्रोक्तायां संहितायां अमुकप्रकरणं समाप्तम्" इससे भी नारद संहिता का मानवधर्मशास्त्र के अन्तर्गत होना सिद्ध होता है। यदि उसको स्वतन्त्र स्मृति भी माना जाय, तब भी उसका महत्व मनुस्मृति से कम नहीं होसकता और यह बात उसके महत्व को और भी बढ़ा देतीहै कि उसके प्रतिपादित धर्म मनु के समान कलिवर्ज्य नहीं हैं। अतएव नारद के वचन हमारे लिये विशेष आदरणीय हैं। नारद ने तीन प्रकार की पुनर्भू कन्याओं के विवाह का जो विधान किया है, उसको मनु के प्रकरण में हम दिखला चुके हैं। पराशर ने जिन पांच अवस्थाओं में पत्यन्तर का विधान किया है, वह नारद को भी सम्मत है:—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥
(नारदस्मृति १२-९७)

पुनः अक्षता विधवा के लिये नारद ने निम्नलिखित आज्ञा दी है:—

उद्वाहितापि या कन्या न चेत्संप्राप्तमैथुना।
पुनःसंस्कार मर्हेत यथा कन्या तथैव सा॥
(नारदस्मृति १२-३२)

यहां तक कि नारद पति के प्रवास में प्रवास की अवधि नियत करता हुवा पत्यन्तर का विधान करता है:—

अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम्।
अप्रसूता तु चत्वारि परतोऽन्यं समाश्रयेत्॥
क्षत्रिया षट् समास्तिष्ठेदप्रसूता समात्रयम्।
वैश्या प्रसूता चत्वारि द्वे वर्षे त्वितरा वसेत्॥
न शूद्रायाः स्मृतः काल एषप्रोषितयोषिताम्।
जीवति श्रूयमाणेतु स्यादेष द्विगुणोऽवधिः॥
(नारदस्मृति १२। ९८-९९-१००)

इसी आशय का एक पद्य मनुस्मृति में भी है:—

प्रोषितो धर्मकामार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥
(मनु० ९-७६)

इसपर विपक्षी यह कहते हैं कि मनु ने इसमें पत्यन्तर का विधान कहां किया है? केवल यह कहा है कि इतने काल तक प्रतीक्षा करे, इसके बाद क्या करे? यह कुछ नहीं कहा। मनु के भाष्यकारों में कुल्लूक और सर्वज्ञनारायण तो इसका यह निष्कर्ष निकालते हैं कि "इसके बाद वह पति के पास चली जावे। पर नन्दन इसके भाष्य में स्पष्ट लिखता है—"ऊर्ध्वं भर्त्र-

न्तरपरिग्रहे न दोषः।" इनमें से प्रथम दोनों टीकाकारों का मत युक्ति और प्रमाण से शून्य है। क्योंकि जब स्त्री को कुछ मालूम ही नहीं कि पति जीवित है या नहीं? यदि जीवित है तो कहां है, क्या करता है? इस दशा में उसका पति के समीप जाना कैसा? पर नन्दन का अभिप्राय जहां युक्तियुक्त है, वहां उसकी पुष्टि में नारद का उक्त प्रमाण भी मौजूद है, जो स्पष्ट ही कहता है कि "परतोऽन्यं समाश्रयेत्"

यह तो हुई प्रवास की बात, अब पति के नपुंसक अथवा अयोग्य होने पर नारद ने स्त्री के लिए जो आज्ञा दी है, उसको भी सुन लीजिए:—

ईर्ष्यापण्ढादयो ये च चत्वारः समुदाहृताः।
त्यक्तव्यास्ते पतितवत्क्षतयोन्या अपि स्त्रियाः॥
आक्षिप्तमोघबीजाभ्यां कृतेऽपि पतिकर्मणि।
पतिरन्यः स्मृतो नार्या वत्सरार्धं प्रतीक्ष्य तु॥
अन्यस्यां यो मनुष्यः स्यादमनुष्यः स्वयोषिति।
लभते नान्यभर्तारं स्त्री तत्कार्यं प्रजापतेः॥
अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टा स्त्री क्षेत्रं बीजिनो नराः।
क्षेत्रं बीजवते देयं नाबीजी क्षेत्रमर्हति॥

(नारदस्मृति १२। १६–१७–१८–१९)

इन पद्यों में नारद केवल नपुंसक पति को ही त्याग कर स्त्री को पत्यन्तर करने की आज्ञा नहीं देता, किन्तु व्यभिचारी और उद्दण्ड पति को भी त्यागकर अन्य पति करने का परामर्श देता है। भला जो उदारचेता हमारे पूर्वज पति की जीवितावस्था में भी कई दशाओं में स्त्रियों को पुनर्विवाह की आज्ञा दे गये हैं, उनसे यह कब होसकता था कि वे पति के मरने पर आजीवन इनको वैधव्य की भट्टी में जलता हुआ देखें और चुप बैठे रहें।

शातातप ।

अब ज़रा शातातप की भी सम्मति सुन लीजिए:—

वरश्चेदकुलशीला यां न युज्येत कदाचन।
न मन्त्राः कारणं तत्र न च कन्यानृतं भवेत्॥
समाच्छिद्य तु तां कन्यां बलादक्षतयोनिकाम्।
पुनर्गुणवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत्॥

(पराशरभाष्योद्धृत शातातपवचन)

शातातप के उक्त पद्यों का अभिप्राय यह है कि यदि अयोग्य वर को कन्या दान करदी गई हो तो न मन्त्र कारण होसकते हैं और न कन्यात्व ही निवृत्त हो सकता है। ऐसी कन्या को बलपूर्वक अयोग्य वर से छीनकर योग्य पुरुष को दे देना चाहिए। पाठक इससे अधिक और स्पष्ट आज्ञा क्या होसकती है? शोक कि शास्त्रों में इतना स्पष्ट विधान होने पर भी विपक्षी इसको शास्त्र विरुद्ध कहने का साहस करते हैं।

कात्यायन ।

अब ज़रा कात्यायन की भी सम्मति सुन लीजिये:—

वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा।
ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम्॥
सतु यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एवच।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपिवा।
कदापि देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा।

(पराशरभाष्योद्धृत कात्यायनवचन)

पराशर और नारदने तो पांच ही अवस्थाओं में पत्यन्तरकी आज्ञा दी है, परन्तु कात्यायन सात दशाओं में पुनर्विवाह की आज्ञा देता है (१) यदि पति विजातीय हो (२) पतित हो (३) नपुंसक हो (४) दुराचारी हो (५) सगोत्र हो (६)

दास हो और (७) चिररोगी हो, तो व्याही हुई भी कन्या वस्त्राभूषण सहित दूसरे को देदेनी चाहिये । पाठक अब आप न्याय कीजिए कि इस से अधिक विधवाविवाह की पुष्टि और क्या होसकती है ? माधव भी पराशर भाष्य में शातातप और कात्यायन के उक्तवचनों को उद्धृत करता हुवा लिखता है:—

"यद्यपि शातातप और कात्यायन आदि ऋषियों ने पत्यन्तर का विधान किया है तथापि युगान्तरीय होने से वह उपेक्षणीय है ।"

माधव के इस प्रलाप की पड़ताल हम पराशर स्मृति के प्रकरण में करचुके हैं ।

वासिष्ठ ।

अब हम वसिष्ठस्मृति के कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं । वाग्दान और जलदान के अनन्तर जो वसिष्ठ ने पुनर्विवाह की आज्ञा दी है, उसका उल्लेख तो मनु के प्रकरण में हम कर-चुके हैं। अब पति के मरने पर अक्षता कन्या के लिये वसिष्ठ ने जो आज्ञा दी है, उसको लिखते हैं:—

पाणिग्राहे मृते वाला केवलं मन्त्रसंस्कृता ।
साचेदक्षतयोनिः स्यात् पुनःसंस्कारमर्हति ॥
(वसिष्ठस्मृति १७ । ७४)

इस पद्य में वसिष्ठ ने पति के मरजाने पर वालविधवा के पुनः संस्कार की आज्ञा दी है । अब जीवितावस्था में भी वसिष्ठ की सम्मति सुन लीजियेः–

कुलशीलविहीनस्य पण्डस्य पतितस्यच ।
अपस्मारि विधर्मस्य रोगिणो वेशधारिणः ।
दत्तानपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैवच ॥
([illegible]वसिष्ठवचन)

वसिष्ठ भी कात्यायन के समान उक्त दशाओं में दी हुई कन्या को छीन लेने की अनुमति देता है। जब अनेक स्मृतिकार दान की हुई कन्या को भी उक्त दशाओं में लौटाने की आज्ञा देते हैं, तब उसका पुनर्दान करने में माता, पिता और सम्बंधियों को कुछ आपत्ति न होनी चाहिये।

याज्ञवल्क्य।

याज्ञवल्क्य ने श्रेष्ठ वर की उपलब्धि में दी हुई कन्याको पूर्ववर से छीन लेने की जो अनुमति दी है, उसको हम मनुके प्रकरण में उद्धृत करचुके हैं। अब जिस वाक्य के द्वारा याज्ञवल्क्य ने क्षता और अक्षता दोनों प्रकार की कन्याओं के पुनर्विवाह की आज्ञा दी है जिसको मनुके भाष्यकार राघवानंद ने "साचेदक्षतयोनिःस्यात्" मनुके इस पद्य की टीका में उद्धृत किया है, उसको हम लिखते हैं :—

> अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।
> स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्।
> (याज्ञवल्क्य० १—६७)

इस पद्य में याज्ञवल्क्य ने पुनर्भू को (चाहे वह क्षता हो या अक्षता) पुनः संस्कार के योग्य माना है और जो विना संस्कार के दूसरे का आश्रय लेती है, उसको स्वैरिणी मानाहै। इससे सिद्ध है कि याज्ञवल्क्य की दृष्टि में पुनर्भू से स्वैरिणी भिन्न है। अन्यथा वह स्वैरिणी से उसको पृथक् न करता। आगे चलकर याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय के ऋणादान प्रकरण में उत्तरपति को पूर्वपति के ऋण का दायी ठहराता है :—

> रिक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैवच।
> पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य रिक्थिनः॥
> (याज्ञवल्क्य० २—५१)

अंशग्राही स्त्रीग्राही और पुत्र इन तीनपर मृत पुरुषके ऋण का दायित्व है, यदि पुत्र न हो तो अंशग्राही और स्त्रीग्राही उस का ऋण चुकावें। यदि याज्ञवल्क्य की दृष्टि में विधवा विवाह अवैध होता तो वह पूर्वपति के ऋणका भार उत्तर पतिपर क्यों रखता ? क्या अवैध सन्तान पर भी पिता के ऋण का भार होता है ? यदि नहीं होता तो फिर अवैध उत्तर पति को याज्ञवल्क्य ने क्यों पूर्वपति का ऋणदायी ठहराया ?

विष्णु

अक्षता के पुनःसंस्कार को विष्णु भी आज्ञा देता है :—

अक्षता भूयःसंस्कृता पुनर्भूः (विष्णु स्मृति अ० १५)

विष्णु स्मृति की केशव वैजयन्ती नाम्नी टीका में इसकी व्याख्या करता हुआ नंद पण्डित लिखता है-"अक्षता संस्कार-मात्रदूषिता पुनःसंस्कृता चेत्पुनर्भूः"। "केवल संस्कार से दूषित अक्षता पुनःसंस्कार की हुई पुनर्भू है।"

बोधायन।

अब हम बोधायन की सम्मति और लिखकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं:—

निसृष्टो वा हतो वापि यस्या भर्त्ता म्रियेत वा।
साचेदक्षत योनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन विधिना पुनःसंस्कारमर्हति ॥
(बोधायनस्मृति ४-१-१७)

बोधायन भी न केवल पति के मरने पर किन्तु निर्वासित होने पर भी अक्षता कन्या के पुन.संस्कार की आज्ञा देता है।

पाठक ! आपने देखलिया कि उक्त स्मृतिकारों ने किस उदारता और पितृवत्सलता से बालविधवाओं के पुनःसंस्कार की आज्ञा दी है। यदि यह आज्ञा किसी अंशमें सन्दिग्ध भी

हो।ी तौ भी न्याय यह कहता है कि उस सन्देह का लाभ अवाक् और निरपराध बालविधवाओं को मिलना चाहिये था। पर शास्त्रप्रवर्तक ऋषि महर्षियों की ऐसी असन्दिग्ध और स्पष्ट आज्ञा के होते हुवे भी उन्हीं ऋषियों की सन्तान आज अपनी बहनों और पुत्रियों के मानुषिक और स्वाभाविक स्वत्वों को कैसी अमनुष्योचित निर्दयता के साथ पैरों के नीचे कुचल रही है। हमारी समझमें नहीं आता कि जो लोग अपने आत्मीयोंके साथ धर्मके नामपर ऐसा निष्ठुर आचार जारी रख सकते हैं, वे आकाश पाताल एक करने पर भी कभी अपने को स्वायत्त शासन का अधिकारी सिद्ध कर सकेंगे?

अन्य प्रमाण।

अब हम कुछ ऋषियों के प्रमाण "सनातन धर्म" नामक पुस्तक में से जो स्वर्गीय डाक्टर मुकन्दलाल आगरा निवासी ने अपनी विधवा पुत्री का विवाह करने के निमित्त संग्रह की थी, उद्धृत करते हैं। उक्त डाक्टर महोदय ने ये प्रमाण दीवान बहादुर पं० रघुनाथ राव की पुस्तक से संग्रहीत किये हैं।*

पराशर।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

अत्रि।

नष्टे संन्यासमापन्ने व्याधिग्रस्ते च भर्तरि।
पुनः स्त्रीणां विवाहः स्यात्कलावपि न संशयः॥

गोतम।

मरणानन्तरं भर्त्तुर्यंक्षनाहतयोनयः।
स्त्रियो विवाहमर्हन्ति नात्र कार्या विचारणा॥

* खेद है कि मूल पुस्तक खोज करने पर भी हमको न मिली।

वैशंपायन।

पुरुषाणामिव स्त्रीणां विवाहा बहवो मताः।
भर्तृनाशे पुनः स्त्रीणां पुंसां पत्नीलये यथा॥

कश्यप।

आषोड़श वर्षो नार्यो कदिता मृतभर्त्तृका।
पुनर्विवाहमर्हन्ति न तत्र विशयो भवेत्॥

जाबालि।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः स्वकुलयोषिताम्।
पुनर्विवाहं कुर्वीरन्नन्यथा पापसम्भवः॥

अगस्त्य।

भर्त्रभावे वयः स्त्रीणां पुनः परिणयोमतः।
न तत्र पापं नारीणामन्यथा तद्गतिर्नहि॥

व्याघ्रपात्।

पत्निनाशे यथा पुंसो भर्त्तृनाशे तथा स्त्रियाः।
पुनर्विवाहः कर्त्तव्यः कलावपि युगे तथा॥

वसिष्ठ।

भर्तृसम्बन्धशून्यानां भर्तृनाशेतु योषिताम्।
पुनर्विवाहं कुर्वीत पापं नैव मनागपि॥

बृहस्पति।

अज्ञातभर्त्तृसम्बन्धा भवन्ति यदि योषितः।
गतप्रिया यदा तासां पुनः परिणयो भवेत्॥

विश्वामित्र।

अस्पृष्टलिङ्गयोनीनामाविंशति वयः स्त्रियाः।
पुनर्विवाहः कर्त्तव्यश्चतुर्ष्वपि युगेष्वपि॥

नारद।

उद्वाहितापि या कन्या नचेत्संप्राप्त मैथुना।
पुनःसंस्कारमर्हति यथा कन्या तथैव सा॥

च्यवन।

पूर्वं निषेकान्नारीणां मृते पत्यौ ततः परम्।
दशाहाभ्यन्तरे कुर्याद्विवाहन्तु पुनः पिता॥

मार्कण्डेय।

निषेकानन्तरं स्त्रीणां भर्त्तुर्भर्तृत्वमुच्यते।
पाणिग्रहणमात्रेण न भर्त्ता सर्वयोषिताम्॥

याज्ञवल्क्य।

आगर्भधारणात्स्त्रीणां पुनः परिणयः स्मृतः।
भर्त्तृनाशेतु माङ्गल्यं प्राप्तुमर्हन्ति योषितः॥

शौनक।

गर्भाधानविहीनानां स्त्रीणां कर्माधिकारिता।
भर्त्तृणां विषयेणैव क्रियमाणेषु तेष्वपि॥

पुराण और विधवाविवाह।

पुराणों का विस्तार बहुत बड़ा है। यह एक ऐसा सघन वन और अथाह समुद्र है कि इसमें ढूंढने वाले को सभीप्रकार की सामग्री मिल सकती है। पर हमारे पाठक अब ऊब गये होंगे, इसलिए अब हम इस विषय को बढ़ाना नहीं चाहते और न इसकी आवश्यकता ही समझते हैं। कतिपय प्रसिद्ध प्रमाण और उदाहरण देकर ही इस अध्याय को समाप्त करते हैं।

ब्रह्मपुराण।

यदि सा बालविधवा बलात्यक्ताऽथवा क्वचित्।
तदा भूयस्तु संस्कार्या गृहीत्वा येन केनचित्॥

(वीरमित्रोदयधृत ब्रह्मपुराणवचन)

देखिए पाठक !! ब्रह्मपुराण के इस पद्य में बालविधवाही नहीं, किन्तु बलपूर्वक पतिसे त्याग की हुई स्त्री के भी पुनः संस्कार की कितनी स्पष्ट आज्ञा दीगई है।

अग्निपुराण।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवेच पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।
देवराय मृते देया तदभावे यथेच्छया॥
(अग्निपुराण अध्याय १५४)

अग्निपुराण के उक्त वचन में भी पराशरोक्त पांच दशाओं में पुनर्विवाह की आज्ञा दीगई है और इतना विशेष है कि पति के मरजाने पर देवर को देनी चाहिये, उसके अभाव में यथेच्छ किसी अन्य को।

पद्मपुराण।

विवाहो जायते राजन् कन्यायास्तु विधानतः।
पतिर्मृत्युं प्रयात्यस्या नोचेत्सङ्गं करोतिच॥
महाव्याध्यभिभूतश्च त्यागं कृत्वा प्रयाति वा।
उद्वाहितायां कन्यायानुद्वाहः क्रियते बुधैः॥
(पद्मपुराण भूमिखण्ड अ० ८५)

पद्मपुराण के इन पद्यों में कितनी स्पष्टता से विधवा विवाह का विधान कियागया है, न केवल पति के मरने पर किन्तु रोगग्रस्त और प्रवासित होने पर भी। इसप्रकार स्मृतियों के अन्यवचन भी कहीं उसी रूप में कहीं कुछ पाठभेद के साथ पुराणों में आते हैं, विस्तारभय से हम यहां उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं। अब हम एक प्रमाण तन्त्रशास्त्र का भी उद्धृत करके इस विषय को समाप्त करते हैं।

महानिर्वाणतन्त्र।

षण्ढेनोद्वाहितां कन्यां कालातीतेऽपि पार्थिवः।
जानन्नुद्वाहयेद्भूयो विधिरेषः शिवोदितः॥
परिणीता न रमिता कन्यका विधवा भवेत्।
साप्युद्वाह्या पुनः पित्रा शैवधर्मेष्वयं विधिः॥
(महानिर्वाण तन्त्र उल्लास ११ पद्य ६६-६७

पाठक! तन्त्रशास्त्र में महानिर्वाणतन्त्र प्रधान मानाजाता है। उसके उक्त वचनों में पति के नपुंसक होने अथवा मरजाने पर स्त्रीके लिए पुनर्विवाह की आज्ञा दीगई है। नपुंसक होने की दशा में राजा को और पति के मरजाने पर पिता को जो विवाह कराने का अधिकार दिया गया है, उसका कारण यह है कि यदि पतिके नपुंसक होनेपर भी पिता को अधिकार दिया जाता तो पति आपत्ति करसकता था। न्यायालय से परीक्षा होकर जब यह सिद्ध होजायगा कि वह विवाह करने के अयोग्य है, तब उसका कोई दावा नहीं चल सकता।

ऐतिहासिक उदाहरण।

अब हम कुछ ऐतिहासिक उदाहरण देकर पहले अध्याय को समाप्त करते हैं। पहला उदाहरण अर्जुन और उलोपी के पुनर्विवाह का है, जिसका वर्णन महाभारत के भीष्म पर्व में इस प्रकार किया गया है:—

> अर्जुनस्यात्मजः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान्।
> सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता॥
> ऐरावतेन सादत्ता ह्यनपत्या महात्मना।
> पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना॥
>
> (महाभारत भीष्मपर्व अ० ९१)

इससे सिद्ध है कि नागराज ऐरावत ने अपनी विधवापुत्री का जिसके पति को सुपर्ण ने युद्ध में मारडाला था, अर्जुन के साथ विवाह किया था और उससे अर्जुन का इरावान् नाम पुत्र उत्पन्न हुवा, जिसको इसी अध्याय के ८२ पद्य में औरस पुत्र लिखा है। यदि विधवाविवाह अधर्म और अशास्त्रीय होता तो अर्जुन जो देवव्रत भीष्म का पौत्र, धर्मरक्षक भगवान् कृष्ण का सखा और धर्मावतार युधिष्ठिर का

भ्राता था, कदापि उसके करने का साहस न करता और न भगवान् व्यास इरावान् को अर्जुन का औरस पुत्र लिखते।

दूसरा उदाहरण राजा नल की पत्नी दमयन्ती के स्वयंवर का है, जिसका वर्णन महाभारत के वनपर्व में इस प्रकार किया गया है:—

गत्वा सुदेव नगरीमयोध्यावासिनं नृपम्।
ऋतुपर्णं वचो ब्रूहि सम्पतन्निव कामगः॥
आस्थास्यति पुनर्भैमी दमयन्ती स्वयंवरम्।
तत्र गच्छन्ति राजानो राजपुत्राश्च सर्वशः॥
तथा च गणितः कालः श्वोभूते सभविष्यति।
यदि सम्भावनीयं ते गच्छ शीघ्रमरिन्दम॥
(महाभारत वनपर्व १७। २३-२४-२५)

इसपर विधवाविवाह के विपक्षी शायद यह कहें कि दमयन्ती के पुनः स्वयम्वर की घोषणा पुनर्विवाह के लिये न थी, किन्तु नल को प्राप्त करने की एक चाल थी। फिर इस उदाहरण को पुनर्विवाह की पुष्टि में क्यों प्रस्तुत किया जाता है? यह ठीक है कि राजा भीम ने दमयन्ती का स्वयंवर इसी उद्देश्य से रचा था। पर स्वयंवर का रचा जाना और उसमें देश के अनेक राजाओं का यह जानते हुवे कि दमयन्ती का यह दूसरा स्वयंवर है, सम्मिलित होना, इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि उस समय विवाहिता स्त्रियों के पुनर्विवाह की रीति समाज में प्रचलित थी। यदि यह रीति द्विजों में प्रचलित न होती तो राजा भीम जैसे क्षत्रियवर्य अपनी सन्तान वाली पुत्री के लिए ऐसे गर्हित और शास्त्रविरुद्ध उपाय को कभी काममें न लाते और न राजा ऋतुपर्ण जैसे धर्मात्मा जो मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के वंशज थे, इस धर्मविरुद्ध समारम्भ में न केवल दर्शक होकर किन्तु वर बनने की आशा से सम्मि-

लित होते। क्योंकि जितने भी राजपुत्र इस स्वयंवर में निमन्त्रित होकर आये थे, वे सब इसको सच्चा स्वयंवर ही समझकर आये थे और यह बात भी किसी से छिपी हुई न थी कि दमयन्ती का यह दूसरा स्वयंवर है और वह सन्तान वाली है इससे सिद्ध है कि उस समय केवल पति के मरने पर ही नहीं किन्तु प्रवासित होने पर भी द्विजों में पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

तीसरा उदाहरण सप्तद्वीप के राजा दिवोदास की पुत्री दिव्यादेवी का है, जिसका विवाह उसके पिता ने ब्राह्मणों की अनुमति से २१ वार किया। दैव दुर्विपाक से लगातार उसके पति मरते गये। २१वें पति के मरजाने पर भी उसने साहस नहीं छोड़ा और उसका स्वयंवर रच डाला। आखिर उसके पौरुष के सामने दैव को ही हार माननी पड़ी।

(देखो पद्मपुराण भूमिखण्ड अध्याय ८५)

चौथा उदाहरण पतिव्रताओं में शिरोमणि तारा का है, जिसने अङ्गद पुत्र के होते हुवे सुग्रीव के साथ जो श्रीरामचन्द्र महाराज का अनन्यभक्त और सखा था, पुनर्विवाह किया। यदि पुनर्विवाह अवैध होता तो क्या सुग्रीव आज हिन्दूसमाज में भक्तशिरोमणि और तारा पतिव्रताओं में मुख्य पञ्च कन्याओं में मानी जाती। (देखो वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड सर्ग ३२)

पांचवां उदाहरण मालवे के एक गृहस्थ ब्राह्मण का है जिसने अपनी पुत्री का विवाह उत्तरोत्तर दस पतियों के साथ किया, पुत्री के दौर्भाग्य से वे सब मरते गये, तब वह निराश होगया। एक दिन एक रूपवान् युवा पुरुष उसका अतिथि हुआ, इस युवा अतिथि को देखकर उसकी पुत्री इसपर आसक्त

होगई। तब उसने पिता से इस ग्यारहवें पति के साथ विवाह कर देने के लिये कहा। पिता ने उसको समझाया कि तेरा भाग्य अच्छा नहीं है, अब तू विवाह का नाम मतले. पुत्री ने नहीं माना और विवाह के लिए आग्रह किया, तब लाचार होकर पिता ने यह ग्यारहवां विवाह भी कर दिया। विवाह के पश्चात् उसका यह ग्यारहवां पति भी मृत्यु का ग्रास हुवा। इसके पश्चात् वह बारहवां विवाह और भी करती, पर लज्जा के मारे अब उसका साहस न हुआ और वह योगिनी बनगई।

(देखो कथासरित्सागर तरङ्ग ६६)

सम्भव है कि तीसरा और पांचवां उदाहरण दैववादियों को यह विश्वास दिलाने के लिए दिया गया हो कि भाग्य के सामने पुरुषार्थ की कुछ नहीं चलती। चाहे किसी उद्देश्य से पद्मपुराण और कथासरित्सागर में इनका उल्लेख कियागया हो, पर इनसे यह तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि भाग्य-वादियों ने भी पुरुषार्थ की यथासमय परीक्षा की है, चाहे उसमें सफलता हुई हो वा न हुई हो।

छठा उदाहरण मेवाड़ के प्रसिद्ध राना हम्मीर का है; जिसने दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी की सेना को परास्त करके चित्तौड़ पर पुनः अपना अधिकार जमाया था। इस प्रतापी राना ने सरदार मालदेव की (जो बादशाह की ओर से चित्तौड़ का शासक नियत किया गया था) विधवा पुत्री से अपना विवाह किया। यद्यपि यह विवाह मालदेव ने राना को धोखा देकर उसके साथ किया, तथापि पीछे राना को मालूम होजाने पर उसने उसको अस्वीकार नहीं किया और मालदेव की वह विधवा कन्या राना की प्रियपत्नी हुई और उसी की सहायता से राना ने चित्तौड़ का मालदेव के हाथ से

उद्धार किया। (देखो टाडराजस्थान का सार शिवव्रतलालकृत पृ०६४-६५-६६)

सातवां उदाहरण परशुराम भाऊ पटवर्धन का है। ये महाराष्ट्र के कुलीन ब्राह्मण थे, इनकी कन्या ८ वर्ष की उमर में विधवा होगई। इन्होंने राज पण्डित रामशास्त्री से व्यवस्था लेकर एक कुलीन ब्राह्मणके साथ उसका पुनर्विवाह करदिया।

(देखो महाराष्ट्र का इतिहास)

इत्यादि अनेक प्राचीन तथा अर्वाचीन ऐतिहासिक उदाहरण विधवाविवाह की पुष्टि में मौजूद हैं।

दूसरा अध्याय।

आक्षेप और उनका समाधान।

शास्त्र के आधार पर किये जाने वाले आक्षेप।

अब हम उन आक्षेपों की कुछ पड़ताल करना चाहते हैं जो विधवाविवाह के विपक्षी इसके विरुद्ध किया करते हैं और यह देखना चाहते हैं कि उनके आक्षेप और तर्क कहां तक युक्ति और शास्त्र के अनुकूल हैं ? वे आक्षेप दो प्रकार के हैं एक तो वे जो शास्त्र के आधार पर किये जाते हैं, दूसरे वे जो युक्ति वा रूढि का आश्रय लेकर किये जाते हैं। पहले हम शास्त्र की आड़ लेकर किये जाने वाले आक्षेपों की जांच करेंगे उस आक्षेप का (जिसके द्वारा वे इसको शास्त्रविरुद्ध बतलाकर सर्वसाधारण की शास्त्र पर श्रद्धाका अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं) समाधान हम पहले अध्याय में सप्रमाण और सविस्तर कर चुके हैं। अब अन्य आक्षेप जो उनकी ओर से किये जाते हैं, उनकी बानगी भी पाठकों को दिखलाते हैं।

कलियुग का पचड़ा।

पहला आक्षेप उनका यह है कि चाहे अन्य युगों में विधवा विवाह निषिद्ध नहो, पर कलियुग में।उसका निषेध होने से वह निन्दनीय है। जब उनसे पूछा जाता है कि इसको कलिनिषिद्ध किसने ठहराया है ? तब वे बृहन्नारदीयपुराण के निम्नलिखित वचन प्रमाण में प्रस्तुत करते हैं:—

समुद्रयात्रास्वीकारः कमण्डलु विधारणम्।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा॥

देवरेण सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः।
मांसादनं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा॥
दत्तायाश्चैव कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च।
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ॥
महाप्रस्थान गमनं गोमेधञ्च तथा मखम्।
इमान्धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः॥
(पराशरभाष्योद्धृत बृहन्नारदीय पुराणवचन)

इसीसे मिलती जुलती एक सूची आदित्यपुराण में भी दी गई है और माधव ने पराशर भाष्य में निम्नलिखित क्रतु का वचन भी उद्धृत किया है:—

देवरान्न सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते।
न यज्ञे गोवधः कार्यः कलौ न च कमण्डलुः॥

समीक्षा—यह स्मृति और पुराण का विरोध नहीं कहा जा सकता। क्योंकि "दीहुई वस्तु का पुनर्दान नहीं करना चाहिए" यह सामान्य आज्ञा है. जिसको उत्सर्ग कहते हैं। यदि इसका कोई अपवाद न हो तो निःसन्देह यह आज्ञा पालनीय है। परन्तु इस सामान्य आज्ञा से यह समझना कि यह सब दशाओं में निरपवाद और निरवकाश है, भारी भूल है। यदि ऐसा होता तो नारद अपनी स्मृति में इसके १६ अपवाद न लिखता और याज्ञवल्क्य तथा शातातप आदि स्मृतिकार दान की हुई कन्या को अयोग्य वर से छीनकर योग्यवर को पुनर्दान करने की व्यवस्था न देते। जैसाकि हम पूर्व अध्याय में दिखला चुके हैं।

लोक और शास्त्र दोनों में विधि और निषेध के अपवाद होते हैं, उनको छोड़कर ही उत्सर्ग की प्रवृत्ति होती है। लोक में—जैसे किसी ने कहा कि "नित्य व्यायाम करना चाहिए" इसका यह अर्थ नहीं है कि जब हमारा शरीर अस्वस्थ हो तब भी हमारे लिये व्यायाम आवश्यक है ऐसे ही यदि कोई

किसी से कहे कि 'किसी पर कभी हाथ न चलाओ" तो इसका यह आशय कदापि नहीं होसकता कि हम आततायी का भी निवारण न करें। इसी प्रकार शास्त्र की आज्ञा है "सत्यं ब्रूयात्" इसीका अपवाद उसमें मौजूद है। "नब्रूयात्सत्यमप्रियम्" तथा शास्त्र में निषेध किया गया है। "माहिंस्यात्सर्वाणि भूतानि" इसका अपवाद भी उसी शास्त्र में मौजूद है। "अश्वमेधेन यजेत, पशुना रुद्रं यजेत।" इत्यादि

अतएव इन पुराण वचनों में जो बातें कलिनिषिद्ध कही गई हैं, यदि इससमय उनका कोई अपवाद न हो, तब तो उनके मानने में कोई आपत्ति नहीं है। जैसे कि मधुपर्क में पशु का मारना, नरमेध, गोमेध और अश्वमेध यज्ञ, श्राद्ध में मांस भोजन, नियोग और महाप्रस्थान। ये बातें चाहे पूर्वकाल में यहां बुरी न समझी जाती हों और कहीं कहीं प्रचलित भी हों, पर आजकल की हिन्दूसभ्यता कदापि इनका अनुमोदन नहीं करसकती। यदि इनका किसी शास्त्र में विधान भी हो तो भी आजकल की स्थिति में इनका प्रचार अवाञ्छनीय है और हम समझते हैं कि इसीलिए इनको कलिवर्ज्य कहकर इनसे हमारा पिण्ड छुड़ाया गया है। पर समुद्रयात्रा, संन्यासधारण, वानप्रस्थाश्रम, असवर्णविवाह, पुनर्विवाह और दीर्घकालिक ब्रह्मचर्य, इनको भी उसी सूची में शामिल करना, चाहे उस समय की स्थिति के विरुद्ध न हो, पर आजकल की परिस्थिति में किसी जाति को इनसे रोकना उसकी जड़ पर कुल्हाड़ा मारना है और यही कारण है कि कहीं कहीं इनका आंशिक निषेध होते हुवे भी ये आजतक वर्जित न होसके और न हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त जब शास्त्रों में ही इनके अनेक अपवाद भी विद्यमान हैं, तथा लोकाचार भी इनका पोषण

करता है, तब कलिवर्ज्य कहकर इनको निषिद्ध ठहराना शास्त्र का केवल कुरुपयोग करना है।

दूसरे यदि हम इन पुराण वचनों के अनुसार विधवाविवाह को कलिवर्ज्य मान भी लें तब भी जब श्रुति और स्मृतियों में उसका प्रतिपादन किया गया है, जैसा कि पहले अध्याय में दिखलाया जाचुका है। उसके मुक़ाबले में इन एक या दो पुराण वचनों का कुछ मूल्य नहीं होसकता, यह बात हम नहीं कहते, किन्तु अष्टादश पुराणों के कर्ता व्यासजी महाराज महाभारत में स्वयं इसकी व्यवस्था देते हैं:—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥

अतएव इस आर्षव्यवस्था के अनुसार ही श्रुति स्मृति प्रतिपादित विधवाविवाह के निषेध में ऐसे वचन कदापि पर्याप्त नहीं होसकते।

तीसरे अच्छा अब हम यह भी देखना चाहते हैं कि जिन आचारों को इन पुराणवचनों में कलिनिषिद्ध ठहराया गया है कलियुग के आरम्भ से लेकर अबतक इस देश के कुलीन और द्विज लोगों ने कहां तक उनको अपने आचरण में वर्जित किया है।

प्रथम अश्वमेध हीको लीजिये—पाण्डवों का जो कलियुगारम्भ होने के ६५० वर्ष बाद हुवे, अश्वमेध यज्ञ और उसके लिए दिग्विजय करना एक ऐसी प्रसिद्ध बात है कि महाभारत से लेकर अनेक पुराणों तक में इसका सविस्तर वर्णन किया गया है। यदि वह कलिवर्ज्य था तो क्यों युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा ने इसका अनुष्ठान और कृष्ण जैसे महात्मा ने इसका अनुमोदन किया? क्या ये लोग धर्मशास्त्र की आज्ञा से अनभिज्ञ थे?

इनको भी जाने दीजिए। राजा शूद्रक ने जो विक्रमादित्य से कुछ पहले हुआ है, अश्वमेध हो नहीं, किन्तु महाप्रस्थान भी किया:—

> ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
> ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ॥
> राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
> लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ॥
> (देखो मृच्छकटिक नाटक की प्रस्तावना)

इस लेख के अनुसार राजा शूद्रकने एक ही नहीं, किन्तु अश्वमेध और महाप्रस्थान दो कलिवर्ज्य आचारों का अनुष्ठान किया। और भी देखिए, कटक के राजा प्रवरसेन ने चार बार अश्वमेध किया:—

"चतुरश्वमेध याजिनः विष्णुवृद्धसगोत्रस्य सम्राजः काठकानां राज्ञः श्री प्रवरसेनस्य" (जनरल एशियाटिक सोसाइटी नवेम्बर १८७६ पृ० ७२८)

कौन नहीं जानता कि भगवान् बुद्ध के पहले यहां सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ होते थे और यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि वैदिक यज्ञ और उनकी हिंसा ही यहां बौद्धमत की उत्पत्ति और प्रचार का कारण हुई। तो क्या ये सब राजे महाराजे तथा ब्राह्मण और पुरोहित वर्ग, जिन्होंने कलियुग में अश्वमेध यज्ञ किये वा कराये, शास्त्र से अनभिज्ञ और पापभागी थे? कदापि नहीं, ऐसा कहना मूर्खता और पाप है।

दूसरे अब समुद्र यात्रा को लीजिए, यह भी यहां न पहले वर्जित थी और न अब। वैदिक काल में यहां अनेक प्रकार के पोत युद्ध और व्यापार के लिए चलते थे, जिनका वर्णन ऋग्वेद के कई सूक्तों में शतारित्रा और खरित्रा आदि नामों से आया है। इसको भी जाने दीजिए, काश्मीर के राजा मिहिर

कुल ने सिंहलद्वीप (लंका) के राजा की पुत्री से विवाह किया था और उसकी चोली में उसके पिता का पादचिन्ह देख कर वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपनी सेना लेकर समुद्र मार्ग से लंका पर चढ़ गया।

इसका वर्णन राजतरङ्गिणी के प्रथम तरङ्ग में इस प्रकार किया गया है:—

> सजातु देव्याः संवीतसिंहलाशुककञ्चुकाम्।
> हेमपादाङ्कितकुचां दृष्ट्वा जज्वाल मन्युना॥
> सिंहलेषु नरेन्द्रांघ्रिमुद्राङ्कः क्रियते पटः।
> इति कञ्चुकिना पृष्टेनोक्तो यात्रां व्यधात्ततः॥
> स सिंहलेन्द्रेण समं संरम्भादुदपाटयत्।
> चिरेण चरणस्पृष्ट प्रियाशोकरुजां रुषम्॥
> (राजतरंगिणी १। २९६-२९७-२९८)

इसके पश्चात् काश्मीर के दूसरे राजा जयापीड़ ने जहाज़ पोत द्वारा पश्चिम और दक्षिण समुद्रों में ससैन्य यात्रा की थी। इसका वर्णन राजतरंगिणी के चतुर्थ तरंग में सविस्तर दिया हुआ है। यदि समुद्रयात्रा कलिवर्ज्य होती तो ये नृपगण विदेशोंमें क्यों जाते? दूर क्यों जाते हो, अबतक हजारों लाखों उच्च कुलाभिमानी हिन्दू जगन्नाथ, रामेश्वर और द्वारिका के दर्शनार्थ समुद्रयात्रा करते हैं, उनसे कोई नहीं कहता कि तुम क्यों शास्त्रविरुद्ध आचार क्यों करते हो? प्रत्युत ऐसे लोग हिन्दू समाज में बड़े धर्मात्मा समझे जाते हैं। अभी थोड़े दिन की बात है, हिन्दु धर्म रक्षक श्रीमान् महाराजा जयपुर अपने पण्डितों और पुरोहितों को भी साथ लेकर यूरोप की यात्रा कर आये थे और स्वर्गीय श्रीमान् पं० बालगंगाधर तिलक जो सनातन धर्म के भूषण थे मृत्युसे कुछ दिन पूर्व यूरोप

यात्रा कर आये थे। क्या इन लोगों का यह काम शास्त्र विरुद्ध था?

तीसरे असवर्ण विवाह को भी कलिवर्ज्य की सूची में रक्खा है। यद्यपि स्मृतियों में और पुराणों में भी सवर्ण विवाह को श्रेष्ठ माना गया है तथापि असवर्ण विवाह का विधान उनमें बराबर मौजूद है। अनुलोम विवाह की तो सब स्मृतिकार एक स्वर से पुष्टि करते हैं, पर पुराणों में कहीं २ प्रतिलोम विवाह के भी उदाहरण मिलजाते हैं। दूर क्यों जाते हो, राजा 'भरत' जिसके नाम से इस देश का नामकरण 'भारत' हुवा है, इसी प्रतिलोम विवाह का फल था। सब जानते हैं कि कण्व पुत्री शकुन्तला ब्राह्मणी और भरत का पिता दुष्मन्त क्षत्रिय था। रही रिवाज और क़ानून की बात, सो ये दोनों समाज के हाथ में हैं। समाज अपनी दशा के अनुसार सदा रिवाज चलाता और क़ानून बनाता है। रिवाज और क़ानून के अनुकूल न होते हुवे भी हिन्दू अब धड़ाधड़ असवर्ण विवाह कर रहे हैं भारतीय कौंसिल में भी डाक्टर गौड़ का बिल पास होचुका है, तो क्या इसकी प्रगति को अब हम कलिवर्ज्य कहकर रोक सकते हैं? निदान जब पूर्वकाल में भी जबकि हमारा जातीय क्षेत्र बहुत ही संकुचित था और अन्य जातियों से विशेष सम्बन्ध न था, हम विजातीयों के संसर्ग से न बच सके और हमको विवश होकर आर्य और द्विजों के संघ (जिनमें क्रमशः चार और तीन वर्ण शामिल हैं) बनाने पड़े, तो क्या अब इस विक्रम के बीसवें शतक में, जबकि जातियां परस्पर मिलकर राष्ट्र और महाराष्ट्र बनारही हैं, हम स्वदेश बान्धवों को भी अपना मित्र न बना सकेंगे?

चौथे अब रहा दीर्घकालिक ब्रह्मचर्य। कौन नहीं जानता कि देवव्रत भीष्म ने जो कलियुग में हुवे, आजन्म ब्रह्मचर्य धारण किया। क्या भीष्म जैसे धर्मप्रवक्ता से यह आशा की जासकती थी कि उन्होंने जानबूझकर शास्त्र की आज्ञा का उपमर्द किया? इसके अतिरिक्त पुराणों और इतिहासों में शतशः कुमार और कुमारियों का वर्णन आता है, जिन्होंने दीर्घकाल की तो कथा ही क्या है? आजन्म ब्रह्मचर्य धारण किया। कौन नहीं जानता कि सनत्कुमार, शुकदेव और दत्तात्रेय आजन्म ब्रह्मचारी रहे। पुरुष तो पुरुष स्त्रियाँ भी आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करती थीं। महाभारत में सुलभा ब्रह्मचारिणी का वर्णन है, जो राजा जनक से कहती है;—

> सांहं तस्मिन्कुले जाता भर्त्तर्यसति मद्विधे।
> विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥
>
> (शान्तिपर्व अ० ३२१)

इनको भी जाने दीजिये, राजा सुवस्तु ने श्रीहर्ष नामक जो शिव का मन्दिर वैक्रम संवत् १०१८ में बनवाया था, उसके पत्थर में यह पद्य खुदा हुवा है:—

> आजन्म ब्रह्मचारी दिगमलवसनः संयतात्मा तपस्वी
> श्रीहर्षाराधनैकव्यसनशुभमतिस्त्यक्त संसारमोहः।
> आसीद्यो लब्धजन्मा नवतरवपुषां सत्तपः श्रीसुवस्तु-
> स्तेनेदं धर्मवित्तैः सुघटितविकटं कारितं हर्षहर्म्यम्॥
>
> (जनरलएशियाटिकसोसाइटी जुलाई १८३५ पृ० ३७८)

इससे प्रकट है कि विक्रम की दसवीं शताब्दी तक यहां न केवल ब्राह्मण लोग, किन्तु राष्ट्रपति क्षत्रिय लोग भी आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करते थे। आजकल भी बहुत से नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते हैं, जो हिन्दूसमाज में बड़े पवित्र और श्रेष्ठ समझे जाते हैं। यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जो लोग

शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करें, वे ही हिन्दूसमाज में पुनीत और श्रेष्ठ समझे जावें ?

इसके अतिरिक्त यह कैसी विचित्र बात है कि इधर तो कलियुग में दीर्घकाल के ब्रह्मचर्य का निषेध किया जाता है, उधर विधवाविवाह भी कलिनिषिद्ध ठहराया जाता है। अब बतलाइये, कलियुगमें बिचारी विधवायें क्याकरें? यदि कहोकि पतिका अनुगमन करें। प्रथम तो इसमें शास्त्रों का मतभेदहै, कोई शास्त्र इसकी आज्ञा देते हैं और कोई निषेध करते हैं। यदि हम विरोध की उपेक्षा करके यही मानलें कि सब शास्त्र अनुगमन की आज्ञा देते हैं, तो भी जब यह राजनियम के विरुद्ध है, तब हज़ार शास्त्र की आज्ञा होते हुवे भी हम इसका पालन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। कैसी विचित्र समस्या है ? शास्त्र तो इनको ब्रह्मचर्य और विवाह दोनों से रोकता है, राजनियम इनको मरने से रोकता है। पाठक ! अब आप ही बतलाइये कि वह चौथी कौनसी गति है ? जिसका ये निरपराध बालविधवायें अवलम्बन करके अपने दुःसह जीवन को व्यतीत करें।

यदि स्वर्ग से साक्षात् देवगुरु बृहस्पति भी आकर किसी से यह कहें कि तुम्हारे लिए एक ही समय में ब्रह्मचर्य और विवाह दोनों बातें निषिद्ध हैं, तो उनकी इस बातपर लोग हंसे बिना न रहेंगे और कहेंगे कि इनका मन स्वस्थ और बुद्धि ठिकाने नहीं है। पर कैसे आश्चर्य का स्थान है कि आज डारविन के विकासवाद और स्पेन्सर के अज्ञेयवाद को चुटकियों में उड़ाने वाले, ऐसे परस्पर विरुद्ध और उन्मत्तजल्पित प्रमाणाभासों के आधार पर लाखों बालविधवाओं के जीवन को कण्टकाकीर्ण बनारहे हैं। अतएव न्याय और विवेक दोनों यह कहते हैं कि इन कलिवर्ज्य वाक्यों में से एक को अवश्य

निकालना पड़ेगा। यदि विधवा विवाह को इस सूची में रखना चाहते हैं तो ब्रह्मचर्य को इससे पृथक् करना होगा और यदि ब्रह्मचर्य को इसमें रखना चाहते हैं, तो विधवा-विवाह को इसमें से अलग करना होगा। यह कदापि नहीं होसकता कि ये दोनों एक साथ इस सूची में रहसकें। क्योंकि ब्रह्मचर्य के निषेध से विवाह और विवाह के निषेध से ब्रह्मचर्य का विधान स्वयमेव होजाता है।

पांचवां संन्यास भी कलिवर्ज्य की सूची में रक्खागया है। अब प्रश्न यह है कि इन पुराण वचनों के अनुसार यदि संन्यास का धारण करना कलियुग में निषिद्ध है तो सब से पहिले वैदिकधर्म के प्रवर्त्तक भगवान् आदि शङ्कराचार्य ने जिनकी लोकोत्तर विद्वत्ता और योग्यता का सब हिन्दू परम आदर करते हैं, क्यों संन्यास धारण किया ? क्या श्री १०८ स्वामी शंकराचार्य कलियुग में नहीं हुवे और फिर आजतक उनकी इस शास्त्रविरुद्ध परिपाटी का उनके उत्तराधिकारी चारों मठों के आचार्य और उनकी अनेक शाखायें क्यों अनुसरण करती हैं ? अतः पश्चात् श्रीस्वामी रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, विद्यारण्य, परमहंसस्वामी रामकृष्ण, स्वामी तैलङ्ग, स्वामी भास्करानन्द और स्वामी विशुद्धानन्द आदि अनेक गण्यमान्य पुरुषों ने इस शास्त्रविरुद्ध आचार का क्यों आजीवन पालन किया ? क्या ये महात्मा कलियुग में नहीं हुवे ? यदि हुवे हैं तो इन्होंने क्यों कलिवर्ज्य आचार को ग्रहण करके पुराण के इन वचनों का अनादर किया ?

एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि हिन्दू शास्त्र के अनुसार केवल ब्राह्मण ही संन्यास लेने के अधिकारी हैं। आजतक जितने प्रसिद्ध संन्यासी हुवे हैं, वे सब ब्राह्मण थे।

ब्राह्मणों का काम प्रत्येक युग में धर्म की मर्यादा को स्थापन करना है, नकि तोड़ना। परन्तु यह आश्चर्य्य की बात है कि कलियुग में निषिद्ध संन्यास को धारण करके सब से पहले पूज्य ब्राह्मणों ने ही धर्म की मर्यादा को तोड़ा, फिर अन्य वर्ण उसका पालन कैसे कर सकते हैं ?

अब हम विधवाविवाह को कलिवर्ज्य कहने वालों से पूछ सकते हैं कि जब आप लोगों ने इन पुराणोक्त कलिनिषिद्ध आचारों को कलियुग के लिए न केवल स्वीकार किया है, किन्तु धर्म का अङ्ग मानलिया है, तब एक विधवाविवाह ने ही ऐसा क्या अपराध किया है कि जिसकी सब से अधिक आवश्यकता होते हुवे भी आप अभी तक वही कलिवर्ज्य का राग अलापे जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि आप विधवा-विवाहपर कुछ दया या रिआयत करें,पर यहकहाँ का न्याय है कि जिस क़ानून में एक साथ चार बातें निषिद्ध ठहराईगई हैं, उनमें से दो को तो आप अलग करदें और दो के लिए उस क़ानून को लागू रक्खें। यदि उस क़ानून को आप आवश्यक समझते हैं, तो जिन बातों का उसमें निषेध कियागया है, उन सब के लिए उसका प्रयोग होना चाहिए। अन्यथा यदि एक बात के लिएभी आप उसे ढीला करदेंगे तो फिर दूसरी बातों के लिए वह स्वयं ढीला पड़जायगा।

विवाह की छूत।

दूसरा आक्षेप यह कियाजाता है कि शास्त्रों में पुरुष को ऐसी कन्या के साथ विवाह करने की आज्ञा दीगई है, जो विवाहिता न हो। इस पर विपक्षी याज्ञवल्क्य का यह प्रमाण प्रस्तुत करते हैं :-

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १।५२)

समीक्षा—याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारों ने विवाह से पहले वर और कन्या की परीक्षा करना लिखा है। यदि हम लोग इसपर ध्यान देते तो आज हमारे गृहस्थाश्रम की यह दुर्दशा न होती। पर हमने तो शपथ ली हुई है कि अच्छी बातों के लिए शास्त्र की निर्विवाद आज्ञा भी न मानेंगे। पर बालविधवाओं का जीवन व्यर्थ बनाने में हम अर्थ का अनर्थ करने में भी त्रुटि नहीं करेंगे। याज्ञवल्क्य ने प्रस्तुत पद्य में उस ब्रह्मचारी को जिसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट नहीं हुआ है, कुमारी से विवाह करने की आज्ञा दी है, इस से सिद्ध है कि वह पुरुष जिसका ब्रह्मचर्यव्रत भङ्ग होचुका है, याज्ञवल्क्य की दृष्टि में कदापि कुमारी के साथ विवाह करने का अधिकारी नहीं है। बड़े आश्चर्य की बात है कि यह वाक्य उन बालविधवाओं के विरुद्ध प्रस्तुत कियाजाताहै, जो यह भी नहीं जानतीं कि पति किसको कहते हैं और विवाह क्या वस्तु है? पर इसके द्वारा एक ६० वर्ष का बूढ़ा जो चार कुमारियों की भेंट लेचुका है, पाँचवीं कुमारी से विवाह करने का अपना अनिवार्य स्वत्व समझता है। यदि इसके अनुसार कन्याओं के लिए विवाह की छूत मानी जाये तो पुरुष भी कदापि उस छूत से न बच सकेंगे। क्योंकि इसमें जहां कन्या के लिए 'अनन्यपूर्विका' विशेषण दियागया है, वहां पुरुष को भी 'अविप्लुतब्रह्मचर्य' के विशेषण से अलंकृत कियागया है। यदि भ्रष्ट ब्रह्मचर्यों का विवाह और वह भी कुमारी कन्याओं के साथ इसके विरुद्ध नहीं, तो ऐसी बालविधवाओं के विवाह को जिनका ब्रह्मचर्य

भी सुरक्षित है, ब्रह्मा भी इसके विरुद्ध सिद्ध नहीं करसकता। शास्त्रकारों ने विवाह से पहले जहां कन्या की परीक्षा करना लिखा है, वहां वर को भी इससे मुक्त नहीं किया। देखो आगे चलकर याज्ञवल्क्य ही वर की परीक्षा के विषय में क्या लिखता है :—

एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः।
यत्नात परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः॥
(याज्ञवल्क्य० १५५)

इस पद्य में याज्ञवल्क्य स्पष्ट लिखता है कि उन्हीं गुणों से जो स्त्री में होने चाहियें, वर भी युक्त हो। अतएव याज्ञवल्क्य का उक्त पद्य केवल कुमारों को कुमारी से विवाह करने की आज्ञा देता है। इस धींगाधींगीको तो देखिए !! आज वे लोग जो अपने ब्रह्मचर्य को नष्ट करके कुमारियों का पाणिग्रहण करते हैं, इसको विधवाविवाह के खण्डन में प्रस्तुत करते हैं, क्या इससे अधिक और कोई इस वचन का अनर्थ हो सकता है? याज्ञवल्क्य के इस कथन की पुष्टि बोधायन भी करताहै:—

श्रुतशीलिने विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने देया।
(स्मृतितत्त्वधृतबोधायनवचन)

इसी की व्याख्या में "स्मृतितत्त्व" प्रणेता पं० रघुनन्दन भट्टाचार्य जो वङ्गदेश में स्मृतिशास्त्र के अन्यतम विद्वान् हुवे हैं, लिखते हैं :—

"ब्रह्मचारिणे अजातस्त्रीसंपर्काय, जातस्त्रीसंपर्कस्य द्वितीयविवाहे विवाहाष्टकबहिर्भावापत्तेस्तदुपादानं प्राशस्त्यार्थमिति।"

उक्त बोधायन वाक्य की व्याख्या करता हुवा रघुनन्दन स्पष्ट लिखता है कि "जिस पुरुष का स्त्री के साथ संपर्क नहीं हुवा है, वही कुमारी कन्या का अधिकारी है, तद्भिन्न का

विवाह आठ विवाहों के बहिर्गत होने से अप्रशस्त है।" अतएव इस न्याय से भी उसी विधवा का विवाह अप्रशस्त और आठ विवाहों के बहिर्भूत होसकता है, जिसका ब्रह्मचर्यव्रत भङ्ग होचुका है नकि ब्रह्मचारिणी का।

पाठक! अब आप न्याय कीजिए, जब याज्ञवल्क्य और बोधायन दोनों स्मृतिकार केवल ब्रह्मचारी को कुमारी से विवाह करने की आज्ञा देते हैं तो फिर ये दुहेजिये और तिहेजिये जो कुमारी कन्याओं पर टूटते हैं. क्या यह शास्त्र की आज्ञा का उपमर्द नहीं है? पुरुष तो खुल्लम खुल्ला शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन और ब्रह्मचारियोंके स्वत्वका अपहरण करते हुवे शास्त्र की अनुयायिता का दम भरें, पर विचारी विधवायें सर्वथा शास्त्र की आज्ञा को पालती हुई और कभी भूलकर भी अपनी कुमारी बहनों के स्वत्व पर आघात न करती हुई, केवल उन पुरुषों से विवाह करने में भी जो शास्त्र की आज्ञानुसार कुमारी को ग्रहण करने के कदापि अधिकारी नहीं हैं, पापिनी और शास्त्र की मर्यादा को तोड़ने वाली समझीजांय! उनके लिए बुढ़ापे मेंभी विवाह की रोक न हो और इनके लिए बालकपन में ही उसकी छूत मानीजाय? भगवन्! जिस समाज में शास्त्र का ऐसा अनर्थपूर्ण दुरुपयोग कियाजाय, उसकी रक्षा उसको सुमति प्रदान कर आपही कर सकते हैं।

विवाह की विधि।

तीसरा आक्षेप यह किया जाता है कि यदि विधवाविवाह शास्त्रसम्मत होता, तो शास्त्र में उसकी स्वतंत्र विधि भी वर्णन कीगई होती। जोकि शास्त्र में उसकी कोई पृथक् विधि नहीं है, अतएव वह अवैध है।

समीक्षा—यदि विधवाओं के पुनर्विवाह की शास्त्रमें कोई पृथक् विधि नहीं है तो रण्डुवों के पुनर्विवाह की भी शास्त्र में कोई विधि नहीं है। यदि रण्डुवों का पुनर्विवाह विवाह की विधि और मन्त्रों से किया जासकता है तो फिर विधवाओं के पुनर्विवाह में वे मन्त्र और विधि क्यों पर्याप्त नहीं? क्या उन मन्त्रों और विधि में कहीं यह लिखा है कि ६० वर्ष के बूढे बावा का चौथा या पांचवां विवाह तो इनके अनुकूल है, पर आठ वर्ष की विधवा कन्या का दूसरा विवाह इनके प्रतिकूल? मन्त्र और विधि में स्त्री पुरुषों के लिए कुछ भेद नहीं होसकता। विवाह के जो मन्त्र और विधान जिस दशा में पुरुषों के लिए वैध हैं, उसी दशा में वे स्त्रियों के लिए अवैध कदापि नहीं होसकते। जब प्रायः शास्त्रकार स्त्रियों के पुनर्विवाह की आज्ञा देते हैं और उसको संस्कार भी मानते हैं जो बिना मन्त्रोच्चारण के हो नहीं सकता, तब विवाह से पृथक् उसको कल्पना करना विपक्षियों की कितनी बड़ी संकीर्णता है। आश्चर्य तो यह है कि यह कल्पना केवल स्त्रियों के पुनर्विवाह के लिए की जाती है, पुरुषों के लिए कभी स्वप्नमें भी इसका उदय नहीं होता। पर जब शास्त्रों में दोनों के लिए एक ही मन्त्र और विधि है, तब इस निर्मूल कल्पना से उनको कुछ लाभ नहीं पहुंच सकता। इसपर विपक्षी मनु का निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत करते हैं:—

> पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः।
> नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रियाहि ताः॥
> (मनुस्मृति ८। २२६)

समीक्षा—मनु इस पद्य में अकन्याओं के लिए पाणिग्रहण मन्त्रों का निषेध करता है, न कि विधवाओं के लिए। पर हमारे भाइयों को तो साहित्य में जितने बुरे शब्द हैं, वे सब

विधवा के ही पर्याय दृष्टिगोचर होते हैं। अतएव जहां कहीं अकन्या, स्वैरिणी, दुर्भगा, पतिघ्नी आदि शब्द आते हैं, वे विना आगा पीछा देखे, झट विधवा का अर्थ करने लगते हैं। वाह!! कैसी कृतज्ञता है, जिन विधवाओं ने अपने अलौकिक आत्मत्याग, तप और सहिष्णुता से हिन्दू धर्म की लाज रक्खी हुई है और जो अपने प्राण देकर भी इनकी कल्पित मानमर्यादा की रक्षा करती हैं, उनकी लोकोत्तर सेवाओं का यह कैसा अच्छा पुरस्कार है। अस्तु मनु का इस पद्य में 'अकन्या' शब्द से क्या तात्पर्य है? इसपर हमको किसी अन्य प्रमाण के देने की आवश्यकता नहीं, जबकि इससे पहले पद्य में मनु ने स्वयं ही अपने आशय को स्पष्ट करदिया है:—

> अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद् द्वेषेण मानवः।
> सशतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥ (८। २२५)

इस पद्य की टीका में कुल्लूक भट्ट लिखता है। "जो द्वेष से कन्या को अकन्या कहता है, अर्थात् उसपर व्यभिचार का दोष लगाता है, वह यदि उसके दोष को सिद्ध न करसके तो सौ पणों से दण्डनीय है।"

क्या अब भी इसमें किसी को सन्देह होसकता है कि मनु का तात्पर्य 'अकन्या' शब्द से उस स्त्री का है, जो विवाह से पहले व्यभिचारिणी होचुकी है, ऐसी स्त्रियों के लिए मनु निःसन्देह पाणिग्रहण मन्त्रों का निषेध करता है। सो यह चाहे इस दशामें जबकि व्यभिचारी पुरुष ब्रह्मचारिणी कन्याओं के साथ विवाह करते हैं, अन्याय युक्त हो। पर यदि पुरुष ऐसा अनर्थ न करें तो कोई इसे अनुचित नहीं कहसकता। क्योंकि स्त्री हो वा पुरुष जो विना विवाह के अपनी कामचेष्टा को चरितार्थ करता है, वह पापी और व्यभिचारी है और अपने

विवाह के पवित्र अधिकार को खो बैठता है। इसीलिए उक्त पद्य में उनको "लुप्तधर्मक्रियाः" का विशेषण दिया गया है। क्या उन आठ या दस वर्ष की बालविधवाओं को जो पति और विवाह के तात्पर्य को भी नहीं जानतीं, कट्टर से कट्टर दुराग्रही भी यह विशेषण देने का साहस करसकता है? अतएव प्रस्तुत पद्य में मनु व्यभिचारिणी स्त्रियों के विवाह का निषेध करता है, नकि शास्त्रकी आज्ञानुसार गृहस्थ धर्म का पालन करने की इच्छा से विधवाओं के पाणिग्रहण का।

इसके अतिरिक्त हमारी न्यायशीला गवर्नमेन्ट ने भी हिन्दू धर्मशास्त्रज्ञों की सम्मति से जो विधवाविवाह एक्ट सन् १८५६ में पास किया हैं, उसकी छटी धारामें स्पष्ट लिखा है कि 'जो मन्त्र और विधान हिन्दू स्त्रियों के प्रथम विवाह में पढ़े या किये जाते हैं, वे ही यदि हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह में भी बरते जावेंगे तो वह विवाह क़ानूनन जायज़ समझाजायगा।" इससे अधिक सन्तोषदायक और क्या प्रमाण होसकता है?

'कन्या' शब्द का निर्वचन।

चौथा आक्षेप यह कियाजाता है कि सब शास्त्रों में कन्या का ही दान या विवाह कहा गया है और कन्या वह है, जो किसी के साथ ब्याही नहीं गई और न किसी को दान दीगई है। फिर वे स्त्रियां जिनका विवाह होचुका है और दान की जाचुकी हैं, न तो कन्या ही कहला सकती हैं और न उनका पुनर्दान ही होसकता है?

समीक्षा—पूर्व इसके कि इस प्रश्न का उत्तर दियाजावे, 'कन्या' शब्दका निर्वचन करना उचितजानपड़ता है "कन्यायाः कनीन च" इस पाणिनीय सूत्र (४-१-१६) के भाष्य में महाभाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं:—

"कन्या शब्दोऽयं पुंसाभिसम्बन्धपूर्वके संप्रयोगे निवर्तते।"

इससे सिद्ध है कि विवाह होजाने पर भी जबतक पुरुष संयोग न हो, कन्यात्व निवृत्त नहीं होता। यह तो महाभाष्यकार की सम्मति है, पर जब हम संस्कृतसाहित्य को देखते हैं, तो उसमें 'कन्या' शब्द सामान्य रीतिपर दुहिता=पुत्री के लिए प्रयुक्त होता है, चाहे वह विवाहिता हो या अविवाहिता। साहित्य के अनेक स्थलों में विवाहिता के लिए भी 'कन्या' शब्द का प्रयोग किया गया है, जैसाकि कवि सम्राट् कालिदास अपने निर्मित कुमारसम्भव और रघुवंश काव्योंमें लिखतेहैं:-

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी।
सती सती योगविसृष्ट देहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे॥
(कुमारसम्भव सर्ग १ प० २१)

तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः सदर्पः।
(रघुवंश सर्ग ७ प० ३५)

इन दोनों पद्यों में कालिदास ने विवाहिता सती और इन्दुमती के लिये क्रमशः 'कन्या' शब्द का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त रामायण में सीता को प्रायः "जनकतनया" और महाभारत में द्रौपदी को 'द्रुपदकन्या' उनके अन्तिम समय तक कहा गया है। लोक में भी राजपुत्री को 'राजकन्या' ब्राह्मण पुत्री को ब्राह्मणकन्या' और गुरुपुत्री को 'गुरुकन्या' चाहे वे विवाहिता हों या अविवाहिता, कहने की बराबर चाल है।

इनप्रमाणों से सिद्ध है कि'कन्या'शब्द केवल कुमारी का ही वाचक नहीं, किन्तु वह कुमारी और विवाहिता दोनों के लिए प्रयुक्त होता है और बालविधवाओं के लिए तो नारद, वसिष्ठ और कात्यायन आदि सभी स्मृतिकारों ने निःसङ्कोच होकर इस शब्द का प्रयोग किया है, जैसा कि हम पहले अध्याय में दिखला चुके हैं। अतएव सब शास्त्रों के अनुसार बालविधवा

का दान या विवाह कन्या काही दान या विवाह है। जो बाल-विधवाओं को कन्या नहीं मानते, या उनको अकन्या कहते हैं, वे महापापी हैं और मनुकी व्यवस्था के अनुसार दण्डनीय हैं।

कन्यादान।

पांचवाँ आक्षेप यह किया जाता है कि एक बार कन्यादान करके पुनः उसका दान करना शास्त्रविरुद्ध है, जैसा कि मनु ने कहा हैः—

> न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः।
> दत्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्॥ (मनु० ६। ७१)

जब माता पिता वा किसी सगोत्र ने एकवार कन्यादान करके किसी को देदी, तब उसमें उनका स्वत्व नहीं रहा, फिर वे पुनः उसको कैसे दान कर सकते हैं?

समीक्षा—कन्यादान को भी और दानों की भांति समझना यह एक ऐसी भूल या भ्रान्ति है, जो हम से बड़े २ पाप और अनर्थ कराती है और इससे शास्त्रों की अवज्ञा भी होती है। यद्यपि शास्त्रों में औपचारिक रीति पर कन्या के लिए भी दान का शब्द आता है, तथापि उसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि जिस प्रकार अन्य स्थावर या जङ्गम सम्पत्ति का दान किया जाता है, वैसा ही कन्यादान को भी समझाजाय। कन्यादान के विशिष्ट दान होने में निम्नलिखित कारण हैंः—

प्रथम जिसकी जो वस्तु है, वही उसको दान कर सकता है, अन्य किसी को उसके दान करने का अधिकार ही नहीं, जैसाकि मनु लिखता हैः—

> अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा।
> अकृतः सतु विज्ञेयो व्यवहारे यथास्थितिः॥ (मनु० ८। १९९)

मनु की इस आज्ञा के अनुसार जो जिस वस्तु का स्वामी नहीं है, वह न उसका दान कर सकता है और न विक्रय। पर

कन्यादान के विषय में यह बात नहीं है। शास्त्र की आज्ञानुसार माता पिता के अभाव में उसे बान्धव और ज्ञाति के लोग भी दान करसकते हैं।

यदि कन्यादानभी और दानोंके समान होता तो मातापिता के सिवाय अन्य को उसके दान करने का अधिकार न था, कन्यादान अड़ौसी पड़ौसी तक करते हैं। इससे सिद्ध है कि विवाह को पवित्र और धार्मिक बनाने के लिए ही कन्यादान की योजना उसमें कीगई है, वस्तुतः कन्यादान दान नहीं।

दूसरे प्रत्येक स्वामी को अपनी वस्तु के देने न देने या बेचने न बेचने का पूर्ण अधिकार होता है, पर कन्या के विषय में यह बात नहीं है। माता पिता यदि कन्या को देना न चाहें या उसे बेचना चाहें तो यही नहीं कि इन दोनों बातों का उन्हें अधिकार नहीं, किन्तु शास्त्र इसको पाप बतलाता है मनु लिखता है:—

> अदीयमाना भर्त्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम्।
> नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति॥ (मनु०९।९१)

माता पिता से न दी हुई कन्या यदि आप अपना विवाह करले तो वह और उसका पति दोनों निर्दोष हैं। यह तो रही दान की बात, अब रहा विक्रय, सो मनु तो आर्ष विवाह में जो गोमिथुन वर से लेकर कन्या को देने की चाल पहले से चली आती थी, उसका भी निषेध करता है। यथाः—

> आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत्।
> अल्पोऽप्येवं महान् वापि विक्रयस्तावदेव सः॥ (मनु०३-५३)

अन्य शास्त्र भी सब इस विषय में मनु से सहमत हैं, कोई भी कन्या को दान न करने या बेचने का अधिकार माता पिता को नहीं देता। क्या किसी अन्य वस्तु को भी दान न करने या बेचने से उसका स्वामी पापी होता है? अतएव कन्या पर

माता पिता का न तो वैसा स्वामित्व ही है, जैसा अन्य पदार्थों पर होता है और न कन्यादान अन्य दानों के समान है।

कन्यादान साधारण दान नहीं, इसकी पुष्टि वेद भगवान् भी करते हैं। कन्यादान के समय जो मन्त्र पढ़ाजाता है, जिस मन्त्र को पढ़ते हुवे ही पिता या पुरोहित कन्या का हाथ वर के हाथ में देते हैं। यदि हमारे भाई उसका अर्थ समझने की भी चेष्टा करते तो कभी उनको यह भ्रम न होता। पर उनकी दृष्टि में तो मन्त्र केवल उच्चारण के लिए हैं, न कि अर्थ जानने या उसपर विचार करने के लिये। अस्तु, वह मन्त्र और उसका अर्थ जो महीधर ने अपने भाष्य में किया है, पाठकों की अभिज्ञता के लिए हम यहांपर उद्धृत करते हैं:—

> कोऽदात्कस्मायादात् कामोऽदात्कामायादात्।
> कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥

(शुक्लयजुर्वेद अ० ७ मं० ४८)

महीधरभाष्यम्—" कोऽदात्कस्मै अदादिति प्रश्नद्वयस्योत्तरमाह-कामोऽदात्कामायैवादात्, न त्वं दाता नाहं प्रतिग्रहीता, त्वत्कामाभिमानी देवो मत्कामाभिमानिने देवायादात्, एवं च काम एव दाता काम एव प्रतिग्रहीता नान्यः। हे काम! एतद् द्रव्यं ते तवास्तु, दातृप्रतिगृहीतृत्वात्।"

भावार्थः—कौन देता है? किसको देता है? इन दो प्रश्नों का उत्तर देते हैं। काम देता है और काम को ही देता है न तू देनेवाला और न मैं लेने वाला, तेरी आवश्यकता ने मेरी आवश्यकता को दिया। इसलिए काम ही देने वाला और काम ही लेने वाला है, अन्य कोई नहीं। हे काम! यह वस्तु तेरे लिए है, क्योंकि दाता और प्रतिग्रहीता तू ही है।"

पाठक ! इससे अधिक कन्यादान का स्पष्ट विवरण और क्या होसकता है ? वास्तव में कन्या को न कोई देता है और न लेता है. आवश्यकता ही उसको देती और लेती भी है; मनुष्यों में तो उपचार मात्र उसके दान और आदान का सम्बन्ध है, वस्तुतः यह सब कुछ आवश्यकता कराती है। इसीलिए श्रुति के अन्त में क्या ठीक कहा है "हे काम! एतत्" दीपक के तले अन्धेरा इसी को कहते हैं, जिस श्रुति को पढ़कर हमारे भाई रातदिन कन्यादान कराते हैं, उसी में उसका इतना स्पष्ट विवरण होते हुवे वे कन्यादान और अन्न वस्त्र के दान में भेद नहीं समझते। यदि कर्मकाण्ड के साथ वैदिक मन्त्रों के अर्थ पढ़ाने की भी परिपाटी प्रचलित होती तो ऐसी भ्रान्तियां हमारे समाज में न फैलने पातीं।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी विचारणीय है कि ब्राह्म, दैव और आर्ष जैसे श्रेष्ठ विवाहों को छोड़कर हमारे देश के सम्भ्रान्त क्षत्रियों ने गान्धर्व विवाह का आश्रय क्यों लिया? हमें तो इसका कारण भी यही प्रतीत होता है। जब ब्राह्म और दैव विवाहों में अन्न वस्त्र की भान्ति कन्यायें दान की जाने लगीं और आर्षविवाह में उनपर शुल्क लिया जाने लगा, तब क्षत्रियोंको ये दोनों बातें आत्मसम्मानके विरुद्ध प्रतीत हुईं, तब उन्होंने विवश होकर गान्धर्वविवाह का आश्रय लिया। हमारे इस कथन की पुष्टि भगवान् कृष्ण के उस वचन से जो उन्होंने अपनी बहन सुभद्रा के विवाह विषय में अपने ज्येष्ठभ्राता बलभद्र से कहा था, होती है। वह उक्ति इस प्रकार है:—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्को न मन्यते।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥
(महाभारतआदिपर्व २२०।४)

अर्थ स्पष्ट है, पद्य के पूर्वार्ध का सङ्केत ब्राह्म और दैव विवाहों से है, जिनमें कन्यादान किया जाता है और उत्तरार्ध का संकेत आर्ष विवाह से है, जिसमें वरसे शुल्क लिया जाता है। अतएव कन्यादान से पूर्वकाल के क्षत्रिय वर्ग की ओर आजकल के शिक्षित समाज की श्रद्धा को हटाना, उन्हीं लोगों का काम है, जिन्होंने उक्त श्रुति के आशय को न समझकर कन्यादान को भी घासफूस के दान की भान्ति समझ लिया। जब शास्त्र की आज्ञानुसार कन्या को न देने या बेचने का हम को अधिकार नहीं है, तब वह न तो हमारी संपत्ति ही है और न उसपर हमारा स्वामित्व ही हो सकता है। जिस वस्तु पर न तो हमारा स्वामित्व है और न वह हमारी संपत्ति है, उसके दान करने का अधिकार हमको कब है?

तीसरे अन्य सब दानों में दान देने के पश्चात् दाता की सत्ता उठ जाती है और उसको उस दान की हुई वस्तु से फिर कुछ सम्बन्ध नहीं रहता, जैसा कि 'दान' शब्द का निर्वचन किया जाता है—"स्वसत्तापरित्यागपूर्वकं परसत्तोत्पादनं दानम्" अपनी सत्ता उठाकर दूसरे की सत्ता स्थापित कर देना दान कहलाता है। पर कन्यादान में यह बात नहीं है दान करने के बाद माता पिता की सत्ता और सम्बंध दोनों कन्या से बने रहते हैं। यदि सत्ता न रहती तो दौहित्र न तो मातामह का दायाद होता और न उसका दिया हुआ पिण्ड उसे पहुंचता। मनु तो दौहित्र के विषय में यहां तक लिखता है:—

> पौत्र दौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते।
> दौहित्रोपि ह्यमुत्रैवं सन्तारयति पौत्रवत्॥ (मनु० ९।१३९)

जब हिन्दू शास्त्र पौत्र के सारे अधिकार दौहित्र को देते हैं और इन दोनों में कुछ भेद नहीं करते तब यह कहना कि वि-

वाह के पश्चात् पुत्री पर माता की सत्ता नहीं रहती, किन्तु शास्त्र के प्रतिकूल है ? इसके अतिरिक्त दान की हुई वस्तु को न तो दाता अपने घर पर रख सकता है और न उससे कुछ काम ले सकता है। पर क्या आजतक आप एक भी ऐसी कन्या बतला सकते हैं, जिसका विवाह के पश्चात् माता पिता से कुछ सम्बंध न रहा हो ? हमतो देखते हैं कि पुत्रियां विवाह के पश्चात् बड़े चाव से बरसों अपने मैकों में रहती हैं और घर का सारा काम धन्धा करती हैं। फिर दान की हुई वस्तु को माता पिता क्यों अपने घर में रखते हैं और उससे अपना काम धन्धा कराते हैं ? इस लोकाचार से भी यही सिद्ध होता है कि कन्यादान को कोई भी हिन्दू और दानों की भान्ति नहीं समझता, फिर न मालूम क्यों हमारे धर्मध्वज भाई इसकी विशेषता को नष्ट करके इसे भी अन्य साधारण दानों की भांति बनाने की उधेड़बुन में लगे हुए हैं। एक प्रमाण सारसंग्रह का हम इस विषय में और देते हैं, यद्यपि वह मंत्र दान के विषय में है, तथापि उसमें उदाहरण कन्यादान का दिया गया है, इसलिये हम उसे यहां उद्धृत करते हैं:—

दत्तकन्यां ददेद्विद्वान् विभायोदकपूर्वकाम्।
अन्येभ्यस्तु ददेदेवमेव मन्त्रं विचक्षणः॥ (सारसंग्रह)

इसकी व्याख्या शिवार्चनचन्द्रिका नाम्नी टीका में पं० श्रीनिवास भट्ट इस प्रकार करते हैं:—

"अत्रोदकपूर्वकमित्यनेन हिरण्यादिवन्मंत्रस्य दानं प्रतीयते। दानं तु स्वस्वत्वपरित्याग पूर्वकं विधिवत्परसत्त्वोत्पादनरूपं भवति। तत्तु क्वापि शिष्याय मन्त्रं दत्वा पुनस्तन्मन्त्रं गुरुर्न जपति, नाराध्यति, तं पुनरन्यस्मै कस्मैचिन्न ददातीति वचनं वा संप्रदायो वा दृश्यते। तस्मादुदकदानं स्त्रीमचारिकं तत्र

परसत्तापादने कृतेऽपि स्वसत्तापरित्यागराहित्यंतु कन्यादान-वद्भवितुमर्हतीत्यास्तां विस्तरः।"

जो लोग समझते हैं कि जलपूर्वक दान करने से दाता की सत्ता दान की हुई वस्तु से उठजाती है, उनको पं० श्रीनिवास भट्ट की इस उक्ति को स्मरण रखना चाहिये, जो दान किये हुवे मन्त्र पर गुरु की सत्ता अक्षुण्ण रखने के लिये प्रथम तो लोकाचार से उसकी पुष्टि करता है, पुनः कन्यादान का उदाहरण देकर उसकी विशेष पुष्टि करता है। अर्थात् उसके कथन का तात्पर्य यह है कि जैसे कन्यादान में भी जो जलपूर्वक किया जाता है, दाता की सत्ता अक्षुण्ण रहती है, ऐसे ही जलपूर्वक मन्त्र का दान करने से गुरु का अधिकार उसपर से नहीं जाता रहता।

पाठक ? जब हमारे पूर्वजों ने अचेतन मन्त्र के दान कोभी सुवर्णादि के दान की भान्ति नहीं माना, तब कन्यादान को वैसा समझना हमारे हृदय की कितनी संकीर्णता है ?

चौथे यदि कन्यादान भी अन्यदानों की भान्ति होता तो वह केवल ब्राह्मणों के लिए होता, क्योंकि ब्राह्मण के सिवाय अन्य किसी वर्ण को शास्त्रमें दान लेने का अधिकार नहीं है। पर कन्यादान का प्रतिग्रह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी करते हैं। क्या शास्त्र में ब्राह्मणेतरों को दान लेने का अधिकार है ? यदि नहीं है तो फिर उनके लिए कन्यादान की यह शास्त्र विरुद्ध परिपाटी क्यों चलाई गई ? अतएव चारों वर्णों में समान रूप से कन्यादान का प्रचलित होना और उनका निःसंकोच होकर इसका प्रतिग्रह करना यह सिद्ध कर रहा है कि इतरदानों से इसका कुछभी सादृश्य और साधर्म्य नहीं है। अन्यथा

सिवाय ब्राह्मणों के क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को इसके प्रतिग्रह का अधिकार शास्त्र कभी न देते।

पांचवे यद्यपि इस समय हिन्दू समाज में कन्यादान और पाणिग्रहण विवाह के ये दो अङ्ग माने जाते हैं, विवाह विधि में भी इन दोनों का ही विधान पाया जाता है। तथापि यह हम निःसंकोच कह सकते हैं कि हिन्दू शास्त्रों में प्रधान पाणिग्रहण संस्कार ही मानागया है। प्रमाण इसका यह है कि मनु तथा अन्य सब शास्त्रकार कन्या को यह अधिकार देते हैं कि माता पिता या अन्य संरक्षक उसका दान न करें तो वह स्वयं पाणिग्रहण के द्वारा अपना विवाह करले। (देखो मनु० अ० ६प०६१) पर शास्त्रों में यह आज्ञा कहीं नहीं है कि माता पिता से दान की हुई कन्या विना पाणिग्रहण संस्कार के किसी की पत्नी बन सके। "पत्युर्नो यज्ञसंयोगे" (४-१-३३) इस सूत्र में पाणिनि ने 'पत्नी' शब्दका निर्वचन ही यह कियाहै "जो यज्ञमें पति का वरण करती है, वह पत्नी है।" इतिहास भी हमारे सामने ऐसे अनेक उदाहरण रखता है कि जिनमें कन्यादान न होने पर भी केवल पाणिग्रहण संस्कार से विवाह पूर्ण समझा गया। शकुन्तला, सुभद्रा और रुक्मिणी आदि वराङ्गनाओं के विवाह विना कन्यादान के हुवे. इस बात को कौन नहीं जानता? पर क्या कोई हिन्दू यह कहने का साहस करसकता है कि इन के विवाह अवैध या अनुचित थे? किन्तु ऐसा एक भी प्राचीन या अर्वाचीन उदाहरण हमको नहीं मिलता, जिसमें विना पाणिग्रहण संस्कारके केवल कन्यादानसे विवाह की पूर्तिहुईहो।

वैदिक मंत्रों में भी जो विवाह से सम्बन्ध रखतेहैं, यथा:—

"भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।"

देवताओं के दान का वर्णन तो आता है,पर माता पिता या सम्बंधी जो, कन्यादान करते हैं, इसका वर्णन विवाहविधि के किसी मंत्र में नहीं है। प्रत्युत यजुर्वेद के उस प्रसिद्ध मंत्र में जो कन्यादान के समय पढ़ाजाता है, इसका औपचारिक होना स्पष्ट ही कहागया है। हां वेद में साक्षात् उसका विरोध न होने से ही वह वेदानुकूल मानलिया गया है। अतएव पाणिग्रहण जिसकी :—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।

इत्यादि मंत्रों में साक्षात् विधि है, विवाह का मुख्य अङ्ग है, कन्यादान गौण।

छठे इन सब हेतुओं की उपेक्षा करके यदि कन्यादान को भी इतरदानों के समान ही मान लियाजाय और यह भी मानलियाजाय कि वह एक ही वार होसकता है, पुनर्वार नहीं। इस दशा में भी शास्त्र की आज्ञानुसार वह किसी के गले का हार कभी नहीं बनाया जासकता। पहले अध्याय में हम नारदस्मृति के उन पद्यों को उद्धृत कर चुके हैं, जिनमें १६ दशाओं में किया हुवा दान अदान समझाजाता है। तो क्या जिन्होंने मोह से, प्रमाद से, मूर्खता से वा लोभ से सात २ या आठ २ वर्ष की कन्याओं का दान वृद्धों, रोगियों, दुराचारियों या नपुंसकों के साथ करदिया है। क्या महात्मा नारद के वचनानुसार वह अदान नहीं है? यदि है तो इन निरपराध बालविधवाओं को जो यह भी नहीं जानतीं कि हमें कब, किस को और किसलिए दियागया? ऐसे अनुचित दान का शिकार बनाना महा अन्याय और घोर पाप है। अतएव ऐसी कन्याओं का फिर दान करना पुनर्दान नहीं किन्तु सकृद्दान ही है। इस दान के करने का जिनको पहले अधिकार था, उन्हीं को

शास्त्रानुसार फिर भी है, जैसा कि हम वसिष्ठ, कात्यायन और नारद आदि महर्षियों के प्रमाण से पहले अध्याय में सिद्ध करचुके हैं।

आठ विवाहों का रगड़ा।

छठा आक्षेप यह कियाजाता है कि मनु ने जो आठ प्रकार के विवाह लिखे हैं, उन में विधवाविवाह नहीं है। यदि विधवा विवाह भी शास्त्रकारों को सम्मत होता तो विवाहों की सूची में उसका नाम भी दियाजाता।

समीक्षा—यदि आठों प्रकार के विवाहों में विधवाविवाह का नाम नहीं आया है, तो उनमें रण्डुवे के विवाह काभी उल्लेख नहीं है। यदि नाम न होने से विधवाविवाह उनके बहिर्गत है तो इसीकारण से रण्डुवों का विवाह भी कदापि उनके अन्तर्गत नहीं होसकता। यह नहीं हो सकता कि एक ६० वर्ष के बूढ़े का चौथा या पांचवां विवाह तो और वह भी कुमारी कन्या के साथ ब्राह्म या दैव विवाह समझाजाय, पर एक आठ या दस वर्ष की बालविधवा का विवाह और वह भी ऐसे पुरुष के साथ जो धर्मतः कुमारी कन्या का अधिकारी नहीं है, आठों विवाह के इतने लम्बे चौड़े पेट में से कि जिसमें महा-जघन्य और पाशविक राक्षस और पैशाच विवाह तक समा-जाते हैं, किसी में न समासके। वास्तव में ये आठों प्रकार के विवाह भले या बुरे, वर और कन्या दोनों के लिए ही विधान किये गये हैं। यदि 'वर' शब्द से विवाहित और अविवाहित का कुछ भेद नहीं समझाजाता तो कन्या में इस भेद की कल्पना करना स्वार्थ का कितना नीच उदाहरण है? यदि किसी शास्त्र में पुरुषों के पुनर्विवाह का दूसरा नाम या विधि

नहीं है, तो कन्याओं के लिए शास्त्र में दूसरा नाम या विधि ढूँढ़ना, इससे बढ़कर धार्मिक सङ्कीर्णता और क्या होसकतीहै ?

इसके अतिरिक्त यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जिन पुरुषों का स्त्री के साथ संपर्क होगया है, उनके विवाह को तो हमारे भाइ आठ विवाहों के अन्तर्गत मानलेते हैं, जिनको स्मृतितत्त्व' का प्रणेता पं० रघुनंदन भट्टाचार्य नहीं मानता, जैसा कि हम दूसरे आक्षेप के समाधान में दिखलाचुकेहैं। पर बालविधवाओं के विवाह को जो पुरुष का संसर्ग तो एक ओर यह भी नहीं जानतीं कि पति किसको कहते है और विवाह क्या वस्तु है ? विवाहों की सूची से पृथक् किया जाता है, इस अन्याय और अंधेर का भी कुछ ठिकाना है ? देवलऋषि पुनर्विवाह को गांधर्व विवाह के अंतर्गत मानते हैं। यथा :—

गांधर्वेषु विवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः। कर्तव्यश्चत्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः

मनुका प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक मनु० अध्याय ८ श्लोक २२६ की टीका में देवल के इस वचन को उद्धृत करता हुआ लिखता है–"इति गान्धर्वेषु विवाहेषु होममंत्रादि विधिरुक्तः।" इसपर भी विपक्षियों की यह कल्पना कि यह आठ विवाहों के बहिर्भूत है, कैसी निर्मूल कल्पना है ?

पुनर्भू का पचड़ा।

सातवाँ आक्षेप यह किया जाता है कि विधवा होकर जो स्त्री विवाह करती है, उसे 'पुनर्भू' कहते हैं और पुनर्भू को शास्त्र में अधम और विवाह के अयोग्य माना है।

समीक्षा—इस आक्षेप का उत्तर हम सप्रमाण पहले अध्याय में दे चुके हैं और यह दिखला चुके हैं कि नारद ने जो तीनप्रकार की पुनर्भू मानी हैं, उनको विवाह के योग्य ठहराया

है। यहां हम केवल इतनाही कहना चाहते हैं कि यदि शास्त्रों में पुनर्विवाहिता कन्या की पुनर्भू संज्ञा मानी गई है तो पुरुष भी पुनर्विवाह करने से पुनर्भू माना गया है। इस दशा में विचारी कन्या ने ही क्या अपराध किया है कि वह पुनर्भू होने से पतित मानीजाय। यदि पुनर्भू होना ही अपराध है, तो यह रत्तीभर भी पुरुषों का स्त्रियों से कम नहीं। इस अन्याय का भी कुछ ठिकाना है कि पुरुष तो स्वेच्छा और स्वतंत्रता पूर्वक विवाह करके भी उसके प्रभाव से बेलाग बने रहें, पर कन्या विचारी अपनी इच्छा और स्वतंत्रता से नहीं, किन्तु दूसरों की इच्छा का शिकार होकर उस नाम मात्र के विवाह की फांसी में सदाके लिए लटका दी जांय। जो जाति अपने निर्बल अङ्गोंपर ऐसा घोर अन्याय और वह भी धर्म के नाम पर करसकती है, उसका स्वतंत्रता का बेसुरा राग अलापना नितान्त असामयिक और हास्यास्पद है।

गोत्र का प्रश्न।

आठवां आक्षेप यह किया जाता है कि विवाह के समय वर और कन्या का गोत्र उच्चारण किया जाता है। पुनर्विवाह में कन्यादान के समय कन्या का कौनसा गोत्र उच्चारण किया जायगा, पिता का या पूर्वपति का?

समीक्षा—इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि गोत्र किस को कहते हैं? यद्यपि पूर्वकाल में गोत्र की प्रवृत्ति केवल जन्म से ही नहीं, किन्तु विद्या से भी होती थी पिता के ही समान आचार्य्य भी गोत्रप्रवर्त्तक माने जाते थे। पर अब वह चाल उठ गई है, अब केवल जन्म से ही गोत्र माना जाता है। जो जिस ऋषि

के वंश में उत्पन्न हुवा है, वह तद्गोत्रीय कहलाता है। गोत्र-प्रवर्त्तक वैसे तो अनेक ऋषि हुवे हैं, पर उनमें आठ प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम ये हैं:—

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रि गोतमाः।
वसिष्ठकाश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः॥

कुल प्रवर्त्तक की स्मृति बनाये रखना ही गोत्रोच्चारण का तात्पर्य है। विवाह के समय जो गोत्र उच्चारण किया जाता है, उसमें इतना विशेष है कि गोत्र के साथ वर और कन्या के प्रपितामह, पितामह और पिता का नाम भी उच्चारण किया जाता है। इसप्रकार उनके वंश, पितर और निजनाम सब को सुनाकर उपस्थित गण का साक्ष्य प्राप्त किया जाता है, इसलिए कि आगे कोई विवाद खड़ा न हो। जब विवाहमें कन्याके पितृगोत्र का उच्चारण किया जाता है, तो पुनर्विवाह में भी वही होना चाहिये। क्योंकि पुनर्विवाह होने से कन्या का पितृकुल बदल नहीं जाता। आखिर पुरुषों के पुनर्विवाह में भी तो उनके पितृगोत्र का उच्चारण किया जाता है।

अब रही यह बात कि कन्या विवाह से पूर्व पितृगोत्र में रहती है, विवाह के पश्चात् वह पतिगोत्र में सम्मिलित हो-जाती है। फिर जब पुनर्विवाह के समय उसका पितृगोत्र ही न रहा, तब उसका उच्चारण कैसा? इसका उत्तर यह है कि विवाह होने से कन्या का गोत्र या उसके पितर नहीं बदलते, वे तो उसके जीते जी वही बने रहते हैं और वह सदा अपने पिता की पुत्री और पितामह की पौत्री कहलाती है। पतिगोत्र में जाने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि स्त्री पति की प्रसन्नता के लिए अपना कौलिक अभिमान त्याग देती है। इसका यह अर्थ समझना कि फिर उसका पितृकुल से कुछ सम्बन्ध

नहीं रहता या उसका वंश बदल जाता है, नितान्त असंगत और अयुक्त है। गोत्र स्वाभाविक और ईश्वरप्रदत्त है, इस लिए किसी दशा में बदल नहीं सकता। हां शास्त्र की आज्ञानुसार सपिण्डीकर्म करने से स्त्री का श्राद्ध और तर्पण पति गोत्र से किया जाता है। जैसाकि कात्यायन कहता है:—

संस्कृतायां तु भार्यायां सपिण्डीकरणान्तिकम्।
पैतृकं भजते गोत्रमूर्ध्वन्तु पतिपैतृकम्॥
(स्मृतितत्त्व धृत कात्यायनवचन)

कात्यायन के इस प्रमाण से सिद्ध है कि सपिण्डीकर्म तक स्त्री पति के गोत्र में नहीं जाती। सपिण्डीकर्म क्या है? भिन्न २ गोत्रों का एक गोत्र में मिलाना और यह मृत्यु के अनन्तर श्राद्ध में पिण्डदान देने के लिए किया जाता है। स्त्री के पिण्ड को पुरुष के पिण्डसे मिलाकर कल्पना करली जाती है कि स्त्री पुरुष के गोत्र में मिलगई और इसके पश्चात् फिर स्त्री को भी पति के गोत्र से ही पिण्डोदक दिये जाते हैं। इस सपिण्डीकर्म का सम्बंध केवल श्राद्ध और तर्पण से है और इसीलिए वह जीते जी नहीं किया जाता, मृत्युके पश्चात् ग्यारहवें दिन कियाजाता है। अतएव कात्यायन के मतानुसार जीवितावस्था में स्त्री पितृगोत्र का त्याग नहीं करसकती, यही कारण है कि वह जीतेजी दान और व्रत आदि में अपने पितृगोत्र का उच्चारण करती है। यदि विवाह में ही उसका गोत्र परिवर्त्तन होजाता तो वह पतिगोत्र को छोड़कर क्यों पितृगोत्र का उच्चारण करती। शास्त्र की इस व्यवस्था के अनुसार तो मरने के पश्चात् भी यदि पुत्रादि उसकी सपिण्डी करें तबतो उसका गोत्र बदलता है, अन्यथा प्रलयतक उसका पितृगोत्रही बनारहता है विपक्षियों की ओर से इसविषयमें लघुहारीत और बृहस्पति के क्रमशः ये दो वचन प्रस्तुत किये जाते हैं:—

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे।
पतिगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिण्डोदकक्रिया॥

(स्मृतितत्वधृत लघुहारीतवचन)

पाणिग्रहणिका मन्त्राः पितृगोत्रापहारकाः।
भर्तुर्गोत्रेण नारीणां देयं पिण्डोदकं ततः॥

(स्मृतितत्वधृत बृहस्पतिवचन)

इन दोनों वचनों में यद्यपि विवाह के पश्चात् कन्या का पितृगोत्र से छूटना माना गया है, तथापि इस गोत्र परिवर्त्तन का उपयोग इन दोनों ऋषियों ने भी पिण्डोदकक्रिया में ही माना है। कोई नियम जबतक वह उपयोग में नहीं लाया जाता, उसका होना न होना बराबर है। मानलो कि विवाह होने के पश्चात् ही कन्या पितृगोत्र से पृथक् होगई, अब प्रश्न होता है कि क्यों ऐसा कियागया? उत्तर मिलता है कि पतिगोत्र से उसका श्राद्ध और तर्पण करने के लिए। श्राद्ध और तर्पण उसके जीते जी हो नहीं सकता। अतएव मरने के पश्चात् होने वाले श्राद्ध और तर्पण के लिए अभी से यह बान्ध बान्धना बिना पानीदेखे वस्त्र उतारना है। यदि कहो कि आशौच, व्रतऔर दान आदि में भी तो पतिगोत्र का उपयोग होसकता है। हो तो सकता है पर जिस बात के लिए शास्त्र की आज्ञा नहीं, उसमें यदि कोई किसी नियम का उपयोग करने लगे, तो ऐसा करने से कोई उसे रोक नहीं सकता, पर वह मनमाना ही उपयोग है। दूसरे ऐसी चाल भी कहीं देखने में नहीं आती कि स्त्रियां व्रत और दान आदि में अपने पितृगोत्र को छोड़कर पतिगोत्र का उच्चारण करती हों।

इसके अतिरिक्त यदि विवाह के पश्चात् ही स्त्री का पितृगोत्र से भ्रष्टहोना मान लिया जाय तो फिर सपिण्डीकर्म व्यर्थ हुआ जाता है क्योंकि सपिण्डीकर्म का तो उद्देश ही यह है

कि वह गोत्र परिवर्त्तन के लिए कियाजाता है। यदि विवाह से ही यह उद्देश सिद्ध होजाता है तो फिर उसकी आवश्यकता ही क्या रही? अतएव लघुहारीत और बृहस्पति का भी 'पिण्डोदक' शब्द से यही तात्पर्य प्रतीत होता है। यद्यपि इन दोनों आचार्यों की सम्मति में गोत्रपरिवर्त्तन की योग्यता विवाह के पश्चात् स्त्री में उत्पन्न होजाती है, तथापि उसका उपयोग सपिण्डीकर्म में होता है। इस प्रकार इन दोनों का सामञ्जस्य कात्यायन के साथ होजाता है। अतएव पुनर्विवाह के समय पितृगोत्र का उच्चारण करने में कोई वाधा नहीं है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जब पति के कारण कन्या का पतिगोत्र से सम्बन्ध होता है, तो फिर उसके न रहने पर वह सम्बन्ध क्योंकर बना रह सकता है? क्या कारण के बिना भी कार्य रहसकता है? जब कारण ही न रहा तो फिर उसके कार्य की कल्पना व्यर्थ है। मान लो कि विवाह के पश्चात् कन्या पतिगोत्र में मिलगई, अब जब पति ही न रहा, जिसके कारण उसके गोत्र से उसका मेल हुवा था, तो अब उसके गोत्र को लेकर वह क्या करेगी? अपना पैतृक गोत्र तो जिसमें उसने जन्म लिया था, वह त्याग सकती है, पर यह कृत्रिमगोत्र, जो पहले नहीं था, उसे भूत बनकर चिमटता है। यह विचित्र छाया है, जो पतिकी काया न रहनेपर भी बिचारी विधवा का पीछा नहीं छोड़ती। अस्तु जो लोग यह गोत्र का पचड़ा लगाते हैं, उन्हें जरा आँखें खोलकर ऋष्य शृङ्ग की निम्नलिखित व्यवस्था को भी देखना चाहिए।

> स्त्रीणामाग्रस्य वैभर्त्तु र्यद्गोत्रं तेन निर्वपेत्।
> यदि त्वक्षतयोनिःस्यात्पतिमन्यं समाश्रिता।
> तद्गोत्रेण तदादेयं पिण्डं श्राद्धं तथोदकम्॥
> (सुधीविलोचनधृत [illegible]वचन)

"क्षतयोनि विधवा का पिण्ड और श्राद्ध पूर्वपति के गोत्र से करना चाहिए और अक्षतयोनि का पितृगोत्र से।" अत्य ऋङ्ग के इस वचन से जहां गोत्र के विषय में व्यवस्था हमको मिलती है, वहां क्षतयोनि विधवा के भी पुनर्विवाह की आज्ञा मिलती है। यदि उसकी दृष्टिमें क्षतयोनि विधवा का पुनर्विवाह अवैध होता तो वह पूर्वपति के गोत्र से उसके पिण्डदान का विधान न करता। इस प्रमाण से भी सिद्ध है कि पति के गोत्र की आवश्यकता स्त्री का तर्पण और श्राद्ध करने के समय ही होती है। अतएव पुनर्विवाह के समय पतिगोत्र का प्रश्न उठाना सर्वथा अनुपयुक्त और अप्रासङ्गिक है।

विचित्र मर्यादा।

नवां आक्षेप यह किया जाता है कि पूर्वकाल में जब यहां स्त्रीस्वातन्त्र्य बढ़ा हुवा था, तब स्त्रियां अनेक पति कर सकती थीं। पर इस चाल को अच्छा न समझकर ही जब से दीर्घतमा ऋषि ने यह मर्यादा स्थापित की:—

अद्यप्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता।
एक एव पतिर्नार्यो यावज्जीवं परायणम्॥
मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम्।
अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः॥

(महाभारत आदिपर्व अ० १०४)

तब से स्त्रियों के लिए पत्यन्तर का करना निषिद्ध और गर्हित समझा जाने लगा।

समीक्षा—जिन महात्मा दीर्घतमा के नाम से यह महा-अन्याय युक्त मर्यादा बांधी जाती है, उनका यहां पर कुछ परिचय हम पाठकों को देना चाहते हैं। प्रथम तो उनकी उत्पत्ति ही आदिपर्व के १०३ अध्याय में जिस अश्लील रीति

पर वर्णन की गई है, हम उसका अनुवाद देने में असमर्थ हैं। हम यहां केवल इतना ही लिख सकते हैं कि "बृहस्पति और उतथ्य दो सहोदर भ्राता थे। उतथ्य की स्त्री से जबकि वह गर्भिणी थी, उसके निषेध करने पर भी बृहस्पति ने बलात्कार किया, जिसके कारण गर्भस्थ बालक कुबड़ा और जन्मान्ध होगया, वे ये ही दीर्घतमा ऋषि थे, जो उस पीड़िता गर्भिणी की कुक्षि से उत्पन्न हुवे। जन्मान्ध होने के कारण ही इनका नाम 'दीर्घतमा' रक्खा गया। इन्होंने अपना विवाह "प्रद्वेषी" नाम्नी एक स्त्री के साथ किया। वह स्त्री सुरूपा थी और ये महाकुरूप, उसपर जन्मान्ध, इसलिए उससे इनकी नहीं बनती थी रातदिन देवासुर संग्राम मचा रहता था। एकदिन दीर्घतमा ने उससे पूछा कि "तू मुझसे द्वेष क्यों करती है?" प्रद्वेषी ने कहा कि "स्त्री का भरण करने से 'भर्ता' और पालन करने से 'पति' कहलाता है, तू न मेरा भरण करता है, न पालन, किन्तु उल्टा मुझे तेरा भरण और पोषण करना पड़ता है। अब मुझसे तेरा भरण नहीं होसकता, इसलिए जहां तेरी इच्छा हो चलाजा।" इसपर दीर्घतमा ने क्रुद्ध होकर अपनी स्त्री को डरानेके लिए यह मर्यादा बांधी और उल्लिखित दो पद्य कहे।"

"परन्तु उसकी स्त्री ऐसी वैसी नहीं थी, जो उसके डराने धमकाने में आजाती। उसने कुपित होकर अपने पुत्रों को आज्ञादी कि तुम इस निखट्टू को बान्धकर गंगा में छोड़ आओ। माता की आज्ञा से पुत्रों ने पिता को एक डोंगी में बान्धकर गंगा के प्रवाह में छोड़दिया। वह अंधा उस डोंगीमें बन्धा हुवा बहा चला जाता था, कई दिन बीत गये। एकदिन प्रातःकाल राजा बलि गंगामें स्नान कर रहा था. उसने बहती हुई उस डोंगी को देखा। राजा की आज्ञा से लोगों ने उसे

किनारे पर लगाया। राजाने उसमें जकड़े हुवे एक अंधे और कुवड़े मनुष्य को देखा, बन्धनों को काटकर उसको मुक्त किया और उसका वृतान्त सुनकर राजा उसपर दयार्द्र हुवा और राजप्रासाद में लाकर बड़े समारोह से उसका आतिथ्य किया। ऋषि के स्वस्थ और प्रसन्न होनेपर राजाने राज-महिषी में सन्तान उत्पन्न करने के लिए उसे निमन्त्रित किया, जिसको उसने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया। राजाने अपनी पत्नी 'सुदेष्णा' को ऋषि के पास जाने को कहा। रानी उसको अंधा और कुरूप जानकर स्वयं तो उसके पास न गई, पर उसने अपनी दासी को भेजदिया। उस दासी में दीर्घतमा ने कक्षीवान् आदि ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया। तब राजाने ऋषि से कहा कि ये पुत्र मेरे क्षेत्र में पैदा होने से मेरे हैं। इसपर ऋषिने कहा नहीं मेरे हैं, मैंने शूद्रयोनि में उत्पन्न किये हैं। तुम्हारी रानी तो मुझको अंधा और कुवड़ा जानकर मेरे पास ही नहीं आई, फिर पुत्रों पर दावा कैसे करते हो? यह सुनकर राजाने बड़े अनुनय और विनय के पश्चात् ऋषिको पुनः प्रसन्न किया और इसबार सुदेष्णा को बहुत कुछ कह सुनकर और शाप का भय दिखाकर उसके पास भेजा। तब दीर्घतमा ने उस राजपत्नी से बड़े तेजस्वी और प्रख्यात अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड और सुह्म इन पांच पुत्रों को उत्पन्न किया, जिन्होंने उक्त नाम के पांच राष्ट्रों की नींव डाली। इस प्रकार परशुराम से नष्ट किया गया क्षत्रिय वंश संसार में पुनः प्रतिष्ठित हुवा।"

(देखो महाभारत आदिपर्व अध्याय १०४)

पाठक! यह आख्यान है, जिसके आधार पर विधवाविवाह के विरुद्ध स्त्रियों के लिए पत्यन्तर का निषेध करते हैं और

यह विचित्र मर्यादा है, जिसपर लाखों अवाक् बालविधवाओं की बलि चढ़ाई जारही हैं। इस आख्यान से ही सिद्ध है कि दीर्घतमा से पहले स्त्रियां बे रोकटोक दूसरा पति करसकती थीं। दीर्घतमा ने किसी सदिच्छा और सदुद्देश से इस मर्यादा की प्रतिष्ठा नहीं की, किन्तु अपनी स्त्री के अनादर से कुपित होकर उससे बदला लेने के लिए उसे इस अपूर्व मर्यादा की सूझी। अपनी स्त्री से तो जिसने उसका अपमान किया था, उसकी कुछ पार न बसाई, किन्तु वह तिरस्कृत होकर और बान्धाजाकर गङ्गा में बहाया गया। पर अन्य निरपराध लाखों बालविधवाओं से आज उसके अनुयायी बदला चुका रहे हैं ' यदि यह मर्यादा किसी सदुद्देश से प्रेरित होकर या कम से कम व्यभिचार को रोकने के उद्देश से भी बान्धी गई होती तो सब से पहले हम इसका स्वागत करते, पर यहां तो बात ही और है। स्त्री से चिढ़कर तो महात्मा ऋषि यह मर्यादा बांधते हैं कि "आज से लोक में स्त्रियों का एक ही पति होगा, वे दूसरे को प्राप्त होकर पतित हो जायेंगी।" पर बंधन से खुलते ही और संज्ञा में आते ही एक नहीं दो स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करते हैं। नहीं २ हम भूलते हैं, उन्होंने उनका सतीत्व कहां नष्ट किया? जो स्वयं संतान उत्पन्न करने में असमर्थ है, उसके लिये संतान उत्पन्न कर देना, क्या इससे बढ़कर और कोई परोपकार होसकता है? विधवा ही नहीं पतिवाली स्त्रियां भी संतान के लिये चाहे कितने ही पुरुषों से संयोग करें, इससे उनके सतीत्वकी हानि नहीं होती, उनका सतीत्व भङ्ग तभी होगा, जबकि वे नियमानुसार किसी के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करेंगी। यह है दीर्घतमा ऋषिकी विचित्र मर्यादा, जिसके अनुसार उसके अनुयायी विधवा-

विवाह को निषिद्ध और वर्जित ठहराते हैं। हम इसपर केवल यही कहना चाहते हैं कि सत्युग में जबकि मंत्रों के द्वारा पुत्र उत्पन्न किये जाते थे. चाहे यह मर्यादा चलगई हो, पर अब इस कलियुग में जबकि बिना स्त्री पुरुष संयोग के सन्तान उत्पन्न नहीं होसकती। कोई विक्षिप्त पुरुष भी इसके चलने की आशा नहीं कर सकता।

लोकाचार के आधार पर कियेजाने वाले आक्षेप।

शास्त्र की आड़ लेकर जो आक्षेप किये जाते हैं, उनका समाधान हम करचुके। कुछ आक्षेप ऐसे भी हैं, जिनका शास्त्र से कुछ सम्बंध नहीं, केवल रूढ़िवाद या लोकाचार का आश्रय लेकर किये जाते हैं, उनकी भी कुछ बानगी हम विज्ञ पाठकोंको दिखलाना चाहते हैं।

लोकापवाद।

पहला आक्षेप यह है कि विधवाविवाह प्रचलित लोकाचार के विरुद्ध है। चाहे कोई काम कैसा ही अच्छा और शास्त्र के अविरुद्ध क्यों नहो, यदि लोकाचार में वह वर्जित है, तो उसके करने से समाज में निन्दा होती है। "अतथ्यस्तथ्यो वा हरति महिमानं जनरवः।" लोकापवाद चाहे झूंठा हो वा सच्चा, मनुष्य की कीर्त्ति में कलङ्क लगा देता है। तभी तो किसी ने कहा है-"यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्।"

समीक्षा-लोकाचार प्रत्येक देश और समय में भिन्न २ होता है। संसार में कोई भी ऐसा आचार नहीं है, जो सब देशों में और सब कालों में एकही रीतिपर मानाजाता हो। पहले यहां आवश्यकता पड़ने पर नियोग से संतानोत्पत्ति करना, जैसाकि कुन्ती और माद्री ने किया, एक स्त्री के पांच

पति होना; जैसा कि द्रौपदी ने किया, मामा की पुत्री से विवाह करना जैसाकि अर्जुन ने किया, ऐसे २ आचार भी समाज में प्रचलित थे। आजकल ऐसे आचारों को भारत की असभ्य जातियां भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखतीं। इसी प्रकार एक देश में जो आचार प्रचलित हैं, दूसरे देशों में कहीं वे कुतूहल और कहीं अनास्था की दृष्टि से देखे जाते हैं। इस दशा में नित्य बदलने वाले लोकाचार को समाज का आदर्श बनाना उस की उन्नति और प्रगति की जड़ काटना है।

भिन्न २ देश और काल को जाने दीजिये, एक ही देश और एक ही समय में हमें कोई ऐसा आचार बतलाइये कि जिसको सारा जनसमाज एक ही दृष्टि से देखता और एक ही रीति पर मानता हो। यदि कहो कि बहुमत विधवाविवाह के विरुद्ध है तो सभ्य और सुशृंखलित समाजों में भी जब बहुमत की सत्यता सन्दिग्ध है, तो ऐसे समाज में जिसमें शृंखला और संगठन की बात तो दूर रही, सामान्य पढ़े लिखे लोग भी उंगलियों में गिनने के योग्य हैं, बहुमत को सत्यके परखने की कसौटी बनाना सत्यका अपलाप करना है। हमारे इस कथन की पुष्टि मनु करता है:—

> एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
> स विज्ञेयः परोधर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥
> अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
> सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते॥
> (मनु० १२। ११३-११४)

दस हज़ार मूर्खों के मुक़ाबले में मनु एक विद्वान् की सम्मति को श्रेष्ठ मानता है। अब देखना चाहिये कि विधवा-विवाह के विपक्ष में बहुमत किन लोगों का है ? उन्हीं लोगों का जो न शास्त्र को जानतेहैं और न जिनको अपने विवेक पर

ही भरोसा है। अन्धे की लाठी के समान रूढ़ि का आश्रय लेकर चलना बस यही जिनके जीवन का लक्ष्य है। ऐसे ही लोग (जिनकी संख्या हमारे देश में कम नहीं है) विधवा-विवाह को हव्वा समझते हैं। यदि उनसे कोई कहे कि मनुष्य के सींग और पूंछ होते हैं, या पशु मनुष्य की बोली बोलते हैं तो वे इस पर विश्वास करलेंगे और हाथ उठाकर कहेंगे कि "ईश्वर की सृष्टि विचित्र है, इसमें सब कुछ हो सकता है।" परन्तु यदि उनसे कोई कहे कि अमुकस्थान में विधवा का विवाह हुवा तो वे कानों पर हाथ धर कर कहेंगे कि बस अब कलियुग आगया, अनहोनी बातें होने लगीं।" ऐसे लोगों के बहुमत से समाज में किसी आचार की प्रतिष्ठा नहीं होसकती, यदि होती भी है तो बहुत थोड़े दिन के लिए। आजकल के शिक्षित समाज का (चाहे उसकी संख्या कितनी ही कम हो) बहुमत विधवाविवाह के विरुद्ध नहीं है। इसलिए अब उसके प्रचार को अशिक्षित जनता का बहुमत रोक नहीं सकता।

आदर्शवाद।

दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि विधवाविवाह चाहे युक्ति और साम्यवाद के आधार पर निषिद्ध न हो, पर हिन्दू-समाज में पतिव्रत धर्मका जो उच्चआदर्श मानागया है, जिसके कारण हिन्दू स्त्रियों के त्याग की विधर्मियों ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसाकी है, उसके यह विरुद्ध है। देखो एक फारसी शायर हिन्दू स्त्री के आत्मत्याग की इन शब्दों में दाद देता है:—

हमचो हिन्दू ज़न कसे दर आशिक़ी दीवाना नेस्त।
सोख्तन बर शमए मुर्दा कार हर परवाना नेस्त॥

समीक्षा— जो लोग केवल आदर्श पर अपनी दृष्टि रखते हैं और वस्तुस्थिति की उपेक्षा करते हैं, वे न केवल प्रकृति

और समय से युद्ध की घोषणा करते हैं, किन्तु अपने आदर्श की भी मट्टी पलीद करते हैं। क्योंकि केवल कल्पना मात्र से हम किसी आदर्श तक नहीं पहुंच सकते, उस तक पहुंचने के लिए हमें समय और वस्तुस्थिति का सख्त मुक़ाबला करना पड़ता है। क्या हम समाज की वर्तमान दशा में जिसमें बच्चे और बूढ़े तक विलासिता के रंग में रंगे हुवे हैं, बालविधवाओं से यह आशा करसकते हैं कि वे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर सकेंगी?

इसपर कहा जाता है कि यदि पुरुष स्त्रीव्रत धर्म का पालन नहीं करते तो क्या स्त्रियां भी पातिव्रत धर्म का पालन न करें? हमारा यह आशय कदापि नहीं है। हमतो जो स्त्रियां आजन्म कौमारावस्था में ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहती हैं उनके भी विवाह के विरुद्ध हैं, फिर भला जो विधवायें मन से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहती हैं, उनके बलात् विवाह के पक्ष में क्यों होंगे?

हमारा कथन केवल यह है कि यह आदर्श कहने में जितना सरल है, करने में उतना ही कठिन है। जब पुरुष जो स्त्रियों की अपेक्षा बल, बुद्धि और विज्ञान सब में बढ़े हुवे हैं, इस आदर्श तक पहुंचने में अपनी अयोग्यता दिखला रहे हैं, तब अबला और मूर्खा स्त्रियों से यह आशा करना कि वे इस आदर्श की रक्षा कर सकेंगी, वस्तुस्थिति से नितान्त अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है। हम बुढापे तक जिस प्रवृत्ति मार्ग का आदर्श उनके सामने रखते हैं, क्या केवल हमारे मौखिक वर्जन करने से वे उससे विमुख होसकती हैं? और जब हम स्वयं उस आदर्श का पालन नहीं करसकते तो हमें कब अधिकार है कि हम स्त्रियों से उसके पालन का अनुरोध करें।

इसके अतिरिक्त पतिव्रत और स्त्रीव्रत इन आदर्शों का पालन पति और स्त्री की मौजूदगी में ही होसकता है। विधवा और विपत्नीक ब्रह्मचर्य का पालन करसकते हैं, न कि पतिव्रत और स्त्रीव्रत का। अतएव इस आदर्श की रक्षा के लिए ही विधवाओं का विवाह होना परम आवश्यक है।

पति की अवज्ञा।

तीसरा आक्षेप यह है कि यदि विधवा विवाह होने लगेगा तो स्त्रियां पति को कुछ भी न समझेंगी। यदि पति अनुकूल न हुआ या कुछ अनबन हुई तो झट उसको मारकर या त्याग-कर दूसरा विवाह करलेंगी।

समीक्षा–अब भी जिन स्त्रियों को अनुकूल पति और जिन पतियों को अनुकूल स्त्रियां नहीं मिलीं, उनमें एक घड़ी भी नहीं बनती और बने क्योंकर भला कहीं आग और पानी का भी मेल होसकता है? अब क्या ऐसी स्त्रियां जिनका पाला वृद्ध या बालपति से पड़ा है, अपने पतियों की अवज्ञा नहीं करतीं? अवज्ञा क्या उनकी मट्टी पलीद करती हैं। आश्चर्य की बात है कि यह अनमेल विवाह तो जो सारे अनर्थों की जड़ है आपकी दृष्टि में नहीं खटकता, पर विधवाविवाह से जो हज़ारों स्त्री पुरुषों को पापजीवन से बचाने वाला है, आप ऐसे घबराते हैं।

अच्छा, अब हम आपसे पूछते हैं कि रण्डुवों के पुनर्विवाह में तो आजकल कोई रोक टोक नहीं है, स्त्री को मरते देर नहीं होती कि चट दूसरा विवाह करलेते हैं। क्या आप बतला सकते हैं कि आजतक कितने रण्डुवों ने स्त्री को मारकर या त्यागकर दूसरा विवाह किया है? यदि विवाह की इतनी

सुगमता होते हुवे भी रण्डुवे ऐसा नहीं करसकते तो फिर स्त्रियों की ओर से जो स्वभाव से ही लज्जाशील और परदुःखकातर होती हैं, आपको यह शङ्का क्यों होती है ? बात यह है कि "चोर की डाढ़ी में तिनका" इस कहावत के अनुसार आपने जो आजतक विधवाओं के साथ अमानुषिक वर्ताव किये हैं. इससे आपको भय होता है कि कहीं वे हमसे इसका बदला न चुकावें। पर आपका यह भय निर्मूल है, जब शत्रुता करते हुवे वे आपसे इसका बदला नहीं लेतीं, तब क्या मित्रता करते हुवे ऐसा करेंगी ? स्त्रियों की प्रकृति में ही ईश्वर ने प्रतिहिंसा वृत्ति नहीं रक्खी, किन्तु कृतज्ञता स्थापन की है। देखो जब नृशंस अश्वत्थामा द्रौपदी के सोते हुवे पांचों पुत्रों का सिर काटकर लेगया और अर्जुन इसके बदले में उसे द्रौपदी के सामने लाकर उसका सिर काटने लगा, तब द्रौपदी ने ही अर्जुन के बलवान् हाथ से उसकी प्राणरक्षा की।

स्त्री स्वातन्त्र्य।

चौथा आक्षेप यह किया जाता है कि यदि विधवाविवाह होने लगेगा तो फिर स्त्रियोंकी अधीनता नष्ट होकर वे स्वैरिणी बन जायेंगी और इससे पतिव्रत धर्म की हानि होगी।

समीक्षा—यह विचित्र प्रश्न है कि स्त्रियाँ पति को पाकर तो स्वैरिणी होजायेंगी और उसके अभाव में ब्रह्मचारिणी बनी रहेंगी। यह तो ऐसी बात है कि जैसे कोई भोजन पाकर तो भूखा रहे और भूखा रहकर अफर जावे। जैसे यह असम्भव है, ऐसे ही पतिवाली स्त्रियों का स्वैरिणी होना और विधवाओं का ब्रह्मचारिणी बना रहना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्यमेव है। सब जानते हैं कि काम का वेग स्त्रीपुरुष दोनों के लिए स्वाभाविक और दुर्धर्ष है, इसकी लपेट में आकर बड़े

बड़े ऋषि मुनि अपने उद्देश को भूल गये, फिर साधारण मनुष्यों की तो कथाही क्या है? राजर्षि भर्तृहरि इसीके विषय में लिखते हैं:—

> विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना।
> स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
> शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
> स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विंध्यस्तरेत्सागरम्॥

इसीके वेग को असह्य समझकर राजर्षि मनु भी शिक्षा करगये हैं:—

> मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
> बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

इस काम के दुराधर्ष वेग से स्त्री या पुरुष तभी बचसकते हैं, जबकि दोनों को एक दूसरे का वियोग न हो और उनमें परस्पर अनुकूलता भी हो। प्रत्यक्ष देखलो, उन पुरुषों की अपेक्षा, जिनका विवाह होगया है, रण्डुवे अधिक दुर्वृत्त और व्यभिचारी मिलेंगे। इसी प्रकार उन स्त्रियों की अपेक्षा जिनके पति विद्यमान हैं, विधवाओं को पतित होने के बहुत अवसर मिलते हैं और दुष्ट पुरुष भी निरापद समझकर विधवाओं को ही अपने चुंगल में फँसाने की विविध चेष्टा करते हैं। अस्तु जिसको जो वस्तु प्राप्त है या प्राप्त होनेकी आशा है, वह उसके लिए अधीर नहीं होता। हां किसी अभिप्रेत वस्तु की अनुपलब्धि या निराशा ही अधीरता को उत्पन्न करदेती है। अतएव विधवाओं का उनके योग्य वरों के साथ विवाह करदेना मानों उनकी स्वतन्त्रता और विपथगामिता की औषधि है।

इसके अतिरिक्त जब शास्त्र में लिखा है कि "युवावस्था में स्त्री को पति की अधीनता में रहना चाहिए" तब युवती

विधवा का विवाह न करना मानो उसे स्वैरिणी बनाना है। यदि कहो कि वह माता पिता की अधीनता में रहेगी, तो इसके लिये शास्त्र बाल्यावस्था को उपयुक्त बतलाते हैं। युवावस्था में सिवाय पति के और कोई उसका संरक्षक नहीं होसकता। कैसे आश्चर्य की बात है, उधर तो "भर्त्ता रक्षति यौवने" का राग अलापा जाता है और इधर युवावस्था में उसको विवाह करने से रोका जाता है। इस परस्पर विरोध को तो देखिये!! अतएव जो लोग बालविधवाओं का विवाह नहीं करते, वे जानबूझकर उनको स्वैरिणी बनाते हैं।

कन्याओं के स्वत्व पर आघात।

पांचवाँ आक्षेप यह किया जाता है कि विधवाविवाह का प्रचार होने से कन्याओं के स्वत्व पर आघात होगा, अब तो इनकी पूछ होती है, फिर इनको कोई न पूछेगा।

समीक्षा—वाहरे कन्याओं के हितैषियों! इन्हीं को सौभाग्यवती बनाने के लिए तुम पचास२ और साठ२ वर्ष की अवस्था में इनके साथ विवाह करतेहो, नहीं तो ये यावज्जीवन कौमार्य का ही अवलम्बन करतीं। अहोभाग्य हैं इनके, जो आपकी ऐसी कृपादृष्टि इनपर है। किन्तु यह तो बतलाइये कि इन बिचारी कोटि कोटि विधवाओं ने आपका क्या अपराध किया है? जो आप ज़बरदस्ती इनका स्वत्व छीनकर कन्याओं को (जो सर्वदा उसकी अनधिकारिणी हैं) देना चाहते हो। क्या जैसे कुमारी कुमार पर अपना स्वत्व रखती है ऐसे ही विधवा का स्वत्व विपत्नीक पर नहीं? ईश्वर की आज्ञा और प्रकृति का नियम तो पुकार २ कर यही कह रहे हैं कि 'समं समेन योजयेत्" पर आप ऊँट के गले में बिल्ली को बांधकर अपनी ईश्वरपरायणता और सृष्टिनियमाभिज्ञता का परिचय संसार

को दे रहे हैं। जो अनाथ विधवायें अपने सारे मानुषिक और स्वाभाविक स्वत्वों को खोये हुवे बैठी हैं, वे भला किसी का क्या स्वत्व अपहरण करेंगी? सच पूछिये तो ये अपनी उन क्वारी बहनों को जो समाज की निर्दयता से साठ साठ वर्ष के बूढ़ों की भेंट चढ़ाई जाती हैं, उस विषम भार से मुक्त करना चाहती हैं, जो इनका स्थानापन्न होकर उन्हें उठाना पड़ता है और उसके योग्य किसी प्रकार वे नहीं हैं।

सम्पत्ति पर विवाद।

छठा आक्षेप यह कियाजाता है कि यदि विधवाविवाह होने लगेगा तो पूर्वपति की संपत्ति पर बहुत से विवाद उठेंगे, जिनके लिए न्यायालयों का आश्रय लेना पड़ेगा।

समीक्षा—प्रचलित हिन्दू दायभाग के नियमानुसार विवाह न करने पर भी हिन्दू स्त्रियां पति की सम्पत्ति पर सिवाय अपना योगक्षेम करने के कोई स्थायी अधिकार नहीं रखतीं, न वे उसको रहन करसकती हैं और न दान या विक्रय। जिन समाजों में जैसे ईसाई और मुसलमान, स्त्रियों को पितृदाय और पतिदाय दोनों मिलते हैं. वहां तो उनके पुनर्विवाह करने पर कोई झगड़ा न हो और यहां जहां ढाक के तीनपात हैं, झगड़ों का बवंडर उठ खड़ा होगा। रहा स्त्रीधन या पिता या पति ने दान या वसीयत के द्वारा यदि उन्हें कुछ दिया है तो वह उनका अपना है, उससे उनको किसी दशा में भी कोई वञ्चित नहीं करसकता।

जब मृतपति से ही उनका कुछ सम्बंध न रहा, तब वे उसकी जायदाद को लेकर क्या करेंगी? यदि लोभ से ऐसा कोई चाहे भी तो कानूनी वारिस के होने पर अदालत उसे

क्यों दिलायेगी ? हां उस अवस्था में जबकि कोई क़ानूनी वारिस न हो, वे उसको फेंक नहीं सकतीं । जब ऐसी दशा में पिता की सम्पत्ति भी उनको मिलती है, तो इस में क्या आपत्ति है ? दोनों दशाओं में विवाद का कोई कारण नहीं दीखता । यदि इसपर भी कोई विवाद उठखड़ा हो तो क़ानून के मुताबिक न्यायालय उसका निर्णय करसकते हैं । "वैरजीर्णभयाद्भ्रातः ! भोजनं परिहीयते" क्या किसी ने अजीर्ण के भय से भोजन का भी परित्याग किया है ?

इसी प्रकार के अन्य भी असंगत और असार आक्षेप किये जाते हैं विस्तरभय से हम यहां उनका उल्लेख नहीं करसकते।
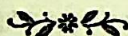
तीसरा अध्याय।

आचार और समाज।

धर्मशास्त्र और आचार।

धर्मशास्त्र एक प्रकार का क़ानून है और आचार उसका उदाहरण (नज़ीर) है। यद्यपि क़ानून नज़ीर पर अवलम्बित नहीं होता, उसकी नींव किसी सिद्धान्त या उद्देश पर रक्खी जाती है, तथापि नज़ीर से उसकी पुष्टि अवश्य होती है। इसी प्रकार आचार भी धर्मशास्त्र का पोषक है और जिन बातों के लिए धर्मशास्त्र में न विधि है न निषेध, उनमें वह क़ानून का काम भी देता है।

यद्यपि जितने क़ानून या धर्मशास्त्र मनुष्यों में प्रचलित हैं, वे सब उनके आचार विचारों का ही परिणाम हैं और इस में भी सन्देह नहीं कि सर्व साधारण पर क़ानून का इतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना कि उदाहरण का। तथापि यह हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्येक देश में सभ्यता की उन्नति के साथ २ आचार का शासन कम हुवा है और क़ानून का शासन बढ़ा है। क़ानून भी वह नहीं, जिसकी नींव आज से हज़ारों वर्ष पहले प्राचीन आचार विचारों पर रक्खी गई थी, किन्तु हमारी वर्तमान परिस्थिति और आवश्यकतायें जिसको निर्माण कररही हैं। सभ्यताभिमानिनी जातियों में जब पुराने क़ानून संशोधित और परिवर्तित होरहे हैं, तब आजकल किसी अग्रगामी समाज में (चाहे उसकी गति कितनी ही मंद क्यों नहो) आचार का शासन जो एक प्रकार का जीतों पर मुर्दों का शासन है, कभी पर्याप्त नहीं होसकता।

धर्मशास्त्र में आचार भी धर्म का एक लक्षण मानागया है और यदि उससे किसी सामाजिक या नैतिक हानि की सम्भावना नहीं है, तो वर्त्तमान क़ानून भी उसकी उपेक्षा नहीं करता। क़ानूनमें आचार की जो परिभाषा दीगईहै, वहयहहै:-

'कोई आचार जो दीर्घकाल से किसी जाति में प्रचलित हो और किसी निर्दिष्ट और निर्विवाद रीतिपर उस समाज के लोग उसका पालन करते हों, वह उस जाति या समाज का आचार कहलाता है। उसी को इस देश की भाषा में देशाचार या लोकाचार कहते हैं।

क़ानून किस आचार को वैध मानता है ?

वर्त्तमान क़ानून किसी देश या जाति के आचार को तबतक वैध या उपयोज्य नहीं मानता, जबतक उस में निम्नलिखित चार योग्यतायें न हों :—

(१) वह आचार दीर्घकाल से उस जाति में प्रचलितहो।

(२) परिवर्त्तन शील न हो अर्थात् बीच में उस में कोई विकार उत्पन्न न हुआ हो।

(३) युक्तियुक्त और बुद्धिग्राह्य हो।

(४) धर्मशास्त्र के विरुद्ध न हो अर्थात् धर्मशास्त्र में उस के लिए प्रमाण मौजूद हो।

उक्त चार योग्यताओं के होने से ही कोई आचार वर्त्तमान क़ानून के रूप में परिणत होसकता है, अन्यथा नहीं। अब हम को देखना यह है कि विधवाविवाह में ये चारों योग्यतायें मौजूद हैं या नहीं ?

पहली कसौटी में जब हम इसको परखते हैं तो प्राचीन समय में इसका यहां प्रचलित होना न केवल श्रुति और स्मृतियों के प्रमाणों से (जैसा कि पहले अध्याय में हम दिखला

चुके हैं) सिद्ध है, किन्तु उस निषेध से भी जो किसी किसी ग्रन्थ में इसका पाया जाता है, यह बात भली प्रकार सिद्ध हो जाती है कि पहले यहां इसका प्रचार था, अन्यथा अप्राप्ति में उसका निषेध हो ही नहीं सकता था। इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों में नियोग तक के (जिसको आजकल की सभ्यता स्वीकार नहीं करती) उदाहरण पाये जाते हैं, तब विधवा विवाह को नवीन आचार कहने का साहस कोई कर नहीं सकता।

दूसरी कसौटी में जब हम इसको परखते हैं तो इसमें नियोग के समान परिवर्तन शीलता भी हम नहीं पाते। नियोग की रीति परिवर्तित होते होते आज बिलकुल नामशेष होगई, पर विधवाविवाह की रीति में आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुवा। यह बात दूसरी है कि जाति के किसी समुदाय विशेष में इसका प्रचार कम हो गया हो या नहीं रहा हो। प्रचार तो और भी बहुत से अच्छे आचारों का जैसा कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, युवाविवाह, स्त्रीशिक्षा, समुद्रयात्रा और ब्रह्माध्ययन आदि हैं, लुप्त हो गया था। यदि इनका पुनः प्रचार करना किसी नवीन आचार की स्थापना करना नहीं है, तो विधवाविवाह को शतजन्म में भी कोई प्राचीन आचार के विरुद्ध सिद्ध नहीं कर सकता। इसकी सत्ता और रूप में आज तक कोई विकार उत्पन्न नहीं हुवा और न हो सकता है। भला क्योंकर हो जबकि प्रत्येक सभ्यजाति में बिना विवाह सम्बन्ध के स्त्री-पुरुष समागम पाप समझा जाता है। अतएव जबतक स्त्री पुरुषों में परस्पर साहचर्य की योग्यता है, तब तक विवाह की रीति में चाहे आंशिक भेद हो, पर उसके उद्देश्य और रूप में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ सकता।

तीसरी कसौटी में जब इसको परखा जाता है तो केवल मानुषिक विवेकही बालविधवाओं को वैधव्य की भयानक दशा में रखने के प्रतिकूल नहीं किन्तु मानुषिक हृदय भी मानव समाज के अर्द्धाङ्ग की उस दुर्दशा को, जो वैधव्य से उत्पन्न होती है, स्मरण करके कम्पित और द्रवित हो जाता है। कोई विवेकशील और हृदयवान् मनुष्य अपनी पुत्रियों और भगिनियों को वैधव्य जैसी भयानक और शंकास्पद दशामें देखना पसन्द नहीं कर सकता। विवेक तो हमको मनुष्यों के ही नहीं, किन्तु प्राणिमात्र के सुख दुःख को अपने ही समान अनुभव करने की प्रेरणा करता है, फिर यदि हम अपनी पुत्रियों के ही अथाह दुःख पर ध्यान न देकर और आप बूढ़े तथा शक्तिहीन होकर भी संसार के आमोद प्रमोद से मुंह न मोड़ें, क्या इसीका नाम विवेकशीलता है? विवेक तो एक ओर यदि हमारा हृदय भी पत्थर नहीं होगया है, तो हमको इस बात की कदापि आज्ञा नहीं देता कि हम अपनी प्यारी पुत्रियों को आजीवन वैधव्य की आगमें जलता हुवा देखें और आप संसार के रागरंग और भोग विलास से मरते दम तक मुंह न मोड़ें।

यदि प्राकृतिक दृष्टि से इसविषय को देखा जाय तो मनुष्य की साधारण बुद्धि भी यह बात बतलाती है कि प्रकृति देवी ने जिस उद्देश के लिए पुरुष को उत्पन्न किया है, उसी उद्देश की पूर्ति के लिए संसार में स्त्रियां भी उत्पन्न कीगई हैं। जब पुरुष विना पत्नी के मनुष्यजन्म के उद्देश को पूरा नहीं कर सकता तो स्त्री विना पुरुष के अपने जन्म को कैसे सार्थक बना सकती है? पुरुष तो बलवान् होने से विना स्त्री के भी कथञ्चिद् अपना निर्वाह कर सकता है, पर स्त्रियां

जिनको प्रकृति ने ही निर्बल बनाया है, बिना पुरुष की सहायता के अपनी कठिन जीवन यात्रा को कैसे पूरा कर सकती हैं ? इस दशा में बालविधवाओं को विवाह से रोकना केवल बुद्धि का ही दुरुपयोग नहीं है, किन्तु प्राकृतिक नियमों से युद्ध करना भी है।

नैतिक दृष्टि से देखने पर भी मनुष्य की बुद्धि, उस अन्याय और अत्याचारकी जो निरपराध बालविधवाओं पर किया जारहा है और उन पाप और अनर्थों की जो विधवा-विवाह के न होने से समाज में प्रवृत्त होरहे हैं, कदापि उपेक्षा नहीं कर सकती। यदि कोई क्षुधा के वेग में चोरी करता है या अभक्ष्य खाता है, तो नैतिक दृष्टि से उसका इतना दोष नहीं, जितना कि उसको भूखा मारनेवालों का या उसकी भूख की उपेक्षा करनेवालों का है। अतएव जो लोग बालविधवाओं को वैधव्य का जीवन व्यतीत करने के लिए बाधित करते हैं, वे न केवल उनके साथ अन्याय करते हैं, किन्तु गुप्त व्यभिचार, गर्भपात और भ्रूणहत्या जैसे महापापों को समाज में फैलने का अवकाश भी देते हैं।

सामाजिक दृष्टि से देखने पर भी मनुष्य की साधारणबुद्धि विधवाविवाह की उपयुक्तता को अस्वीकार नहीं कर सकती। यदि युवा और अधेड़ पुरुषों का हित भी इसमें समझा जाता है कि वे जीवन की इस विषमयात्रा में विना स्त्रीके न रहें, तब बालविधवाओं को जिनमें न बाहुबल है, न विद्याबल, अपना पहाड़ सा जीवन प्राकृतिक सखा पुरुष के बिना व्यतीत करने के लिए बाधित करना; न केवल समाज में दुराचारों की वृद्धि करना है, किन्तु दुःखी और सन्तप्त लोगों की संख्या को भी बढ़ाना है। क्या वह समाज जिसमें लाखों कुलीन विधवायें दिनरात शंकास्पद

जीवन व्यतीत करती हुईं चिन्तानल में जल रही हों, कभी शान्ति और स्वस्ति का मुंह देख सकता है ?

अबरही चौथी कसौटी धर्मशास्त्र के विरुद्ध न होना सो इस की परीक्षा हम पहले अध्याय में सप्रमाण करचुके हैं। अतएव धर्मशास्त्र के अनुकूल होने की योग्ता भी इसमें पूरी पूरी है। इससे सिद्ध है कि उक्त चारों योग्यतायें जो किसी आचार को कानून की दृष्टि में उचित, पूर्ण और उपयोगी ठहराती हैं, विधवा-विवाह में मौजूद हैं। यही कारण है कि हमारी विचारशीला गवर्नमेन्टने इन चारों कसौटियों में परखकर ही इस आचारको क़ानून के स्वरूप में परिणत किया है, जो विधवाविवाह एक्ट १५ सन् १८५६ के नाम से प्रसिद्ध है। पाठकों की अभिज्ञता के लिए हम उस क़ानून की धाराओं का भावानुवाद यहां पर देते हैं:—

विधवाविवाह एक्ट नं० १५ सन् १८५६।

प्रयोजन—उस क़ानून के अनुसार जो ब्रिटिश भारत में उन देशों की दीवानी अदालतों में प्रचलित है, जो सरकार ईस्टइण्डिया कम्पनी बहादुर के अधिकार में हैं, हिन्दू विधवायें (कुछ को छोड़कर) एकवार विवाह होजाने के कारण नियमपूर्वक दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं और पुनर्विवाह से उक्त विधवाओं की जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह दूषित ठहरती है और पैत्रिक दाय में भाग नहीं पाती।

हिन्दुओं की अनिच्छा के कारण ही अबतक उक्त क़ानून में कुछ सुधार न होपाया। परन्तु अब सरकार को मालूम हुआ है कि हिन्दूसमाज का एक विशिष्टभाग इस बात का इच्छुक है कि प्रचलित सरकारी क़ानून में ऐसा सुधार कर दिया जाय कि भविष्य में वे हिन्दू जो अपने धर्म या विवेक

के अनुसार (चाहे प्रचलित रीति के विरुद्ध ही क्यों न हो) विधवा का पुनर्विवाह करना चाहें, उनके लिए कानूनी कोई रुकावट न रहे। सरकार की दृष्टि में उनकी यह इच्छा न्याय-संगत है और इससे सर्वसाधारण का हित एवं उन्नति अभीष्ट है। अतएव हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह को क़ानून में वैध ठहराने के लिए निम्नलिखित आज्ञायें दीजाती हैं:—

हिन्दू विधवाओं का पुनर्विवाह कानून में वैध है।

धारा १—केवल इस कारण से कि किसी हिन्दू स्त्री का विवाह या मंगनी किसी दूसरे मनुष्य के साथ होगई है, जो उसके पुनर्विवाह के समय मर चुका हो, कोई विवाह हिन्दुओं में क़ानूनी तौर पर अवैध नहीं होसकता और न ऐसे विवाह की सन्तान दूषित या पितृदाय के अयोग्य समझी जायगी। चाहे किसी देश का आचार या किसी शास्त्र की आज्ञा उसके विरुद्ध भी हो।

मृतपति की संपत्ति पर विधवा का कुछ अधिकार न होगा।

धारा २—वे समस्त अधिकार जो विधवा को अपने मृतपति की संपत्ति पर प्राप्त होंगे, जैसे उसकी जायदाद को अपने अधिकार में लेना या उससे अपना योगक्षेम करना या किसी वसीयतनामे या हिबानामे के अनुसार उसे सब या कुछ अधिकार दिये गये हैं, पुनर्विवाह करने पर वे उसी प्रकार समाप्त होजायंगे; जैसे मरने पर समाप्त होजाते हैं। मृतपति के निकटतम दायभागी अथवा कोई अन्य व्यक्ति, जिनको वह जायदाद विधवा के मरने पर मिलती, उसको प्राप्त करेंगे।

मृतपति की सन्तान का संरक्षक।

धारा ३—यदि कोई ऐसी हिन्दू विधवा जिसकी मृतपति से उत्पन्न हुई सन्तान (जिसका कोई संरक्षक नियत नहीं हुवा है) अवयस्क (नाबालिग़) हो, पुनर्विवाह करना चाहे तो मृतपति के बाप या दादा, मां या दादी, या और कोई सम्बन्धी स्थानिक दीवानी न्यायालय में इस विषय का एक प्रार्थना पत्र देसकते हैं कि कोई योग्य पुरुष उसकी सन्तान का संरक्षक नियत किया जाय, न्यायालय यदि उचित समझे तो संरक्षक नियत करदे, वह संरक्षक माता का स्थानापन्न समझा जायगा। संरक्षक के नियत करने में न्यायालय उन नियमों का ध्यान रक्खेगा, जो मातृहीन तथा पितृहीन बालकों की रक्षा के सम्बन्ध में हैं। किन्तु उस दशा में जबकि मृतपति की जायदाद सन्तान के रक्षण और पालन के लिये पर्याप्त न हो; माता की आज्ञा के बिना संरक्षक नियत न होगा। हां यदि संरक्षक इसकी ज़मानत दे तो होसकता है।

निःसन्तान विधवा दाय नहीं पासकती।

धारा ४—इस एक्ट के अनुसार कोई विधवा जो किसी संपत्तिशाली पुरुष की मृत्यु के समय निःसन्तान हो, इस योग्य न होगी कि वह उस सम्पत्ति को या उसके किसी भाग को दायभाग में प्राप्त कर सके। यदि इस एक्ट के प्रचलित होने से पहले वह निःसन्तान होने के कारण उस सम्पत्ति को दाय में पाने के अयोग्य होती।

पुनर्विवाहिता विधवा के स्वत्व की रक्षा।

धारा ५—उन दशाओं के अतिरिक्त जो धारा २-३-४ में वर्णित हुई हैं, कोई विधवा पुनर्विवाह के कारण किसी ऐसी संपत्ति या स्वत्व से वञ्चित न होगी, जिसकी वह पुनर्विवाह

न करने की दशा में अधिकारिणी होती। प्रत्येक पुनर्विवाह करने वाली विधवा को दायभाग पाने के वही अधिकार प्राप्त होंगे, जो उस दशा में प्राप्त होते, यदि वह पुनर्विवाह उसका पहला विवाह होता।

पुनर्विवाह की पर्याप्ति।

धारा ६—किसी कुमारी हिन्दू स्त्री के विवाह संस्कार में जो शब्द कहे जाते हैं या विधान और प्रतिज्ञायें की जाती हैं, जिनसे वह विवाह नियमानुकूल और पूर्ण समझा जाता है, वे ही शब्द, विधान और प्रतिज्ञायें यदि किसी हिन्दू विधवा के पुनर्विवाह के समय प्रयुक्त होंगे तो उनका भी वही प्रभाव होगा। कोई पुनर्विवाह इस कारण से नियमविरुद्ध नहीं ठहराया जायगा कि उक्त शब्द, विधान या प्रतिज्ञायें विधवा के पुनर्विवाह से लागू नहीं हैं।

बालविधवा के सम्बन्ध में।

धारा ७—यदि पुनर्विवाह करने वाली विधवा बाला (नाबालिग़) हो, जिसका सहवास अपने पूर्वपति के साथ न हुआ हो तो वह बिना स्वीकृति अपने पिता, पिता न हो तो दादा, दादा न हो तो माता, माता न हो तो ज्येष्ठभ्राता और यदि ज्येष्ठभ्राता भी न हो तो किसी अन्य निकटतम सम्बन्धी के पुनर्विवाह नहीं कर सकती।

वे पुरुष जो जान बूझकर ऐसे विवाह में सहायता देंगे जो इस धारा के प्रतिकूल हो, दण्डनीय होंगे। दण्ड जुर्माना या कैद जिसकी अवधि एक वर्ष होगी, दोनों हो सकते हैं और इसका परिणाम यह होगा कि ऐसे विवाह को न्यायालय अनुचित ठहरादेगा। किन्तु जो विवाह इस धारा के प्रतिकूल हो, यदि उसके ठीक होने के सम्बन्ध में कोई विवाद उठखड़ा

हो तो उसे अवैध न माना जायगा, जबतक कि उसके विरुद्ध सिद्ध न हो। पति पत्नी के सहवास के उपरान्त कोई ऐसा विवाह अवैध नहीं ठहराया जायगा। विधवा के युवती (बालिग़) होने की दशा में या जिसका सहवास अपने पूर्व-पति के साथ हो चुका हो, विधवा की स्वीकृति उसके पुन-र्विवाह को उचित और वैध ठहराने के लिए पर्याप्त होगी।

सिद्धान्त और आचार।

अब प्रश्न यह होता है कि जब विधवाविवाह में क़ानून के लिये अपेक्षित चारों योग्यतायें पूर्ण रूप से विद्यमान थीं, तब इसका कुलीन लोगों में अप्रचार क्यों हुवा और क्यों अब तक धार्मिक जगत् में यह अच्छी दृष्टि से नहीं देखाजाता? इसका कारण यह है, जब कोई जाति सिद्धान्तों की उपेक्षा करके आचार की उपासना करने लगती है। या यों कहना चाहिये कि अपने विवेक और प्रत्यय पर भरोसा न करके प्रत्येक बात में दूसरों का सहारा ढूँढने लगती है, तब उसमें अन्धपरंपरा फैलती है और उसकी दृष्टि इतनी संकुचित हो जाती है कि आचार की कटीली झाड़ियों से निकलकर वह सिद्धान्त की सुरम्य वाटिका में पहुंच ही नहीं सकती। पूर्वकाल में चाहे विद्या और सभ्यता की इतनी उन्नति न हुई हो, जितनी कि अब है और आजकल के समान हमारे पूर्वजों को बौद्धिक विकास के लिये भिन्न २ सभ्यताओं का इतना विशाल क्षेत्र भी न मिला हो, जितना कि हमको प्राप्त है। परन्तु यह कहने में हमको कुछभी सङ्कोच नहीं है कि हमारे समान हमारे पूर्वज अन्धपरंपरा के अनुयायी न थे, वे सिद्धान्तवादी और सारग्राही थे। यद्यपि आचार को वे एक धर्म का लक्षण मानते थे, तथापि उन्होंने सिद्धान्त को उसकी

पूंछ कभी नहीं बनाया। प्रत्युत प्रत्येक समय में उनके नियत किये हुवे सिद्धान्तों के अनुसार ही लोक में आचार की प्रवृत्ति हुई है। उनमें नेतृत्व शक्ति थी, हम सर्वथा अनुयायी होगये हैं, बस यही हममें और उनमें अन्तर है।

हम यह नहीं कहते कि उनमें भूल या त्रुटि नहीं थी, या उनके आचार विचार सर्वथा निर्दोष और पूर्ण थे। भ्रान्ति और अपूर्णता का होना सर्वत्र और सब कालों में मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर चाहे उनके बहुत से विचार और सिद्धान्त वर्तमान परिस्थिति में उपयुक्त न समझे जांय और यह उनपर ही क्या निर्भर है, हमारे बहुत से आचार विचार भी सम्भव है कि हमारी सन्तान की दृष्टि में हेय हों। तो भी यह कहने में हमें संकोच नहीं है कि अपने समय के वे अच्छे व्यवस्थापक ही नहीं, किन्तु प्रयोजक भी थे। उनमें समयानुसार अपने समाज के लिये क़ानून बनाने की योग्यता ही न थी, किन्तु वे उसका उपयोग करने में भी कुशल थे। हम लोगों में चाहे हम अपनी विद्या और सभ्यता का कितना ही अभिमान करें, उस नेतृत्व शक्ति का सर्वथा अभाव होगया है। हम शास्त्री और आचार्य होकर भी यही नहीं कि समाज के लिए उपयुक्त नियम नहीं बना सकते, किन्तु हमारा अपना भी कोई सिद्धान्त या उद्देश नहीं होता। हम अपने व्यक्तिगत कर्तव्य के लिए भी दूसरों का मुंह ताकते हैं। कोई कैसा ही अच्छा आचार हो, केवल हमारा विवेक ही नहीं किन्तु शास्त्र, देश और काल भी उसकी पुष्टि करते हों, पर यदि भेड़ाचाल के वह विरुद्ध है तो उसके करने का तो एक ओर कहने का भी हमको साहस नहीं होता। हम उसके लिए उन लोगों का मुंह ताकते हैं, जो केवल रूढ़िपूजा को ही अपने जीवन का उद्देश समझते हैं।

इस गतानुगति नेहो पैरों के होते हमको लूला और आंखों के होते अन्धा बना दिया है। जो आचार हमारे समाज को निर्बल और निकम्मा बनारहे हैं, जिनके कारण हम आप अपने ऊपर अन्याय और अत्याचार कर रहे हैं, उनके दुष्ट परिणामों का देखते और भोगते हुवे भी हम उनके विषाक्त प्रभाव से अपने समाज की रक्षा नहीं कर सकते। ऐसी दशा में यदि हमारे समाज से विधवाविवाह का प्रचार लुप्त होकर बाल-विवाह और वृद्धविवाह जैसे जातिनाशक आचार प्रचलित हो गये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

शूद्र और विधवाविवाह ।

हम में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो शूद्रों में विधवाविवाह का प्रचार होने से द्विजों के लिए इसे अनुपादेय ठहराते हैं। आचार परीक्षा की यह विचित्र कसौटी है, जिस काम को शूद्र करें, द्विजों को उसके विपरीत अवश्य करना चाहिये। जो लोग ऐसे क्षुद्र हेतुओं से विधवाविवाह को हेय सिद्ध करना चाहते हैं, उनका प्रयास इस विकास के युग में कहांतक सफल होगा ? क्या शूद्र का स्पर्श होने से सोना कभी लोहा बन सकता है ? यदि नहीं बन सकता तो शूद्रों की छूत विधवा विवाह को भी नहीं लगसकती। अच्छा, हम पूछते हैं, शूद्रों में यह आचार आया कहांसे ? उनमें स्वयं तो किसी आचार के निर्माण करने की योग्यता होती ही नहीं, वे तो भगवान् कृष्ण के वचनानुसारः—

> यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
> स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

अनुकरण शील होते हैं। जैसा द्विजों को करता हुवा देखते हैं, वैसाही वे भी करने लगते हैं। अब भी जो २ आचार द्विजों

में प्रचरित हैं, प्रायः उन्हीं का अनुकरण शूद्र भी करते हैं। यह बात दूसरी है कि उनके विधानों में कुछ भेद हो, सो यह विधानभेद परस्पर साम्य रखते हुवे द्विजों में भी अनिवार्य है। इस दशा में शूद्रों को किसी आचार का निर्माता और उसके विधानों का व्यवस्थापक ठहराना ब्राह्मणों के जन्मसिद्ध अधिकार पर आक्रमण करना है। एक बात यह भी है, प्रत्येक समाज में निम्नकक्षाके लोग ही मूर्ख और अन्धविश्वासी होने के कारण प्राचीन आचार विचारों की रक्षा करते हैं उच्चकक्षा के लोग अपनी विद्या और बुद्धि के घमण्ड में उनकी उपेक्षा करते हैं। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि अबतक जितना रूढ़िवाद निम्नकक्षा के लोगों में पाया जाता है, उसका दशमांश भी उच्चश्रेणी के लोगों में नहीं मिलता। सभ्यता नामही परिवर्तन का है, जिनमें जितनी अधिक परिवर्तन की योग्यता है, वे उतने ही अधिक सभ्य कहलाते हैं। अतएव हमारे रूढ़िवादी भाइयों को तो इसविषय में शूद्रों का कृतज्ञ होना चाहिये कि उनके कारण अबतक हमारे समाज में बहुत से प्राचीन आचार विचार सुरक्षित हैं। अन्यथा यदि वे उनपर अपनी प्रतिनिविष्ठता की मोहर न लगाते तो आज कहीं उनका चिन्ह भी दृष्टिगोचर न होता।

यह कैसे आश्चर्य की बात है कि द्विज विना विवाह के अपने वर्ण की स्त्री को ही नहीं किन्तु अन्य वर्ण की स्त्री को भी अपनी उपपत्नी बनासकते हैं और यह दुराचार जिसको शूद्र भी अच्छा नहीं समझते, हमारे समाज की दृष्टि में नहीं खटकता। यदि कहो कि समाज ने किसी को इसकी आज्ञा कब दी है? वे अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए ऐसा करते हैं और इसका दायित्व उन्हींपर है। तो हम पूछते हैं,

जो समाज ऐसे दुराचारियों को कुछ दण्ड नहीं देसकता, यहां तक कि उनको किसी प्रायश्चित्त के योग्य भी नहीं समझता, उसमें कोई सुव्यवस्था और सुमर्यादा प्रतिष्ठित रहसकती है ? इस बात में तो द्विज शूद्रों के भी कान काटते हैं, पर नियम पूर्वक किसी विधवा के साथ विवाह करने में उन्हें शूद्रों की छूत लगने का डर है।

संस्कार और आचार।

यद्यपि प्रत्येक समाज में प्रचलित रूढ़ आचारों के अनुसार ही क़ानून बनाये जाते हैं, तथापि उन आचारों को क़ानून की पदवी उन्हीं समाजों में दीजाती है, जिनमें समय की गति के साथ चलने की योग्यता नहीं होती था कम होती है। असभ्य और अनुन्नत जातियों में ही आचार का अनुशासन अधिकतर देखने में आता है। जो रिवाज जिस ढंग पर उनमें पहले से चलेआते हैं उनका आंखें मींचकर पालन करनाही वे अपना धर्म समझते हैं। वे उनके गुण दोषों को नहीं देखते और न इसकी क्षमता ही उनमें होती है। कैसा ही बुरा आचार हो और उस का कितना ही दूषित प्रभाव समाज पर पड़ता हो, उसमें परिवर्तन तो एक ओर कम से कम संशोधन करना भी वे अपने पूर्वजों का अपमान समझते हैं। अन्धे की लाठी के समान एक मात्र लोकाचार ही उनका आदर्श होता है और भूतकाल तक ही उनकी दृष्टि परिमित होती है।

इसके विपरीत सभ्य और उन्नत समाज प्रत्येक आचार के (चाहे वह प्राचीन हो वा नवीन) गुणदोषकी परीक्षा करते हैं और उसका अच्छा वा बुरा जो प्रभाव समाज पर पडता है उसको भी अपनी सूक्ष्मदर्शिनी बुद्धि से देखते हैं। उनको भूत से अधिक वर्तमान की और वर्तमान सेभी अधिक भविष्य की

चिन्ता होती है। वे विकार और संस्कार, स्थिति और गति इन दोनों के मर्म को खूब समझते हैं। वे जानते हैं, कैसा ही स्वच्छ जल क्यों न हो, यदि उसकी गति को रोककर उसे स्फटिक के हौज में भी रक्खा जायगा तो वह सड़ जायगा। इसी प्रकार कोई कैसी ही उत्तम वस्तु हो; यदि समयानुसार उसका संस्कार न किया जायगा तो उसमें दोष और विकार उत्पन्न होकर उसीको नष्ट न करेंगे, किन्तु पार्श्ववर्ती पदार्थों पर भी अपना दुष्प्रभाव डाले विना न रहेंगे। अतएव उन्नतिशील समाजों के नेता बन्द जल की भान्ति जो आचार सड़गये हैं, प्रतियत्न और संस्कार के द्वारा उनके दोषों को दूर करके उनको शुद्ध और समाज के लिए हितकर बनातेहैं। जो विलकुल सड़गये हैं, उनमें उचित परिवर्तन और जो संस्कार के योग्य हैं, उनका आवश्यक संशोधन करके देश काल और समाज की आवश्यकताओं के अनुसार नियम बनाते हैं और सबसे पहले स्वयं उनका पालन करके दूसरोंके लिए आदर्श बनते हैं।

पर भारत का तो बाबा आदम ही निराला है। भारतीय समाजों के नेता राजनैतिक दौड़ में तो अपने पक्ष, समाज को अन्य जातियों के बराबर या उन से भी आगे बढ़ाहुवा देखना चाहते हैं, परन्तु सामाजिक सुधार के नाम से वे मुँहपर हाथ रखते हैं और कहते हैं कि जिनका हम सुधार करना चाहते हैं, जब वेही बिगड़गये, तो फिर हम सुधार किसका करेंगे ? परन्तु प्रश्न यह है कि जिस समाज को उसके भीतर के कीड़े खारहे हों और जो चारों ओर से कुरीतियों की दल-दल में फंसा हुवा हो क्या वह उस राजनैतिक दौड़ में जिसमें एकसे एक बलशाली और सङ्गठित समाज अपना २ कर्तव्य और हुनर दिखलारहे हैं, भागलेना तो एक ओर खड़ा भी रहसकता

है ? जबतक आप हम अपनी सहायता न करेंगे, ईश्वर भी हमारी सहायता नहीं करसकता। अपने समाज से उदासीन होकर और उसको कुरीतियों की दलदल में फंसा हुवा छोड़ कर हमारा जातीय मोक्ष एक सुखस्वप्न से बढ़कर नहीं है।

अन्धअनुकरण और अन्धविश्वास।

कहाजाता है कि भारत में अपने पूर्वजों के प्रति भक्ति विशेष है, यही कारण है कि यहां प्राचीन रीति नीतियों का आदर विशेष किया जाता है। जबतक भारतीयोंके हृदय में यह भक्ति और कृतज्ञता का भाव है, वे अपने पूर्वजों का अनुकरण करना नहीं छोड़ सकते। हम कहते हैं,पृथिवी में ऐसा कौनसा देश है, जहां के निवासियों में अपने पूर्वजों की भक्ति और स्मृति नहो। सचतो यह है कि संसार में यदि जातीय जीवन का कोई स्रोत है तो वह यही पितृभक्ति और पूर्वजों की स्मृति है। पर हम शोकके साथ देखते हैं कि दूसरी जातियों के अन्ध अनुकरणमें हम अपने पूर्वजों के आदर्शों को तो छोड़ते जाते हैं, केवल लकीर पीटने का नाम हमने भक्ति रक्खा है। अपने पूर्वजों की सच्ची भक्ति यह है कि उन्होंने हमारे जातीय जीवन को जिस सांचे में ढाला है और मनुष्य जीवन का जो उच्च आदर्श हमारे सामने रक्खा है, इस उन्नति की दौड़ में यथेच्छ भाग लेते हुवे और दूसरी जातियों की शिक्षा और सभ्यता से सामयिक लाभ उठाते हुवे भी हम उसको अपने हृदय से न भुलावें। हमारे जातीय जीवन के विकास के लिए दूसरों का अन्ध अनुकरण जितना हानिकर है, उससे कहीं अधिक अपनों का अन्धविश्वास और अन्धभक्तिहै। जहां अन्ध अनुकरण हमें धोबी का कुत्ता बनाता है, जो न घर का रहने दे न घाटका, वहां अन्धविश्वास हमको कूपमण्डूक बनाता है,

जिसमें टर्र टर्र करते हुवे ही हम अपना जीवन समाप्त कर-देते हैं। अन्धअनुकरण से हम आत्मगौरव और अन्धविश्वाससे आत्मप्रत्यय को खो बैठते हैं। अतएव जातीय जीवन की रक्षा के लिए इन दोनों का ही नियन्त्रण आवश्यक है। हमारे बहुत से भाई अन्धविश्वास की पुष्टि में मनुका यह प्रमाण देते हैं:—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतांमार्गं तेन गच्छन्नरिष्यते ॥ (४ । १७८)

उनके प्रति हमारा यह निवेदनहै कि मनु इस पद्यमें आचारों का वर्णन नहीं करता, वह केवल वह मार्ग या आदर्श हमारे सामने रखता है, जिसके द्वारा हमें पितृपितामह का अनुकरण करना चाहिये। हम अपने पूर्वजों की चालपर चलकर भी दूसरों के सद्गुणों से लाभ उठा सकते हैं। यह अवश्य नहीं है कि हम अंगरेज़ बनकर ही उनकी अच्छी बातें सीख सकें, भारतीय बने रहकर भी हम उनसे यथासमय लाभ उठासकते हैं। बस मनुका अभिप्राय इस पद्य से केवल इतना ही है कि हम अपनी जातीय सत्ता न खोकर सन्मार्ग का अनुसरण करें। इसका यह आशय कदापि नहीं होसकता कि हम सदामरी मक्खी मारते रहें और जिस दशा में हमारे पूर्वज थे, या इस समय हम हैं, उससे आगे बढ़ने की चेष्टा न करें। यदि मनु का यही आशय होता तो दूसरे अध्याय में वह यह न लिखताः—

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥

(मनु० अ० २ प० २३९-२४०)

इन पद्यों में मनु स्पष्ट कहता है कि विद्या, धर्म और सद्वृत्त हमको क्रमशः नीच, शूद्र और शत्रु से भी ग्रहण करने चाहियें) तब उसका पूर्व पद्य से यह आशय कदापि नहीं हो-सकता कि हम अपने बड़े बूढ़ों के दुराचारों का भी यदि उन्होंने कोई किये हों आंखें मींचकर अनुसरण करें। जब हमारे पूजनीय आचार्य खुद हमें यह उपदेश करते हैं:—

"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।"

(तैत्तिरी ॰ नि ॰)

तब हम आंखें बन्द करके कदापि उनका अनुसरण नहीं कर सकते।

विवेक और आचार।

यह भी तो देखना चाहिये कि परमात्माने हमको मनुष्य बनाया है और हिताहित ज्ञान के लिए बुद्धि प्रदान की है। न तो हम पशु ही हैं कि हमारी इच्छा और स्वीकृति के विना कोई जहां चाहे हमको लेजाय और जो चाहे हमारे साथ सलूक करे। न हम कोई यन्त्र ही हैं कि जिस प्रकार चाहे हमें घुमावे और जो चाहे काम लेवे। हमको ईश्वर ने दो प्रकार की मानसिक शक्तियां प्रदान की हैं, एक संवेदन और दूसरी विवेचन। इन्हीं दोनों शक्तियों के मिलाप से विवेक की उत्पत्ति होती है। संवेदन शक्ति इसलिए दी है कि हम उससे अपने ही समान दूसरों के सुख दुःख का अनुभव करें और विवेचन शक्ति का तात्पर्य यह है कि हम जिस बात को अपने लिए न चाहें, उसका प्रयोग दूसरों के लिए भी न करें। यदि मनुष्य होकर हमने इन दोनों गुणों का अनुशीलन नहीं किया तो हम चाहे धर्मशास्त्र के आचार्य हों वा नीति शास्त्र के प्रवक्ता, हमारी मनुष्यता संसार में धोखे की टट्टी है।

थोड़ी देर के लिए मानलो कि विधवाविवाह धर्मशास्त्र और लोकाचार दोनों के विरुद्ध है, तब भी यह प्रश्न होता है कि क्या मनुष्य की ये दोनों ईश्वरप्रदत्त शक्तियां भी इसको हेय समझती हैं? यह कदापि हो नहीं सकता। जो संवेदन शक्ति मनुष्य को पशु पक्षियों का भी दुःख अनुभव कराती है, उसको रखता हुवा मनुष्य अपनी पुत्रियों के उस अथाह दुःख पर जो दोचार दिन, मास या वर्ष ही नहीं, किन्तु आजीवन उनको चिन्तानल में जलाता है, ध्यान न दे। तथा वह विवेचन शक्ति जो मनुष्य को "आत्मवत्सर्वभूतेषु" का पाठ पढ़ाती है, उसको अपनी पुत्रियों और बहनों को जड़वत् देखने के लिए बाधित करे?

यदि हमारा विवेक हमें स्त्री के वियोग में पुनर्विवाह करने के लिए प्रेरणा करता है और इसमें कोई धार्मिक या सामाजिक आपत्ति नहीं करता तो पति के न रहने पर स्त्री का भी दूसरा विवाह करना उसी विवेक के अनुसार दूषित नहीं होसकता। जो दशा विना स्त्री के हमारी होसकती है, वही विना पति के स्त्री की भी होसकती है। अतएव अपने लिये तो बुढ़ापे में भी जो विरक्त होने की अवस्था है, स्त्री की आवश्यकता समझना और बालविधवाओं को युवावस्था में भी जो स्वाभाविक रीति पर क्रीड़ा और विनोद की अवस्था है, पति के अयोग्य समझना क्या यही हमारा विवेक है और इसी के बलपर हम "यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।" इस सिद्धान्त के अनुयायी होने का दम भरते हैं? जिस बात को हम अपने लिए नहीं चाहते, उसका प्रयोग दूसरों के लिए करना विवेक की विडम्बना करना है।

विवेक की प्रधानता।

यद्यपि मनु ने धर्म के परखने की चार कसौटी बतलाई हैं श्रुति, स्मृति, सदाचार और विवेक। तथापि इन चारों में विवेक ही प्रधान है। क्योंकि विना विवेक के न तो हम शास्त्र से कुछ लाभ उठा सकते हैं और न अनाचार और मिथ्याचार की फैली हुई भाड़ियों में से सदाचार के फूल ही चुन सकते हैं। चाणक्य ने ठीक ही कहा है:—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

विविध शास्त्र और आचार तो केवल दर्पण का काम करते हैं, देखने वाली आंख तो हमारी बुद्धि ही है यदि आंखों से हम अंधे हैं तो एक क्या हज़ार दर्पण भी हमको कुछ नहीं दिखला सकते। आंखों के होने पर हम विना दर्पण के भी देख सकते हैं। अतएव विवेक से बढ़कर संसार में और कोई कसौटी भलाई या बुराई के परखने की नहीं है। संसार में सुख दुःख और पुण्य पाप की भाँति गुण दोष मिश्रित हैं। यदि आजकल बड़े से बड़े मनुष्य भूल करसकते हैं तो प्राचीन काल में भी उसका होना सम्भव था। इस दशा में चाहे कोई शास्त्र हो वा आचार, निर्दोष नहीं होसकता। जिस विधाताने इस सृष्टि में गुणदोष का संमिश्रण किया है, उसी ने मनुष्य को उनकी परीक्षा करने के लिए बुद्धि की कसौटी भी प्रदान की है। यदि मनुष्य ही उसका उपयोग करने में प्रमाद करेगा तो पण्डितराज जगन्नाथ की इस अन्योक्ति के अनुसार और कौन संसार में इस कर्त्तव्य का पालन कर सकता है:—

नरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

शास्त्र या लोकाचार हमारे लिये एक प्रदर्शनी है, जिनमें भाँति भाँति के पदार्थ अपने २ स्थान पर रक्खे हुवे हैं, उनमें कौन हमारेलिए उपयोगी हैं और कौन प्रतियोगी? किस दशा में किसका ग्रहण और किसका त्याग करना चाहिए? इसका निर्णय केवल हम अपने विवेक से कर सकते हैं। यद्यपि भिन्न २ शास्त्रों तथा आचारों के अध्ययन और परिशीलन से हमारा विवेक परिपुष्ट होता है, तथापि वे विवेकबुद्धि का साधन मात्र हैं, मनुष्य जन्म का साध्य या उद्देश्य केवल विवेक ही है। शास्त्र या लोकमत के अभाव में हम विवेक से काम ले सकते हैं, पर विवेक के अभाव में हमारे लिए सारे शास्त्र और आचार वैसे ही हैं, जैसे अंधे के लिए दर्पण। अतएव शास्त्र और आचार की विद्यमानता में भी हम विवेक की उपेक्षा नहीं करसकते।

समय का आचार पर प्रभाव।

समय की गति के साथ आचार भी सदा बदलते रहते हैं, देश और काल के व्यवधान से उनमें बड़े २ अन्तर और परिवर्तन होजाते हैं। वैदिक और बौद्धकाल को तो जाने दीजिए, मुसलमानों के आने से पूर्व पृथ्वीराज के समय तक जो आचार हमारे देश में प्रचलित थे आज कहीं उनका चिन्ह भी दृष्टिगोचर नहीं होता। 'संसार' शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसमें सदा कुछ न कुछ परिणाम होता रहे। इसके अतिरिक्त मनुष्य स्वाभाविक रीति पर प्रगतिशील है, वह पशुओं के समान जिस अवस्था में प्रकृति ने उसे उत्पन्न किया है, पड़ा रहना नहीं चाहता, किन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ना चाहता है और इसी के लिए संसार में ये व्यक्तिगत और जातिगत युद्ध होरहे हैं। यही कारण है कि

परिणाम का सब से अधिक प्रभाव मनुष्य के आचार विचारों पर पड़ता है । अब हम निदर्शन की रीतिपर कुछ आचारों को दिखलाते हैं, जो पहले क्या थे और अब क्या हैं ?

(१) पहले यहाँ बालविवाह का कोई नाम भी न जानता था, अब बड़ी उमर तक लड़के लड़कियों का क्वारा रहना कुल की खोट समझी जाती है ।

(२ पहले लड़के और लड़कियां दोनों ब्रह्मचर्य धारण करते थे, अब लड़कियों की कौन कहे, लड़के भी उसके अयोग्य समझे जाते हैं ।

(३) पहले यहां पर्दे का रिवाज बिलकुल न था । स्त्रियां बेरोक टोक पुरुषों के समाज में जातीं और काम करती थीं । अब उनका बेपर्दा रहना और पुरुषों के समाज में जाना निन्दनीय समझा जाता है ।

(४) पहले कहीं २ स्वयंवर की रीति प्रचलित थी, अब उसका कहीं नाम भी नहीं सुनाजाता ।

(५) पहले यहां द्विजों में १६ संस्कारों का प्रचार था, अब सिवाय नामकरण, मुण्डन और विवाह के और किसी संस्कार का नाम तक लोग नहीं जानते ।

(६) पहले अश्वमेध, गोमेध और नरमेध यज्ञ होते थे, आजकल वे कलिवर्ज्य कहकर निषिद्ध किये गये हैं ।

(७) पहले मधुपर्क, श्राद्ध और यज्ञ में पशुवध किया जाता था, अब यह रीति अच्छी नहीं समझी जाती । पहले मांस के न खानेवाले भी देवकर्म और पितृकर्म में उसका खाना पुण्य समझते थे, अब मांस खाने वाले भी देव और पितरों के नाम से हिंसा करना अच्छा नहीं समझते ।

(८) पहले आर्ष विवाह में वरसे गऊ का जोड़ा शुल्क लिया जाता था अब कन्याविक्रय की प्रथा बहुत बुरी समझी जाती है।

(९) पहले क्षत्रियों में गान्धर्व और राक्षस विवाह प्रचलित थे, अब कहीं उनका प्रचार देखने में नहीं आता।

(१०) पहले उत्सर्ग और नियोग की प्रथायें प्रचलित थीं, अब इनको हिन्दू बहुत बुरा समझते हैं।

(११) पहले अनुलोम और कहीं २ प्रतिलोम विवाह भी होते थे, अब अधिकांश हिन्दू इनका विरोध करते हैं ।

(१२) पहले ब्राह्मण याजन और अध्यापन से वृत्ति करते थे, आजकल वे वृत्ति के लिए वाणिज्य, कुसीद और सेवाकर्म तक करते हैं।

(१३) पहले शूद्र केवल सेवाकर्म करते थे, आजकल वे अध्यापन और शासन तक का काम करते हैं।

(१४) पहले यहां चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म यथाविधि पालन किये जाते थे, अब ये दोनों नाम के लिए रहगये हैं, काम के लिए नहीं।

यह सूची बहुत कुछ बढ़ाई जासकती है, पर इसकी हम कोई आवश्यकता नहीं समझते। इतने ही से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाज के आचारों पर समय का कितना प्रभाव पड़ता है। आजतक समयने कितने आचारों को मिटाया कितनों को चलाया और कितनों की काया पलटी, इसका हिसाब कौन लगा सकता है?

देशका आचार पर प्रभाव।

समय के समान ही देशका भी आचारों पर प्रभाव पड़ता है। भिन्न २ देशों को तो जाने दीजिये, एक ही देशके एक प्रान्त

में जो आचार अच्छा समझा जाता है, वही दूसरे प्रान्त में बुरा समझाजाता है। जिस आचार को एक जाति धर्म और सभ्यता के अनुकूल समझती है, उसी को दूसरी जाति ठीक इनके प्रतिकूल समझती हैं। उदाहरणार्थ कुछ आचारों को हम यहांपर दिखलाते हैं:—

(१) दक्षिण प्रान्त में मामा की लड़की से विवाह करना बुरा नहीं समझाजाता, इस प्रान्त में इस आचार को बहुत बुरा समझते हैं।

(२) पंजाब में छूत छात और पर्देका रिवाज बिलकुल नहीं, इस तरफ़ इनका बड़ा विचार किया जाता है।

(३) इस प्रान्तमें सुहागिन स्त्रियों का नंगे सिर रहना अपशकुन समझा जाता है, दक्षिण में इसके विरुद्ध उनका सिर ढकना अमाङ्गलिक समझाजाता है।

(४) पूर्वके कुलीनों में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित है अन्यत्र यह अच्छी नहीं समझीजाती।

(५) किसी २ जाति या समाज में वरविक्रय या कन्या विक्रय की रीतियां प्रचलित हैं। दूसरी जातियों में ये अच्छी नहीं समझी जातीं।

(६) हिमालय की पहाड़ी जातियों में कहीं २ बहुपतित्व और कहीं २ पुत्रियों से वेश्यावृत्ति कराने की चाल है; जो अन्य जातियों में निन्दनीय समझी जाती है।

(७) दक्षिण में कहीं २ पुत्रियों को देवदासी और स्त्रियों को देवपत्नी बनाने की चाल है, जिसको अन्य प्रान्त वाले महागर्हित समझते हैं।

(८) किसी २ जाति में मांसभक्षण का प्रचार है, कोई २ जाति इससे घृणा करती है।

(९) मारवाड़ में चरसे का पानी पियाजाता है, अन्य प्रांतों में इसका रिवाज नहीं।

(१०) बंगाल में हिन्दू मुसलमान बावरची के हाथ का खाना खाते हैं, दूसरे प्रांतों में मुसलमान का छुआ पानी तक नहीं पीते।

(११) पंजाब में कहारों के हाथ का बना हुआ खाना सब हिन्दू खाते हैं, पूर्व में आठ कनौजिये और नौ चूल्हे की कहावत प्रसिद्ध है।

(१२) राजपूताने के ब्राह्मण पानी भरते और बर्तन साफ़ करते हैं, अन्य प्रान्तोंके ब्राह्मण ऐसा कदापि नहीं करसकते।

(१३ कान्यकुब्ज ब्राह्मण बाज़ारकी पूरी कचौरी नहीं खाते, पर मांस खाने में कुछ दोष नहीं समझते। गौड़ ब्राह्मण बाज़ार का सब कुछ खालेते हैं, पर मांस को छूते तक नहीं।

(१४) पंजाब में प्याज़ और पूर्व में लहसन खाने का रिवाज है. युक्त प्रान्त के हिन्दू इन दोनों का विचार करतेहैं।

(१५) पश्चिम में हिन्दू मुसलमान नाई से हजामत बनवाते हैं, पूर्व में इसका विचार कियाजाता है।

(१६) कहीं २ मुसलमानों के बने हुवे बताशे, गट्टे और रेवड़ियां हिन्दू खाते हैं कहीं परहेज़ किया जाता है।

(१७) कहीं उच्च जाति के हिन्दू मद्य और चर्म का व्यवसाय करते हैं, कोई इनको अच्छा नहीं समझते।

(१८) पूर्व और दक्षिण में स्त्रियां खेती और दूकानदारी के सब काम करती हैं, इस प्रान्त में उनका परदे से बाहर जाना अच्छा नहीं समझा जाता।

कहाँतक गिनावें, संसार में एक भी आचार ऐसा नहीं मिलेगा, जिसका किसी देश में तो क्या किसी समाज में भी

समान रूप से उपयोग किया जाता हो और जिसके विषय में समाज की व्यक्तियों का परस्पर मतभेद न हो। यहां तक कि बहुत सी बातों में पिता पुत्र और भाई २ के आचार विचारों में बड़ा अन्तर होता है। इस दशा में हम किसी भी आचार को सब दशाओं में ग्राह्य या त्याज्य नहीं ठहरा-सकते। देश, काल और समाज की परिस्थिति के अनुसार सदा आचारों की परिणति होती रहती है।

शासन का आचार पर प्रभाव।

शासन का भी चाहे वह धार्मिक हो या राजनैतिक,समाज के आचारों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। एक शासन में जो आचार अच्छे समझे जाते हैं, दूसरे शासन में उनकी ऐसी काया पलट जाती है कि वे पहचानने में भी नहीं आते और बहुत से तो मिटजाते हैं। ब्राह्मणों के शासन काल में यहां विविध यज्ञों का अनुष्ठान करना ही सर्वोपरि आचार माना जाता था, उनमें बड़े लम्बे चौड़े विधान किये जाते थे, जिनसे हमारा प्राचीन साहित्य परिपूर्ण है। शूद्रों को उनमें सम्मिलित होने तथा वेदमंत्रों के सुनने तक का अधिकार नथा। यदि भूलसे भी कोई शूद्र वेदमंत्र सुन लेता था, तो सीसा तपाकर उसके कान में भरदिया जाता था। सामान्य अपराध में शूद्रोंको जो दण्ड दिया जाता था, ब्राह्मणों को नरहत्या करने पर भी वह दण्ड नहीं मिलता था। शूद्र यदि ब्राह्मण की निन्दा करे तो उसकी जीभ काटली जाती थी। चोरी और व्यभिचार के अपराध में उसको बधदण्ड दिया जाता था। उस समय के क़ानून का सारा जोर शूद्रों और निर्बलों पर था।

बौद्धों के शासन काल में ये आचार और विधान बिलकुल बदल गये। यज्ञों के स्थान में संघ स्थापित हुवे तथा ऋत्विक्

और होताओं का स्थान भिक्षु और श्रमणों ने घेर लिया। यज्ञ-शाला, पशुस्तम्भ और वेदि का चिन्ह मठ, स्तूप और चैत्यों ने मिटा दिया। पशुहिंसा के स्थान में जीवदया और जाति भेद के मुक़ाबिले में साम्यवाद का उपदेश होने लगा। बौद्ध राजाओं ने जो क़ानून बनाये, उन में जातिभेद का गन्ध भी न था। अब वे ही शूद्र जो ब्राह्मणों के पास बैठने से अपने देश या प्राण से हाथ धोते थे, ब्राह्मणों के साथ मिलकर बौद्धधर्म का उपदेश और प्रचार करने लगे।

अतः पश्चात् जब भगवान् शंकराचार्य की कृपा से वैदिक धर्मका पुनरुद्धार हुवा और विक्रम तथा भोज आदि राजाओं के हाथ में शासन की वाग आई, तब वेद के नाम से धर्म की प्रतिष्ठा तो की गई, पर उसका प्रवाह अब दूसरी ओर का वह निकला। अब जो आचार और विधान समाज में प्रतिष्ठित हुवे, वे खिचड़ी थे। यज्ञ और संस्कार ब्राह्मणों के प्रचलित हुवे, पर उनमें हिंसा बन्द की गई और उनके लम्बे चौड़े विधान भी कम किये गए। ब्राह्मण ग्रन्थों से उदासीन होकर विद्वान् उपनिषदों की शरण में आने लगे। देवमाला का स्थान मूर्तिपूजा ने तथा भग, अर्यमा, पूषा और सविता आदि वैदिक देवताओं का स्थान पौराणिक त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने अधिकृत करलिया। तत्पश्चात् श्री रामानुजाचार्य ने वैष्णवधर्म की स्थापना करके भक्तिमार्ग का उपदेश किया। इनके अनुयायी ज्ञान और कर्मसे भक्ति को प्रधान मानने लगे। अब वह स्वर्ग जो पहले वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से और वह मुक्ति जो केवल ज्ञान से प्राप्त होती थी, भगवद्भक्ति और नामकीर्त्तन से मिलने लगी।

तदुपरान्त मुसलमानों के शासनकाल में तो इस देश की बिलकुल काया ही पलट गई। इस समय जो आचार और रीतियां हम लोगों में प्रचलित हैं, उनमें बहुतसा अंश मुसलमानी सभ्यता का भी मिश्रित है। यद्यपि सहवास के कारण मुसलमानों पर भी हमारी सभ्यता का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है, तथापि विजेता होने से उनकी सभ्यता का हमपर अधिक प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि इस समय हम बोल, चाल रहन, सहन और पहनावे आदि में अधिकतर उन्हीं का अनुकरण करते हैं। इन्हीं के समय में कबीर, नानक, चैतन्य, दादू, रामानन्द, तुकाराम और रामदास प्रभृति महात्मा पुरुष हुवे जिन्होंने अपने जादू भरे उपदेशों से हिन्दू समाज की बिलकुल काया पलट दी। जो हिन्दू शूद्रों को अस्पृश्य समझते थे, इन महात्माओं के प्रेमपूर्ण उपदेश से मुसलमानों के साथ मिल जुलकर काम करने लगे।

इसके बाद बृटिश शासन के स्थापित होने और पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार होने से भारत कुछ और ही होगया। अब न केवल हिन्दुओं का भारत है, न मुसलमानों का और न ईसाइयों का। अब यह सबका मिश्रित भारत है, इसमें सबका समान स्वत्व है और सब इसके अङ्ग हैं। अब इस देश में बसने वाली जितनी जातियाँ और संप्रदाय हैं, सबके लिए एक कानून और एक ही शासनपद्धति है। प्राचीन आचार और रीतियां बहुत सी तो मिटगईं, जो हैं उन्होंने नई सभ्यताओं से मिलकर बिलकुल नया रूप धारण कर लिया है। नवीनता बड़े वेग से प्राचीनता को दबा रही है या अपने अनुकूल बनारही है और क्यों न बनावे, जबकि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही नवीनता की ओर है, वह पुरानी बातों

को भी जब तक किसी नये सांचे में न ढालाजाय, पसन्द नहीं करता। सौन्दर्य जिसके मनुष्यमात्र उपासक हैं, इसी नवीनता का नामान्तर या रूपान्तर है "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव-रूपं रमणीयतायाः"

पाश्चात्य सभ्यता का आचार पर प्रभाव।

एशिया के जिन देशों में बृटिश शासन नहीं है, वहां भी पाश्चात्य सभ्यता अपना कुछ न कुछ प्रभाव दिखलारही है। हमारा भारतवर्ष तो आज डेढ़सौ वर्ष से बृटिश शासन के अधीन है, फिर यदि यहां प्रतीच्य सभ्यता हमारे आचार विचारों को नये सांचों में ढालरही है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? हमारी शिक्षा, दीक्षा, विचार, भाषा, संस्थायें, यहां तक कि आध्यात्मिक विचार भी इसी के रंग में रंगे हुवे हैं। पाश्चात्य विज्ञान की जबतक मोहर नहीं लगती, हमारे धार्मिक सिद्धान्त भी प्रमाण कोटि में आरूढ़ नहीं होते। इस पाश्चात्य सभ्यता के कारण हमारे आचार विचारों में जो परिवर्तन हुवे हैं और होरहे हैं, उनको हम संक्षेप से दिखलाते हैं:—

खानपान।

खानपान को ही लीजिये। पहले हिन्दू बिसकुट, पाव-रोटी, विलायती मिठाई, जमा हुवा दूध, सोडावाटर और बर्फ आदि का परहेज़ करते थे, अब बड़े २ वाजपेयी और उपाध्याय बिना रोक टोक इनका उपयोग करते हैं। जावा और मारीशस की चीनी, लिवरपोल का नमक अब हिन्दूधर्म को हानि नहीं पहुंचाता। बहुत से उच्चकुल के हिन्दू होटलों में खाते पीते हैं, इससे भी उनका धर्म नहीं जाता। मुसलमान का छुवा पानी और मिठाई हिन्दू नहीं खाते, पर उसके बनाये

अर्क. शरबत, चटनी, माजून, गुड़, बताशे, कन्द और शकर में कुछ दोष नहीं समझते । पाइप का पानी जिसको डोम चमार तक साफ़ करते हैं और सब एक साथ भरते हैं, अब हिन्दुओं के लिए त्याज्य नहीं है । जिस रेलगाड़ी को भंगी धोता है, भिश्ती पानी देता है और जिसमें चूढ़े चमार तक यात्रा करते हैं, उसमें चला हुवा भोजन ही नहीं, किन्तु उस की बेंचों में बैठकर आनन्द से हिन्दू भोजन करते हैं ।

अब अंगरेज़ी दवाओं को लीजिये । जो दवायें विलायत में न मालूम किन २ चीज़ों से और किस तरीके पर बनाई जाती हैं और जिनकी तयारी में प्रायः स्पिरिट (मद्य) का उपयोग होता है, सब लोग विना झिझक के उनका उपयोग करते हैं । कोई २ तो विनारोग के सिर्फ़ ज़ायके या हाज़मे के लिये अंगरेज़ी दवाओं का सेवन करते हैं ।

पहनावा ।

पहनावे की ओर देखते हैं तो सिवाय धोती, पगड़ी और डुपट्टे के और कुछ भी हिन्दूओं का अपना लिवास नहीं है, सो ये भी कहीं २ दक्षिण और पूर्व में देखने में आते हैं । अंगरखा, चपकन, जामा पायजामा, कुरता, सदरी, मिरज़ई, सलूका, चोग़ा, साफ़ा और कमरबंद ये सब मुसलमानी लिवास हमने स्वीकार किये हैं । अब कोट, पतलून, क़मीज़, जाकट, नेकटाई कालर और हैट आदि अंगरेज़ी लिबास पर आसक्त होकर हम इनको भी छोड़ते चले जारहे हैं । देसी जूते की जगह बूट और खड़ाऊं की जगह स्लीपर का रिवाज बढ़ता जारहा है । स्त्रियों की पोशाक में भी बड़ा परिवर्तन होरहा है, चोली और लहंगे का रिवाज अब शहरों से तो बिलकुल उठना जाता है, चोली की जगह जाकट और कमीज ने और

लहंगे की जगह साये ने घेरली है। देसी चूड़ी, देसी फ़ीता और देसी बेल अब स्त्रियों के मन नहीं भाती, यहांतक कि देसी आभूषण भी अब स्त्रियों को अखरने लगे हैं। अपने बच्चों को तो सिरसे पैर तक विदेशी लिबास में देख कर माता, पिता फूले नहीं समाते।

सजावट।

सजावट और मनोविनोद की वस्तुओं पर जब दृष्टि डालते हैं तो सिवाय पृथिवी माता के सब सामान हमको विदेशी ही नज़र आता है। किसी रईस की बैठक को जाकर देखिए। फ़र्श, मेज़, आलमारी, कुरसी, बाक्स, डेस्क, दर्पण, चित्र, लैम्प, चिमनी, पंखे, दावात, क़लम, स्याही, निब, चाक़ू, काग़ज़ और पर्दे आदि सब सामान इससिरे से उस सिरेतक विलायती ही नज़र आवेगा। मकान क्या है, मानो किसी सौदागर की सजी हुई दूकान है। अतिथि को अब आसन और पटले की जगह स्टूल या कुरसी दीजाती है। पाठशालाओं और सभाओं में अब फर्श की जगह कुरसियां और बेंचें लगाई जाती हैं। व्यास जी भी अब अपना उपदेश चौकी पर बैठकर नहीं करते, किन्तु मेज़ के सहारे खड़े होकर करते हैं। विलायती साबुन से जिसमें चरबी मिलीहुई होतीहै, पुरुष ही नहीं स्त्रियां भी हाथमुँह धोती और स्नान करतीहैं। केसर और चन्दन के स्थान में अब इत्र और लवेंडरका प्रयोग कियाजाता है। चुरट, बीड़ी और सीग्रेट का इतना प्रचार हुवा है कि छोटे २ बच्चे और मज़दूर तक मुँह में फलीता दिये फिरते हैं। चरबी की बत्तियां मन्दिरों तकमें जलाई जाती हैं। चमडे के बटुवे स्त्रियां तक अपने पास रखती हैं। हड्डी के जके चाकूदस्ते से तरकारी और फल तराशे जाते हैं। सींग की

कंघियों से स्त्रियां अपने केश संवारती हैं। चीनी के बरतन और काच के गिलास अब घर घर खाने पीने के काम में आने लगे हैं।

सवारियां।

पुरानी सवारियां रथ, मझोली, बहली, तांगे, छकड़े, पालकी, तामझाम आदि अब सिवाय देहात के और कहीं देखने में नहीं आतीं। शहरों में जिधर देखो फिटन, टमटम, पालगाड़ी मेलकार्ट, विक्टोरिया और लेंडो आदि विलायती ढंग की गाड़ियोंकी घड़घड़ाहट सुनाई पड़तीहै। इनके सिवाय अब बाईसिकल, ट्राइसिकल, मोटरकार, रेलवे और ट्रामवे आदि का प्रचार और विस्तार बहुत कुछ बढ़ता जाता है। उधर जलयानों में भी बड़ा परिवर्तन हुवा है। सैकड़ों प्रकार के यान जो भाफ के वेग से चलते हैं, बनते चले जाते हैं, जिनसे यात्रा का बहुत कुछ सुभीता होगया है।

क्रीड़ा और व्यायाम।

पुराने अखाड़े और कुश्ती का चर्चा अब सिवाय पेशेवरों के और कहीं सुनने में नहीं आता। डंडपेलना, बैठक करना, मुद्गर हिलाना और पटेबाजी अब असभ्यता के चिन्ह समझे जाते हैं। खेलकूद में जहां देखो क्रीकेट, फुटबाल, और हाकी की धूम है। व्यायाम में डम्बल और जमनास्टिक की चर्चा है। कुश्ती की जगह क़वायद और व्यायामशाला की जगह क्रीकेट फील्ड या हाकी के मैदान नज़र आते हैं।

गानविद्या।

गानविद्या भी अब अपना पहला स्वरूप छोड़कर नयारूप धारण करती जाती है। सारंगी, पखावज और सितार की

अब गाने में इतनी आवश्यकता नहीं समझी जाती, जितनी हारमोनियम, पियानो और फ्लूट की। पहले ध्रुपद और तराने का स्थान ग़ज़ल और कव्वाली ने लिया था, अब थियेट्रिकल बुलबुली रागनियों के सामने इनको भी कोई नहीं पूछता। अंगरेज़ी बैंडने देसी बाजों की भी रेड़ लगादी है।

वास्तुविद्या।

नगरों में अब जो नये मकानात बनते हैं, पुराने ढंगपर अब उन्हें कोई नहीं बनवाता। अब तंग दालान और बन्द कोठों की जगह हवादार कमरे और खुले बरांडे बनाये जाते हैं। छत्तें ऊँची, दरवाज़े लम्बे, हवा और रौशनी के लिए खिड़कियाँ और रौशनदान रक्खे जाते हैं। पुराने ढंग की इमारतें चाहे मज़बूत बनाई जाती हों, पर उनमें आराम और स्वास्थ्य का ध्यान कम रक्खा जाता था।

समुद्रयात्रा।

पहले हिन्दू समुद्रयात्रा को धर्मविरुद्ध समझते थे, अब धड़ाधड़ हिन्दू शिक्षा, व्यापार और सेवा के लिए जहाज़ों में बैठकर विदेशों को जाते हैं। मारवाड़ियों की दुकानें चीन, अदन, सिंगापुर, ब्रह्मा और हांगकांग में खुली हुई हैं। अभी कुछ दिन हुवे महाराज जयपुर ब्राह्मणों को साथ लेकर विलायत की यात्रा कर आये थे और सनातनधर्म के भूषण लोकमान्य तिलक भी मृत्यु से कुछ पूर्व लंदन की यात्रा करआयेथे।

डाक्टरी।

अब से पचास वर्ष पहले डाक्टरी स्कूलों में उच्चजाति के हिन्दू अपने लड़कों को भरती नहीं कराते थे। गवर्नमेंट के पुरस्कार और छात्रवृत्तियों का भी उनपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता

था, अब वह सारी रोक जाती रही और यह व्यवसाय हिन्दुओं में उच्चकोटि का समझाजाता है।

स्त्रीशिक्षा।

पहले स्त्रियों को पढ़ाना लिखाना अच्छा नहीं समझाजाता था, लोग समझते थे कि स्त्रियां पढ़लिख कर गृहस्थ के काम की न रहेंगी। अब कट्टर से कट्टर हिन्दू भी स्त्रीशिक्षा का विरोध नहीं करते और यह समझने लगे हैं कि बिना पढ़े लिखे स्त्री अच्छी गृहिणी नहीं बन सकती। पचास वर्ष पहले यहां सिवाय मिश्नरियों के देशवासियों की ओर से कोई पुत्री पाठशाला न थी, अब नगरों की कौन कहे, कस्बों और ग्रामों में भी पुत्री पाठशालायें स्थापित होती जाती हैं। नगरों में तो पुत्रियां पुत्रों के समान विश्वविद्यालय की डिगरियां प्राप्त करती हैं।

कहां तक गिनावें, हमारा कोई भी आचार ऐसा नहीं है, जिसमें कुछ न कुछ परिवर्त्तन न हुआ हो और क्यों न हो जबकि हमारे विचार ही परिवर्तन शील हैं, तब उनके परिणाम आचार स्थिर कैसे होसकते हैं? इस दशा में किसी प्राचीन आचार को समाज का आदर्श बनाकर हम उसकी अग्रगति को तो रोक सकते हैं और उसको संसार से मिटा भी सकते हैं, पर अपनी सारी शक्ति लगाकर भी हम उसको पश्चात् गामी नहीं बना सकते। जैसे किसी युवा पुरुष को बन्धन में डालकर हम उसे निर्बल तो बना सकते हैं, यहां तक कि उसके जीवन को भी समाप्त कर सकते हैं, पर उसे पुनः शैशवावस्था में पहुंचाना सर्वथा हमारी शक्ति के बाहर है।

आचार और बृटिश सरकार।

बहुत से आचार जो धर्म के नाम से उन्नीसवीं सदी के अन्ततक हमारे देश में प्रचलित थे और जिनके कारण समाज में मनुष्य जातिपर बड़े २ अन्याय और अत्याचार होते थे, उनको बृटिश सरकार ने शान्ति स्थापन होने के बाद क्रमशः कानून के ज़ोर से बन्द किया है। यदि वे बन्द न किये जाते तो आज हमारी यह सभ्यता, जिसका हम अभिमान करते हैं, न मालूम किस कोने में छिपी हुई होती और हमारी दुर्दशापर फूट २ कर आंसू बहाती होती। उनमें से कुछ आचारों का परिचय हम यहां पर पाठकों को देना चाहते हैं:—

१—चरकपूजा।

यह प्रथा बंगाल में प्रचलित थी, काली के उपासक देवी को प्रसन्न करने के लिये इसका अनुष्ठान करते थे। एक सीधी बल्ली २५ या ३० फीट लम्बी भूमि में गाड़ी जाती थी, उसके निचले सिरे पर एक तिरछा डंडा लगा दिया जाता था, जो चर्खी के समान घूमता था। डंडे के एक सिरे से एक रस्सी लटकाकर उसमें लोहे के दो हुक लगाये जाते थे। दूसरी तरफ़ एक और रस्सी बांधी जाती थी, जो धरातल तक लटकी रहती थी। दीक्षित उपासक बल्ली के सामने आकर पहले देवी को दण्डवत् करता था, तत्पश्चात् ये दोनों हुक उसके कंधे के पास पीठ की ओर मांस में घुसा दिये जाते थे। दूसरा मनुष्य रस्सी पकड़कर ज़ोर से घुमाता था। जो उपासक इस कष्ट को जितना अधिक सहन करता था, उतना ही वह भाग्यवान् समझा जाता था और जो इस कष्ट से प्राण त्याग देते थे, वे सायुज्य मुक्ति के भागी समझे जाते थे। सरकार ने सन् १८६३ ई० में क़ानून के द्वारा इस निष्ठुर प्रथा को बन्द किया।

२–हरिबोल ।

यह प्रथा भी बङ्गाल में प्रचलित थी। जो रोगी असाध्य होजाता था या मरणासन्न होता था, उसको गङ्गा में लेजाकर स्नान कराते थे और पानी में गोता देकर उससे कहते थे कि "हरिबोल, बोल हरि।" यदि वह शीघ्र प्राण त्याग देता था तो भाग्यवान् समझा जाता था। यदि कठिन प्राण होने से किसी की जीवनलीला शीघ्र समाप्त न होती थी तो उसे पुनः घर वापिस नहीं लाया जाता था, वहीं बड़े दुःख से तड़प तड़प कर वह प्राणविसर्जन करता था। इस जघन्य प्रथा को भी सरकार ने सन् १८३१ ई० में क़ानून बनाकर बन्द किया।

३—सतीदाह।

यह प्रथा सारे भारतवर्ष में प्रचलित थी। विधवा स्त्री को उसके पति की लाश के साथ चिता में जलाया जाता था। कष्ट की वेदना से वह कहीं चिता में से कूद न पड़े, इसलिये जबतक चिता में आग खूब प्रज्वलित न होजाती थी, उसको बांसो और बल्लियों से रोका जाता था। इस अमानुषिक प्रथा को भी सरकार ने सन् १८४१ ई० में क़ानून बनाकर बन्द किया।

४—पुत्रीवध।

राजपूताना और उड़ीसा में इस दुष्टप्रथा का अधिक प्रचार था। कुलाभिमानी क्षत्रिय इस भय से कि कहीं हमें किसी का सुसरा और साला बनना पड़ेगा, पैदा होते ही पुत्रियों का गला घोंट देते थे। इस जघन्य प्रथा को सरकार ने सन् १८७० ई० में एक्ट ८ पुत्रीवधप्रतिरोध पास करके बन्द किया।

५—नरमेध।

उत्तरभारत और दक्षिण में यह प्रथा भी कहीं २ प्रचलित थी। किसी अनाथ या निर्धन मनुष्य को दीक्षित करके यज्ञ में उसकी बलि चढ़ाई जाती थी। ऋग्वेदीय शुनःशेफ सूक्त को इसका आधार माना जाता था। इस निष्ठुर प्रथा को बृटिश सरकार ने सन् १८४५ ई० में एक्ट २१ पास करके दूर किया।

६—गंगाप्रवाह।

माता पिता सन्तानोत्पत्ति के लिये अपने इष्टदेव से प्रार्थना पूर्वक यह प्रतिज्ञा करते थे कि यदि हमारे सन्तान उत्पन्न हुई तो पहले बच्चे को हम देवता की भेंट चढ़ायेंगे। इस निष्ठुर प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये वे अपनी पहली सन्तान को (चाहे पुत्र हो या पुत्री) गंगासागर में छोड़ देते थे। इस दुष्ट प्रथा को हमारी सरकार ने सन् १८३५ ई० में क़ानून के द्वारा बन्द किया।

७—काशीकरवट।

बनारस में आदि विश्वेश्वर के मन्दिर के पास एक कूप है, जिसका दर्शन केवल सोमवार को होता था। लोगों का विश्वास था कि शिवजी इसमें वास करते हैं। इसी विश्वास के कारण लोग उसमें कूदकर सदा के लिये करवट लेते थे। इस प्रथा को भी सरकार ने क़ानून के द्वारा बन्द किया।

८—भृगूत्पन्न।

गिरनार और सतपुड़ा पहाड़ की घाटियों में प्रायः नवयुवक पहाड़ की चोटी से नीचे गिरकर अपने प्राण देते थे। कारण इसका यह होता था कि उनकी मातायें महादेव जी से (जो संसार के संहार करने वाले हैं) यह अभ्यर्थना करती

थीं कि यदि हमारे सन्तान उत्पन्न होगी तो हम पहली सन्तान से भृगूत्पन्न की रीति पूरी करायेंगी। बड़े होने पर मातायें अपने पुत्रों से इस कथा का वर्णन करती थीं। नवयुवक मातृ ऋण का शोध करने के लिये धार्मिक विश्वास के कारण पहाड़ से कूदकर अपनी जानदेते थे इस प्रथा का नाम भृगूत्पन्न था। इसको भी सरकारी क़ानून ने सदा के लिये बन्द किया।

९—धरना।

याचक लोग विष या शस्त्र हाथ में लेकर गृहस्थों के द्वार पर धरना धरते थे और कहते थे कि यातो उनकी कामना पूरी की जाय, अन्यथा वे यहीं प्राण त्यागेंगे। लोग डरके मारे उनकी अनुचित इच्छाओं को भी पूरी करदेते थे। इस प्रथा को सरकारने सन् १८२० ई० में क़ानून बनाकर बन्द किया

१०—महाप्रस्थान।

जलमें डूबकर या अग्नि में जलकर मरने का नाम महाप्रस्थान था। धार्मिक विश्वास के कारण लोग इस प्रकारमरने से मुक्ति का होना मानते थे। राजा शूद्रक ने भी महाप्रस्थान किया था, जिसका वर्णन मृच्छकटिक नाटक में है। इस प्रथा को भी सरकारी कानून ने ही देश से मिटाया।

११—तुषानल।

कोई २ अपने को किसी अपराध के होने पर भुस या तृण की आग में जलाकर भस्म कर देते थे और इस प्रकार अपने पाप का प्रायश्चित्त करते थे। कुमारिल भट्ट ने बौद्धों से विद्या ग्रहण करने का प्रायश्चित्त इसी तुषानल में जलकर किया था। इसको भी सरकारी क़ानून ने ही नामशेष किया।

१२—रथयात्रा

जब जगन्नाथ जी की रथ पर सवारी निकलती थी, तब उस रथ के नीचे पिसकर मरना मोक्षदायक समझा जाता था। हर तीसरे वर्ष यह यात्रा होती थी और बहुत से मनुष्य इस की भेंट चढ़ते थे। सरकारी क़ानून ने इस प्रथा को भी सदा के लिये नामशेष किया।

इसी प्रकार की और बहुतसी प्रथायें जो धर्म के नामसे पिछली शताब्दी के मध्यतक इस देश में प्रचलित थीं, बृटिश क़ानून के द्वारा रोकी गई हैं। यद्यपि बृटिश क़ानून और शिक्षा के द्वारा बहुत कुछ सुधार हमारे देश में हुवे और होंगे, जिनके लिये हमें इस सरकार का शुद्ध हृदय से कृतज्ञ होना चाहिये। तथापि एक विदेशी सरकार के लिये यह सर्वथा अशक्य है कि वह उन जहरीले कीड़ों को जो हमारे समाज की जड़ खोखली कर रहे हैं, उसके शरीर से निकाल कर बाहर फेंक सके। यह काम समाज के भद्र नेताओं का है, पर देश के दौर्भाग्य से हमारे समाज के नेता केवल राजनैतिक सुधार को ही देश की उन्नति का कारण समझते हैं और समाज सुधार की कोई आवश्यकता नहीं समझते। यदि कुछ समझते भी हैं तो लोक-मत उसके विरुद्ध पाकर उसकी उपेक्षा करते हैं।

हम यह नहीं कहते कि किसी जाति को उठाने के लिये राजनैतिक सुधारों की आवश्यकता नहीं है, या राजकीय सहानुभूति और सहायता के बिना अशक्त और निर्बल प्रजा अपने मोक्ष का मार्ग सरल करसकती है। पर हां यह हम अवश्य कहेंगे कि जो जाति सामाजिक सुधार के नाम से चौंकती है और जिसमें धर्म तथा लोकाचार की आड़ लेकर लोग निर्बलों पर मनमाना अत्याचार करसकते हैं, उसको यदि राजनैतिक

अधिकार मिल भी जांय तो वह उनसे कुछ विशेष लाभ नहीं उठा सकती। क्या हमारे लिये यह लज्जा की बात नहीं है कि हम सरकारसे तो अपने स्वाभाविक और मनुष्योचित अधिकार मांगते हैं पर अपने भाई और बहनों के वे ही अधिकार खुद दबाये बैठे हैं। यदि हम धर्म या परम्परा का कृत्रिम सहारा लेकर ऐसा कर सकते हैं तो फिर सरकार यदि शान्तिरक्षा और सुव्यवस्था के नाम पर ऐसा करती है तो फिर हमारा क्या मुंह है कि इसके लिये हम सरकार को दोषी ठहरा सकें? हम जो नीति अपनों के साथ बर्तते हैं, वही यदि विदेशी सरकार हमारे साथ बर्तती है तो इसमें उसका कुछ भी दोष नहीं, इसके कारण हमीं लोग हैं।

कहा जाता है कि आज डेढ़सौ वर्ष के बृटिश शासन में भी हमारी दशा वैसी ही है, जैसी कि इस शासन के आरम्भ में थी। हम मानते हैं कि बृटिश शासन में जैसी उन्नति हमारी होनी चाहिये, नहीं हुई, पर प्रश्न यह है कि इसका दायित्व बृटिश शासन पर है या हमपर? पूर्वकाल में जबकि राजा लोग निरंकुश होते थे और प्रजा आंख मींचकर उनका अनुसरण करती थी, प्रजा की उन्नति और अवनति का दायित्व शासन पर रखना, चाहे न्यायसंगत हो। पर बीसवीं शताब्दी में जबकि सर्वत्र प्रजातन्त्र शासन का डंका बज रहा है, जिन देशों की प्रजा अपना शासन आप करती या कराती है, प्रजा को इस दायित्व से मुक्त करना अनुचित मालूम होता है। हमने अबतक अपनी जिस कट्टर प्रकृति का बृटिश अधिकारियों को परिचय दिया है, उसीके अनुसार उन्होंने हमारे लिए शासन यन्त्र निर्माण किया है। शासन की योग्यता प्रजापर इतना प्रभाव नहीं डाल सकती,

जितना कि प्रजा की अयोग्यता शासन पर अपना प्रभाव डालती है। शासन के उन्नत होने से प्रजा आगे नहीं बढ़ सकती, पर प्रजाके असमर्थ होने से शासन पीछे हटसकता है। अतएव वृटिश जैसे सुशासनमें भी यदि हम इस अधोगति को प्राप्त हैं तो इसका सारा दायित्व हमीं पर है। हम आप खुद अपना सुधार न करके दूसरों से अपना सुधार चाहते हैं, या यूं कहो कि अपने घर की अव्यवस्था न मिटाकर बाहर से सुव्यवस्था चाहते हैं, सो यह कैसे होसकता है?

अब प्रकृत यह है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारे मनुष्योचित अधिकार हमको मिलें तो जिन निर्बलों के मानुषिक अधिकारों को अबतक हम पैरों के नीचे कुचलते रहे हैं, उदारता पूर्वक पहले स्वयं उनको प्रदान करें। यदि हम चाहतेहैं कि हमारी स्वतन्त्रता को कोई अपहरण न करे तो हम दूसरों की स्वतन्त्रता पर अनुचित आक्रमण करना छोड़दें और यदि हम चाहते हैं कि हमारे साथ कोई ऐसा बर्ताव न करे, जिसे हम नहीं चाहते, तो हम भी दूसरों से उनकी इच्छा के विरुद्ध बर्ताव करना छोड़दें। बस यही हमारी जातीय मुक्तिका मार्ग है "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"।

चौथा अध्याय।

सामाजिक अत्याचार।

अब इस चौथे अध्यायमें हम सहृदय पाठकोंको उस अत्याचारका कुछ निदर्शन कराना चाहते हैं, जो हिन्दूसमाज में स्त्री जाति पर होरहा है और जिसके कारण हमारी सामाजिक और पारिवारिक दशा अत्यन्त ही शोचनीय और उद्वेजक होरही है। वैसे तो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त प्रत्येक बात में स्त्रियों की जैसी उपेक्षा और अनादर किया जाता है, तथा धर्म और लोकाचार की आड़ में जो २ अन्याय और अत्याचार इन पर किये जाते हैं, उनको देख या सुन कर जहां एक हृदयवान् व्यक्ति इनके धैर्य और सहिष्णुता पर मुग्ध होजाता है, वहां पुरुषों की निष्ठुरता और हृदयहीनता पर आंसू बहाये विना भी नहीं रहसकता। उन अत्याचारों में तीन मुख्य हैं, जिनके कारण हिन्दू समाज में स्त्रियों का जीवन व्यर्थ और शंकास्पद बनरहा है। वे तीन अत्याचार ये हैं (१) शिक्षा का अभाव (२) बालविवाह (३) वैधव्य। अब हम क्रमशः इनका कुछ वर्णन करेंगे।

शिक्षा का अभाव।

सब से पहला और बड़ा अत्याचार जो स्त्री जाति पर किया जारहा है, वह इनको शिक्षा से (जो मनुष्य के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है) वञ्चित रखना है। मनुष्य के लिए मानसिक मृत्यु शारीरिक मृत्यु से कहीं बढ़कर है, जैसा कि हितोपदेश में कहा है :—

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः।
सकृद्दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे॥

इसके अतिरिक्त स्त्रियों के साथ हम जो अमानुषिक वर्ताव कर रहे हैं, मन और इन्द्रियों के होते हुवे भी हम इनको अचेतन समझ रहे हैं, उसका कारण भी इनमें शिक्षा का अभाव ही है। यदि ये शिक्षिता होतीं तो कदापि इनकी यह दशा न होती। ये तो विचारी अविद्या की मारी अपने पद और अधिकार को जानती ही नहीं, पुरुष स्वार्थ के मद से उन्मत्त होकर इनके मनुष्योचित स्वत्वों को अपहरण किये बैठे हैं, वे इनको केवल अपने सुख की सामग्री समझते हैं। उनका यह धार्मिक विश्वास है कि ईश्वर ने इनको हमारे लिए उत्पन्न किया है। जैसे अठारहवीं सदी में अमेरिका के गोरे निवासी वहां के काले हबशियों की बाबत यह समझते थे कि इनकी उत्पत्ति का उद्देश सिवाय हमारे दासत्व के और कुछ हो ही नहीं सकता। इसलिए उन्होंने उनके लिए ऐसे क़ानून बनाये थे कि कोई दास न तो अपनी उपार्जित सम्पत्ति का, न अपनी स्त्री और सन्तति का मालिक होसकता है, किन्तु ये सब उसी के हैं, जिसका वह है।

शिक्षा उनके लिए क़ानून में वर्जित थी, यदि कोई दयालु स्वामी उनको घरमें कुछ शिक्षा देता भी था तो वह उनके सुधार के लिए नहीं, किन्तु अपने सुभीते के लिए। यूरोप और अमेरिका से आज उस दासत्व प्रथा को (जो अपने से भिन्न जातिवालों के लिये थी) उठे हुवे युग बीतगये और अब वहां वह बड़ी घृणा की दृष्टि से देखीजाती है। पर भारत में उस जाति में जो अपने को संसार की सभ्यता का आदि गुरु कहती है, इस बीसवीं शताब्दी में कोई और नहीं, हमारे गृहस्थाश्रम की अधिष्ठात्री देवियां ही (जिनको अपना अर्धाङ्ग कहते हुवे हमको लज्जा नहीं आती) इस दासत्व की प्रथा में

जकड़ी हुई हैं। अन्तर केवल इतना है, कि वहां दास वेचेजाते थे, यहां जन्मभर के लिये वन्दी वनाकर रक्खे जाते हैं। न इनका पिता की सम्पत्ति में कुछ भाग है और न ये पति की सम्पत्ति में दूसरा विवाह न करने पर भी कोई स्वत्व रखती हैं। कहीं शास्त्र और कहीं लोकाचार की आड़ लेकर हम इनके साथ भेड़ और वकरी का सा सलूक कर रहेहैं। इससे अधिक और अत्याचार क्या होगा कि हमने इनको शिक्षा से ही वञ्चित करके मनुष्य से पशु वनादिया।

अब हम संक्षेप से उस हानि और दुरवस्था का कुछ दिग्दर्शन कराना चाहते हैं जो स्त्रीशिक्षा के न होनेसे भारतीय समाज की होरही है।

सन्तान का अयोग्य होना।

प्राचीन और अर्वाचीन सभी विद्वानों का मत है कि सन्तान पर माता का जितना प्रभाव पड़ता है, उतना और किसी का नहीं। माता जैसा चाहे वैसा संतान को वना सकती है। यही कारण है कि मनुस्मृति में हज़ार पिताओं के वरावर एक माता को गौरव दियागया है :—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रन्तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

इतिहास भी हमको यही वतला रहा है कि संसार में जितने प्रतिभाशाली असाधारण पुरुष हुवे हैं, उनके बनाने में इस जगद्धात्री शक्ति का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा है। कपिल, अलर्क, भीष्म, अर्जुन, अभिमन्यु, कालिदास, शिवाजी, शेक्सपियर और नेपोलियन जैसे विद्वान् और वीर जो आज संसार को अपनी विद्वत्ता और वीरता से मुग्ध कररहे हैं, इन्हीं देवियों की शिक्षा और दीक्षा से वैसे बने थे।

आज क्या कारण है कि हमारे शतशः उपाय करने पर भी हमारी सन्तान जैसी हम चाहते हैं, नहीं बनती। जब सांचा ही बिगड़ा हुवा है तो उससे अच्छे सिक्के कैसे ढल सकते हैं? हम अपनी सन्तान को योग्य बनाने के लिए क्या कुछ नहीं करते ? यहां तक कि बहुत से हमारे निर्धन भाई अपना पेट काटकर भी अपने बच्चों को स्कूलों में भेजते हैं, जिनको परमेश्वर ने कुछ सामर्थ्य दिया है, वे योग्य शिक्षकों को सन्तान की शिक्षा के लिए नियत करते हैं। इतने उपाय करने पर भी सैकड़ों में क्या हज़ारों में कोई विरलाही जिसके पूर्व संस्कार अच्छे हैं, योग्य बनता है। इसका कारण यही है कि हम जड़ को न सींचकर पानी की फुँधार से पत्तों को हरा रखना चाहते हैं, सो यह कैसे होसकता है ?

प्रत्यक्ष देखलो, जिन देशों में स्त्रीशिक्षा का प्रचार है, उनकी जनसंख्या अल्प होते हुवे भी, उनमें योग्य पुरुषों की बहुलता है। भारत में ३२ करोड़ जनसंख्या के होते हुवे भी योग्य पुरुषों का ऐसा दुर्भिक्ष क्या यह सूचित नहीं करता कि यहाँ अवश्य शिक्षा की कल विगड़ी हुई है और वह विगड़ी हुई कल यही है कि जिसकी कुक्षि से हम जन्म लेते हैं, जो ९ महीने हमको गर्भ में रखकर हमारे अङ्ग, प्रत्यङ्ग और उनकी आकृति ही नहीं बनाती, किन्तु इस मांसास्थिपिण्ड में अपने आचार विचार के संस्कार डालकर हमारे चरित्र को भी निर्माण करती है, उसको मूर्ख रखकर हम योग्य बनना चाहते हैं, क्या इससे अधिक और कोई मूर्खता हमारी होसकती है ? अतएव जबतक शिक्षा के द्वारा हम इन गृहदेवियों का संस्कार न करेंगे, अपना सर्वस्व लगा देने पर भी हम अपनी सन्तान को योग्य नहीं बना सकते।

गृहस्थ की दुर्दशा।

सभी जानते हैं कि गृहस्थ के प्रबन्ध का सारा भार स्त्रियों पर होता है, पुरुष तो दिन भर आजीविका के चक्र में घूमते हैं, रात को थक कर सो रहते हैं, उनको इतना अवकाश कहां कि वे किसी बात के प्रबन्ध को सोच सकें या उसके उपायों को काम में लावें। यद्यपि आजकल भी उन सब कामों को स्त्रियाँ ही संपादन करती हैं, तथापि अविद्या के कारण उनके सब काम बेढंगे और उलटे होते हैं। न वे घर का हिसाब किताब ही रखसकती हैं और न किसी खर्च में किफ़ायत ही निकाल सकती हैं। सन्तानों के पढ़ाने लिखाने और उनकी स्वास्थ्यरक्षा में धन का उपयोग करना वे अपव्यय समझती हैं, पर ब्याह शादियों में झूंठी नामवरी के लिए बड़े बूढ़ों की पसीने की कमाई का भी स्वाहा करदेना उनको नहीं अखरता अलब्ध की प्राप्ति और प्राप्त की वृद्धि करना तो कठिन काम है, केवल लब्ध की रक्षा भी वे नहीं कर सकतीं। न कोई काम उनका देशकाल के अनुकूल होता है और न वे समय का सदुपयोग करना जानती हैं। भोजन के समय जो प्रियालाप का है, घर का सारा दुखड़ा लेकर बैठती हैं और सन्ध्या का समय जो ईश्वर के गुणानुवाद का है वृथालाप और दूसरोंके परिवाद में खोदेती हैं। मङ्गलगान के समय अश्लील गीत गाने लगती हैं, आनन्द और उत्सव के समय कलह और विवाद कर बैठती हैं, जिससे सारा उत्साह भङ्ग होकर चित्त उद्विग्न होजाता है और गृहस्थाश्रम. कांटे की तरह खटकने लगता है। सच है गृहस्थ को स्वर्ग या नरक बनाना गृहिणी का ही काम है।

विपरीत व्यवहार।

सास, स्वसुर, माता, पिता आदि वृद्धों की सेवा करना

और उनसे नम्रता रखना, पति से प्रेम का होना और उसका विश्वास एवं प्रियाचरण करना. देवर तथा पुत्रादि पर अनुग्रह दृष्टि रखना, यदि कुचेष्टा करें तो ताड़ना करना, सम्बन्धियों से स्नेह और पड़ौसियों से मैत्रीभाव रखना, इसप्रकार सबसे यथायोग्य व्यवहार करने से ही स्त्रियां गृहस्थ का भूषण बन सकती हैं। परन्तु आजकल शिक्षा के अभाव से स्त्रियां जानती ही नहीं कि किसका हमसे क्या सम्बन्ध है और कौन हमारे प्रति और हम किसके प्रति क्या कर्तव्य और अधिकार रखती हैं? इसलिए प्रायः उनके व्यवहार विपरीत ही होते हैं।

बहुधा देखा जाता है कि स्त्रियां अपने वृद्ध सास श्वसुर की सेवा स्वयं तो कहां से करेंगी. किन्तु पति को भी अपनी कुमन्त्रणा से उनके विरुद्ध बना देती हैं, जिससे विचारे उस वृद्धावस्था में जब कि मनुष्य अशक्त होने से परमुखापेक्षी होजाता है, निराश्रय होकर अनेक कष्ट उठाते हैं। वृद्धों और मान्यों की पूजा और भक्ति के स्थानमें स्वार्थी और मिथ्याचारी पंडे, पुजारी और बनावटी साधुओं की पूजा और भेंट चढ़ाती फिरती हैं। या किसी लाल भुजक्कड़ को गुरु बनाकर और उससे गले में कण्ठी बन्धवाकर या कान में मन्त्र फुंकवाकर उसकी सेवा और शुश्रूषा करना अपना धर्म समझती हैं। यदि इनमें विद्या होती तो "पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्" तथा "पतिसेवा गुरौ वासः" इत्यादि शास्त्रवचनों का अनादर क्यों करतीं? देवरादि जो पुत्रवत् शिक्षणीय होते हैं, उनसे उन्मत्त होकर हँसी ठट्ठा और क्रीड़ा आदि (जो साध्वी स्त्री के लिये वर्जित हैं) करती हैं। फिर वे भी उद्दण्ड और धृष्ट होकर जहां तक उनसे होसकता है, इनकी मट्टी पलीद करते

हैं। सम्बन्धियों से ईर्ष्या और पड़ौसियों से कलह करना तो इनके लिये एक साधारण बात है। निदान शिक्षा के न होने से इनके सारे काम उल्टे ही देखने में आते हैं।

दाम्पत्य प्रेम का अभाव।

गृहस्थ का आनन्द तब ही है, जबकि पति पत्नी में सच्चा प्रेम हो, वे कुल धन्य और वे गृह स्वर्गधाम हैं, जहां पति पत्नी में प्रेम और एक दूसरे का विश्वास है। चाहे गृह धन, धान्य और परिजन से पूर्ण हो और उसमें किसी बात की कमी न हो, पर एक प्रेम के न होने से गृहस्थ फीका पड़जाता है। जहां प्रेम का निर्मल स्रोत बहता है, वहां चाहे और कुछ भी न हो, पर दुःखरूप कूड़ा कर्कट रहने नहीं पाता। देखो प्रेम ने ही सीता को जङ्गल में मङ्गल करदिया और अप्रेम ने ही केकैयी को राज्य से सुख न भोगने दिया। गृहस्थ में जो कुछ है, सब प्रेम का ही माहात्म्य है, जिसके वर्णन करने में बड़े २ ऋषि मुनि भी असमर्थ हैं।

यह प्रेम जो गृहस्थ का जीवनाधार है, स्त्री पुरुषों में कब और क्योंकर होसकता है? सृष्टिनियम बतला रहा है कि मनुष्य में साधर्म्य से प्रीति और वैधर्म्य से द्वेष का होना स्वाभाविक है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि विद्वानों को मूर्खों से और श्रीमानों को दरिद्रों से चाहे सहानुभूति होजाय, पर प्रेम जिस वस्तु का नाम है, वह समता में ही ठहर सकता है, विषमता में नहीं। भला प्रकाश और अन्धकार का भी कहीं मेल होसकता है? पति तो ईश्वर की कृपा से ग्रेज्युयेट हैं, कई भाषा जानते हैं, उनकी अर्द्धाङ्गिनी को सौतक गिनती नहीं आती और वह अपनी मातृभाषातक को लिख पढ़ नहींसकती, वे विनय और सभ्यता में बढ़े हुवे हैं, ये हठ और उजड्डपन

किसी से कमनहीं। वहां रातदिन दर्शन, विज्ञान, राजनैतिक और ऐतिहासिक विषयों की चर्चा है, यहां रातदिन भूत-प्रेत मसान और ऊतों की कथा और अर्चा है। वहां विद्वान् और प्रभक्तों का मान है, यहां स्वार्थी और दम्भी लोगों की पूजा होरही है। जब इनकी दशा में रातदिन का सा अन्तर है, तब प्रेम कैसा ? साधारण मेल भी नहीं रहसकता।

यही कारण है कि हमारे देश में एक नहीं, दो दो तीन २ स्त्रियों के होते हुवे भी बहुधा नवयुवक चकलों की हवा खाते हैं क्योंकि घर की स्त्रियां अशिक्षिता होने से उनके चित्तको आकर्षित नहीं करसकतीं, पर पराय स्त्रियां चतुर होनेसे उनके मन को अपनी मुट्ठी में कर लेती हैं और फिर मनमानी उनकी शामत बनाती हैं। यदि हमारे देश की कुलस्त्रियां शिक्षिता होतीं तो आज यह व्यभिचार का बाज़ार गरम न होता तथा सैकड़ों कुल और उनकी प्रतिष्ठा इसकी भेंट न चढ़ती।

प्रियमित्रो ! यदि आप गृहस्थ की पवित्रभूमि में प्रेम का मनोहर बीज बोना चाहते हैं, तो अपनी गृहदेवियों को शिक्षा भूषणसे अलंकृत कीजिए, अन्यथा पुरुषोंको भी उनके समान बनाइये, भला कहीं प्रकाश और अन्धकार का भी मेल हुवाहै ? इत्यादि और भी अनेक हानियां हैं, जिनको विस्तरभय से हम नहीं लिख सकते।

बालविवाह।

दूसरा अत्याचार जो स्त्रियों पर होरहा है, बालविवाह है, यद्यपि इस अत्याचार से पुरुष भी बचे हुए नहीं हैं, तथापि खर्बूज़ा छुरी पर गिरे या छुरी ख़बूंजे पर गिरे, दोनों दशाओं में विनाश ख़र्बूजे का ही है। अतएव बालविवाह का परिणाम

भी इसी अबला जाति के लिये भयंकर और दुःखदायी होरहा है। बालविवाह के दोष दिखलाने के पूर्व हम पाठकों को विवाह का कुछ परिचय देना चाहते हैं कि यह क्या वस्तु है और इसका उद्देश या प्रयोजन क्या है ?

'वि' उपसर्ग पूर्वक 'वह' धातु से, जिसका अर्थ प्राप्ति है, विवाह शब्द बनता है। जिसके द्वारा विशेष रूप से स्त्री पुरुष एक दूसरे को प्राप्त होते हैं, उसका नाम विवाह है और हिन्दू समाज में यह एक पवित्र संस्कार माना गया है, जिसमें स्त्री पुरुष आजीवन एक दूसरे के हाथ बिक जाते हैं। वे यज्ञ करते हुवे एक दूसरे का हाथ पकड़कर उपस्थित जनों के सम्मुख यह प्रतिज्ञा करते हैं कि "आज से हम दोनों अपनी स्वतन्त्रता एक दूसरे के हाथ बेचते हैं, कभी एक दूसरे का अविश्वास एवं अप्रियाचरण न करेंगे।" इस प्रकार एक दूसरे की प्रसन्नता और सहयोगितासे गृहस्थ धर्मका पालन करते हुए उत्तम सन्तानरूप फल को उत्पन्न करना विवाह का सर्वसम्मत उद्देश है।

पाठक ! अब आप समझ गये होंगे कि यह कितने बड़े दायित्व का काम है, जिसमें दो प्राणी जीवन भरके लिये एक दूसरे के हाथ बिक जाते हैं। जिन जातियों में दोनों में से एक के न रहने पर या जीवन में भी कई कारणोंसे यह सम्बन्ध टूट सकता है, उनमें कैसी दूरदर्शिता और वर वधू की परीक्षा के बाद यह काम किया जाता है। पर जिस अभागिनी जाति में जीवनावस्था में तो क्या मरणानन्तर भी यह सम्बन्ध नहीं टूटता, लड़कों का खेल समझा जा रहा है। आश्चर्य तो इस बात का है कि जिन कामों का सुधार हम अल्प व्यय और श्रम से कर सकते हैं, उनमें तो हम अपनी दूरदर्शिनी बुद्धि का वह

[वै]चित्र्य दिखाते हैं कि अफलातून और अरस्तू भी आकर हम [से] हिकमत सीख जावें। पर जिस बिगाड़ को हम अपने प्राण [दे]कर भी नहीं सुधार सकते, उसके लिये साधारण बुद्धि से [का]म लेने की आवश्यकता भी हम नहीं समझते। एक पैसे की [हां]डी को मोल लेते समय आंखे फाड़फाड़ कर हम देखते हैं [औ]र ठोक बंजाकर परखते हैं,पर अपनी इनपुत्रियों और बहनों [को] (जो हमारे लिए अपने प्राण तक देसकती हैं) आंखें बन्द [क]रके एक अजनबी पुरुष को देदेते हैं।

अब हम संक्षेप से उन अनर्थों का कुछ वर्णन करेंगे जो [बा]लविवाह से उत्पन्न होते हैं और जिनके कारण हिन्दूसमाज [दि]न पर दिन क्षीण और पतनोन्मुख होरहा है।

विवाह के उद्देश का पूरा न होना।

जो काम जिस प्रयोजन के लिये किया जाता है, यदि उस [का]म से वह प्रयोजन सिद्ध न हो तो उसका होना न होने के [ब]राबर है। पढ़े लिखे ही नहीं, किन्तु अशिक्षित लोग भी इस [बा]त को जानते हैं कि विवाह के दो प्रयोजन हैं। एक स्त्री [पु]रुषों में परस्पर प्रेम का होना. दूसरा उत्तम सन्तान का [उ]त्पन्न करना, सो इन दोनों बातों का सम्बन्ध युवावस्था से [है], बाल्यावस्था दाम्पत्य प्रेम और सन्तानोत्पत्ति इन दोनों के [अ]योग्य है। यही कारण है कि संसार के किसी भी सभ्य देश [मे]ं बालविवाह की रीति प्रचलित नहीं है। जो व्यक्ति जिस [का]म के योग्य नहीं है, उसपर उसका भार लादना न केवल [उ]सको हानि पहुंचाना है, किन्तु उस काम की भी रेड़ लगाना [है]। अतएव जो काम जिस अवस्था से सम्बन्ध रखता है, [उ]सीमें उसका होना श्रेयस्कर है।

सब जानते है कि बालकों का स्वभाव चपल होता है, उनमें विद्या, बुद्धि और अनुभव के न होने से उनके आचार, विचार और सङ्कल्पादि सब अस्थिर होते हैं इसी लिये युवावस्था में उनकी बिलकुल कायापलट जाती है। फिर भला उस अबोध अवस्था में किया हुवा काम (सोभी अपनी इच्छा या आवश्यकता से नहीं, किन्तु माता पिता की इच्छा से, युवावस्था में जबकि बुद्धि और अनुभव से काम लिया जाता है, क्योंकर रोचक होसकता है? इसलिये उस अनूकूलता पर भी काम करना दूरदर्शिता से दूर है। पर हमारे दूरदर्शी भाई तो इसकी भी कुछ परवा नहीं करते, बालविवाह में भी रूप, वय, गुण और शील की परीक्षा करना अनुचित समझते हैं। उनकी दृष्टि में वर वधू का ग्रहसाम्य होजाना दैवी अनूकूलता है, फिर उसके सामने शारीरिक वा गौणिक आनूकूल्य की आवश्यकता ही क्या है? और यह ग्रहसाम्य कैसा विचित्र है कि कहीं ६० वर्ष के बूढ़े खूसट और १० वर्ष की सुकुमारी कन्या का होजाता है और कही २० वर्ष के युवा और १६ वर्ष की युवती का नहीं होने पाता । पर लाख ग्रह-साम्य होजाओ गौणिक तथा दैहिक अनूकूलता के न होनेसे स्त्री पुरुषों में रात दिन देवासुर संग्राम मचारहता है और फिर जो जो अनर्थ और दुराचार होते हैं, उनके लिखने में लेखनी सर्वथा असमर्थ है।

इस दशा में भी पुरुषों को तो स्वतन्त्रता है, यदि स्त्री उनके अनूकूल नहीं है, तो वे उसके होते हुवे दूसरा विवाह भी कर-सकते हैं, परस्त्रीगमन से भी उनका धर्म नहीं बिगड़ता और वेश्यायें तो उन्हीं के प्रताप से सदा सुहागिन बनी हुई हैं। परन्तु इस अनमेल की दशामें स्त्रियों की जैसी दुर्दशा होती है

उसको स्मरण करके रोमाञ्च होता है। पति चाहे कैसा ही कुरूप, अन्धा, कोढ़ी, व्यसनी और दुराचारी क्यों नहो और जो सलूक व्याघ्र बकरी के साथ करता है, वही अपनी स्त्री के साथ क्यों न करता हो, पर उसके लिए वह साक्षात् ईश्वर के समान है। ये उसके सिवाय अन्य पुरुषों को देखने से भी पापिनी होती हैं।

हमें भय होना है कि कोई महाशय हमको पतिव्रत धर्मका विरोधी कहकर अपराधी न ठहराने लगें। वास्तव में ऐसे लोगों से जो मरे हुवों को मारने में शूर, वञ्चित को ठगने में प्रवीण और शरणापन्न को मरणासन्न करने वाले हैं, यह शंका असमंजस नहीं है। अस्तु, ऐसे लोग चाहे कुछ समझें परन्तु हम अपने आशय को प्रस्फुट किये देते हैं। हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि जो लोग अपनी स्त्रियों को गृहलक्ष्मी समझकर उनका शास्त्रोक्त यथोचित मान और सत्कार करते हैं और स्त्रियों के लिये जैसा पतिव्रत धर्म को आवश्यक समझते हैं, वैसा हीं किन्तु उससे भी अधिक अपने लिये स्त्रीव्रत धर्म को, उनकी स्त्रियाँ उनको देववत् न मानें और उनकी पूजा तथा सेवा न करें। परन्तु जो निर्दय इन अबलाओं के साथ वनचरों का बर्त्ताव करते हैं, वे उस मान और पूजा के अधिकारी कदापि नहीं होसकते।

गृहस्थाश्रम की दुर्दशा।

गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में बड़ा है, इसके भारको उठाना साधारण मनुष्यों का काम नहीं। जिन्होंने ब्रह्मचर्य धारण करके शारीरिक और आत्मिक बल संपादन नहीं किया, वे कदापि गृहस्थाश्रम के भारको धारण नहीं करसकते। मन्वादि धर्मशास्त्रों में इस आश्रम की बहुत कुछ महिमा वर्णन कीगई

है और इस बातपर अधिक बल दियागया है कि जिनका आत्मा और शरीर निर्बल हैं वे कदापि इस आश्रम में प्रवेश करने का साहस न करें।

आज हम अपनी आंखों से कैसा करुणाजनक दृश्य देख रहे हैं कि वह आर्य सन्तान जो कभी कमसे कम २५ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करके पूर्ण शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त करने के बाद इस आश्रम में प्रवेश करती थी, आज उस अवस्था में जबकि उसके दूधके दांत भी नहीं टूटते, धड़ाधड़ इस गृहस्थकी गाड़ी में जिसमें चारों आश्रमों का बोझ लदा हुवा है, जोती जारही है। क्या सचमुच आठ २ या दस २ वर्ष के छोकरों में इतनी शक्ति है कि वे इस गाड़ी को चलासकें ? चलाना तो दूर रहा, वे इसके बोझ को सह भी नहीं सकते। भला सहें कैसे ? जिस बोझ के उठाने में बड़े २ विद्वान् और बलवान्भी श्रान्त होजाते हैं, उसको वे अबोध बालक, जिनमें नतो विद्या है न शारीरिक बल क्योंकर उठा सकते हैं ? जब यह भार असह्य होजाता है, टब उस अबलाको निराश्रय छोड़कर घरसे निकल भागते हैं, या कहीं सिर मुंडाकर साधु बन जाते हैं। यदि घरमें भी रहे तो दिनरात उपद्रव करते हैं, आभूषण, वस्त्र, पात्र जो कुछ हाथ लगा, चोरों की भांति ले भागते हैं। और जब कुछ न रहा, तब घरवाली को तंग करते हैं। परन्तु स्त्री के पास कुबेर का कोष तो है ही नहीं जो इनकी बेकारी और अनागम की अवस्था में भी पर्याप्त हो। स्त्री भी रातदिन के झगड़ोंसे तंग आकर यदि माता पिता का कुछ सहारा मिला, तो उनकी शरण लेती है, पर जिसका घरमें ठिकाना नहीं, उसे बाहर कौन पूछता है ? वहां यदि अनादर और अवज्ञा के साथ टुकड़ा मिल ही गया तो क्या हुआ और यदि यह भी न हुवा तो

फिर "बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्" इस कहावत के अनुसार निन्द्य और अकर्तव्य कर्मों का आचरण करने लगती हैं, जिस से समाज में इन की चर्चा और तिरस्कार होने लगता है, उससे तंग आकर ये या तो ईसाई या मुसलमान होजाती हैं, जो इनको सदा आश्रय देने के लिए तयार हैं। या यदि धूर्तों के जाल में फंसगईं तो फिर बाजारों में बैठकर पातिव्रत्य धर्म की धूल उड़ाती हैं। इस प्रकार सैकड़ों कुलों की प्रतिष्ठा और मर्यादा इस बालविवाह की भेंट चढ़ती है।

बालविधवाओं की वृद्धि।

सन् १९२१ ई० की मनुष्यगणना की रिपोर्ट बतलाती है कि इस देश में ६० लाख से ऊपर विधवायें ऐसी हैं, जिनकी अवस्था २० वर्ष से कम है। अब प्रश्न यह है कि ये कहाँ से आईं और किसने बनाईं? हमारे भाग्यवादी भाई शायद इसका दोष कर्म या भाग्य को दें, पर वास्तव में कर्म या भाग्य का इसमें कुछ भी दोष नहीं है, यह सब हमारा अपराध है, हम जान बूझकर अपने हाथ से अपने कर्म और भाग्य की रेड़ लगाते हैं। हम सृष्टिनियम के विरुद्ध, ऋषियों के आदेश के विरुद्ध और सभ्य जगत् की परिपाटी के विरुद्ध बालक और बालिकाओं का या बूढ़ों और रोगियों का कुमारी कन्याओं से विवाह रचाते हैं, यह सब उसी का फल है। हम इस बात को जानते हुवे भी कि बच्चे और बूढ़ों पर मृत्यु का अधिकतर आक्रमण होता है, उनका विवाह करते हैं, फिर यदि उसका यह अशुभ परिणाम होता है तो कर्म या भाग्य को दोष देने लगते हैं। क्या यह वही बात नहीं कि " छलनी में दुहैं और भाग्य को कोसैं।"

वालविवाह और वृद्धविवाह यही दो मशीनें हैं, जो इस अभागे देश में वालविधवाओं की संख्या बढ़ा रही हैं, विधवा विवाह के अप्रचार ने इनकी भयंकरता को और भी बढ़ादिया है। जो जातियां विधवाविवाह को बुरा नहीं समझतीं, वे तो अपनी सन्तानों का युवावस्था में विवाह करें और जो जाति विधवाविवाह को हव्वा समझती है, उसमें धड़ाधड़ वाल-विवाह और वृद्धविवाह हों, इसीको कहते हैं 'कोढ़ में खाज" होना तो यह चाहिए था कि जो जाति विधवाविवाह को अच्छा नहीं समझती, उसमें वालविवाह या वृद्धविवाह का कहीं नाम भी सुनने में न आता। किसी ने सच कहा है— "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।" यदि ये बालविवाह और वृद्धविवाह की दुष्टप्रथायें हमारे देश में प्रचलित न होतीं तो आज ये ६० लाख वालविधवायें संसार को क्यों हमारी हृदय हीनता का परिचय देतीं।

शिक्षा और स्वास्थ्य की हानि।

वह जाति जिसमें आत्मिक और शारीरिक बल नहीं है, बहुत दिन तक संसार में नहीं ठहर सकती। जातीय जीवन के लिए संसार में यही दो संजीवनी शक्ति हैं, जिनसे किसी जाति के अस्तित्व का पता लगता है। इन्हीं की साम्यावस्था को उन्नति और विषमावस्था को अवनति कहते हैं। सभ्य शिरोमणि आर्यों ने इन्हीं दोनों शक्तियों को उपार्जन करने के लिए प्राकृतिक नियमों के आधार पर ब्रह्मचर्य की नींव रक्खी थी, जिसका उद्देश शिक्षा द्वारा आत्मिक उन्नति और वीर्यरक्षा द्वारा शारीरिक उन्नति करने का था। शोकक्षि आज इस ऋषि-भूमि में ब्रह्मचर्य का स्थानापन्न बालविवाह बनाहुवा है, जिसने इन दोनों शक्तियों की जड़ काटकर फेंकदी और उस जातिको

जिससे संसार की समस्त सभ्यजातियों ने सभ्यता उधार ली थी, आज असभ्य और मूर्ख ही नहीं किन्तु महानिर्बल, दीन और परमुखापेक्षी भी बनादिया।

आजकल जिस अवस्था में पुत्र और पुत्रियों के विवाह होते हैं, वह ठीक उनके विद्यारम्भ करने की अवस्था है। द्विरागमन तक पुत्रों को तो कुछ अवकाश मिलता भी है, पर इससे होता क्या है, अधूरी शिक्षा पाकर वे घर के रहते हैं न घाट के। अब रहीं पुत्रियां सो विवाह के पश्चात् उनका पुस्तक हाथ में लेकर पाठशाला में जाना (चाहे वह पुत्री पाठशाला ही क्यों न हो) अनुचित समझा जाता है। चाहे घाटों और मन्दिरों की फेरी, मठों और दरगाहों की यात्रा साधु और महन्तों के दर्शन करने में सारे नगर की परिक्रमा देती फिरें। पुस्तक पढ़ने के लिए घर के काम धन्धों से अवकाश नहीं मिलता, चाहे सीटने और वृथालाप में दिन ही नहीं रात भी व्यतीत होजाय। यदि किसी को पढ़ने लिखने की कुछ रुचि हुई भी तो वर्णबोध होने पर गोपीचन्द या गुलबकावली पढ़ने लगीं, बस फिर क्या था वे अपने को पढ़ी लिखी समझ दार और दूसरी अपनी बहनों को मूर्ख और गंवार समझने लगती हैं। यद्यपि इसमें दोष शिक्षाप्रणाली का भी है, तथापि बालविवाह उनको उत्तम शिक्षा प्राप्त करने का अवसर ही नहीं देता। माता पिता के यहाँ खेल कूद में अपना समय बिताती हैं, सुसराल में जाकर पहले तो लज्जा और संकोच में डूबी रहती हैं; फिर एकबारगी विषयवासना में निमग्न होकर अपनी ही आरोग्यता नहीं खो बैठतीं, किन्तु पति और पुत्रादि के स्वास्थ्य को भी बड़ी हानि पहुंचाती हैं।

सन्तान का निर्बल एवं क्षीण होना।

सब से बड़ी हानि जो इस बालविवाह से हमारी जातिकी होरही है, वह हमारे उत्तराधिकारियों का, जिनपर हमारी जातीयसत्ता अवलम्बित है, उत्तरोत्तर क्षीण और बलहीन होना है। सब जानते हैं कि कच्चे या सड़े बीज से जो फल उत्पन्न होता है, वह बहुत दिन तक नहीं ठहरता। इसीलिए बुद्धिमान् माली और किसान कच्चे या सड़े फल के बीजको नहीं बोते और न ऐसी भूमि में बोते हैं, जो उत्पन्न करने की योग्यता न रखती हो। परन्तु आजकल हमारे देश में यह नियम वृक्षादि के लिए ही काम में लाया जाता है, मनुष्यों के लिए इसकी आवश्यकता नहीं समझीजाती। एक मूर्ख किसान कच्चे या सड़े बीज को ऊसर भूमि में बोने की मूर्खता कभी नहीं करता, पर हम पढ़े लिखे लोग बच्चों के कच्चे और बूढ़ोंके सड़े बीज कोउस भूमिमें जो उत्पादक शक्ति नहीं रखती धड़ाधड़ बो रहे हैं। क्या इस दशामें हम उत्तम फल (संतान) की आशा करसकते हैं महाभारत उद्योग पर्व में कहा है।

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचनोति यः
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥
यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥

अपक्व वीर्य से जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह यही नहीं कि आप अयोग्य और असमर्थ हो, किन्तु उससे जो आगे को सन्तान होती है वह और भी अधिक क्षीण एवं बलहीन होकर एक दिन उस जाति की सत्ता और चिन्ह ही संसार से मिटा देती है। भला जिस देशमें १४ या १५ वर्षके छोकरे और १२ या १३ वर्ष की छोकरियां सन्तानोत्पत्ति के

योग्य समझे जाते हैं, उसकी कुशल कबतक मनाई जासकती है ? द्विरागमन को हुवे यदि एक वर्ष वीत जाय और कोई रँगटा उत्पन्न नहो तो घर भर में खलबली मच जाती है। ज्योतिषी, सामुद्रिक और स्याने इन सब की आवभगत होने लगती है, यदि इनके छूमन्तर से कोई कीड़ा उत्पन्न होगया, तब तो इनके पौ बारह हैं, मनमाना पुरस्कार पाते हैं और फिर रातदिन उस रोगपुञ्ज के लिए इनकी आवश्यकता बनी ही रहती है और यदि न हुवा तब भी इनकी पूछ बनी ही रहती है।

यही कारण है कि आजकल सौ में बीस को भी ठीक समय पर प्रसव नहीं होता, प्रायः सतमासिये और अठमासिये उत्पन्न होते हैं, जो अधिकांश तो पैदा होते ही कालकवल होजाते हैं और जो बच रहते हैं, वे ज्यों त्यों अपने दिन पूरे करते हैं। हमारी समझ में तो जो विवाह से पहले अपनी जीवनलीला समाप्त कर देते हैं, वे बड़े भाग्यवान् और धर्मात्मा हैं। क्योंकि विवाह के पश्चात् मरने से वे एक अवला का जीवन नष्ट करजाते हैं, जो आजीवन सन्तापाग्नि में जलती हुई दोनों कुलों को अपने शाप से भस्म करती है। आजकल जो भारतसन्तान अधिकतर अकाल मृत्यु की भेन्ट चढ़ रही है, उसका कारण भी यही बालविवाह और बृद्धविवाह है। इस देश के बच्चों की मृत्युसंख्यापर जब हम ध्यान देते हैं तो हृदय कांप उठता है। दुर्दैव से इस देश में जो आत्मायें मनुष्य जन्म का चोला धारण करती हैं, उनमें से आधी बचपन में ही अपनी मानवलीला समाप्त कर देती हैं और कोई २ तो अपने साथ अपनी जन्मदात्री को भी लेजाती हैं। जो आधे बच रहते हैं, वे ज्यों त्यों करके अपने दिन पूरे करते हैं, इनके चेहरे पीले पड़े हुवे

हैं, पेट फूला हुवा है, गाल पटके और हाथ पैर सूखे हुवे हैं। बचपन जो स्वाभाविक रीतिपर खिलने की अवस्था थी, उसी में मुरझाजाना इससे बढ़कर किसी जातिका दुर्दैव और क्या होसकता है? बालविवाह ही हमारे जातीय ह्रासके लिए कुछ कम न था, उसपर अनमेल विवाह और वृद्धविवाह तो जाति को नाशके समीप ले जारहे हैं।

वैधव्य।

तीसरा अमानुषिक अत्याचार जो इस अबला जाति पर होरहा है, वैधव्य है। यह वह अत्याचार है, जो स्त्रियों को जलरहित मीन की तरह तड़पा रहा है और यह वह दुःख है कि जिसका उनके जीवन भर कभी अन्त नहीं होता। विधवा होते ही मानो उनकी आशालतापर बिजली गिर पड़ती है। जिस आशा के अवलम्बन से, चाहे वह झूंठी ही हो, मनुष्य बड़े से बड़े दुःख को सहन और बड़ी से बड़ी कठिनता का मुक़ाबला करता है, उस जीवनसंचारिणी, सर्वदुःखापहारिणी आशा से ही इनका हृदय शून्य होजाता है, फिर जीवन इनके लिए भार नहीं तो क्या हो? मन और इन्द्रियों के होते हुवे ये उनके उपयोग से वञ्चित करदी जाती हैं।

संसार के विचित्र पदार्थ और सुन्दर दृश्य जो औरों के आमोद प्रमोद का कारण हैं, इनके लिए महा भयंकर और दुःखदायी होजाते हैं। अपना दुखड़ा रोने और दूसरों को सुनाने से हलका पड़ जाता है, पर ये अपनी स्वाभाविक लज्जा और संकोच के कारण न तो जी भरकर रोही सकती हैं और न किसी के सामने अपने दुःखको प्रकट ही करसकती हैं। मनकी बात मनही में रखकर रातदिन चिन्तानलमें जलना और कुढ़ २ कर अपने शरीर को घुलाना बस संसार में इसी

लिए इन्होंने जन्म लियाथा। सारे रोगी मौत से बचने के लिए ओषधि करते हैं, पर संसार में एक इनका ही ऐसा विलक्षण रोग है, जिसको सिवाय मौत के और कोई ओषधि नहीं। हा हन्त !! जिस देशमें एक करोड़ बालविधवायें ऐसा नैराश्य पूर्ण और अन्धकारमय जीवन व्यतीत कर रही हों, क्या उस देश के निवासी कभी सुख की नीन्द सो सकते हैं ?

अब प्रश्न यह होता है कि जब पशु पक्षी भी अपनी सन्तान का दुःख नहीं देख सकते, तब भारतवासी और उनमें भी विशेषकर हिन्दू जिनका दया धर्म संसार में प्रसिद्ध है, अपनी पुत्रियों के इस अथाह दुःखपर क्यों ध्यान नहीं देते ? ज़रा सा कांटा लग जाता है, उसको भी जबतक निकाल नहीं दिया जाता, चैन नहीं पड़ता, ये तो सांप की तरह हरदम इनकी छातीपर लोटती हैं, फिर भी इनके दुःखनिवारण का कुछ उपाय नहीं किया जाता ? इसके उत्तर में हमें कहना पड़ताहैः—

"जिसके पैर फटे न बिवाई। वह क्या जाने पीर पराई।"

यदि वह दुःख का पहाड़ जो इन अनाथ अबलाओं के सिरपर टूटरहा है, उसका शतांश भार भी हमारे भाइयों के ऊपर पड़ता तो इनको खरे खोटे का सारा भाव मालूम हो-जाता है, अब इनको मालूम क्या हो, जबकि विवाह इनके लिए एक खेल होरहा है। दो २ चार २ सन्तानों के होते हुवे यहां तक कि पूर्व पत्नी की विद्यमानता में भी ये एक कन्याकुमारी को जिसकी अवस्था इनकी पुत्री से भी कम है, अपनी पत्नी बना सकते हैं। फिर इनमें यह कैसी अद्भुत शक्ति है कि व्य-भिचार से भी इनका धर्म नहीं बिगड़ता। चाहे ये कंचनी को घर में रक्खें या पुंश्चली की पूंछ बन जायें या विधवाओं का सतीत्व नष्ट करके गर्भपात और भ्रूणहत्या तक कर डालें

और फिर भी वेलाग बने रहैं। इस दशा में इनको क्या मालूम हो कि विधवाओं पर कैसी और क्या बीत रही है?

वैधव्य का परिणाम।

विधवाविवाह के विषय में जो निर्मूल आक्षेप किये जाते हैं, उनकी आलोचना हम दूसरे अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ हम संक्षेप से उन अनर्थों और अपराधों का कुछ दिग्दर्शन कराना चाहते हैं, जो विधवाविवाह के न होने से उत्पन्न होते हैं और जिनको वैधव्य का परिणाम कहना चाहिये।

हमारी निर्दयता।

पहला अनर्थ यह है कि जो हिन्दू पशु पक्षियों पर भी दया करते हैं और उनके कष्ट को नहीं देख सकते, उनके सामने आजीवन उनकी पुत्रियाँ और भगनियाँ सन्तापाग्नि में जलें और वे खुद मरते दम तक संसार के आमोद प्रमोद से मुंह न मोड़ें, क्या इससे अधिक संसार में और कोई निष्ठुरता और स्वार्थपरायणता का नीच उदाहरण मिल सकता है? जिन आर्यों का आत्मा शत्रु को भी दुरवस्थापन्न देखकर द्रवीभूत होजाता था, हा!! आज उनकी सन्तान कैसी निष्ठुर और पाषाणहृदय होगई है कि अपनी सन्तान के अथाह दुखः पर जिसपर अजनबी लोग भी आँसू बहाते हैं, ध्यान नहीं देती। यदि कहो कि उन के भाग्य या कर्म का लिखा हम नहीं मेट सकते तो हम पूछते हैं कि यह भाग्य अमिट संसार में इन्हीं के लिए है या तुम्हारे लिए भी? हम तो तुम्हारा भाग्य को अमिट मानना तब समझते, जब तुम स्त्री के मरजाने पर दूसरा विवाह न करते। भाग्य तो तुमको स्त्री और सन्तान दोनों से वञ्चित रखना चाहता है, पर तुम अपने लिए उस

से मरते दम तक युद्ध करते हो। फिर हम कैसे मानलें कि तुम भाग्य को अमिट मानते हो?

एक तो निरपराधों पर अत्याचार और फिर उसका समर्थन करने के लिए यह बहाने बाज़ी !! क्या इसी का नाम आस्तिकता है? क्या जिस बात को हम अपने लिए नहीं चाहते, उसको अपनी बहनों और पुत्रियों के लिए चाहना यही हमारी धर्मभीरुता और ईश्वरपरायणता है? जबतक हम इन अनाथ अबलाओं के दुःखपर ध्यान नहीं देंगे और इनके मानुषिक और प्राकृतिक स्वत्वों को निर्दयता के साथ पैरों के नीचे कुचलते रहेंगे, तबतक हिन्दूसमाज के इस बड़े कलङ्क को कि उसकी दया और सहानुभूति केवल पशुपक्षियों तक ही परिमित है, मनुष्य उसकी सीमा से बाहर हैं, कभी नहीं मिटा सकते।

व्यभिचार की वृद्धि।

दूसरा अनर्थ यह है कि बड़े २ घरानों की विधवायें, जब काम का वेग असह्य होजाता है, पहले तो गुप्तरीतिपर अपनी कामवासना को तृप्त करती हैं। जब उनपर सन्देह होने लगता है, या उनका दोष प्रकट होजाताहै, तब "मरता क्या न करता" इस किंवदन्ती के अनुसार या तो अपने प्रणयी के साथ भाग-जाती हैं, या ईसाई मुसलमानों का आश्रय लेती हैं, या किसी कुटनी के हत्थे चढ़ गईं तो बाज़ारों में बैठकर दोनों कुलों के पितरों को स्वर्ग में पहुंचाती हैं। अब वही हिन्दूसमाज जो अपने नवयुवकों को इनके साथ विवाह करने से रोकता था, अब उन को खुली आज्ञा देदेता है कि वे इन स्वर्ग की अप्सराओं के यहां जाकर अपने पितरों का श्राद्ध और तर्पण करें। आज जो भारत के प्रत्येक नगर में हाट के हाट पुंश्चली और वेश्याओं से भरे पड़े हैं और जहां तहां सैकड़ों गुप्त अड्डे बने

हुवे हैं, जिनमें हज़ारों कुटनी और कुटने इसी पाप कर्म का व्यवसाय करते हैं, यह सब इसी वैधव्य का ही परिणाम है।

प्रश्न—व्यभिचार का कारण वैधव्य नहीं, किन्तु दुःसङ्ग है, जिस के चक्र में पड़कर बहुतसी सधवायें भी कुलटा बनजाती हैं, अतएव दुःसङ्ग से स्त्रियों को बचाना चाहिये।

उत्तर—माना कि इस दारुण विपत्ति में भी कुछ विधवायें ऐसी निकलेंगी जो अपने प्राणपण से माता पिता के मान मर्यादा की रक्षा करती हैं। इससे क्या हम यह समझलें कि उनको सांसारिक सुख की कामना नहीं रहती, जब आजकल के साधु और सन्त भी इस कामना से मुक्त नहीं, तब क्या भोग विलासों की प्रदर्शिनी में रहती हुईं ये शिक्षा और अनुभव शून्य अबलायें मानसिक वेगों का दमन कर सकती हैं ? अतएव लोकापवाद या माता पिता की इच्छा उन्हें गुप्त रीति पर अपनी वासनाओं को तृप्त करने से नहीं रोक सकते और भला कैसे रोक सकें ? क्या कोई प्राकृतिक वेगों के रोकने में समर्थ हुवा है ? जब बड़े २ देवता ब्रह्मा, विष्णु, इत्यादि और बड़े २ ऋषि विश्वामित्र और पराशर आदि कृत, त्रेता और द्वापर युग में काम के वेग को न रोकसके, तब इस कलियुग में शिक्षा और अनुभव शून्य अबलाओंसे यह आशा करनाकितनी मूर्खता है ? इस बात को योग्य इंजीनियर ही नहीं साधारण मनुष्य भी जानतेहैं कि यदि पानी के निकास का कोई मार्ग न बना कर बन्द बान्धा जायगा तो उसका क्या परिणाम होगा ? इस प्रकार पानी के वेग को रोकने की मूर्खता हममें से कोई नहीं करता; पर काम के दुर्धर्ष वेग को रोकने की मूर्खता हमारा समाज कर रहा है। यदि यह रोक अपने लिये होती तो चाहे इसमें बुद्धिमत्ता न समझी जाती, पर वीरता अवश्य मानी

जाती। पर नहीं यह बान्ध हमने उस अबला जाति के लिए बान्धा है, जिसपर हमारे भाई विना किसी आपत्ति के भी यह अपवाद लगाया करते हैं।

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥

अस्तु, जब हम अपने लिये उननियमोंकी कुछ परवा नहीं करते जिनका पालन विधवाओं से कराना चाहते हैं, तब हमारा यह विषमाचार ही उनकी आँखें खोलदेता है और उनको दुष्कर्म में साहस होने लगता है, फिर दबाने या भय दिखाने से भी उनका बचना कठिन होजाता है। इतने पर भी जो विधवायें सब कष्टों को सहती हुईं और प्राकृतिक वेगों को रोकती हुईं दुष्कर्मों से अपने को बचाती हैं, वे निःसन्देह देवता हैं और जगत् की वन्दनीया हैं। परन्तु हज़ारों में दस बीस ऐसी हुईं भी तो क्या वे उस व्यभिचार के प्रवाह को (जो वैधव्य के स्रोत से निकलता है) रोकने में समर्थ होसकती हैं? जब वैधव्य उनकी चिरोषित वासनाओं पर आघात करता है, तब क्यों न उसको उनकी दुष्प्रवृत्ति का कारण मानाजाय?

गर्भपात और भ्रूणहत्या।

यह वह अनर्थ है, जिसको स्मरण करके शरीर में रोमाञ्च होता है, जिस देश में हजारों ईश्वर के पुत्र गर्भ में या उत्पन्न होते ही समाप्त करदिये जांय, वह बालघाती देश क्या कभी भद्र या स्वस्ति का मुंह देख सकता है? एक पापको छिपाने के लिए दूसरा महापाप करना, एक व्यक्ति या कुल की झूंठी नाक रखने के लिए सारे समाज की नाक कटाना इसी का नाम है। पर पाप कभी पाप को रोक सकता है? इससे बड़े२ खान्दानों की बड़ी बड़ी प्रतिमा भी खाक में मिल जाती है।

रुपये के ज़ोर से चाहे वे इसका क़ानूनी प्रभाव अपने ऊपर न पड़ने दें, पर जिस नाक को बचाने के लिए ये महापाप किये जाते हैं, वह तो जड़से कट जाती है और व्यभिचार जो अबतक छिप २ कर होताथा, अब खुल्लम खुल्ला होनेलगताहै।

हमारे देश के फ़ौजदारी अदालतोंके दफ़्तर ऐसी मिसलोंसे भरे पडे हैं, जिनमें सैकड़ों उच्चकुल की विधवायें गर्भपात, भ्रूणहत्या और आत्मघात आदि अपराधों में अभियुक्त होकर न्यायालयों से दण्डित हुई हैं। हम यहांपर सिर्फ़ एक फ़ैसले की नक़ल जो बम्बई हाईकोर्ट में आनरेबिल जस्टिस वेस्ट ने २५ मई सन् १८८१ ई० को, मुसम्मात विजयलक्ष्मी विधवा उम्र २० वर्ष क़ौम ब्राह्मणी के अपीलपर (जिसने अपने जारज पुत्र को गला घोटकर मारडाला था) सादिर फरमायाथा, उद्धृत करते हैं। जस्टिस महोदय अपने फ़ैसले में लिखते हैं:-

"वे लोग जिनकी जाति में व्यभिचार बहुत बुरा समझा-जाता है और वे विधवाओं को पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं देते, बड़ी भूल करते हैं। जातीय हित को लक्ष्य में रखकर समाज को निष्पक्ष भाव से सोचना चाहिये कि किसी युवा व्यक्ति को (चाहे वह स्त्री हो वा पुरुष) विवाह से रोकना उसे व्य-भिचार की प्रवृत्ति दिलानाहै। जिन जातियों में विधवाविवाह का प्रचार नहीं है, यदि कोई आपत्ति न हो तो समाज को उनपर दबाव डालना चाहिये और सामाजिक हित के लिए इस अनुचित रुकावट को जिससे धर्म और क़ानून के विरुद्ध अनर्थ और अपराध उत्पन्न होते हैं, दूर करना चाहिये।"

"यह अभियोग इस प्रकार के अन्य अभियोगों का अपवाद नहीं है, इसलिए न्यायालय-की दृष्टि में यह आवश्यक नहीं है कि क़ानून का सबसे अन्तिम दण्ड अपराधी को दिया जाय।

क्योंकि न्यायालय की दृष्टि में भ्रूण हत्या का अपराध ऐसा असाधारण नहीं हुवा है कि प्रत्येक दशामें जहां स्त्री अपराधिनी हो, मृत्यु दण्ड आवश्यक समझाजाय। परन्तु इसके साथ ही यह अभियोग ऐसा भी नहीं है कि गवर्नमेन्ट से इस की सुफ़ारिश कीजाय। अतएव यह न्यायालय आज्ञा देता है कि अपराध जो मातहत अदालतने लगाया है, बहाल रक्खा जाय, पर फांसी के बजाय आजीवन काले पानी की सज़ा अपराधी को दीजाय।"

पाठक! ऐसे २ सैकड़ों अभियोग आये दिन फ़ौजदारी अदालतों में होते रहते हैं, जिनमें विधवायें तो अपने कियेका फल पाती ही हैं, पर उनके संरक्षकों और सम्बन्धियों की जो दुर्गति और मिट्टी पलीद होती है, उसके लिखने में लेखिनी असमर्थ है। अब प्रश्न यह है कि गवर्नमेन्टके क़ानून में चाहे इन अपराधों के करने वाले और उनमें सहयोग देने वाले ही दोषी हों, पर उस अन्तर्यामी न्यायकारी यमराजके क़ानूनमें क्या उससमाज पर इन अनर्थों और अपराधों का दायित्व न होगा, जो बलात् मनुष्यों के प्राकृतिक वेगों को रोककर उनको पापी और अपराधी बनने का अवसर देता है? आज जो हिन्दू जाति संसार में नहीं किन्तु अपने ही देश में और अपने ही भाइयों से तिरस्कृत और अपमानित होरही है और धड़ाधड़ दूसरी जातियों का शिकार बन रही है, क्या यह ईश्वर की ओर से इसी पापकर्म का समुचित दण्ड नहीं है?

कुमारी कन्याओं पर अत्याचार

चौथा अनर्थ जो इस वैधव्य के कारण हिन्दू समाज में होरहा है, कुमारी कन्याओं पर अत्याचार है। विधवाविवाह के नहोने से चालिस २ और पचास २ वर्ष के बूढ़े पुरुष आठ

आठ या दस २ वर्ष की कुमारी कन्याओं के साथ जो देखने में उनकी पुत्री और पौत्री के समान लगती हैं, विवाह करते हैं, इसका परिणाम यह होता है। उधर तो जो विधवायें समाज में मौजूद थीं, वे ज्योंकी त्यों बनी रहीं, इधर यह दूसरी खेप और तय्यार करने का उपक्रम किया जाता है। इससे विधवाओं की संख्या बढ़ने के अतिरिक्त दूसरा अनर्थ जो होता है, वह कुमारी कन्याओं पर अत्याचार है। दुहेजिये ही नहीं, किन्तु तिहेजिये और चौहेजियों का घर बसाने के लिये भी इन निरपराध बालिकाओं की बलि चढ़ाई जाती है। यदि विधवाविवाह प्रचलित होता तो भारतीय कन्याओं की यह दुर्दशा क्यों होती? इसके अतिरिक्त कन्याविक्रय की जघन्य रीति भी विधवाविवाह न होनेके कारण ही इस देश में फैली है। निर्धन गृहस्थ, जिन की इस देशमें कमी नहीं है, धनके लोभसे अपनी कन्याओं को बूढ़े और रोगी धनवानों के हाथ बेच देते हैं। यदि विधवा-विवाह प्रचलित होता ता क्यों ऐसे २ अनर्थ और पाप होते?

आजीविका का अभाव।

पांचवाँ अनर्थ जीविका का अभाव है, जो इच्छा न होते हुवे भी विधवाओं को पापकर्म की ओर प्रेरित करता है, सब जानते हैं कि भूखा मनुष्य न तो भजन ही करसकता है और न उससे किसी मर्यादा का ही पालन होसकता है। क्या आठ आठ या दस २ वर्ष की बालविधवायें, जिनको न कोई शिक्षा दीगई है और न कोई हुनर सिखाया गया है, विना दूसरे की सहायता या आश्रय के किस प्रकार अपना जीवन निर्वाह कर सकती हैं? यदि कहो कि माता पिता उनका भरण पोषण करेंगे, तो प्रश्न यह है कि जिनके माता पिता न हों या हों भी

तो इस काम के अयोग्य हों, बतलाइये वह क्या करें और किस प्रकार अपनी उदरज्वाला को शान्त करें ?

हा हन्त !! हिन्दू विधवा की कैसी शोचनीय दशा है ? इधर क्षुधा और दीनता उसे अपना भयानक रूप दिखा रही है, उधर संसार के प्रलोभन और उत्तेजन उसे अपनी ओर खींच रहे हैं। एक ओर इतना अत्याचार सहते हुवे भी समाज में अपना अपमान और तिरस्कार उसे उस निर्दय समाज से बदला लेने के लिए उकसा रहा है। दूसरी ओर गुण्डे और पापी पुरुष स्वयं पतित होने के लिए नहीं, किन्तु उसे पतित करने के लिए अर्थात् लोक और परलोक दोनों से भ्रष्ट करने के लिए नये नये जाल बिछाये बैठे हैं। इन विषमावस्थाओं में यदि विधवायें अपने धर्म पर आरूढ़ रहें तो इसका आश्चर्य होना चाहिए, न कि उनके पतित होने का। अस्तु, और सब आपत्तियों का एक दृढ़चित्त मनुष्य जैसे तैसे मुकाबिला कर सकता है, पर वह पेट को किसी दशा में जवाब नहीं देसकता इस पेट की ज्वालाको शान्त करनेके लिए माताओंने अपने दूध पीते बच्चों को अपनी छाती से अलग करदिया है, पुत्रों ने अपने बूढ़े माता पिताओं को घरसे निकाल दिया है। अतएव भर्ता के अभाव में पेट की चिन्ता यदि विधवाओं को कुमार्ग गामिनी बना देवे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? " बुभुक्षितः किं न करोति पापम्"

ईश्वरीय नियम की अवज्ञा।

छठा अनर्थ यह है कि इससे ईश्वरीय नियम की अवज्ञा होती है। ईश्वर ने स्त्री और पुरुष दोनों को एक ही उद्देश के लिए बनाया है। ये दोनों मिलकर ही सृष्टि का उद्देश पूरा कर सकते हैं। यदि इनमें से एक भी दूसरे की उपेक्षा करे तो

आज ही इस सृष्टि का उच्छेद होजाय। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही इन दोनों का संयोग आवश्यक नहीं है, किन्तु उस गृहस्थाश्रम को भी जिसका महत्व हिन्दू शास्त्रों में सर्वोपरि माना गया है, जीवित रखने के लिए इनका परस्पर मिलकर रहना अनिवार्य है। मनु कहता है:—

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टा सन्तानार्थं च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः॥

जब श्रुति के संकेत से मनु यह लिखता है कि पत्नी के साथ ही पुरुष गृहस्थ धर्म का पालन करसकता है, अन्यथा नहीं, तब विधवाओं को पत्नी बनने से रोकना गृहस्थ धर्म का उच्छेद करना नहीं तो और क्या है? ईश्वर ने उनको सन्तान उत्पन्न करने और गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए उत्पन्न किया था, पर हम उनको प्रसवशक्ति रखते हुवे वन्ध्या और पत्नी बनने की योग्यता रखते हुवे सदा के लिये विधवा बना देते हैं। इससे अधिक ईश्वरीय नियम की और क्या अवज्ञा होसकती है? यदि इन अर्धे कोटि बालविधवाओं के अनुरूप वरों के साथ नियमानुसार विवाह होजाते तो न मालूम आज इनसे कितने अर्जुन और अभिमन्यु उत्पन्न होकर इस पतनोन्मुख हिन्दू जाति के बल और प्रभाव को बढ़ाते और कितने गृहस्थ जो आज इनके विलाप और क्रन्दन से या दुराचार और पाप जीवन से नरक का दृश्य उपस्थित कररहे हैं, स्वर्ग और शान्ति के धाम बनकर हिन्दू जाति के सुख, प्रताप और गौरव की वृद्धि करते, इसकी संख्या कौन करसकता है? इत्यादि अनेक अनर्थों का उपशम जिनके कारण हिन्दू जाति दिनपर दिन क्षीण, हीन और दीन होरहीहै (जिस का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रत्येक मनुष्यगणना में उसका भीषण ह्रास है) एक मात्र विधवाविवाह के प्रचार से होसकता है।

अन्तिम निवेदन।

उपसंहार में अब हम अपने देशबान्धवों से सविनय निवेदन करते हैं, कि यह कोई धर्म सम्बन्धी विवाद नहीं है जिस पर हिन्दू, जैन, आर्य, ब्राह्म, बौद्ध और सिक्ख आदि सम्प्रदायों का मतभेद हो। यह उस दुखड़े का रोना है, जिसको स्मरण करके आस्तिक तो एक ओर नास्तिकों का भी हृदय विदीर्ण होता है। यही दारुण दुःख है जो सर्व सम्पत्तिके होते हुवे भी आज हम को आठ २ आंसू रुलारहा है, इसी कलङ्क ने आज हमको संसार की सभ्य और शिक्षित जातियों में कलङ्कित किया है और यही निष्ठुरता है, जो आज हमको मनुष्य होते हुवे भी पाषाणहृदय बनारही है।

प्रिय बांधवो! ईश्वर के लिए और अपने पवित्र धर्म के लिए अब आप इस धब्बे को अपने अञ्चल से धो डालिये। संसार में कोई धर्म ऐसा नहीं है, जिसकी महिमा दीनों पर दया करने और दुखियों का दुःख दूर करने से न बढ़ी हो। इन अनाथ बालविधवाओं का इस भयानक दशा से जिस में पड़ी हुई ये रातदिन विना अग्नि के जल रही हैं, उद्धार करना हमारा और आपका ही काम है। यदि हमारे शत्रु भी इस अप्राकृतिक दशा में पतित होते तो आर्यसन्तान होते हुवे इससे उनका उद्धार करना हमारा कर्त्तव्य था, ये तो हमारी इच्छा और आज्ञा के आगे सिर झुकाने वाली ही नहीं, किन्तु उसका पालन करने में मर मिटने वाली हमारी पुत्रियां और भगिनियां हैं क्या इनके दुःखपर हम ध्यान न देंगे?

अबतक हमने प्रमाद से अपने इस कर्त्तव्य की उपेक्षा की, पर अब इस प्रकाश के युग में बहुत दिनतक हम इनको इनके

मानुषिक स्वत्वों से बञ्चित नहीं रखसकते। यदि हम इनके मनुष्योचित अधिकार इनको प्रदान नहीं करेंगे तो ये स्वयं उनको प्राप्त करने की चेष्टा करेंगी। क्या अच्छा हो कि हम इनकी मांग से पहले ही इनके अधिकार इनको प्रदान करदें। अधिकार तो दोनों दशाओं में (चाहे हमदें और चाहे ये लें) इनको मिलेंगे ही, पर अन्तर केवल इतना है कि पहली दशा में हम यशोभागी सेंत मेत में बन जायेंगे और पिछला कलङ्क भी हमारा धुल जायगा। दूसरी दशा में अपने अधिकारों को प्राप्त करने का सारा श्रेय इन्हीं को मिलेगा और हमको इनके सम्मुख लज्जित भी होना पड़ेगा।

परिशिष्ट।

अर्वाचीन विद्वानों की सम्मतियां।

विधवाविवाह के विषय में प्राचीन ऋषियों और विद्वानों की सम्मति पहले और दूसरे अध्यायों में हम सप्रमाण उद्धृत करचुके हैं। अव इस परिशिष्ट प्रकरण में हम कुछ ऐसे अर्वाचीन विद्वानों का परिचय विज्ञ पाठकों को देना चाहते हैं, जिन्होंने प्रस्तुत विषय में अपनी स्वतन्त्र और स्पष्ट सम्मति प्रदान करके अपने नैतिक वल का परिचय दिया है।

१—मित्रमिश्र।

ये विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में हुवे हैं। इनका बनाया "वीरमित्रोदय" ग्रन्थ, जिसमें धर्मशास्त्र के अनेक गहन विषयों का वड़ाही मार्मिक विवेचन किया गया है, शिलायन्त्र का छपा "भारती भवन" प्रयाग में मौजूद है। इन्होंने उस ग्रन्थ के अधिवेदन प्रकरण में ऐतरेय ब्राह्मण की "एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतयः" इस श्रुति की व्याख्या करते हुवे स्पष्ट पत्यन्तर का विधान किया है; जिसको हम पहले अध्याय में उद्धृत करचुके हैं।

२—नीलकण्ठमिश्र।

ये विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में हुवे हैं, इन्होंने महाभारत जैसे विस्तृत ग्रंथ की संस्कृत में टीका की है। इन्होंने भी महाभारत के आदि पर्व में उक्त श्रुति की प्रतीक देकर स्पष्ट पत्यन्तर का विधान किया है जिसका उल्लेख पहले अध्याय में होचुका है।

३--सर्वज्ञनारायण ४--नन्दन ५--राघवानन्द ।

ये तीनों विद्वान् विक्रम की बारहवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी तक हुवे हैं, ये तीनों मनुस्मृति के टीकाकार हैं। इन तीनों ने मनुके "साचेदक्षतयोनिः स्यात्०" इस पद्य के भाष्य में 'अक्षतयोनि' विधवा के विवाह की पुष्टि कीहै। राघवानन्द ने तो 'वा' अव्यय से 'क्षतयोनि' का भी विवाह सिद्ध किया है। जैसा कि हम पहले अध्याय में दिखलाचुके हैं।

६--नन्दपण्डित ।

तीनसौ वर्ष हुवे काशी में इन्होंने जन्म लिया था, इनका बनाया 'दत्तकमीमांसा' ग्रंथ प्रसिद्ध है। इन्होंने 'विष्णु' स्मृति की टीका भी की है, जिसका नाम केशव वैजयन्ती' है। उसमें इन्होंने "अक्षताभूयः संस्कृता पुनर्भूः" विष्णुस्मृति के इस मूल की व्याख्या करते हुवे अक्षता विधवा का पुनःसंस्कार के योग्य होना सिद्ध किया है।

७—वाचस्पति मिश्र ।

ये महाशय सोलहवीं शताब्दी में मैथिलदेश में संस्कृत के अन्यतम विद्वान् हुवे हैं। इनके बनाये 'विवादचिन्तामणि' और 'व्यवहारचिन्तामणि' ये दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनका मिथिला में बड़ा आदर है। विवाद चिन्तामणि में ये लिखते हैं—पौनर्भवः षष्ठः सच पुनर्वोढुःसुतः"।

इससे सिद्ध है कि वाचस्पति मिश्र पौनर्भव को पुनर्वोढा का पुत्र मानते हैं। यदि उनकी दृष्टि में 'विधवाविवाह' अयुक्त होता तो उसकी संतान को वे पुनर्वोढा का पुत्र कदापि न लिखते, क्योंकि जारज संतान किसी की पुत्र या उत्तराधिकारी नहीं होसकती।

८—मथुमिश्र।

ये महोदय भी ३०० वर्ष हुवे पूर्वीय वंगदेश में संस्कृत के [भा]री विद्वान् हुवे हैं, इनका बनाया 'विवादचंद्र' नाम ग्रंथ [प्र]सिद्ध है उसमें ये लिखते हैं :—

"पुनः सवर्णेनोढायां तज्जातः पौनर्भवः"

विधवाविवाह के लिये सवर्ण की शर्त लगाना ही सिद्ध [क]र रहा है कि ये उसको वैध मानते हैं, अन्यथा अवैध के [लि]ये सवर्ण के बन्धन की क्या आवश्यकता थी ?

९—नीलकण्ठभट्ट।

ये सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण में प्रसिद्ध विद्वान् हुवे हैं, [इ]नका बनाया 'व्यवहारमयूख' नामक ग्रन्थ महाराष्ट्र देश में [मि]ताक्षरा के समान माना जाता है। ये महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ मिश्र से भिन्न हैं। इन्होंने अन्तिम अवस्था में काशी-[वा]स स्वीकार किया था। ये व्यवहारमयूख में लिखते हैं:—

'अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः।

अक्षतायां पूर्वत्रोढा अभुक्तायां क्षतायां तेन भुक्तायां वा [व]ोढान्तरेणोत्पन्नः पौनर्भवः।"

इससे सिद्ध है कि नीलकण्ठ भट्ट याज्ञवल्क्य के समान [क्ष]ता और अक्षता दोनों के विवाह को वैध मानते हैं, अन्यथा [व]ोढान्तर से वे पुत्रोत्पत्ति का वर्णन नकरते।

१०—पं० रघुनन्दन भट्टाचार्य।

ये प्रसिद्ध विद्वान् पिछली शताब्दी में वंगाल में हुवे हैं [इ]नका बनाया स्मृतितत्व ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध और पाण्डित्य [पू]र्ण है, जिसमें धार्मिक विषयों की बड़ी ही मार्मिक विवेचना [की]गई है। इसीका एक भाग "उद्वाहतत्व" भी है, जिसके

कुछ प्रमाण हमने इस पुस्तकमें कहीं २ पर उद्धृत किए हैं। इसी विद्वान् के विषय में आनरेबिल मिस्टर ग्रान्ट ने सन् १८५६ई० में विधवाविवाह का बिल प्रस्तुत करते हुवे गवर्नर जनरल की कौन्सिल में कहा था कि "बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् 'स्मृतितत्व' के प्रणेता पं० रघुनन्दन भट्टाचार्य ने अपनी पुत्री का पुनर्विवाह करना चाहा था, पर सजातीयों के विरोध से वह अपने उद्योग में कृतकार्य नहीं हुवा।" ये महाशय 'स्मृतितत्व' में लिखते हैं:—

> क्षतयोन्या अपि संस्कारमाह याज्ञवल्क्यः—
> "अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।"

इस अवतरण में पं०रघुनन्दन भट्टाचार्य ने याज्ञवल्क्यः का प्रमाण उद्धृत करते हुवे क्षता और अक्षता दोनों के पुनर्विवाह में अपनी सम्मति प्रकट की है।

११—पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

ये महाशय बंगाल में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् हुवे हैं। हिन्दूधर्म पर इनका जैसा विश्वास था, आजकल के शिक्षितों में होना कठिन है। इनका जन्म सन् १८२० ई० में हुवा था, ये निर्धन मातापिता के पुत्र थे। अपनी व्यक्तिगत योग्यता के कारण ही ये शिक्षाविभाग में उन्नति करते करते इंसपेक्टर के उच्च पदपर पहुंचगये।

आधुनिक हिन्दूसमाज में सब से पहला यही धर्मात्मा पुरुष हुवा, जिसने तमाम हिन्दूशास्त्रों का मथन करके विधवाविवाह को धर्मशास्त्र के अनुकूल सिद्ध किया। इन्होंने विधवाविवाह के समर्थन में बंगभाषा में एक विस्तृत और पाण्डित्य पूर्ण पुस्तक प्रकाशित की जिसमें श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास और तर्कसे विधवाविवाह का वैध होना सिद्ध किया। इस पुस्तक

प्रकाशित होते ही हिन्दू समाज में युगान्तर उपस्थित हो-
गा। बंगाल और काशी के कुछ पण्डितोंने उसके प्रति-
द भी छपवाये, पर इस महारथी ने अकेले ही उन सब
प्रहारों को निष्फल करदिया, फिर किसी को साहस
हुवा कि इनके अकाट्य युक्ति और प्रमाणों का खण्डन कर
के। इन्होंने सैंकड़ों ही उच्च कुलों में विधवाविवाह कराये
र अपने पास से बहुत कुछ यौतुक प्रदान किया। सन् १८
ई० का सरकारी एक्ट, जिसमें विधवाविवाह को क़ानून
वैध ठहराया गया है, इसी महात्मा के उद्योग का फल है।
दया के अवतार ने जिसका नाम विधवाविवाह के इति-
स में सदा अमर रहेगा सन् १८९१ ई० में ७१ वर्ष की आयु
अपनी मानवलीला संवरण की।

इस भारतजननी के सुपूत ने केवल वाचिक वीरता ही
हीं दिखाई, किन्तु अपने पुत्र का एक बिधवा के साथ वि-
ह करके "मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" इस
क्ति को सार्थक बनाकर अपने नैतिक बल का जनता को
रिचय भी दे दिया। इसी महापुरुष के विषय में आनरेबिल
र गुरुदास बनर्जी जज हाईकोर्ट बङ्गाल अपने टगोर ला
कचर में लिखते हैं:—

"पण्डित विद्यासागर ने जिनका नाम वैधव्य को उठा देने
लिए संसार में सदा अमर रहेगा, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में
द्ध किया है कि विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्रानुसार वैध
। उक्त पण्डित की इस सम्मति को देश का अधिकांश शि-
क्षितवर्ग स्वीकार करता है। सरकार ने भी उस पर ध्यान
कर १८५६ ई० में विधवाविवाह एक्ट १५ भारतीय कौंसिल
पास कर दिया है (टगोर लालेक्चर सन् १८७८ पृ० २५७)।

१२–महामहोपाध्याय पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न।

ये बंगाल में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् हुवे हैं, धर्मशास्त्र, न्याय, व्याकरण और साहित्य आदि विषयों में इन्होंने कई मार्मिक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनका विद्वत्समाज में बड़ा आदर है। इनकी योग्यतापर ही मुग्ध होकर बंगाल सरकार ने इनको संस्कृत कालिज का प्रिन्सिपिल बनाया था। विद्यासागर पर इनकी बड़ी भक्ति थी और ये गुरुवत् उनका आदर करते थे। जब विद्यासागर की प्रसिद्ध पुस्तक के प्रतिवाद में पं० मधुसूदन स्मृतिरत्न ने, जो इनके मित्रों में से थे, एक लेख प्रकाशित किया, तब इन्होंने स्मृतिरत्न महाशय को उनके प्रतिवाद के उत्तर में एक लम्बा पत्र लिखा, जिसकी कुछ पंक्तियां हम यहां पर उद्धृत करते हैं:—

"आपने जो स्मृतिशास्त्र की आलोचना करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि पूर्वकाल में यहां विधवाविवाह शास्त्रोक्त नहीं था, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। आपने अपने आशय को सिद्ध करने के लिये कतिपय शास्त्रवचनों का सहारा लिया है और खींचतान कर उनके अर्थ को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की है। यह शैली आप जैसे विद्वानों के अनुकरण योग्य नहीं है। जो मनुष्य जान बूझकर शास्त्र के अभिप्राय को अन्यथा प्रकट करता है, वह जनता को धोखा देता है और उसके विश्वास से अनुचित लाभ उठाता है। विद्वान् लोग कभी इस शैली का आदर नहीं करते। आपने अनेक स्मृति ग्रंथों का परिशीलन किया है, जरा बतलाइये तो सही कि किस स्मृतिकार ने यह लिखा है कि विधवाविवाह पूर्वकाल में शास्त्रसिद्ध नहीं था। जिस ग्रंथ को आप प्रमाण कोटि में मान चुके हैं जब उसका कोई वाक्य आपके विरुद्ध आकर

पड़ता है तो आप उसको अप्रमाण कहने लगते हैं या उसकी उपेक्षा करते हैं, यह कहाँ का न्याय है?"

१३—सर गुरुदास बनर्जी

विद्यासागर के समान इनका भी हिन्दूधर्म पर अचल विश्वास था। इनकी कानूनी योग्यता इनके टगोर ला लेकचरों से जो इन्होंने कई वर्ष तक लगातार दिये हैं, प्रकट है। शोक कि इस धर्मात्मा विद्वान् का सन् १८१८ई० में देहावसान होगया। इन्होंने विद्यासागर और विधवाविवाह के विषय में जो सम्मति दी है, उसको हम उद्धृत करचुके हैं। यहां पर हम इनकी उस सम्मति को भी जो अयोग्य विवाहों के सम्बन्ध में इन्होंने प्रकट की है, उद्धृत करते हैं:—

"उन हिन्दूस्त्रियों की दशा जिनका विवाह आरम्भ में कुछ भूल होजाने के कारण शास्त्र से अनुचित ठहराया जाता है, बड़ी ही शोचनीय है। वह भूल जिसके कारण विवाह धर्मशास्त्र से अनुचित ठहराया जाता है, दो प्रकार की है:—

१—जातिभेद जो विवाह के पश्चात् जाना जावे।

२—सगोत्र या सपिण्ड में विवाह सम्बन्ध का होना।

पहली दशा में किन्हीं २ शास्त्रकारों ने यदि वर और वधू का भिन्न २ जाति होना गर्भाधान संस्कार से प्रथम विदित होजाय तो कन्या को पुनःसंस्कार करने की आज्ञा दी है। पर गर्भाधान पश्चात् विदित होने से वह पुनःसंस्कार के योग्य नहीं समझी जाती, पति को अधिकार है कि वह उसे त्यागदे। दूसरी दशामें अर्थात् यह ज्ञात होनेपर कि सगोत्र या सपिण्ड में विवाह हुवा है, पति के साथ समागम न होने पर भी स्त्री को पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं, पति उसके योगक्षेम की व्यवस्था करके उसे त्यागदे।

बालविधवा को इतना तो सन्तोष है कि उसके पति की मौत को रोकना मनुष्य की शक्ति के बाहर था, परन्तु माता-पिता की ज़रासी भूल के कारण जो कन्या ऐसी निष्ठुरता से त्यागदी जाय और जन्मभर के लिये विधवा बनादीजाय, उसकी दशा वास्तव में बड़ी ही शोचनीय है। ऐसी दशा में जहां स्त्री को समागम से पहले पतिने त्याग दिया हो, उचित और न्यायसंगत यही है कि उसे पुनर्विवाह की आज्ञा दीजाय और यह बात धर्मशास्त्र के भी विरुद्ध नहीं है। क्योंकि नारद और बृहस्पति दोनों शास्त्रकारों ने ऐसे दान को जो भूल, प्रमाद या अज्ञता से कियाजाय, अनुचित और अदत्त माना है। इसके अतिरिक्त आनरेबिल जस्टिस नारमन चीफ़ जस्टिस बंगाल हाईकोर्टने भी अंजना दासी के अभियोग में जो प्रल्हाद चन्द्र घोषके नाम था, अपनी व्यवस्था में इसका अनुमोदन किया है।"

(देखो टगोर लालेकचर सन् १८७८ पृ० १६०-१६१)

१४—बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी

ये महाशय पिछली शताब्दी में बंग साहित्य के सम्राट् हुवे हैं। बंगसाहित्यने जो आज भारत की प्रान्तीय भाषाओं में सर्वोच्च स्थान लाभ किया है, वह इन्हीं के उद्योगका फल है। यद्यपि उसको सींचनेवाले और भी दत्त मित्र आदि बंगाली वीर हुवे, तथापि उसका बीजारोपण करने वाले और उसके प्रवाह को सामयिकता की ओर झुकाकर इस उन्नत दशा में पहुंचाने वाले यही महाशय हुवे हैं। प्रस्तुत विषय में वंगदर्शन से हम इनकी सम्मति उद्धृत करते हैं:—

"पुरुष पत्नीवियोग के बाद फिर विवाह करने का अधिकारी है तो साम्यनीति के अनुसार स्त्री भी पतिवियोग के बाद पुनर्विवाह करने की अधिकारिणी है। यहाँपर प्रश्न हो

सकता है कि यदि पुरुष पुनर्विवाह का अधिकारी है, तभी तो स्त्री भी अधिकारिणी है, तो क्या पुरुषों को पुनर्विवाह करना उचित है? उचित है या अनुचित हम इस विवाद में पड़ना नहीं चाहते। हमारी सम्मति में मनुष्यमात्र को यह अधिकार है कि जिसमें दूसरे का अनिष्ट न होता हो, ऐसे प्रत्येक कार्य को वह प्रवृत्ति के अनुसार कर सकता है। अतएव पत्नी-वियोगी पति अथवा पतिवियोगिनी पत्नी दोनों ही इच्छा होने पर पुनर्विवाह के अधिकारी हैं।" (वंगदर्शन ४ खण्ड)

१५—डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र।

बंगाल में ये महाशय संस्कृत तथा अन्य भाषाओंके प्रसिद्ध विद्वान् हुवे हैं। इन्होंने प्राचीन साहित्य के अन्वेषण में बड़ा परिश्रम किया है। इनकी संकलित और परिष्कृत की हुई शतशः पुस्तकें और निबन्ध आदि संस्कृत, बंगला और इंगलिश भाषा में एशियाटिक सोसायटी बंगाल कीओर से प्रकाशित हुई हैं, जिनसे इनकी उच्चकक्षा की योग्यता का परिचय मिलता है। अपनी योग्यता के कारण ही इन्होंने बृटिश सरकारसे भी बहुत कुछ सम्मान और उपाधियाँ प्राप्त कीं। पं० राजाराम शास्त्री काशीनिवासी ने विधवाविवाह के विरुद्ध वेदमंत्रों के अर्थ का जो अनर्थ किया था, उसकी इन्होंने खब पोल खोली है और विधवाविवाह को श्रुति, स्मृति और पुराणों से वैध सिद्ध किया है। इन्होंने सन् १८८४ में अपने मित्र मलाबारी को, जो उस समय इङ्गलैण्ड में थे, एक पत्र लिखा था, जिसकी कुछ पंक्तियां जो विधवाविवाह से संबंध रखती हैं, हम यहां उद्धृत करते हैं:—

" विधवाविवाह के विरुद्ध जो प्रमाण दियेजाते हैं, वे पहले इसको शास्त्रविरुद्ध मान कर पीछे खोजे जाते हैं। इस दशा

में जो प्रमाण इसके अनुकूल हैं या तटस्थ हैं, उनको भी खींच तानकर इसके प्रतिकूल बनायाजाता है। मेरे कोई विधवापुत्री नहीं है, यदि होती तो मैं अवश्य उसका पुनर्विवाह करता और उसकी वैधव्य दशाका अनुभव करके मुझपर या समाज पर उसका कुछ ही प्रभाव क्यों न पड़ता, पर मैं उसकी बिलकुल परवा न करता।"

१६—सर रमेशचन्द्र दत्त।

ये महाशय संस्कृत, इङ्गलिश और बंगला के प्रसिद्ध विद्वान् हुवे हैं। इन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेद तथा रामायण और महाभारत के इङ्गलिश में अनुवाद किये हैं, तथा भारतकी प्राचीन सभ्यता का इतिहास लिखा है, जो चार भागों में पूर्ण हुआ है, जिससे इनकी गहरी ऐतिहासिक योग्यता का परिचय मिलता है। अपनी योग्यताके ही कारण ये कई वर्ष तक बंगाल में कलेक्टर और कमिश्नर के उच्च पदों पर रहे। यही पहले हिन्दुस्तानी थे, जिनके हाथ में सरकार ने एक क़िस्मत का चार्ज दिया।

इनके गुणों पर मुग्ध होकर ही गुणग्राही हिज़ हाइनेस महाराजा गायकवाड़ ने इनको अपने विस्तृत राज्य का दीवान नियत किया। रियासत बड़ौदा की जो आज उन्नति हुई है और जो किसी २ अंशमें बृटिशभारत में भी स्पर्धा की दृष्टि से देखी जाती है, वह यद्यपि महाराजा गायकवाड़ की दूरदर्शिता और प्रजावत्सलता का फल है। तथापि उसमें दत्त जैसे योग्य कर्मचारियों का भी बहुत कुछ हाथ है। क्योंकि बिना योग्य कर्मचारियों की सहायता के कोई शासक शासन में सफलता प्राप्त नहीं करसकता। इनके समय में रियासत बड़ौदे में बहुत कुछ सुधार हुवे और वह देसी रियासतों में आदर्श मानी जाने लगी। शोक कि सन् १६०६ ई० में भारत के इस विद्वान् का

बड़ौदेमें ही देहान्त होगया। ये भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यताके इतिहासमें लिखते हैं कि:—

" प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे बहुत से प्रमाण हैं, जिनसे पौराणिक काल में विधवाविवाह का प्रचलित होना सिद्ध होताहै। विष्णु कहता है कि " जिस स्त्रीका दूसरीवार विवाह होता है, वह ' पुनर्भू ' कहलाती है। " याज्ञवल्क्य कहता है कि " क्षता और अक्षता दोनोंका पुनःसंस्कार होना चाहिए।" और पराशर भी यद्यपि वह आधुनिक समयका स्मृतिकार है, ऐसी स्त्री के पुनर्विवाह की आज्ञा देता है, जिसका पति मर गया हो या जातिबाह्य, देशबाह्य या योगी होगयाहो" [प्राचीनसभ्यताका इतिहास चौथा भाग पृ० २५२]

१७—पं० विष्णु परशुराम शास्त्री।

ये दक्षिण में संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् हुवे हैं। इन्होंने सन् १८६५ ई० में मराठी भाषा में विधवाविवाह के समर्थन में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसपर दक्षिण के पण्डितों ने बड़ा कोलाहल मचाया और अण्डबण्ड आक्षेप किये। इन्होंने उनके युक्तियुक्त और समीचीन उत्तर देकर तथा उपदेश और शास्त्रार्थ करके विपक्षियों का मुँह बन्द किया। पूने के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में जिसमें डाक्टर बुल्हर भी मौजूद थे, विधवाविवाह के विपक्षियों को परास्त कर इन्होंने ही यश प्राप्त किया था। इन्होंने अपना विवाह भी एक कुलीन विधवा के साथ किया था और यावज्जीवन इसका प्रचार करते रहे।

१८—दीवानबहादुर पं० रघुनाथराव

ये महाशय पहले इन्दौरराज्य के दीवान थे। आजकल मदरास में विकालत करते हैं। संस्कृतमें इनकी योग्यता उच्चकक्षा

की है। इन्होंने विधवाविवाह के समर्थन में कई पुस्तकें और निबन्ध प्रकाशित किये हैं। इन्हीं की एक पुस्तक से डाक्टर मुकुन्दलाल आगरा ने अपनी सनातनधर्म नामक पुस्तक में अनेक ऋषियों के वचन संग्रह किये हैं, जिन को हमने भी इस पुस्तक के पहले अध्याय में उद्धृत किया है। खेद है कि अखिल पुस्तक अनुसंधान करने पर भी हमको न मिली।

१९-डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर।

ये महाशय दक्षिण में संस्कृत के असाधारण विद्वान् हैं। बम्बई प्रान्त में इन्होंने शिक्षा के प्रचार एवं संस्कार में बड़ा काम किया है। वृटिश सरकार ने भी इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर इनको कई उच्च उपाधियों से अलंकृत किया है। इनकी बनाई हुई अनेक पाठ्य पुस्तकें शिक्षा विभाग में प्रचलित हैं। स्त्रीशिक्षा और विधवाविवाह के प्रचार में भी दक्षिण में इन्होंने बड़ा काम किया है। केवल वाचिक सहानुभूति ही नहीं, किन्तु अपनी विधवा पुत्री का पुनर्विवाह करके इन्होंने अपने नैतिक बल का परिचय भी जनता को देदिया।

२०—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र।

हिन्दी भाषी कौन ऐसा होगा, जिसे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का परिचय देना होगा। हिन्दी भाषा जो आज देवनागरी के पवित्र नाम से पुकारी जाती है और आज समस्त भारत बिना मतभेद के जिसे राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठाना चाहता है, यह सब इन्हीं महात्मा के उद्योग का फल है। सचमुच भारत में हिन्दी भाषा की निर्मल चन्द्रिका इन्हीं की चमकाई हुई है, इसलिये इनका भारतेन्दु नाम अन्वर्थ ही है। ये अपने बनाये भारतदुर्दशा नाटक में लिखते हैं:—

जन्मपत्र बिन मिले व्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में व्याहि प्रीति बल नास कियो सब॥
करि कुलीन के बहुत व्याह बलवीर्य नशायो।
विधवा व्याह निषेध कियो व्यभिचार मचायो॥
रोकि विलायत गमन कूप मण्डूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥

२१-जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे।

ये महाशय भी संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के पूर्ण विद्वान् थे. अपनी असाधारण योग्यता के कारण ही उन्नति करते २ ये बम्बई हाईकोर्ट के जज होगये। इनके जीवन का बड़ा भाग सामाजिक सुधार में व्यतीत हुवा। विधवाविवाह से इनकी हार्दिक सहानुभूति थी। सरकारी सेवा के उपरान्त इनको जो समय मिलता था, वह समाजसेवा और कुरीतिनिवारण में ही व्यतीत होता था। यद्यपि ये राजनीति के पण्डित और यथावकाश उसमें भाग भी लेते थे, लखनऊ में जो पहली कांग्रेस हुई थी, उसके सभापति भी बनचुके थे। तथापि ये उन नेताओं में से नहीं थे, जो राजनैतिक सुधार को ही सब कुछ समझते हैं। सामाजिक सुधार की आवश्यकता इनकी दृष्टि में सबसे अधिक थी। नैशनल कांग्रेस के साथ जो सोशलकांफ्रेन्स होती है, उसकी योजना इन्होंने ही की थी। उसके अतिरिक्त और भी अनेक सामाजिक संस्थायें इन्होंने स्थापित कीं और उनको सहायता देते और चलाते रहे। इतने उच्चपद पर प्रतिष्ठित होकर भी ये साधारण पुरुषों की भान्ति रहते थे, इनकी सादी चाल और पहनावे को देखकर कोई इनको पहचान नहीं सकता था कि ये हाईकोर्ट के जज होंगे। इन्होंने अपने जीवन में सैकड़ों ही जलसों में विधवाविवाह

कराये, यहांतक कि मरने से कुछ देर पहले भी ये एक भाटिया जाति की विधवा के विवाहोपलक्ष्य में गवर्नर पत्नी लेडी नार्थ कोर्ट को आमन्त्रित करने का प्रबन्ध कर रहे थे, परन्तु मृत्यु ने इसका अवसर नहीं दिया।

पूर्णचन्द्र में कलङ्क और फूल में कांटे की भान्ति एक निर्बलता इस समाज सेवक के जीवन में भी खटकती है और वह इनका पहली स्त्री के वियोग में कुमारी कन्या के साथ विवाह करना है। यदि और कोई ऐसा करता तो शायद उसका अपराध क्षम्य होसकता, परन्तु इन्होंने अपने सिद्धान्त और उद्देश के विरुद्ध यह काम किया, इसलिए वह कदापि क्षमा के योग्य नहीं होसकता इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने यह काम अपनी इच्छा से नहीं किया, किन्तु वृद्ध मातापिता की प्रसन्नता के लिए ही इनको ऐसा करना पड़ा। तथापि यह हेतु पर्याप्त नहीं है। एक दायित्वशील व्यक्ति के लिए माता पिता से भी अधिक ईश्वर की आज्ञा का महत्व होना चाहिए। यदि विधवा के साथ विवाह करने से इनके माता पिता को दुःख होता था तो ये उनकी प्रसन्नता के लिए ऐसा न करते। पर इसका अधिकार इनको कब था कि ये माता पिता की प्रसन्नता के लिए ईश्वरीय नियम की अवज्ञा करते। अस्तु इन्होंने अपने जीवन में सैकड़ों बालविधवाओं का उद्धार किया और हज़ारों मनुष्यों के हृदय में उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न की, इसलिए हम समझते हैं कि इनके इस नैतिक अपराध का प्रायश्चित्त भी पूरा पूरा होगया।

२२—जस्टिस गणेशचन्द्र वार्कर।

ये महाशय भी बम्बई प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् और योग्य पुरुषों में से थे, शोक कि अभी हाल ही में इनका स्वर्गवास

हुवा है। ये भी दीर्घकाल तक बम्बई हाईकोर्ट के जज रहे और सरकार से बहुत कुछ मान और यश प्राप्त किया। कुछ दिन हुवे बंगाल के निर्वासितों के कारण का अनुसन्धान करने के लिए जो कमीशन नियत हुवा था, उसके एक ये भी सदस्य थे इन्होंने सरकारी सेवा के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों का भार लेकर जनता की भी बहुत कुछ सेवा की है। सच तो यह है कि जस्टिस रानाडे के बाद सामाजिक सुधार का सारा भार इन्होंने ही अपने कन्धे पर धारण किया। सोशल कांफ्रेन्स को जिसकी स्थापना मिस्टर रानाडे ने की थी, सुचारुरूप से चलाना और उपयोगी संस्था बनाना इन्हीं का काम था। विधवाविवाहसे इनकी पूरी सहानुभूति थी और उसके प्रचार में भी इन्होंने बड़ा काम किया। 'विधवाविवाह' नामक पुस्तक में से हम आपकी सम्मति यहां उद्धृत करते हैं:—

"समाज का स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए विधवाविवाह की बड़ी आवश्यकता है। यदि कोई स्त्री वा पुरुष अपने पहले पति या स्त्री के मरने पर अपना पुनर्विवाह करना न चाहें और अपना शेष जीवन धार्मिक कर्त्तव्यों के पालन करने में लगावें तो वे निःसन्देह समाज में आदर और पूजा के योग्य हैं। परन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं है कि उन बाल-विधवाओं को जिनका पूर्व पति अल्पवय में ही मर गया हो और जो सुहागिन और विधवा के अर्थ को भी न जानती हों, उनको एक महानिष्ठुर और अप्राकृतिक देशाचार के कारण आजन्म वैधव्य का पालन करने के लिए बाधित किया जाय। यद्यपि औपयोगिक रीति पर सर्वसाधारण अभी इस आवश्यक विषय पर कम ध्यान देते हैं, तथापि यह सन्तोष की बात है कि इनकी सहानुभूति विधवाविवाह से दिन पर दिन

बढ़ती जाती है। इस संस्कार से मेरा यह अभिप्राय है कि जो अनुचित प्रतिबन्ध का आवरण इस निष्ठुर आचार ने समाज पर डाला हुआ है, केवल उसको हटा दिया जाय और किसी प्रकार का दबाव किसी पर न डाला जाय। पुनर्विवाह करना या न करना विधवा और उसके संरक्षकों की इच्छा पर छोड़ दिया जाय।"

२३–जस्टिस काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग

दक्षिण में ये महाराष्ट्र भी संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् हुवे हैं इन्होंने अपनी असाधारण योग्यता से ऐसे समय में जबकि यहां अंगरेज़ी शिक्षा अप्रौढ दशा में थी, उसमें पारङ्गत होकर एम० ए० की उच्च डिगरी प्राप्त की और अपनी कार्यदक्षता से बम्बई हाईकोर्ट के जज बनाये गये। बम्बई प्रान्त में सामाजिक सुधार का बीज बोना इन्हीं का काम था। रानाडे और चंद्र-वार्कर तो उसके सींचने वाले थे। सन् १८६६ ई० में बम्बई में जो विधवाविवाह सहायक सभा स्थापित हुई थी, वह इन्हीं के सदुद्योग का फल था और येही उसके प्रधान बनाये गये। इस सभा ने विधवाविवाह के प्रचार में उस समय बड़ा काम किया था। मिस्टर तैलंग आजीवन सामाजिकसुधार का काम बड़े उत्साह से करते रहे, मरते समय अपना चार्ज अपने शिष्य रानाडे को देगये।

२४–जस्टिस आशुतोष मुकर्जी

ये ब्राह्मण जाति के भूषण बंगालके प्रसिद्ध पुरुषों में से हैं। १५वर्ष तक कलकत्ता हाईकोर्ट की जजीके उच्चपद पर प्रतिष्ठित रहकर अभी हाल में इन्होंने सरकार से पेन्शन ली है और अब स्वतन्त्रता पूर्वक राजनैतिक और सामाजिक सुधार में भाग

ते हैं। इन्होंने अपनी विधवा पुत्री का विवाह ता० २४ फर्वरी सन् १९०८ ई० में किया। (देखो विधवाविवाह राय बहादुर नानकचन्द रचित)

२५—सर. टी. मुथू स्वामी आयर।

ये महाशय मदरास प्रान्त में बड़े विद्वान् और प्रसिद्ध पुरुष हुवे हैं। ये भी अपनी असाधारण योग्यता के कारण मदरास हाईकोर्ट के जज बनायेगये। ये जाति के ब्राह्मण थे, इसलिए इनका विधवाविवाह के पक्ष में होना उसकी उपयोगिता का प्रमाण है। इन्होंने 'भारतीय प्रतिनिधि' नामक पुस्तक में विधवाविवाह के विषय में अपनी जो बहुमूल्य सम्मति प्रदान की है, उसको हम यहांपर उद्धृत करते हैं:—

"स्त्री केवल एक ही विवाह करसकती है और पुरुष जितने उसका जी चाहे, पहली स्त्रियों के मौजूद होने पर भी विवाह करसकता है। स्त्री और पुरुष के इस वैवाहिक अन्तर को समाज की भेदनीति और भी कठोर बनादेती है। इस दशा में यदि कोई सहृदय समाज हितैषी इस विषमाचार को अप्राकृतिक और असमंजस समझकर इसका प्रतिवाद करे तो वह दोषी नहीं होसकता। मैं इसी न्याय और मानुषिक सभ्यता के आधार पर विधवाविवाह को उचित और आवश्यक समझता हूं, चाहे वे बालविधवा हों, या पति से उनका कुछ संबन्ध भी रहा हो।"

२६—दाजी. आबाजी खरे बी० ए०

ये महाशय बम्बई हाइकोर्ट के नामी वकील हैं। इनकी मेधा और योग्यता उस प्रान्त में प्रसिद्ध है। सामाजिक सुधार में इन्होंने भी बहुत कुछ भाग लिया है और लेते हैं। इन्होंने विधवाविवाह पर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें बड़ी

योग्यता से विधवाविवाह का उचित और वैध होना सिद्ध किया है।

२७—पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी।

ये महाशय पंजाब के फुल्लौर नगर में संस्कृत के असाधारण विद्वान् हुवे हैं। इनका बनाया 'सत्यामृतप्रवाह' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है, जिसमें इन्होंने ऐसी योग्यता से मनुष्य के कर्तव्यों का प्रतिपादन किया है कि उससे आस्तिक और नास्तिक सभी लाभ उठा सकते हैं। उसी ग्रन्थमें ये लिखतेहैं:-

"विधवा स्त्री और विपत्नीक पुरुष को यदि उनका मन चाहे तो दूसरा विवाह अवश्य करना चाहिए।"

(सत्यामृतप्रवाह पृ० २५६)

२८—पं० गोपाल शर्म्मा शास्त्री।

आप संस्कृत के अन्यतम विद्वान् हैं और हिज़हाइनेस महाराजा काश्मीर के राजगुरु हैं। आपने संवत् १९७० वि० में 'गोपाल सिद्धान्त, नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिस में विधवाविवाह के पोषक अनेक प्रमाण संग्रह किये हैं, उसी में एक स्थल पर आप लिखते हैं:—

"जिस कामदेव के वश होकर पर्णाशी विश्वामित्र और पराशर आदि जप, तप और संयम सब भूलगये। जिस महाबली कामने शिवजी महाराज को मोहिनी के पीछे, ब्रह्माजी को अपनी दुहिता के पीछे और देवराज इन्द्र को ऋषिपत्नी अहल्या के पीछे पागल बनाया, उस काम का मुक़ाबला करने के लिए हम इस अबला जाति को, जिसमें स्वभावतः आठगुणी कामचेष्टा अधिक है, खड़ा करते हैं।"

(गोपाल सिद्धान्त पृष्ठ ५)

२९–श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

भारत के आबालवृद्ध इन महाशय के नाम और काम से परिचित हैं। आर्यसमाज के जो आज पश्चिमोत्तर भारत में शिक्षाप्रचार और सामाजिक सुधार में सबसे अधिक भाग लेरहा है, संस्थापक येही महाशय थे। इन्होंने संन्यास धारण करके आजन्म वैदिक धर्म के उपदेश और प्रचार का काम किया। संस्कृत और हिन्दीभाषा में इन्होंने कई ग्रन्थ निर्माण किये हैं, जिनमें "सत्यार्थप्रकाश" प्रसिद्ध है। उसमें प्रस्तुत विषय में ये अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट करते हैं:—

"जिस पुरुष या स्त्री का पाणिग्रहण संस्कार मात्र हुवाहो और संयोग न हुवा हो, अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुषहो, उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिए।" (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ११९)

३०–पं० राधाचरण गोस्वामी।

ये महाशय वैष्णव संप्रदाय के एक प्रतिष्ठित आचार्य हैं। वृन्दावन में श्री राधारमण का जो मंदिर है, उसके अधिष्ठाता और वृन्दावन के म्यूनिसिपल कमिश्नर भी हैं। हिन्दी भाषा से इनको बड़ा प्रेम है, उसमें इन्होंने कई पुस्तकें प्रकाशितकी हैं, जिनमें 'विदेशयात्राविचार' और 'विधवाविवाहविवरण' ये दो पुस्तकें बडे मार्के की हैं। पहली में इन्होंने समुद्रयात्रा को शास्त्रानुकूल सिद्ध किया है। दूसरी में विधवाविवाह को शास्त्रोक्त सिद्ध करने के अतिरिक्त बालविधवाओं की करुणाजनक दशा का ऐसा हृदयद्रावक चित्र खींचा है कि जिसको देख या सुनकर एकवार तो पाषाणहृदय भी पिघलजावे। उसकी भूमिका में ये लिखते हैं:—

"मैं वैष्णव संप्रदाय का एक आचार्य हूं, विवाह आदि संस्कार वैष्णवधर्म से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते. ये स्मार्ताचार हैं, उनके विषय में विचार करने से वैष्णव धर्म का कुछ अपमान नहीं होता। यदि इसपर विचार करने से हमारे स्मार्ताचारानुयायी भाई कुछ रुष्ट हों तो उनसे निवेदन है कि मैं विधवाविवाह को शास्त्रोक्त समझताहूं, इसीसे इसका समर्थन करताहूं।"

३१—पं० विष्णु विट्ठल औखण्डे।

ये महाशय जबलपुर नॉरमल स्कूल के अध्यापक थे इन्होंने हिन्दी में एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसका नाम 'विधवा दुःखनिवारण है और जिसमें श्रुति स्मृति के प्रमाणोंसे विधवा विवाह का वैध होना सिद्ध कियागया है।

३२—पं० श्रीधरपाठक।

आप संस्कृत के विद्वान् और हिन्दी के परम हितैषी हैं। प्रयागसाहित्य सम्मेलनके आप सभापति भी बनचुके हैं। संस्कृत और हिन्दी दोनों में ही मर्मस्पर्शिनी कवितायें करते हैं, जिनका विद्वानों में बड़ा आदर है। आप अपनी एक नवीन कविता में लिखते हैं:—

"प्रीति मान मर्याद की विधिमूलसों मिटगई।
निरपराधिनि बालिका लघु वयस् मृदु लरकई॥
व्याहि रांड बनाइये, यह कौनसी सुघरई।
जन्म भर विधदेह जारत काम बल कठिनई॥
निबल प्रान सताइवे में कहु कहा ठकुरई।
स्वार्थ प्रिय पाषान सो हिय निपट शठ निरदई॥
बालविधवा शाप बस यह भूमि भई पातकमई।
होत दुखः अपार सजनी निरखिकर जग निठुरई॥

३३—ला० गंगाप्रसाद एम० ए० उपाध्याय।

आप इस समय न केवल आर्यसमाज के भूषण हैं, किन्तु समस्त हिन्दू जाति को आप जैसे योग्य विद्वान् और देश भक्त का गर्व है। आप प्रस्तुत विषय में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट करते हैं:—

'भारत वर्ष में विधवाओं की दुर्दशा है, नकेवल वही दुःखी हैं, किन्तु उनके कारण समस्त जाति दुःखी है। कहते हैं कि कानी आँख से लाभ तो कुछ नहीं, परन्तु जब दुखने आजाय तो पीड़ा देती है। किन्तु विधवायें वे कानी आँख हैं, जो नित्य दुखती ही रहती हैं। आजकल भारतवर्ष में बालविवाह तथा अन्य कुरीतियों के कारण विधवाओं की संख्या इतनी बढ़ गई है और एक वर्ष से लेकर पाँच, दस, पन्द्रह तथा बीस वर्ष की आयुकी इतनी विधवायें हैं कि जातिके नेताओं के लिये यह एक बड़ी विभीषिका होगई है।" (चाँद अप्रैल २३ ई०)

३४—रायबहादुर नानकचन्द सी-आई-ई

ये महाशय पहले इन्दौर स्टेट के दीवान थे, इनकी योग्यता इनके पद और कार्यदक्षता से प्रकट है। ये वैश्य जाति के भूषण हैं। सन् १६०६ ई० में इन्होंने अपने पुत्र का एक विधवा के साथ विवाह किया। अपनी अनाथा विधवा पुत्री का जो पुनर्विवाह करते हैं, वेतो प्रशंसा के योग्य हैं ही, पर अपने पुत्र का जो विधवाके साथ विवाह करते हैं, वे उनसे भी अधिक प्रशंसा के पात्र हैं। इसलिये कि उनको तो कुमारी कन्यायें मिलसकती थीं, पर विधवाओं के लिए अभी हिन्दू-समाज में योग्यवर का मिलना ज़रा कठिन है। इसलिये किसी विधवा के लिये योग्यवर को तयार करने वाले वस्तुतः अधिक

धन्यवाद के पात्र हैं। इन महाशय ने वैश्य जातिके लिये कैसा उत्तम आदर्श उपस्थित किया है, अब भी वह यदि इससे लाभ न उठावे तो यह जातिकी मन्दभाग्यता है। इन्होंने 'विधवा-विवाह' नामकी एक पुस्तिका भी हिन्दी में प्रकाशित की है जिसके अन्त में ये लिखते हैं:—

"इससे सिद्ध है कि विधवाविवाह शास्त्र से अनुमत और विद्वानों के सम्मत है और इसके रोकने में एक प्रकार का पाप है। इसलिये सज्जन पुरुषों को इस विषय में पूर्ण-विचार करके अनाथ विधवाओं की सहायता करनी चाहिये।"

३५—रायबहादुर डाक्टर मुकन्दलाल

ये महाशय आगरे में सिविल सर्जन थे, इन्होंने मेडिकल सर्विस में बहुत कुछ यश और साथही धन भी उपार्जन किया। सरकारने इनकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर इनको वाइसराय का फ़ैमिली डाक्टर नियत किया था। ये जाति के कायस्थ थे, इनकी प्यारी पुत्री ९ वर्ष की अवस्था में विधवा होगई थी, उसका ये पुनर्विवाह करना चाहते थे। परन्तु विवाह से पहले इन्होंने इस विषय में अपने जातीय बान्धवों की सम्मति लेनी चाही। अबतो शिक्षा के प्रचार से प्रत्येक जाति में विधवा विवाह से सहानुभूति रखनेवाले पुरुष मिलते हैं, उस समय यह बात नथी। इनके इस प्रस्ताव का कायस्थ जातिने बड़ा विरोध किया। इसपर इन्होंने पण्डितों से व्यवस्था ली और एक पुस्तक 'सनातन धर्म' के नामसे जिस में विधवाविवाह का श्रुति स्मृति और पुराणों से समर्थन कियागया है प्रकाशित की। परन्तु जातीय विरोध के कारण इनको अपने प्रयत्न में सफलता नहीं हुई। निदान विधवापुत्रीके दुःख से संतप्त होकर ही इनकी आत्मा ने इस भौतिक शरीर को त्यागा।

३६-राय डाक्टर मुरारीलाल।

ये महाशय पहले कानपुर में हेल्थ आफ़िसर थे, अब अव-सरग्राही होकर स्वतन्त्र चिकित्साका व्यवसाय करते हैं। ये जाति के वैश्य हैं। इन्होंने भी सन् १९०४ ई० में अपनी विधवा भगिनी का पुनर्विवाह करके अपने नैतिक बल का परिचय दिया है। इन्होंने उर्दू में एक पुस्तक 'रिसाले विधवाविवाह' के नाम से प्रकाशित की है, जिसमें बड़ी खोज और परिश्रम से शास्त्रीय प्रमाणों का सन्निवेश किया गया है और विरोधियों के आक्षेपों के उत्तर भी बड़ी योग्यता से दियेगये हैं। आप उसकी भूमिका में लिखते हैं:—

"वर्तमान काल की अल्पवयस्का, दयनीया, हिन्दू विध-वाओं की दशा जैसी कुछ शोचनीय है, वह वर्णनातीत है। विधवाविवाह के अप्रचार से जो जो सामाजिक और नैतिक बुराइयां हमारे समाज में प्रचलित होगई हैं, वे किसी समाज के शुभचिन्तक से छिपी नहीं है। बालविवाह के प्रचार ने उन बुराइयों को और भी भयानक करदिया है। इसलिए प्रत्येक देशहितैषीका कर्तव्य है कि वह उन अनर्थों के और साथ ही इन अबोल बालविधवाओं के दुःख दूर करने में यथा-शक्ति यत्न करके धन्यवादका पात्र हो।"

३७-पं० शंकरलाल श्रोत्रिय।

ये महाशय गौड़ ब्राह्मण थे। इन्होंने अपना सारा जीवन ही विधवाविवाह के प्रचार में अर्पण कर दियाथा। उत्तर भारत के उच्च कुलों में इनके प्रयत्न से सैकड़ों ही विधवाविवाह हुवे। बीसियों अनाथ विधवाओं के इन्होंने अपना धन लगा-कर विवाह कराये और कन्याओं को अपनी तरफ़ से यौतुक प्रदान किया। जिन विधवाओं का कोई कन्यादान करने वाला

नहीं होता था, ये स्वयं पिताके आसन पर बैठकर कन्यादान करते थे। मरते दम तक इनको इसी की धुन रही। पहली स्त्री का वियोग होनेपर इनकी विवाह करने की इच्छा न थी, क्योंकि जिसके लिए विवाह करते हैं, वह सन्तान इनके मौजूद थी। पर जब लोगोंने इनपर आक्षेप करने आरम्भ किये और ये शब्द इनके कानोंने सुने कि "दूसरों के घर ही आग लगाना आता है, अपने घर में आग लगावें तब हम जानें।" तब इनसे न रहागया और आवश्यक न होनेपर भी इन्होंने एक विधवा के साथ विवाह किया। इनकी जातिवालों मे बड़ा विरोध किया और इनके साथ खान पान आदि व्यवहार भी त्याग दिया, पर इसकी इन्होंने कुछ परवा न की। यह ध्रुवके समान अपने पवित्र उद्देश पर जमा रहा।

इन्होंने विधवाविवाह के विषय में कई पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें 'विधवा पुनः संस्कार' प्रसिद्ध है, जिसमें श्रुति, स्मृति और पुराणों के अनेक प्रमाणों से विधवाविवाह का वैध होना सिद्ध कियाहै। एक मासिक पत्र भी "अबला हितकारक" नाम से ये निकालते थे। उसमें विधवाविवाह सम्बन्धी बहुत से लेख और समाचार प्रकाशित होते थे। शोक कि इनकी मृत्यु के साथ उस पत्र का भी अन्त होगया।

३८—डाक्टर तेजबहादुर सप्रू।

भारत के आधुनिक राजनैतिक नेताओं में आप मुख्य समझे जाते हैं। आपकी कानूनी योग्यता सरकार और जनता दोनों की दृष्टि में आदरणीय है। कई वर्ष तक आप भारत सरकार की कानूनी कौन्सिल के मेम्बर रहचुके हैं! अभी हाल में आप लन्दन की इम्पीरियल कान्फ्रेन्स में भारत सरकार के प्रतिनिधि होकर गये हैं और वहां आपने जो मार्मिक वक्तृता

ही है, उसकी न केवल भारत में किन्तु साम्राज्य भर में प्रशंसा होरही है। विधवाविवाह के विषय में आपने जो अपनी सम्मति प्रकट की है। हम प्रयागके मासिक पत्र चान्द से यहां उद्धृत करते हैं। उक्त पत्र के प्रतिनिधि के यह पूछने पर कि विधवाविवाह के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? आपने कहाः—

"मैं सर्वथा विधवाविवाहके पक्ष में हूं, विधवाओं का पुनर्विवाह अवश्य होना चाहिए, ऐसा न करना मैं मनुष्यता के विरुद्ध समझता हूं।"

पुनः यह प्रश्न करने पर कि क्या सब विधवाओंके सम्बंध में आपका यही विचार है? आपने कहाः—

"बालविधवाओं का पुनर्विवाह तो अवश्य ही होना चाहिये। पर अन्य विधवाओं की इच्छा पर पुनर्विवाह का प्रश्न छोड़ देना चाहिए। यदि स्त्री की इच्छा हो तो इसमें किसी प्रकार की रोक टोक न होनी चाहिए और समाजमें उनके प्रति अश्रद्धा के भाव न होने चाहिए।"

३६—महात्मा मोहनचन्द कर्मचन्द गान्धी।

क्या भारतीयों के लिए महात्मा गान्धी के भी परिचय देने की आवश्यकता है? भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु संसार में महापुरुष मानाजानेवाला महात्मा गांधी अपनी विधवा बहनों के विषय में नवजीवनमें निम्नलिखित सम्मति प्रकट करताहैः—

१—बालविबाह एकदम रोक दिया जावे।

२—जबतक पति और पत्नी इस अवस्था तक न पहुंचे कि एक दूसरे के साथ रह सकें, तब तक उनका विवाह न होना चाहिए।

३—जो बालिकायें अपने पति के साथ नहीं रही हैं, उन्हें केवल विवाह करने की आज्ञा ही नहीं, किन्तु उसके लिए उत्साहित भी करना चाहिए। ऐसी लड़कियों को तो विधवा खयाल ही न करना चाहिए।

४—वे विधवायें जिनकी अवस्था १५ वर्ष तक है या जो अभी युवती हैं, उन्हें पुनर्विवाह करने की आज्ञा देनी चाहिये।

५-विधवाको लोग अशुभ समझते हैं, किन्तु इसके विपरीत उसे पवित्र समझना चाहिए।

६—विधवाओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

४०—पं० कृष्णकान्त मालवीय।

आप मालवीय कुल के भूषण हैं, परम देशभक्त होने के अतिरिक्त आप में जो विशेष गुण है, वह आपकी स्पष्टवादिता है। आप जिस निर्भीकता से सरकार के दोषों की आलोचना करते हैं, उसी से अपने समाज की निर्बलताओं को भी प्रकट करते हैं। बड़े २ संकट और भीड़ के अवसरों पर भी आपने अपने आत्मिक बल का परिचय दिया है। प्रस्तुत विषय में हम आपकी सम्मति अप्रैल सन् १९२३ के 'चांद' प्रयाग से उद्धृत करते हैं:—

"जो विधवायें विवाह करना चाहें, उनके मार्ग में अड़चनें न होनी चाहियें। इसके साथ ही बालविधवाओं को उनकी अवस्था और भविष्य पर ध्यान रखते हुवे यह परामर्श देना कि वे अपना विवाह करलें, अनुचित न समझा जाना चाहिए।"

४१—पं० रमाशंकर अवस्थी।

आप प्रताप और वर्तमान आदि कई उच्चकोटि के समाचार पत्रों का संपादन करचुके हैं। आपकी देशभक्ति और

स्पष्टवादिता भी समाचारपत्रों के पाठकों से छिपी नहीं है। आप विधवाओं की करुणाजनक दशा पर 'वर्तमान' में लिखते हैं:—

"लाखों विधवायें हिन्दू जाति के नाम पर रोरही हैं। लेकिन निर्दय और हृदयहीन हिन्दू जरा भी दयार्द्र नहीं होते। यह घोर अधर्म देशको, जातिको, धर्म को और समाज को एक दिन ले डूबेगा और शीघ्र ही इस भयंकर भूल का सुधार न किया जायगा तो हिन्दू जाति का संसार से नाम मिट जायगा।"

४२—प्रोफेसर मैक्समूलर।

शिक्षित भारतवासियों में कौन ऐसा है, जो इस जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् को नहीं जानता। विदेशी होकर इन्होंने संस्कृत साहित्य का जैसा परिशीलन किया है, उसकी सहस्र मुखसे प्रशंसा करनी पड़ती है। इन्होंने संस्कृत के बड़े बड़े प्राचीन ग्रंथों का जीर्णोद्धार किया है और उनपर बड़ी अनुसन्धानात्मक और पाण्डित्यपूर्ण प्रस्तावनायें एवं अनुक्रमणिकायें लिखी हैं। ऋग्वेद तथा और कई वैदिक ग्रन्थों का इङ्गलिश में अनुवाद किया है। निदान प्राचीन संस्कृत साहित्य के उद्धार में इन्होंने जो प्रयत्न और परिश्रम किया है, उसकी प्रशंसा भारतीय विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से की है। ये महाशय अपने "चीप्स फ्राम जर्मन वर्कशाप" नामीं ग्रन्थ के ३१२ पृष्ठ में लिखते हैं:—

"मैंने जहां तक वेदों का अध्ययन किया है, मुझे कोई ऐसा मंत्र नहीं दीख पड़ा, जिसमें बालविवाह की आज्ञा और विधवाविवाह का निषेध किया गया हो।"

४३–मिस्टर जान दी मैन।

ये महाशय कानून के प्रसिद्ध परिडत हुवे हैं। इन्होंने हिन्दू ला के संवंध में कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनका भारत के न्यायालयों में बड़ा आदर है। ये अपनी कानून की प्रसिद्ध पुस्तक "मैन आफ हिंदूला" के पृष्ठ ९५ व ९६ में लिखते हैं:—

"स्त्रियों के पुनर्विवाह का निषेध या वैधव्य की दशा में उनका त्याग प्राचीन हिंदू कानून या रिवाज़ के अनुसार सिद्ध नहीं होता। डाक्टर मेयर ने वेदों के मंत्र उद्धृत किये हैं, जो विधवाविवाह की आज्ञा देते हैं। आरम्भ के शास्त्रकारों ने स्त्रियों के पुनर्विवाह की आज्ञा दी है, जिन्होंने अपने पति को त्याग दिया हो या जिनका पति मरगया हो।"

४४–डाक्टर बुल्हर।

ये भी संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे. इनकी आयु का विशेष भाग संस्कृत साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन में व्यतीत हुआ। पूना के शास्त्रार्थ में जो पं० विष्णु शास्त्री का विधवाविवाह के विपक्षियों से हुआ था, ये भी मौजूद थे। इन्होंने उसमें पं० विष्णु शास्त्री को बड़ी अमूल्य सहायता दी थी।

कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयारण्यक के प्रपाठक ६ का १४वां मंत्र, जिसके भाष्य में सायण ने स्पष्ट विधवाविवाह का विधान किया है, इन्होंने ही खोजकर निकाला था, जिसको देखकर विपक्षियों के मुंह सूखगये।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों ने विधवाविवाह के अनुकूल अपनी सम्मति प्रकट की है। यहां पर हम केवल उनका संक्षिप्त परिचय भी देंतो यह पुस्तक बहुत बढ़ जायगी। अतएव अब हम प्रसिद्ध देशभक्त ठाकुर शिवनन्दनसिंह की सम्मति को जो उन्होंने विधवाओं की शोच-

नीय दशा पर स्वरचित 'देश दर्शन' नामक पुस्तक में प्रकट की है, उद्धृत करके इस परिशिष्ट प्रकरण को समाप्त करते हैं।

४५—ठाकुर शिवनन्दनसिंह

"सब के ऊपर भारतमें २ करोड़ ६० लाखसे अधिक विधवायें हैं। मैं इनके आचरण पर आक्षेप नहींकरता। पर सोचने की बात है कि इनमें प्रायः सभी मूर्खा हैं। वेद, शास्त्र, धर्म और ज्ञान से सर्वथा वञ्चित हैं। वे केवल यह जानती हैं कि उनके कुल में विधवाविवाह नहीं होता। क्यों नहीं होता? इस का वे कुछ उत्तर नहीं देसकतीं। केवल भाग्य में लिखा है, कर्म फूट गया है, आदि कहकर मनकी तरङ्गों को शान्त करती हैं। पर इन स्त्रियों को शैतान पंडों, पुरोहितों या ऐसे ही अन्य पाखण्डियों से भेट हो जाने पर और मौका मिलने पर भाग्य के बल पर ये कबतक कामदेव से युद्ध करसकती हैं? आख़िर तो मूर्खा स्त्रियां ही ठहरीं न, उनकी कमज़ोरी उन्हें यह समझा कर संतोष करने के लिए लाचार कर देती है कि "यह दुराचार भी विधाता ने उनके भाग्य में लिख रक्खा होगा, वे स्वयं धर्मच्युत नहीं होरहीं हैं, किंतु यह भी उनके दुर्भाग्य का परिणाम है। जिस दुर्भाग्य ने उन को जर्जर पति की पत्नी बनाया और उसे भी रहने न दिया, वही भाग्य पिशाच उन को आज गढ़े में झोंक रहा है। चलो यहभी सही " विधि का लिखा को मेटन हारा।"

"विश्वबन्धु के मकान के पास ही एक कुलीन ब्राह्मण महाशय का घर था। उनके यहां एक परम रूपवती युवती विधवा थी। उनके घर पर्दे का कड़ा नियम था तो भी विश्व बन्धु बे रोकटोक उनके यहां जाया करते थे। कुछ दिनों के बाद जब न जाने क्यों ब्राह्मण महाशयने मकान छोड़देने का

निश्चय किया, तब विश्वबंधुने अपनी मां से कहसुनकर उस मकान को मोल लेलिया। ब्राह्मण महाशय सपरिवार अपने देश कन्नौज को चलेगये। विश्वबंधुने उस मकान की मरम्मत शुरू कराई। एक कोठरी जिसे पण्डिताइन ठाकुरजी की कोठरी कहा करती थीं और जो साल में केवल कुलदेवता की पूजा के समय खोली जाती थी, बड़ी सड़ी नम और बदबूदार थी। उसे पक्की करादेना निश्चय हुवा। नम मिट्टी को खोदने के लिए मज़दूर लगायेगये। सुनाजाता है कि उसमें से एक ही उमरके बच्चों के कई पंजर निकले। एक तो बिलकुल हालहीका दफनाया जान पड़ता था। प्रभो! भारत को ऐसे भयङ्कर पापों से बचाइये !! "

"भारत में ये कई लाख वेश्यायें कौन हैं? हम भारतवासियों के घरकी विधवायें, हमारी ही बहनें और बेटियां तथा उनकी सन्तति, हमारी ही असावधानी, निर्दयता और निष्ठुरता के कारण उनकी यह दशा हुई है।

हमारा समाज जिसे हम मूर्खतावश अत्युत्तम समझ बैठे हैं और जिसकी बनावटी पवित्रता पर हम फूले नहीं समाते, बिलकुल निर्जीव; निर्बल और सर्वथा अशिक्षित मनुष्यों का समूह है। इस समाज को सच्चरित्र स्त्रियों का शाप और दुश्चरित्र स्त्रियों का पाप भस्मीभूत कररहा है और यदि इस पर लोगों ने ध्यान न दिया तो ये शाप और पाप कुछ ही काल में समाज को जलाकर भस्मसात् करदेंगे। सावधान!!!

[देशदर्शन पृ० १८०—१८२]

॥ समाप्त ॥

भारतीय बालविधवाओं की संख्या

सन् १९११ ई०

अवस्था	संख्या
१ वर्ष तक	१०००
१ से २ "	२०००
२ से ३ "	४०००
३ से ४ "	७०००
४ से ५ "	२७०००
५ से १० "	२८५०००
१० से १५ "	१५२००००
१५ से २० "	४२१००००
योग	६०५६०००

२० से ऊपर ६० वर्ष तक की विधवाओं की संख्या २ करोड़ के लगभग है। १२ करोड़ स्त्रियों में ३ करोड़ के लगभग अर्थात् एक चौथाई विधवा हैं।

बेवा की फ़रयाद।

हिन्दुओ! तुमको अगर कुछ भी दिखाई देता।
चर्ख़ पर नाला मेरा यों न दुहाई देता॥
मैं वह बेकस हूं कि जुज़ नाला कोई काम नहीं।
दर्द होता तो तुम्हें भी वह सुनाई देता॥
तीरह बख्ती से शबे ग़म है भयानक ऐसी।
जिसमें जुज़ दर्दो अलम कुछ न सुझाई देता॥
इस मुसीबत की खबर होता जो पहले मुझको।
मैं न लेती जो खुदा साथ खुदाई देता॥
इससे बेहतर तो यही था कि खुदा से पहले।
मांग लेती जो मुझे मौत बिन आई देता॥
कौन से जुर्म में गर्दानी गई हूं मुजरिम।
और तो और तसल्ली नहीं भाई देता॥
फूल से मिलने की उम्मीद जो जाती रहती।
कौन बुलबुल को सरे नग़मे सराई देता॥
मेरे गुलशन को भी बर्बाद न करती ये खिज़ां।
काश आहों को मेरा बख्त रसाई देता॥
बेसमर जिन्दगी होती न 'फ़िदा' बेवोंकी।
कैदे ग़म से जो इन्हें कोई रिहाई देता॥